श्रीमन्नारायण

व्यक्ति और विचार

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

पूर्ण — पूर्ण = पूर्ण

श्रीमन्नारायण
व्यक्ति और
विचार

सस्ता

मन्नारायण

व्यक्ति और विचार

सम्पादक
यशपाल जैन

१९७१

साहित्य मण्डल प्रकाशन

स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी कि इस ग्रंथ के प्रकाशन की योजना करनी होगी और वह भी इतनी जल्दी। पर प्रभु की लीला को कौन जानता है !

बंधुवर श्रीमन्नारायणजी का देहावसान कुछ इतने आकस्मिक रूप से हुआ कि आज भी विश्वास नहीं होता कि वह सचमुच चले गये। अपने पैंसठ वर्षीय जीवन को उन्होंने इतना समृद्ध और सार्थक किया था कि वह सहज ही सबके स्नेह और आदर के भाजन बन गये थे। उनसे मत-भेद रखने वाले भी उनके सौजन्य से प्रभावित थे।

लोक-मंगल उन्हें सदा अभीष्ट रहा। वह जहां भी रहे और जिस पद पर भी रहे, मानव हर घड़ी उनके सामने रहा। उसी के हित-चिंतन और हित-साधन में वह सतत लीन रहे।

उनके जीवन में ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय था। उसी त्रिवेणी में वह बराबर अवगाहन करते रहे। उससे स्वयं जो शीतलता प्राप्त की, उसे मुक्त भाव से दूसरों को भी देते रहे।

यों काल के प्रवाह में व्यक्ति की बिसात ही क्या है ! जो आता है, वह एक-न-एक दिन चला ही जाता है, लेकिन कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं, जो काल से पराभूत नहीं होते, उल्टे काल उनके समक्ष झुक जाता है। प्रेम वह अमोघ अस्त्र है, जिसे काल कभी परास्त नहीं कर सकता। श्रीमन्‌जी ने जीवन-भर उसी अस्त्र का प्रयोग किया और लोक-मानस में अपना अक्षुण्ण स्थान बनाया।

इस ग्रंथ के प्रकाशन का मूल हेतु यह है कि व्यक्ति के माध्यम से हम उन गुणों को जानें, उनका स्मरण करें, जो सफल जीवन के लिए अपेक्षित और स्पृहणीय हैं।

ग्रंथ की सामग्री मुख्यतः तीन खण्डों में विभाजित है : १. व्यक्ति, २. चरैवेति-चरैवेति और ३. विचार। पहले खण्ड में श्रीमन्‌जी के संपर्क में आये महानुभावों तथा कुटुम्बी-जनों के उद्‌गार हैं, जो श्रीमन्‌जी के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। दूसरे खण्ड में 'चरैवेति-चरैवेति' अर्थात् उनकी संक्षिप्त जीवनी है, जिसके लेखक हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और 'गांधी-मार्ग' के सम्पादक श्री भवानीप्रसाद मिश्र हैं। तीसरे खण्ड में श्रीमन्‌जी के चुने हुए विचार उन्हीं के लिखे निबंधों, लेखों, संस्मरणों (नई-पुरानी यादें), जेल-जीवन की दैनंदिनी के अंशों (चिन्तन-मनन), कविताओं (काव्य) तथा पत्रावली के रूप में संकलित किये गए हैं।

अन्त में परिशिष्ट में उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं की तालिका, हिन्दी-अंग्रेजी में लिखी उनकी पुस्तकों की सूची तथा देश के कोने-कोने से अर्पित की गईं भावांजलियां संकलित हैं। बीच में अनेक चित्र भी दिये गए हैं।

ग्रंथ की योजना बहुत पहले बनाई गई थी, पर काम देर में शुरू हुआ। फलतः हम जिस प्रकार की सामग्री इस ग्रंथ में देना चाहते थे, सम्पूर्ण सामग्री वैसी नहीं जुटा पाये। फिर भी जो सामग्री दी गई है, वह भावना और प्रेरणा की दृष्टि से अपना विशेष महत्व रखती है। हृदय की गहराई से निकला एक शब्द किसी विशाल ग्रंथ की अपेक्षा अधिक मूल्यवान होता है।

ग्रंथ को ढाई सौ पृष्ठों तक सीमित रखने का विचार किया गया था, लेकिन अल्प समय में इतनी सामग्री प्राप्त हो गई कि ग्रंथ का आकार ड्योढ़े से भी अधिक हो गया। हमें खेद है कि इच्छा होते हुए भी, स्थानाभाव के कारण, हम कुछ रचनाओं का उपयोग नहीं कर पाये। उनके लेखकों से हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

पूज्य विनोबाजी ने अपनी वाणी और लेखनी को विराम दे रक्खा है। वह अपवाद-स्वरूप ही बोलते और लिखते हैं, लेकिन श्रीमन्जी के प्रति उनकी इतनी गहरी आत्मीयता रही है कि हमारे अनुरोध को स्वीकार करके उन्होंने तत्काल ग्रंथ के लिए अपने अत्यन्त प्रेरणादायक उद्गार लिपि-बद्ध कर दिये। इसके लिए शब्दों में उनका आभार मानना धृष्टता होगी। हमारे उपराष्ट्र-पति श्री बा० दा० जत्ती और प्रधानमंत्री श्री मोरारजीभाई ने अनेक जटिल समस्याओं से घिरे और अत्यधिक व्यस्त होते हुए भी अपने मूल्यवान संदेश भेजने का अनुग्रह किया। उसके लिए हम उनका जितना आभार मानें, थोड़ा है। संस्मरण-लेखकों के भी हम ऋणी हैं, जिन्होंने हमारी सूचना के मिलते ही अपनी रचनाएं भेज दीं। बंधुवर भवानीप्रसाद मिश्र ने चंद दिनों में ही इतनी सुन्दर, सुपाठ्य तथा ज्ञानवर्द्धक जीवनी लिख दी, इसके लिए शब्दों में अपनी भावना व्यक्त करना संभव नहीं है।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य स्नेहीजन हैं, जिन्होंने इस ग्रंथ के लिए उपयोगी सामग्री जुटाने में अथक परिश्रम किया, रात-दिन एक कर दिये, लेकिन वे हमारे इतने आत्मीय हैं कि उनके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन करने के लिए हमें शब्द ही नहीं मिल रहे हैं।

ग्रंथ समय पर कदाचित् न निकल पाता, यदि रूपक प्रिंटर्स के संचालक श्री संतोष कुमार और उनके सहयोगी इस काम में जी-जान से न जुट पाते। पर हम उसके लिए उन्हें धन्यवाद नहीं देंगे, क्योंकि यह काम उन्होंने व्यावसायिक दृष्टि से उतना नहीं, जितना स्नेहभाव से प्रेरित होकर किया है।

हमें इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि हमारा यह संकल्पित अनुष्ठान श्रीमन्जी की प्रथम पुण्य-तिथि के पावन अवसर पर पूर्ण हो रहा है। एक प्रकार से यह दिवंगत आत्मा के प्रति हम सबकी विनम्र श्रद्धांजलि है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ग्रंथ में जो कुछ अच्छा है, उसका श्रेय उन महानुभावों को है, जिन्होंने इसकी आत्मा का सृजन किया है। यदि इसमें कुछ कमियां या त्रुटियां रह गई हैं तो उनके लिए हम जिम्मेदार हैं और पाठकों से क्षमायाचना करते हैं।

—यशपाल जैन

स्वर्गीय श्रीमन्नारायणजी हमारे देश के उन व्यक्तियों में से थे, जिन्होंने अपने को रचनात्मक प्रवृत्तियों के लिए समर्पित कर दिया था। उन्होंने राजनीति में भी भाग लिया—वह पार्लियामेंट के सदस्य रहे, कांग्रेस के महामंत्री बने, योजना आयोग के सदस्य रहे और नेपाल में भारत के राजदूत तथा गुजरात के राज्यपाल के पदों पर कार्य किया, लेकिन इन पदों पर भी उनकी दृष्टि रचनात्मक ही बनी रही। इसका मुख्य कारण यह था कि आरम्भ से ही उन्होंने गांधीजी तथा विनोबाजी से प्रेरणा प्राप्त की थी और उनके सिद्धांतों को आत्मसात कर लिया था। वह चाहते थे कि राजनीति की बुनियाद नीति पर रहे और इसके लिए वह अनवरत प्रयत्न करते रहे।

साहित्य और शिक्षा के क्षेत्र में भी श्रीमन्‌जी का योगदान उल्लेखनीय है। उन्होंने कई पुस्तकें हिन्दी और अंग्रेजी में लिखीं और शिक्षा के क्षेत्र में तो उनके अनेक वर्ष व्यतीत हुए। वह गांधीजी द्वारा प्रतिपादित नई तालीम के समर्थक थे और उसी के प्रसार के लिए उन्होंने बहुविध प्रयत्न किए।

श्रीमन्‌जी लोकपक्ष और सरकार के बीच की एक शक्तिशाली कड़ी थे। उन्हें सब पदों और दलों का विश्वास प्राप्त था।

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि उनकी स्मृति में सस्ता साहित्य मंडल, उनकी पहली पुण्यतिथि के अवसर पर एक ग्रंथ प्रकाशित कर रहा है। मैं आशा करता हूं कि इस ग्रंथ की सामग्री से सभी विचारों के पाठक लाभान्वित होंगे।

—बा० दा० जत्ती

व्यक्ति

स्मृति-सौरभ

चरैवेति-चरैवेति

विचार

निबन्ध और लेख

नई पुरानी यादें

समाज-संरचना के आधार

परिशिष्ट

नाम उनका श्रीमन्नारायण है।

लेकिन वे दरिद्रनारायण की
सेवा में निरंतर रत रहे।
उनकी मृत्यु 65 साल की
उम्र में हुई।
उनके जीवन के विषय में
जो ग्रंथ प्रकाशित किया
जा रहा है, उस के लिये
बाबा की शुभकामना॥

राम हरि (विनोबा)
4-12-1978

ब्रह्म विद्या मंदिर
परंधाम
पवनार
गांधी जिल्हा
महाराष्ट्र
भारत
जगत्

प्रधान मंत्री

सन्देश

श्रीमनजी रचनात्मक क्षेत्र के व्यक्ति थे और उनकी दृष्टि समन्वय की रही। उन्होंने जहां भी काम किया वहां व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का हित उनके लिए सबसे अधिक महत्व का रहा।

अपने जीवन के प्रारंभिक काल से ही उन्हें गांधी जी से विशेष प्रेरणा मिली थी। गांधी मार्ग में उनकी गहरी श्रद्धा थी। शिक्षा, संयोजन, संस्कृति, राजनीति, अर्थ नीति आदि सभी क्षेत्रों में वह गांधी जी के विचारों का समावेश कराने का प्रयत्न करते रहे। गांधी जी के संदेश को जन-सामान्य तक पहुंचाने की कोशिश की।

मैं आशा करता हूं कि यह ग्रन्थ इस बात की याद दिलायेगा कि मनुष्य को अच्छा मनुष्य बनने और ऐसे काम करने का प्रयत्न करना चाहिए, जो व्यक्ति के जीवन को सफल और कृतार्थ करते हैं।

मोरारजी देसाई

(मोरारजी देसाई)

नई दिल्ली,
14 दिसम्बर, 1978

महात्माजी तथा जमनालालजी के उत्तराधिकारी

काका साहेब कालेलकर

□ □

जिनकी हमने अधिक-से-अधिक आशा रखी थी, जिनको गांधी-कार्य चलानेवाले हमने, अपना सर्वश्रेष्ठ अनुयायी माना था, ऐसे श्रीमन्‌जी के बारे में 'स्वर्गस्थ' शब्द काम में लाते हमारे हृदय को कितना आघात होता है, सो बाकी की दुनिया समझे या न समझे, तुम्हारी समझ में अवश्य आयेगा।

पूज्य बापूजी और अत्यन्त आदरणीय जमनालालजी के विशाल भारतीय कुटुम्ब के हम सब सदस्य हैं। तुमको तो मैंने अपनी ही लड़की के जैसे गोद में लेकर खिलाया था, और हम लोगों ने माना था कि जब हम इस दुनिया को छोड़कर चले जायेंगे, तब गांधीजी की सारी प्रवृत्तियां और संस्थाएं श्रीमन्‌जी के हाथों छोड़ जायेंगे।

मुझे वे दिन याद आते हैं, जब हम लोग गुजरात छोड़कर वर्धा पहुंच गये थे और आदरणीय जमनालालजी सारा गांधी-कार्य चलाने को तैयार थे।

जमनालालजी ने श्रीमन्‌जी की योग्यता तुरन्त पहचान ली। इस युवक में बुद्धि की तीक्ष्णता है। अध्ययन भी पूरा है और चारित्र्य की शुद्धि के कारण गांधी-कार्य का भार उठाने की योग्यता भी उसमें पूरी है।

गांधीजी के हरेक कार्य में श्रीमन्‌जी को खींचते जमनालालजी को कभी संकोच नहीं हुआ। गांधीजी ने मुझे राष्ट्रभाषा का कार्य सौंपा था। मेरी जन्मभाषा मराठी है। गुजराती मैंने इतनी अपनायी थी कि गांधीजी मुझे 'सवाई गुजराती' कहने लगे थे। स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अपना जीवन-सर्वस्व अर्पण करनेवाले हम सब गांधीवादी-सेवक खादी और हिंदी की सेवा के द्वारा स्वराज्य लाने को तैयार हुए थे। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा हम जानते थे। राष्ट्रभाषा अंग्रेजी का स्थान हिन्दी को देना है तो इसे मुसलमान, ईसाई सब लोगों की भक्ति मिलनी चाहिए। इसलिए गांधीजी ने हिन्दी को 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया और हम बंगाल से लेकर पंजाब तक और कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक एक विशाल पुरुषार्थ फैलाने की तैयारी में उतरे। गांधीजी का यह महान आदर्श जमनालालजी ने अपनाया। हिन्दुस्तानी का यह सारा काम वर्धा से चलाते बापूजी ने मेरे ऊपर और श्रीमन्‌जी के ऊपर डाल दिया था। तब से हम भारत-विशाल गांधी-परिवार के साथ एक-हृदय हो गये।

१. श्रीमती मदालसा नारायण के नाम पत्र।

मेरी उम्र अब सौ के नजदीक पहुंच रही है। मेरा विश्वास था कि विनोबाजी की प्रेरणा से गांधी-कार्य श्रीमन्जी ही चलायेंगे और उन्होंने वैसा चलाया भी।

मैं तो अपने प्रेमियों को और साथियों को हमेशा कहता था कि भगवान ने हमारे काम के लिए श्रीमन्जी को देकर हमें निश्चिंत किया है।

मैं यह सारी बातें कितने हार्दिक दर्द से लिख रहा हूं, इसकी कल्पना बाहर की दुनिया को क्या होगी ! महात्माजी और जमनालालजी के उत्तराधिकारी श्रीमन्जी ही हैं, ऐसे विश्वास से हम भगवान को धन्यवाद देते थे।

आज श्रीमन्जी को खोकर हृदय को जो आघात हुआ है उसी को व्यक्त कर मैं अपनी कलम बाजू पर रखना चाहता था। लेकिन यह भूमि भगवान की है। भगवान के भक्तों को अपना जीवन-सर्वस्व भगवान के चरणों में अर्पण करना है। इसी प्रेरणा से तुम और हम सब काम कर रहे हैं। हम अपना सुख-दुःख, आशा-निराशा सबकुछ भगवान को अर्पण करके उसी की प्रेरणा की सेवा करें।

मैं विश्वास रखता हूं कि तुम और जानकी माता भी अपनी भक्ति और शक्ति भगवान के भविष्य के इस कार्य को अर्पण करोगी।□

समन्वयवृत्ति के व्यक्ति

दादा धर्माधिकारी

□□

उस दिन जब सवेरे सैर करके लौटने पर सुना कि श्रीमन् नहीं रहे तो दिमाग में विचारों की जो उलझन मची, उसका वर्णन करना असंभव है। इस समाचार के लिए मन तैयार नहीं था। तबतक यह पता भी नहीं था कि उन्हें दिल की बीमारी की कोई शिकायत थी। उनका जीवन इतना स्वस्थ और व्यवस्थित था कि उनकी बीमारी का पता आसानी से नहीं लगता था।

श्रीमन्जी के साथ मेरे पारिवारिक संबंध थे। १९३५ में जब मैं वर्धा रहने के लिए गया तो बजाजवाड़ी में जमनालालजी का ही पड़ोसी था। उनके और मेरे परिवार में घरोवा बढ़ता गया, जिससे व्यक्तिगत घनिष्ठता सजीव हुई। उनका बेटा रामकृष्ण और बेटियां मदालसा तथा उमा और उनकी भानजी नर्मदा, इन सबके साथ मेरे बेटे और बेटी घुल-मिल गये, मानो एक प्रकार से दोनों परिवारों ने एक सम्मिलित परिवार का रूप ले लिया। घरेलू और व्यक्तिगत मामलों में भी हम एक-दूसरे से सलाह-मशविरा करने लगे।

इसी बीच जहां तक मुझे याद है, १९३६ में लखनऊ कांग्रेस के बाद जमनालालजी के साथ श्रीमन्जी वर्धा पहुंचे। वे हाल ही विलायत से लौटे थे। वहां आई० सी० एस० की परीक्षा देने गये थे, लेकिन भगवान की कृपा से बाल-बाल बच गये। जमनालालजी में एक सिफ्त थी। वे जहां जाते थे, होनहार और जाने-माने या अनजान गुणी व्यक्तियों की खोज में रहते थे। मराठी

में एक उपनाम है 'रत्नपारखी'। मनुष्यों के विषय में जमनालालजी रत्नपारखी थे। उन्हें इस तरह के मानव-रत्नों का बड़ा लोभ था। जहां किसी की टोह लगती तो उनका जी ललचाता था। वे उसे आग्रहपूर्वक वर्धा लाने की चेष्टा करते थे। इस प्रकार वर्धा को वे एक मानव-रत्न-भंडार या संस्कार-तीर्थ बनाना चाहते थे। उनकी यह तलाश जहां तक तरुणों का संबंध था, केवल गांधीजी के अनेक विधायक कार्यों के लिए ही नहीं थी, बल्कि अपने और अपने मित्रों के परिवार के लड़के-लड़कियों के लिए अनुरूप वधू-वर की दृष्टि से अचूक होती थी।

इस समय जमनालालजी के निजी सचिव स्व० मदनमोहन चतुर्वेदी थे। वे मैनपुरी के थे। श्रीमन्‌जी के पिता भी मैनपुरी में ही वकालत करते थे। मदनमोहन से मेरी व्यक्तिगत मैत्री थी। इसलिए श्रीमन् से अनायास ही परिचय हुआ। जमनालालजी ने मुझसे उनके साथ निकट परिचय करने के लिए कहा।

उसके बाद से तो कई प्रकार के कई कार्यों में उनका और मेरा निकट सम्पर्क हुआ। वैसे ही एक प्रसंग में मद्रास के 'हिंदी साहित्य-सम्मेलन' के मौके पर उनके विवाह के विषय में भी चर्चा निकल पड़ी। तब उनसे अधिक घनिष्ठता हुई। चि० मदालसा से तो थी ही, लेकिन तबतक उसका जीवन एक स्वतंत्र मनस्वी विभूति का था। वह विनोबा की मानस-पुत्री थी। हम तो उसे 'ज्ञानेश्वरी' ही कहते थे। नवयुवक की पोशाक पहनती थी। बाल भी कटे हुए थे। स्वच्छंदता-पूर्वक घोड़ा दौड़ाती थी। अलमोड़ा-बिंसर के हिमालय के वातावरण में विचरती थी। ऐसी तरुणी के साथ श्रीमन् ने तत्परता से विवाह करने की स्वीकृति दी। उसी समय उनके विषय में मेरे चित्त में एक अनोखा सद्भाव पैदा हुआ। मदालसा के साथ शादी करने वाला या तो मूर्ख होगा या धूर्त, ऐसा मैं मानता था। लेकिन श्रीमन् दोनों नहीं थे, यह मैं निकट सम्पर्क से जानता था। वे एक सरल हृदय के उदार आशय और सत्यप्रवृत्त तरुण थे।

पिछले ४०-४२ वर्षों के निकट परिचय के बाद मेरे मन पर उनके व्यक्तित्व की जो छाप पड़ी, वह थी उनकी समन्वय-वृत्ति की। उनके व्यक्तित्व का संतुलन समन्वय और सामन्जस्य का उपादान ही था। उनके जीवन के हर पहलू में ये गुण प्रकट होते थे। जब कभी दो व्यक्ति या व्यक्तियों के समूहों में मतभेद का प्रसंग आता था तो वे तुरन्त समन्वय की खोज में लग जाते थे। येनकेनप्रकारेण समझौता करने का उनका स्वभाव नहीं था। अपनी बात का आग्रह नहीं रखते थे, परन्तु उसे आसानी से छोड़ते भी नहीं थे। अपनी बात का सार-तत्त्व कायम रखकर दूसरों के साथ सहमत होने की तत्परता उनके स्वभाव की विशेषता थी। इसी विशेषता के कारण वे कई संस्थाओं और व्यक्तियों को विषम प्रसंगों से बचा सके। उनमें किसी प्रकार की आत्यन्तिकता नहीं थी। दायें-बायें चलने का आग्रह नहीं था, रास्ते के बीचों-बीच बड़ी सिफ्त के साथ चलते थे। बीच में चलनेवाले को दायें-बायें दोनों तरफ ध्यान रखना होता है, फिर भी गाहे-बगाहे किसी-न-किसी तरफ की सवारी का धक्का लग ही जाता है। इन धक्कों को भी वे बड़ी मधुरता से सह लेते थे। इस तरह के मध्यस्थ व्यक्ति समाज में ऐसी सेवा करते हैं, जिसका बहुत अच्छा या बुरा विज्ञापन नहीं होता है। श्रीमन् के व्यक्तित्व में तूफान की तासीर नहीं थी, शांत, मंद और गम्भीर प्रवाह की तरह उनकी जीवनधारा चलती थी।

मैंने उन्हें वर्धा के 'शिक्षामंडल' द्वारा संचालित विद्यालय और महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में भी देखा। 'शिक्षामंडल' के मंत्री तथा अध्यक्ष के रूप में देखा है। योजना-आयोग के सदस्य,

कांग्रेस के महामंत्री, नेपाल के राजदूत, गुजरात के राज्यपाल आदि-आदि कई भूमिकाओं में देखा है। विविधसंस्थाओं के अध्यक्ष और मंत्री बननेकेलिए वे बड़ेही उपयुक्तथे। यह उनकी समन्वय-वृत्ति का द्योतक था। इन सभी भूमिकाओं में उनकी मधुर समन्वय और संगतीकरण की वृत्ति परस्पर विरोधी तत्त्वों को भी निवाह लेती थी। अपनी उग्र प्रतिक्रिया भी प्रायः वे सौम्य शब्दों में प्रकट करते थे। 'अनुद्वेग करम् वाक्य' उनका शील था।

आपातकाल के दिनों में विनोबाजी ने आचार्य के अनुशासन की बात कही, श्रीमन्‌जी की सहज अन्तर्दृष्टि ने उसके महत्त्व को समझ लिया। विनोबाजी लोगों की अन्तरात्मा के अभि-भावकों के रूप में एक राज्य-निरपेक्ष सत्ता का निर्माण करना चाहते थे। अनुशासन का बौद्धिक अर्थ है सिखावन, अंग्रेजी-शब्द 'डिसिप्लिन' और 'डिसाइपिल' एक ही धातु से निकले हैं, जिनका सांकेतिक अर्थ है सीखना। उस तरह की एक गैर-सरकारी सत्ता के विकास के मर्म को श्रीमन् तुरन्त समझ गये और विनोबाजी की आज्ञा से उसके संयोजन में लग गये। जिस कुशलता से उन्होंने उसका संयोजन किया, वह सर्वविदित ही है। उस शुभ घटना का अधिकांश श्रेय श्रीमन्‌जी को ही है।

इस तरह मैं श्रीमन्‌जी का वर्णन कहां तक करूं। अंत में इतना ही कह देना चाहता हूं कि यदि श्रीमन् रहते और मदालसा न रही होती तो श्रीमन् में मैं मदालसा को भी देखता। अब ईश्वर से प्रार्थना यही है कि श्रीमन् के अभाव में मदालसा में ही श्रीमन् को देख पाऊं। □

जिन्होंने ऐसा पुत्र जन्मा

हरिभाऊ उपाध्याय

□□

माता

दिल्ली में एक ऐसा दृश्य देखा, जिसे भुलाया नहीं जा सकता, बल्कि जो सब दृष्टियों से अनुकर-णीय है। कांग्रेस महासमिति के महामन्त्री श्रीमन्नारायणजी की माता राधादेवीजी का एकाएक शरीरान्त कृष्ण जन्माष्टमी को जसीडीह में हो गया, जहां उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मदालसा देवी (स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज की सुपुत्री) अपनी चिकित्सा श्री महावीर प्रसादजी पोद्दार की देखभाल में करा रही थीं। श्रद्धेय जमनालालजी के सारे परिवार से मेरा परिवार-जैसा सम्बन्ध रहा है, जैसा कि कई परिवारों से उनका था। अतः मातमपुरसी के लिए मैं दिल्ली श्रीमन्‌जी के घर गया तो दंग रह गया। सुबह दस बजे का समय था। उनके वृद्ध पिता श्री धर्म-नारायणजी उस समय उपस्थित अपने समस्त परिवारवालों के साथ गीता-प्रवचन कर रहे थे। मुझे ऐसा लगा, मानो किसी धार्मिक उत्सव में सम्मिलित हो रहा हूं। सारा कमरा सादगी, सुघ-ड़ता और सुव्यवस्थितता से फूल, धूप, दीप, पवित्र स्फूर्तिदायी चित्र, मूर्ति आदि से सजा हुआ था।

सबके चेहरे पर शान्ति और प्रसंगोचित गम्भीरता थी। शोक की कहीं छाया भी नहीं दिखाई देती थी। खुद धर्मनारायणजी बड़ी बारीकी से और व्यावहारिक पहलू से गीता का मर्म समझाते थे। उस दिन इत्तफाक से स्थितप्रज्ञ के लक्षण का प्रसंग चल रहा था। मैं कोई डेढ़ घंटा वहां रहा था, मुझे ऐसा लगा कि यहां मैं स्थितप्रज्ञ का कोरा वर्णन ही नहीं सुन रहा हूं, उसकी संगति का लाभ भी मिल रहा है।

दस दिन तक यही क्रम चलता रहा, सुबह गीता-प्रवचन, शाम को भोजनादि के साथ रामायण-पाठ और प्रवचन। शोक के ये दस दिन उत्सव के दिन जैसे ही रहे। पुरानी रूढ़ियों का पालन नहीं किया गया सो तो ठीक, परन्तु इस प्रकार कीर्तन, भजन, ज्ञान-चर्चा का सुन्दर आयोजन करके मदालसादेवी ने सचमुच अपने स्वर्गीय पिता की आत्मा को बहुत संतोष पहुंचाया। स्वर्गीय सास राधादेवीजी के प्रति उनके आदर ही नहीं, बल्कि भक्तिभाव में मुझे सतयुग की झलक दिखाई देने लगी।

वैसे राधादेवीजी में आदर्श गृहिणी, स्नेहमयी माता तथा संत-हृदय भक्त इन तीनों का अपूर्व संयोग मूर्तिमान हुआ था। छियत्तर वर्ष की अवस्था पाकर उन्होंने अपने भौतिक शरीर का परित्याग किया है। यदि कहा जाय कि उनके पति की तरह ही स्थितप्रज्ञ के अनेक लक्षण राधादेवीजी के स्वभाव में परिलक्षित होते थे, तो कोई अत्युक्ति न होगी। अन्तकाल में भी उनकी यही स्थिति रही और उन्होंने मोह, शोक तथा संतापरहित होकर इस संसार से प्रस्थान किया। ऐसा सौभाग्य आज के युग में किसी बिरले को ही प्राप्त होता है।

राधादेवीजी के पति श्री धर्मनारायणजी मैनपुरी के एक वयोवृद्ध समाजसेवी और यथा नाम तथा गुण प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उनके पुत्रों में श्री श्रीमन्नारायणजी का नाम उल्लेखनीय था। श्री जमनालालजी बजाज ने बहुत चुनकर अपनी दूसरी लड़की मदालसा से इनका विवाह किया था। इस दम्पति से उनको आशाएं थीं। मदालसा ने मुझे बताया कि अन्त समय राधादेवीजी के मन में तथा उनके चेहरे पर कितनी शान्ति थी। जीवन-भर उन्होंने सबकी मंगल कामना की और सबको आशीर्वाद दिया तथा देह-त्याग के समय भी उनके मुख पर यही वाक्य थे :

"मंगलं भगवान विष्णु मंगलं गरुड़ ध्वज,
मंगलं पुंडरीकाक्ष मंगलायतनो हरिः।"

यह मंगल-श्लोक उन्हें बहुत ही प्रिय था।

राधादेवीजी ने बिलकुल निस्पृह होकर अपनी जीवन-लीला संवरण की। वास्तव में उनका जीवन भी लीलामय ही रहा। साधना में लीन रहते हुए भी वे घर-गृहस्थी के तथा सांसारिक कार्यों से विरक्त नहीं थीं। वे सारे परिवार के लिए मानो आनन्द का स्रोत थीं, क्योंकि वह सारे जगत् को तथा जगत् के कार्यों को आनन्दमय मानती थीं। उत्सवों तथा अन्य शुभ अवसरों पर तो उनका आनन्द उमड़ पड़ता था तथा कविता के रूप में प्रस्फुटित होता था। परिवार में किसी का जन्म हो, विवाह हो, अथवा जन्मदिवस हो, प्रत्येक अवसर पर अपना आशीर्वाद तथा अपनी मंगल-कामनाएं कविताबद्ध कर दिया करती थीं। अपने परिवार के लोगों के लिए वह अपने हाथों से लिखा हुआ इन्हीं मंगल-कामनाओं का अमूल्य संग्रह छोड़ गई हैं। कुछ ही महीनों पहले अपने पतिदेव के जन्मदिवस पर उन्होंने ये पंक्तियां लिखी थीं :

जन्म दिवस है आज प्राण से प्यारे जन का
लगा सतत्तर साल आज है जीवन-धन का
चिरजीवी सौ वर्ष, लगन हो गुरु-चरणों में
मम जीवन अर्पण आपके कर कमलों में !
चीरजीवे परिवार सब, रहे सदा आनन्द
फूले फले सुखी रहे, जबतक सूरज चन्द !

राधादेवीजी का विवाह आठ वर्ष की आयु में ही हो गया था। श्वसुर-गृह में आकर उन्होंने पढ़ना-लिखना सीखा और अपने प्रेमपूर्ण मृदु स्वभाव से सब का मन मोह लिया। वाद में अपने पति धर्मनारायणजी की प्रेरणा से उनकी प्रवृत्ति ब्रह्मविद्या की ओर हुई और उनका शेष जीवन इसी की साधना में बीता। इस साधना के फलस्वरूप उनका हृदय कितना विशाल तथा उनकी भावना कितनी तन्मय तथा सर्वतोभद्र हो गई थी, इसका कुछ अनुमान उनके रचित इस पद से लगाया जा सकता है :

जो प्रेम से हमें बुलाते हैं,
हम हंसते-हंसते आते हैं !
मैं हूं एक, प्रतिमा सब मेरी,
मेरा रूप लखाते हैं !
कोई जड़ चेतन कोई दीन दुखी,
कोई राजा रंक कहाते हैं !
भक्तों पर विपदा जब पड़ती,
हम उन्हें छुड़ाने आते हैं !
कोई राम कहे, कोई कृष्ण कहे,
कोई बुद्ध मसीह कहाते हैं,
मैं व्याप रहा हूं कण-कण में,
फिर भेदभाव क्यों पाते हैं ?
वे हैं मुझमें, मैं हूं उनमें,
'मैं' 'तू' का असली भेद नहीं,
जिन जान लिया जग ब्रह्मरूप,
निर्वाण परम वे पाते हैं !

केवल परिवार में ही नहीं, सार्वजनिक क्षेत्र में भी राधादेवीजी अपने प्रेम तथा अपनी सेवावृत्ति की छाप छोड़ गई हैं। स्त्रियों में परदे की कुप्रथा हटाने के लिए उन्होंने सबसे पहले अपना उदाहरण प्रस्तुत किया। सारांश यह कि उनका जीवन प्रेम, श्रद्धा, भक्ति, सेवा, आनन्द तथा सबके लिए आशीर्वाद व मंगल-कामना से ओत-प्रोत रहा और विशेषता यह रही कि हरेक कार्य पूरी रुचि के साथ करते रहने पर भी किसी में आसक्ति नहीं दिखाई दी।

पिता

गीता में कहा है :

योऽन्तः सुखोन्तरारामः तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोधिगच्छति ।।

(गीता ५/२४)

जो पुरुष अपनी अन्तरात्मा में सुखी हैं, जो अपनी आत्मा में ही आराम पाता है, और जिसे अपने अन्तर की ज्योति प्राप्त है, जिसने आत्मज्ञान का उजियाला पाया है, वही योगी है, और वही ब्रह्मरूप होकर ब्रह्म-निर्वाण को प्राप्त करता है।

नेपाल में भारतीय राजदूत श्रीमन्नारायणजी के पिता श्री धर्मनारायणजी के योगीजनोचित देहान्त का समाचार सुनकर पूर्वोक्त श्लोक स्मरण हो आया। वह ऐसे ही पुरुष थे, जिनका सारा जीवन साधनामय था, जिन्हें आत्मज्ञान का प्रकाश प्राप्त था और जो अपनी अन्तरात्मा में सुखी थे। वह भगवान् बुद्ध के बताये मध्यम मार्ग के पथिक थे। अपने कौटुम्बिक और सामाजिक जीवन की साधना के साथ-साथ उन्होंने आध्यात्मिक तथा धार्मिक साधना भी अन्तिम क्षण तक बड़ी सजगता और तल्लीनता से सम्पन्न की। उनका जीवन सादा, नियमित, साधनामय, सच्चा और प्रिय रहा। उन्होंने बड़ी शान्तिपूर्वक २५ दिन के उपवास के साथ गुरुपूर्णिमा को १० बजकर १० मिनट पर रात्रि के समय अपना पार्थिव शरीर त्याग दिया।

उनका जन्म १ दिसम्बर, सन् १८७८ में इटावा के कुलीन मध्यम परिवार में हुआ। उनके पिता ला० श्री वंशीधरजी इटावा के जाने-माने व्यक्ति थे। श्री धर्मनारायणजी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा इटावा में ही हुई। इटावा में हाई स्कूल पास कर १९०० ई० में वह आगरा कालेज में भरती हुए और वहां से बी० ए० पास किया और १९०२ में वकालत की परीक्षा पास कर अपने जन्मस्थान इटावा ही में वकालत करना आरम्भ किया। सन् १९१४ में इटावा से वह मैनपुरी आ गये और वहां जजी में वकालत करने लगे। मैनपुरी में वह सन् १९४७ के अन्त तक रहे।

अपने वकालत के दिनों में वह कई धार्मिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनैतिक संस्थाओं से संबंधित रहे। सन् १९०७ में वह सूरत कांग्रेस में सम्मिलित हुए और अन्य कई स्थानों के कांग्रेस अधिवेशनों में भी भाग लेते रहे। कांग्रेस के वह क्रियशील सदस्य रहे थे।

डा० ऐनी बेसेन्ट द्वारा स्थापित 'होमरूल लीग' में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। पं० हृदयनाथ कुंजरू के चुनाव में मुख्य रूप से वह पंडितजी के सहयोगी थे। डा० ऐनी बेसेन्ट के सम्पर्क में आने से वह थियोसाफिकल सोसायटी के प्रमुख सदस्य बने और काशी तथा आड्यार में सोसायटी के सालाना जलसे में जाते रहे। सोसायटी से डा० ऐनी बेसेन्ट, श्री जिनराजदास तथा श्रीराम के अध्यक्षकाल में उनका विशेष सम्बन्ध रहा।

धर्मनारायणजी सर्वप्रिय एवं अग्रगण्य वकील और समाजसेवी भी रहे। अनेक संस्थाओं के वह संचालक रहे और कई के संचालन में सक्रिय सहयोग भी देते रहे। सेवा समिति, ब्वाय स्काउट के स्काउट कमिश्नर, कोऑपरेटिव बैंक के वायस चेयरमैन और म्युनिसिपल बोर्ड के वह मेम्बर थे। वह रेडक्रास एम्बुलेन्स, ग्राम-सुधार, डिस्चार्ज प्रिजनर्स एण्ड सोसायटी के प्रमुख सदस्य रहे। दूसरे विश्वयुद्ध के समय वह चीफ वार्डन भी रहे थे। इन विविध सेवाओं के लिए समय-समय पर उन्हें पदक तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं द्वारा सम्मानित किया गया।

समाजसेवी तथा राजनैतिक संस्थाओं के कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेते रहने के कारण उनका महात्मा गांधी, विनोबाजी, डा० राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालालजी बजाज और

डा० राधाकृष्णन् आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध था।

बाबू धर्मनारायणजी के पांच पुत्र और दो कन्याएं हुईं। अपने पीछे उन्होंने बड़ा फलता-फूलता परिवार छोड़ा है।

धर्मनारायणजी १९४८ से वकालत छोड़कर धार्मिक अध्ययन में, विशेषकर गीता, रामायण, विनय पत्रिका, भागवत, उपनिषद, इत्यादि में रत रहे। स्थान-स्थान पर वह धार्मिक प्रवचन करते रहे। थियोसाफिकल लाज में पुरुषों और महिलाओं के मध्य उनके धार्मिक प्रवचन प्रायः होते ही रहते थे। उन्होंने बाइबिल तथा कुरान शरीफ को अंग्रेजी तथा अरबी में पढ़कर उनकी संस्थाओं में भाषण दिए। साधुसमाज वर्ग में उनके धार्मिक प्रवचनों की बड़ी मांग रहती थी। सभी धर्म के लोग उनका आदर करते थे।

दिसम्बर १९६५ में श्री धर्मनारायणजी बंगलौर से थियोसाफिकल सोसायटी के सलाना जलसे में भाग लेने आड्यार (मद्रास) गये। जलसे में भाग लेकर ३ जनवरी, १९६६ को अपने जन्म-स्थान इटावा में आये और अपने चतुर्थ पुत्र श्रीमन्नारायणजी के पास काठमांडू जाने का विचार कर रहे थे। किन्तु ६ अप्रैल को अचानक उनके सिर में चोट लग जाने से वह अस्वस्थ हो गये और नेपाल जाना स्थगित करके अपनी जन्मभूमि इटावा में ही इलाज कराते रहे। वह काफी स्वस्थ प्रतीत होने लगे और उन्होंने सदा की भांति अपना दैनिक कार्यक्रम शुरू कर दिया, किन्तु ८ जून को अचानक उनका तापमान १०६ तक जा पहुंचा। उन्होंने अपना खान-पान छोड़ दिया और केवल जल ही लेने लगे। धीरे-धीरे शुद्ध पानी लेने की इच्छा भी कम होती चली गई।

दैहिक अस्वस्थता के इन दिनों में उनकी स्मरण-शक्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ा। उन्हें सब बातों का पूरा ध्यान रहता था, पर वह अधिकतर ध्यानावस्थित ही रहते थे। ध्यान की मुद्रा में प्रायः वह कहते रहते थे कि "मैं शांत हूं, मैं प्रसन्न हूं, मेरे शरीर की चिंता न करो।" ऐसी अवस्था में भी वह इस बात का पूरा खयाल रखते थे कि उनका शरीर नीरोग रहे। हर चीज एकदम साफ-सुथरी रहे।

निधन से एक दिन पूर्व १ जुलाई को ऐसा प्रतीत होता था कि वह अत्यन्त शांति से सो रहे हैं या गहन आत्म-चिंतन में मग्न हैं। दूसरे दिन २ जुलाई को गुरुपूर्णिमा थी। इसी शुभ दिन श्री धर्मनारायणजी ने भी प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में समाधि ग्रहण कर ली। 'रामनाम' तथा 'ओम' का उच्चारण, स्मरण तथा श्रवण करते हुए १० बजे उन्होंने इस भौतिक शरीर तथा संसार से विदा ली।

ऐसे मुमुक्षु और श्रेयार्थी का जीवन अनुकरणीय और उनके वचन मननीय हैं। □

श्रीमन्‌जी का कवि

माखनलाल चतुर्वेदी

□□

श्रीमन्नारायणजी अग्रवाल का लेखक, चिन्तक, जन-सेवक, शासक और सामन्त जब भी मुझे मिला है, मैंने उसपर प्रेम किया है, उसके मस्तक पर उज्ज्वल भविष्य की किरण-रेखाएं देखी हैं। किन्तु

उनका कवि जब-जब मेरे सामने आया अथवा कवि के नाते जब-जब उन्होंने कुछ लिखने का प्रयास किया, तब-तब मुझे ऐसा लगा, मानो अपने कवि को उन्होंने अपने बहुधन्धी व्यक्तित्व की भीड़-भाड़ में उभरने नहीं दिया।

उनकी रचनाओं में आत्म-निवेदन के मोहक बल की ओर उनकी आत्मा का रुझान स्पष्ट है। इन रचनाओं का स्वागत करने वालों में, सन्तकवियों की भाषा-सम्बन्धी रुकावटों को सह जानेवाला धीरज चाहिए। मुझे तो इसी में सुख मालूम होता है कि श्रीमन्जी कभी-कभी अपने कवि को भी याद कर लिया करते हैं—उस कवि को, जिसे वे अपना हृदय भी खोलकर नहीं देना चाहते और अपना मस्तक भी उसकी गोद में उतार कर नहीं रखना चाहते। कबीर का मालिक और मीरा का गिरिधर तो सम्पूर्ण शरणके बिना रीझना ही नहीं जानता और श्रीमन्जी को तो विज्ञान, विवेचक, योद्धा, राजनीतिज्ञ सभी कुछ रहना है। उनके जीवन का उत्तरदायित्व ही कुछ ऐसा है। श्रीमन्जी के मन और जीवन के माधुर्य में एक कवि खेलता-सा दीखता है, किंतु वह बाहर आने को कदाचित् सम्बल नहीं पाता। कवि तो उन्हें कदाचित् अपनी भूलों ही की तरह याद आता-सा दीखता है। यदि उन्हें अपने जीवन के अन्तरंग के मधुरतम का 'याद आना' याद आये तो उनका प्रभु उनकी पंक्तियों में शायद सीधा उतर आये। उस दिन काव्य-रस की वाणी में प्रलय बोल उठे। क्या श्रीमन्जी के पास इतना समय होगा? □

मेरा दुर्भाग्य

बनारसीदास चतुर्वेदी

□ □

स्वर्गीय श्रीमन्नारायणजी से मेरे सम्बन्ध घरेलू थे और वे मुझे अपने घर का बुजुर्ग ही मानते थे। यह बात उन्होंने कई बार दुहराई भी थी।

श्रीमन्जी की ननसाल फिरोजाबाद में लाला माधुरीप्रसादजी के यहां थी और एक साहित्यिक के नाते वे मेरे लिए आदरणीय थे। सन् १९११ से स्वर्गीय सूर्यनारायण अग्रवाल से मेरा परिचय रहा था और वे 'विशालभारत' के एक प्रतिष्ठित लेखक भी थे। पूज्य बुआजी तथा फूफाजी के दर्शन मैंने नई दिल्ली में फिरोजशाह रोड पर श्रीमन्जी के निवास पर किये थे।

मेरे संबंध दृढ़ से दृढ़तर होते गये। मैं स्वर्गीय जमनालालजी का कृपापात्र था, उनसे २५०) महीना प्रवासी भारतीय कार्य के लिए मुझे मिलता था। श्रीमन्जी उनके जामाता थे।

संसद की सदस्यता के दिनों में मेरा परिचय और भी घनिष्ठ हो गया।

शहीदों की कीर्ति-रक्षा के कार्य में मुझे सभी पार्टियों से सहयोग लेना पड़ता था और भिन्न-भिन्न पार्टियों के व्यक्ति मेरे अतिथि भी होते थे। मैं यद्यपि कांग्रेस पार्टी का सदस्य था, पर पार्टी का कुछ भी काम मुझसे नहीं बन पड़ता था। पार्लियामेन्ट भी मैं बहुत कम जाता था।

कोई गलतफहमी न हो, इसलिए मैंने सारी स्थिति श्रीमन्‌जी को समझा दी थी। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि वे मेरे कार्य से भलीभांति परिचित हैंऔर किसी गलतफहमी की सम्भावना नहीं।

एक दिन मैं उनकी प्रातःकालीन प्रार्थना में शामिल भी हुआ था। तब फूफाजी ने मुझसे कहा था, "श्रीमन् को रात के १२-१ बजे तक फोन आते रहते हैं !" मैंने मजाक में अपना आविष्कार बतलाया कि फोन को तकिये पर रखकर सन्दूक में बन्द कर दिया जाय, फिर निश्चिंतताई से सोया जा सकता है। इसपर उन्होंने बतलाया, "वे फोन तो पं० जवाहरलालजी के होते हैं।"

कांग्रेस पार्टी के निर्माण में श्रीमन्‌जी को घोर परिश्रम करना पड़ा था। वे मुझे बराबर याद कर लिया करते थे। आचार्यकुल में शामिल होने के लिए भी उन्होंने मुझे तार भेजा था। अपनी अमरीका-यात्रा के बाद उन्होंने एक अमरीकी विद्वान का नाम तथा पता लिख भेजा था, जो विकेन्द्रीकरण के पक्षपाती थे और जिन्होंने उस विषय पर कुछ साहित्य भी तैयार किया था। आगे चलकर वे गुजरात विश्वविद्यालय में अध्यापक भी रहे थे।

श्रीमन्‌जी के साहित्यिक रूप को जितना ही देखता हूं, उनके प्रति उतनी ही श्रद्धा बढ़ती जाती है।

एक बार जब वे बहन मदालसाजी के साथ फिरोज़ाबाद पधारे थे, तब उनके दर्शन हुए थे। उस मुलाकात की एक बात मुझे याद है। मैंने उस समय स्वर्गीय जमनालालजी द्वारा दी गई आर्थिक सहायता का जिक्र कर दिया। इसपर बहन मदालसाजी ने कहा, "स्वर्गीय पिताजी से आपके घनिष्ठ संबंध से हम लोग परिचित हैं। उनको हमारे सामने आप क्यों दुहराते हैं ?" बात बिलकुल ठीक थी। श्रीमन्‌जी मुझे घर का बुजुर्ग ही मानते रहे और मेरे लिए यह परम दुर्भाग्य की बात है कि मैं उनको श्रद्धांजलि अर्पित करूं। □

मेरे सहृदय बन्धु

रामकुमार वर्मा

□ □

वसन्तकालीन किसी उपवन में पहुंचकर हरी-भरी द्रुम-वेलियों की शोभा और सुगन्धि से जिस प्रकार मन प्रफुल्लित हो जाता है, उसी प्रकार श्रीमन्नारायणजी के साहचर्य में उनके स्वभाव और वार्तालाप से हृदय में उल्लास की तरंगें आन्दोलित होने लगती थीं। उनका जितना शुभ्र वेश था, उतना ही निर्मल उनका हृदय था, जिससे वे अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति को अपना बना लेते थे। वे एक साथ शिक्षाविद्, साहित्यकार और राजनीतिज्ञ थे और प्रतिभा की इस त्रिवेणी से मेरा परिचय सन् १९३७ में ही हो गया था।

उस समय मैं हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग का परीक्षा-मंत्री था और मुझे उत्तमा की

मौखिक परीक्षा लेने के लिए वर्धा जाना था। मैंने उन्हें लिखा और वे स्वयं स्टेशन पर आकर मुझसे मिले। दूसरे दिन परीक्षा लेने के वाद जव मैं निश्चिन्त हुआ तो उन्होंने मुझसे पूज्य बापूजी के दर्शन करने के लिए वर्धा ग्राम चलने का आग्रह किया। उन्होंने ही टेलीफोन कर वापूजी से प्रातः ८-४५ का समय निश्चित करा लिया। हम लोग सवा आठ वजे बापूजी की कुटी पर पहुंच गये। श्रीमन्नारायणजी के कहने से हम लोगों ने पहले 'वा' के दर्शन किये, फिर पूज्य वापूजी के। मेरा परिचय कराते हुए श्रीमन्नारायणजी ने कहा, "इन्हें इनकी काव्य-पुस्तक 'चित्ररेखा' पर दो हजार रुपये का 'देव पुरस्कार' प्राप्त हुआ है।" बापूजी ने छूटते ही मुझसे कहा, "उसमें मेरा हिस्सा कहां है? मुझे हरिजन-उद्धार के लिए चाहिए। मैं बनिया हूं, मैं तो पैसा लेना जानता हूं।" मैंने कहा, "यहां तो मैं उतना ला नहीं सका, इलाहाबाद पहुंचकर आपकी सेवा में सब प्रस्तुत कर दूंगा। यही नहीं, मैं साहित्य में भी आपकी भावना पर अपनी साधना नियोजित करूंगा।" वाद में इस संबंध में जव श्रीमन्नारायणजी ने एक पत्र भेजा तो मैंने अपने 'एकलव्य' महाकाव्य की रचना की।

सन् १९७५ में मैं बदरिकाश्रम गया था। वहां सुना कि कोई गवर्नर साहब आने वाले हैं। मैं उत्सुकता से प्रतीक्षा करता रहा कि कौन गवर्नर साहब हैं। मेरे आनन्द का ठिकाना नहीं रहा, जव मैंने देखा कि गुजरात के गवर्नर के रूप में श्रीमन्नारायणजी का स्वागत-समारोह मनाया जा रहा है। मुझे देखते ही उन्होंने सारे व्यवधान दूर कर मुझे हृदय से लगा लिया, क्योंकि यह मिलन लगभग ३८ वर्षों के वाद हुआ था। वे मुझे देखते ही पहचान गये। राज-पद पाने पर भी उन्होंने अपनी आत्मीयता का स्नेह-रज्जु छिन्न-भिन्न नहीं होने दिया। वे अपने साथ ही मुझे मंदिर के भीतर ले गये और हम लोगों ने बदरीनाथजी की पूजा इतने निकट से साथ-साथ की। वे इतने सहृदय और महान् थे।

मैं श्रीमन्नारायणजी को ऐसा पुरुष-रत्न मानता हूं, जिनकी महानता की रश्मियां समय के लम्बे अन्तराल में भी कभी धूमिल नहीं होंगी। □

उनकी अमूल्य सेवाएं

रामलाल परीख

□ □

श्री श्रीमन्नारायणजी के बारे में लिखने वैठा हूं तब कौन-सा संस्मरण लिखूं, कौन-सा न लिखूं यह समझ नहीं पा रहा हूं। उनकी नम्रता याद आती है तो उसके साथ ही उनका सेवाभाव, राष्ट्र के विकास के बारे में उनका चिन्तन, सारा व्यक्तित्व याद आ जाता है। उन्होंने शिक्षा, साहित्य और रचनात्मक क्षेत्र में जो सेवाएं की हैं, वह अमूल्य हैं।

'कुर्वन एव इह कर्माणि' उपनिषद की इस उक्ति को उन्होंने चरितार्थ किया। आखिरी

सांस तक वे कार्य करते रहे। श्रीमन्‌जी गुजरात विद्यापीठ के ट्रस्टी भी थे। विद्यापीठ के परिवार की उन्होंने काफी सेवाएं की हैं। जब मैं युवक कांग्रेस का मंत्री था, तब से उनके निकट आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अत्यन्त सादगीमय जीवन, नम्र व्यवहार और कार्य-परायणता उनके विशेष लक्षण थे।

उनके जीवन के निर्माण में गांधीजी, विनोबाजी, पिता श्रीधर्मनारायणजी, माता राधादेवी का गहरा प्रभाव था। श्रीमन्‌जी आजीवन अध्यापक थे। उनका साहित्य लोकभोग्य शैली में लिखा गया है, और भारतीय संस्कृति की प्रतीति उसमें होती है।

स्वतंत्रता-संग्राम के इस निष्ठावान योद्धा ने विविध पदों पर रहकर जो कार्य किया तथा सेवाएं दीं, उनको कभी भी भलाया नहीं जा सकता। □

क्या-क्या याद करूं

जानकीदेवी बजाज

□□

काकाजी (जमनालालजी बजाज) कहीं भी जाते थे, देश-सेवा के कार्य के लिए बड़े लगन के साथ लोगों को समझाते थे और कोई जवान रंगरूट लड़का उन्हें पसंद आ गया तो उसे देश-सेवा में लगाने के प्रयत्न में जुट जाते थे और किसी भी रंगरूट में देश-सेवा के प्रति अगर अच्छी लगन दिखाई पड़ती तो उसे अपने साथ वर्धा ले आते। एक बार कांग्रेस-अधिवेशन में श्रीमन्‌जी एक कोने में बैठे भाषण सुन रहे थे। बजाजजी का ध्यान इनकी ओर गया। उन्होंने सोचा, यह लड़का बड़ा होनहार लगता है। बड़ी लगन से नेताओं की बातें सुन रहा है। औरों से यह भिन्न ही दिखाई दे रहा है। बस उनके पास गये और कहा, "तुम मेरे साथ वर्धा चलोगे।" श्रीमन्‌जी तैयार हो गये। बजाजजी श्रीमन्‌जी को वर्धा ले आये। मैंने देखा तो काकाजी से कहा, "तुम तो किसी को भी पकड़ कर ले आते हो। न तो आनेवाले के घर का पता रहता है, न मां-बाप का ही।" काकाजी हंस दिये। श्रीमन्‌जी को वर्धा लाकर कामर्स कालेज के एक कमरे में ठहरा दिया। श्रीमन्‌जी न तो कुछ बोलते, न हंसते। मैं तो यही कहती, यह कैसा लड़का है!

मुझे बाद में पता चला कि श्रीमन्‌जी कितने बुद्धिमान हैं, पढ़े-लिखे हैं। काकाजी का सारा काम सम्भाल लिया। काकाजी ने इन्हें कामर्स कालेज में काम दे दिया। श्रीमन्‌जी ने अपने परिश्रम और लगन से कालेज को आगे बढ़ाया और उसी समय वह बापूजी, विनोबाजी के करीब आ गये। बापूजी भी श्रीमन्‌जी को बहुत चाहते थे। काकाजी, बापूजी, श्रीमन्‌जी एक साथ देश-सेवा के कार्य में लग गये। मदालसा भी तो बापूजी और विनोबाजी के सान्निध्य में आश्रम में ही रहकर पढ़ी-लिखी। वह बड़ी विचारवान लड़की थी। काकाजी सोचते थे कि श्रीमन्‌जी और मदालसा की शादी अच्छी रहेगी, पर काकाजी श्रीमन्‌जी से बोल नहीं सकते थे। श्रीमन्‌जी भी

आश्रम में आते-जाते। आखिर दोनों की शादी हो गई।

उस समय की एक बात याद आती है, काकाजी और घनश्यामदासजी बिड़ला दोनों यहां थे। काकाजी ने श्रीमन्जी से कहा, "तुम या तो व्यापार करो या बापूजी-विनोबाजी हैं, कई संस्थाएं हैं, तो संस्थाओं की सेवा के साथ जनता की सेवा करो। जिसमें तुम्हें अच्छा लगे, करो।" श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने काकाजी से कहा, "तुम शादीशुदा लड़के को क्यों संन्यासी बना रहे हो। लाओ, मुझे दे दो। मैं इसे व्यापार सिखाऊंगा।" उस समय श्रीमन्जी ने संस्थाओं और देश-सेवा का काम बापूजी एवं विनोबाजी के निकट रहकर करना है, इस प्रकार की इच्छा प्रकट की और तब से वे देश-सेवा के काम में लग गये। व्यापार का काम उनको पंसद नहीं आया।

श्रीमन्जी देश के लिए जेल भी गये। विदेश-यात्रा भी की। गांधीजी के सिद्धान्तों पर चलकर ही काम करते रहे। गौमाता की सेवा का काम तो उन्होंने काकाजी के समान ही किया। बड़े-बड़े पदों पर रहकर भी वे सीधे-सादे श्रीमन्जी ही रहे। मेरे तो एक तीसरे पुत्र के समान थे। बजाज-घराने में आकर श्रीमन्जी एक अद्‌भुत योगी जैसे रहे। बहुत ही बढ़िया शान रही। काकाजी के बाद कमल, कमल के बाद श्रीमन्जी—मैं तो हमेशा यही धुन लगाती रहती हूं।

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण !...

श्रीमन्नारायण नारायण नारायण !!...

इसी धुन के द्वारा मुझे श्रीमन्जी के कार्यों की सतत कल्पना आती रहती है। पूज्य बापूजी एवं पूज्य बाबा (विनोबाजी), काकाजी, कमल—इन सबका ध्यान चित्रों के समान आता है। पूज्य विनोबाजी को श्रीमन्जी बहुत चाहते थे। वे गुरु भी तो थे। श्रीमन्जी आज हमारे बीच नहीं हैं, फिर भी उनकी याद अमूल्य है। ऐसा त्यागी जंवाई शायद ही मिले।

मैं नेपाल भी गई थी, जब श्रीमन्जी नेपाल के राजदूत थे। वहां के लोगों का रहन-सहन, रीति-रिवाज अपने हिन्दुस्तानियों से अलग हैं, फिर भी वहां के लोगों में प्रेम-भावना बहुत है। दिन-रात श्रीमन्जी काम में लगे रहते। लोगों से मिलते रहते। गांव-गांव घूमकर वहां के नेताओं से हंस-हंसकर बातें करते, नेपाल के नरेश से उनकी अच्छी मित्रता हो गई थी। वे श्रीमन्जी को अपने घर के जैसे ही समझते थे। नेपाल-नरेश श्रीमन्जी के साथ अपने धाम (तीर्थ के समान ही) वर्धा आये, अपनी बजाजवाड़ी में भोजन किया। मैं थी। कमल, मदालसा सभी थे।

श्रीमन्जी ने एक बार मुझसे कहा, "माताजी, नेपाल घूमोगी ?" मैंने जवाब दिया, "क्या घूमना है ?" उन्होंने कहा, "चलिये आपको घुमा लाते हैं।" मुझे याद नहीं, उस समय मदालसा कहां थी। घूमने गये। नेपाल में मंदिर बहुत अच्छे-अच्छे हैं। मौसम भी बहुत सुहावना रहता है। फिर, श्रीमन्जी ने अच्छी तरह समझा-समझाकर बताया और दिखाया भी। मुझे ऐसा लगा, जैसे श्रीमन्जी नेपाल के ही निवासी हों।

जब वे गुजरात के राज्यपाल थे, तब भी मैं उनके साथ कुछ दिनों तक रही। वहां भी उन्होंने अच्छी सेवा की। रात-दिन काम करते रहते। मैं तो उन्हें देखकर दंग रह जाती। कभी-कभी कहती, "श्रीमन्जी, थोड़ा आराम कर लो।" श्रीमन्जी कुछ भी न कहते, सिर्फ हंस देते, फिर कहते, "हां माताजी !"...मैं मजाक में कहती, "जादा काम करोगे तो बीमार पड़ोगे।" तब कहीं श्रीमन्जी थोड़ा रुककर आराम करते और फिर कहते, "माताजी, लीजिये आपके कहे अनुसार आराम हो गया। अब फिर काम शुरू करूं ?" मैं कहती, "अभी तुमने आराम किया ही

कहां ?" तब वे और जोर से हंसने लगते।

अहमदाबाद में राजभवन में सुबह से शाम तक लोग आते ही रहते थे। सबसे मिलते, चाहे रात हो या दिन। गांवों में जाकर लोगों से मिलते। मैं तो यह देखकर ही हैरान रह जाती। श्रीमन्‌जी हमेशा कहते रहते, "पहले काम फिर आराम।"

श्रीमन्‌जी बहुत ही मिलनसार व्यक्ति थे। उन्हें किसी भी पद का अभिमान नहीं था। बड़े-बड़े पदों पर रहकर भी उन्होंने एक सीधे-सादे व्यक्ति के समान काम किया। यह सब देखकर ही नेपाल की जनता ने एक बार वहां के नरेश से कहा था, "इन भारतीय राजदूत को वापस मत जाने दीजिये। ऐसा करें, जिससे ये नेपाल मेंही रहें।" नेपाल-नरेश ने कहा था, "हम भी तो यही चाहते हैं कि श्रीमन्‌जी यहीं रहें, पर क्या करें ! भारत देश का नियम ही ऐसा है कि वे जब चाहें तब वापस बुला सकते हैं।" तब मैंने सोचा, यहां के लोगों का कितना लगाव श्रीमन्‌जी से हो गया है। ऐसा ही गुजरात में भी हुआ। आज भी सभी लोग श्रीमन्‌जी की याद करते हैं।

श्रीमन्‌जी दारूबंदी, गोवध-बन्दी के काम, खास कर भारत की शिक्षा में परिवर्तन कैसे हो इसमें सुधार के लिए क्या किया जाय, हमेशा इसका विचार करते रहते थे। बड़ी-बड़ी सभाएं बुलाते, लोगों से मिलते, उनके विचार सुनते। रात-दिन शिक्षा-सुधार के बारे में ही सोचते थे। मुझसे कहते थे, "माताजी, आज की शिक्षा विद्यार्थियों के अनुकूल नहीं है। उसमें कई त्रुटियां हैं। वे दूर होनी चाहिए। इसी का प्रयत्न चल रहा है।" इसी तरह वे वर्धा की शिक्षा-संस्थाओं में हमेशा सुधार करने का प्रयत्न करते रहते थे।

एक बार मेरी तबीयत थोड़ी खराब थी। श्रीमन्‌जी आये। उन्होंने पूछा, "माताजी कैसी है आपकी तबीयत ?" मैंने कहा, "ठीक तो हूं।" तब श्रीमन्‌जी ने कहा, "हां, माताजी, ठीक ही रहना चाहिए। आपको १२५ साल जीना है अभी।" मैंने कहा, "मैं १२५ पूरे करूंगी तो तुम्हें १०० वर्ष तो पूरे करने ही पड़ेंगे।" यह सुनकर वे हंसने लगे। यह शताब्दी श्रीमन्‌जी के लिए भगवान को मंजूर नहीं थी। उन्हें बीच में ही उठा लिया।

श्रीमन्‌जी जहां रहते, वहीं के हो जाते थे। उन्हीं में घुल-मिल जाते थे। यह एक खास बात थी उनमें। वे बहुत शान्त एवं गम्भीर रहते थे। फिर भी उनका चेहरा हंसमुख ही दिखाई पड़ता था।□

उनकी धर्म-बुद्धि

रविशंकर महाराज

□□

श्रीमन्‌जी से प्रत्यक्ष मिलना हुआ, उससे पहले ही मैं बहन मदालसा के जरिये उनको कुछ-कुछ जानने लगा था। बाद में जब वे गुजरात के राज्यपाल नियुक्त होकर अहमदाबाद रहने आये तब

काफी मिलना-जुलना होता रहा।

वहन मदालसा के आग्रहवश हर साल महीने-दो महीने मैं उनके साथ ही ठहरता था। तब उनके रहन-सहन को निकट से देखने का मौका मिला। मैंने देखा कि अपने निजी जीवन में श्रीमन्जी काफी सरल और स्वाध्यायशील हैं। हर सुवह प्रार्थना से उनका नित्यक्रम आरम्भ होता। पति-पत्नी साथ मिलकर चक्की चला लेते और रोजाना खाने के लिए आटा पा लेते। घर में निष्ठापूर्वक सर्वोदय-पात्र भी रखा था।

राजभवन में रहते हुए श्रीमन्जी के पिताजी से भी मेरा निकट परिचय हुआ। वह सत्प्रवृत्तिशील धार्मिक सज्जन थे। अध्यात्म के अभ्यासी थे। मैं समझ पाया कि श्रीमन्जी को धर्म-वुद्धि विरासत में मिली और उनके आचार-विचार पर अपने पिता के संस्कारों की गहरी मुद्रा अंकित हुई।

श्रीमन्जी के कार्यकाल में गुजरात प्रदेश के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के लिए राजभवन मानो मायका ही वन गया। उन्होंने गुजरात के कोने-कोने में स्वयं पहुंचकर छोटी-मोटी सभी रचनात्मक और नयी तालीम की संस्थाओं का जायजा लिया और कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहित किया।

जव राष्ट्रपति-शासन के दौरान प्रशासन की धुरी वहन करने का मौका आया तब श्रीमन्जी कसौटी पर खरे उतरे और न जाने कितने सालों से अनिर्णीत अवस्था में रुके हुए कार्यों को सम्पन्न किया। गुजरात के दूरवल आयोजन की रूपरेखा, उनके उन्हीं दिनों की एक चिर-स्मरणीय देन है।

सन् १९६९ में जव अहमदावाद में साम्प्रदायिक दंगा शुरू हुआ तो पता चलते ही मैं सांबरकांठा का अपना कार्यक्रम स्थगित कर वहां पहुंच गया। लोगों के बीच घूमकर उन्हें स्वस्थ तथा आश्वस्त करने लगा। वहन मदालसा और श्रीमन्जी भी समस्त इलाकों में मेरे साथ हो लिये। स्वयं राज्यपाल के भ्रमण के फलस्वरूप लोगों में निर्भयता का संचार हुआ और किंकर्तव्य-विमूढ शासन को दिशा भी मिली।

श्रीमन्जी ने आगे चलते हुए सर्व-धर्म के सन्त-महन्तों की नगर-यात्रा का आयोजन किया। उससे वड़ा फायदा हुआ।

उनका गुणस्मरण करते हुए समाप्त करता हूं। □

आदर्शवादी श्रीमन्जी

कपीन्द्रजी

□ □

'सस्ता साहित्य मण्डल' का उद्देश्य रहा है कि महान विभूतियों का चिरकाल तक स्मरण वना रहे और आनेवाली पीढ़ियों का मार्ग-दर्शन होता रहे। श्रीमन्नारायणजी वास्तव में एक ऊंची आत्मा

थे, जिनका हम लेखनी द्वारा वर्णन नहीं कर सकते। मैं अपने जीवन में अनेकानेक वार श्रीमन्-जी से मिला हूं। मैंने उनमें वही सव गुण देखे हैं, जो मैंने किसी पुस्तक में नेता के गुण पढ़े हैं। नेताओं में इतने गुण होने चाहिए :

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्त लोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंश स्थिरो युवा॥
वुद्धयुत्साह स्मृति प्रज्ञा कला मान समन्वितः।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्र चक्षुश्य धार्मिकः॥

नेता को विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, शुचि, रक्तलोक, रूढ़वंश, स्थिरचित्त वाला युवा, वुद्धिमान, साहसी, स्मृतिवाला तथा धार्मिक होना चाहिए। मैं निःसंकोच और विना पक्षपात के कह सकता हूं कि श्रीमन्नारायणजी में ये गुण विद्यमान थे। मैंने उन्हें दृढ़ता से बोलते देखा है, सत्यवादी देखा है, चरित्रवान देखा है, और तो और, चक्की पीसते भी देखा है। कितना आदर वह सबका करते थे, कितनी आत्मीयता दूसरों को देते थे, दूसरों को ऊंचा उठाने की कितनी चेष्टा करते थे। ये सब वातें कही नहीं जाती हैं। मैं तो उनको गांधीजी और विनोवाजी का परम भक्त मानता हूं। वावू धर्मनारायणजी के कुल में धर्म ने ही श्रीमन्नारायणजी के रूप में शरीर धारण किया था। मैं जव उन्हें याद करता हूं तो मेरा जी भर आता है। उनके मुख से मैंने किसी की आलोचना नहीं सुनी। वह संसद सदस्य रहे, कांग्रेस के प्रधान सचिव रहे, योजना-आयोग के सदस्य, गुजरात के राज्यपाल, नेपाल के राजदूत रहे। यह सब उन्होंने देखा, किन्तु आत्म-निरीक्षण करने में वह वरावर तल्लीन रहे। विचार, काम करने की अद्भुत शक्ति और अदम्य साहस उनमें भरा हुआ था।

वे मुझे वरावर अपनी पुस्तकें भेजते थे। उनमें अनमोल मोती ही हैं। वह प्रशंसा से ऊपर थे। अभिमान क्या होता है, वह नहीं जानते थे। वर्धा उनका तीर्थ-स्थान था। गांधीजी तथा विनोवाजी उनके इष्टदेव थे। मदालसा जैसी सावित्री और भरत-रजत जैसे पुत्र ! समस्त भारत-वासी उनके अपने ही थे। किसी के प्रति उनके दिल में घृणा नहीं थी। ऐसा मानव हमारे वीच से उठ गया, नाता तोड़कर न जाने कहां लुप्त हो गया ! अव तो उनकी स्मृति-मात्र रह गई है। ऐसी आत्मा कभी-कभी भारत भूमि पर उतर आती है, परन्तु अज्ञानवश हम उसको पहचान नहीं पाते :

को रघुवीर सरिस संसारा।
शील सनेह निबाहन हारा॥

उनमें शील था और स्नेह को निभाने की कला वह अच्छी तरह जानते थे। एक वार बंबई में भारत साधु-समाज का उत्सव था। अधिकारियों ने उनसे उद्घाटन करने की प्रार्थना की, किन्तु उन्हें कहीं जाना था। अतः आने में असमर्थता वतायी। तव वहुत सोचने के वाद मैंने उन्हें दिल्ली से फोन किया, तो मेरी विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करके वह पहुंच गये। मैं तो उनका वहुत ऋणी हूं।

उनके जीवन की वहुत-सी घटनाएं याद हैं। उन्हें मन-ही-मन में छिपाये बैठा हूं। नहीं जानता था कि वह इतनी जल्दी हमें छोड़ जायेंगे। □

गांधी-विचार के प्रबल पुरस्कर्त्ता

मुनि संतबाल

□ □

यद्यपि कांग्रेस एक राजनैतिक संस्था थी, तथापि गांधीजी ने अपने पारसमणि-रूपी स्पर्श से उसे सत्य और अहिंसा की ओर मोड़ दिया। उसी संस्था के माध्यम से भारत को राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त हुई। गांधीजी चाहते थे कि कांग्रेस के संविधान में सत्य और अहिंसा की जोड़ी का समावेश हो, किन्तु इस कार्य को उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी पं० जवाहरलाल नेहरू नहीं कर सके। फिर भी उन्होंने उस दिशा में कुछ सक्रिय कदम उठाये, जिनमें शुद्ध साधनों द्वारा विश्व-शान्ति स्थापित करने के लिए पंचशील तथा सह-अस्तित्व की घोषणा थी। उसके द्वारा विश्व की राजनीति में एक तीसरी शक्ति को उत्पन्न करना उनका ध्येय था।

श्रीमन्‌जी कांग्रेस के मंत्री रहे। जिस समय ढेबर भाई कांग्रेस के अध्यक्ष थे, सांबरकांठा प्रयोग के मूलभूत क्षेत्र में श्रीमन्‌जी तीन दिन घूमे और फिर संत विनोवा तथा पं० जवाहरलाल नेहरू से मिले। इस प्रयोग की जानकारी पाकर उनको भी वड़ी प्रसन्नता हुई। बाद में प्रत्येक प्रदेश की कांग्रेस को यह नोट भेजा गया कि संसदीय कार्यक्रम के सिवा और किसी क्षेत्र में कांग्रेस का उपयोग नहीं किया जा सकेगा। २ नवम्बर, १९५७ को अपने पत्र में श्रीमन्‌जी ने मुझे लिखा, "मुझे खुशी है कि आपकी सूचना के अनुसार यह एक महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया। आप लोगों को इस वारे में काफी परेशानी हुई, किन्तु संतोष तो यही है कि इस पर अखिल भारतीय स्तर पर हमेशा के लिए निर्णय हो गया।" लेकिन दुःख है कि इस पर किसी भी प्रदेश ने अमल नहीं किया। इसका दुष्परिणाम आज हमारे सामने है। कांग्रेस के अनेक टुकड़े हो गये और वह छिन्न-भिन्न हो गई। गांधीजी ने अपने अंतिम लेख में कांग्रेस को तोड़कर उसे 'लोकसेवक संघ' के रूप में पुनर्गठित करने की सलाह दी थी। लेकिन उनके राजनैतिक उत्तराधिकारी जवाहरलालजी ने कांग्रेस को उसी रूप में वनाये रखा।

हमारे सांवरकांठा प्रयोग में, जिसका मुख्य ध्येय सर्वधर्म उपासना के द्वारा धर्ममय समाज की रचना करना था, श्रीमन्‌जी ने निरंतर सहायता की। जब वह नेपाल के राजदूत नियुक्त हुए तो दोनों देशों के विगड़े संबंधों को उन्होंने सुधार दिया। वह एक उच्च अधिकारी थे, लेकिन जनता के साथ उनके घनिष्ठ और मधुर संबंध रहे। इस कार्य में उनकी पत्नी मदालसा वहन ने भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

जव वह गुजरात में राज्यपाल होकर आये तो उन्होंने छात्रों से लेकर सर्वसाधारण में सर्वधर्म-उपासना के लिए अनुकूल वातावरण वना दिया। अपने ५ अगस्त के पत्र में राजभवन, अहमदाबाद से लिखा, "...मैं गुजरात में नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा देने के संबंध में लगातार प्रयत्नशील हूं। आपके आशीर्वाद से यह कार्य अवश्य सफल होगा।"

जव ओतारिया (धुंधका तहसील) में गुजरात का 'नई तालीमी-सम्मेलन' हुआ तो वह उसमें भाग लेने आये। इस अवसर पर उन्होंने 'सेक्यूलर' शब्द की वड़ी सारगर्भित व्याख्या करते हुए

कहा, "सेक्यूलर का अर्थ धर्म-विहीनता नहीं है, सब धर्मों का आदर है।" गुजरात जैसे अहिंसा-प्रधान प्रदेश में उन्होंने 'सेक्यूलर' की इसी व्याख्या को चरितार्थ किया।

राज्यपाल के दायित्व से मुक्त होकर वह वर्धा में बैठ गये और विनोबाजी के मार्ग-दर्शन में रचनात्मक कार्यों में संलग्न हो गये। उन्होंने वर्धा में आचार्य-सम्मेलन बुलाया और फिर दिल्ली में अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन किया। स्पष्ट है कि वह देश में शिक्षा की नई पद्धति प्रचलित करना चाहते थे। यदि वह जीवित रहते तो अपने प्रयत्न में अवश्य सफल होते। पर प्रभु को कुछ और ही मंजूर था।

वह गांधी-विचार के प्रबल पुरस्कर्ता, धर्मनिष्ठ, रचनात्मक दृष्टि वाले, त्यागी तथा संयमी व्यक्ति थे। □

उनका व्यक्तित्व और कृतित्व

अप्पा पंत

□ □

यह मेरे लिए बड़े सौभाग्य और आनंद की बात थी कि सन् १९३८ में श्रीमन्नारायणजी से मेरा परिचय हुआ। उनसे पहली बार मेरा साक्षात्कार उस समय हुआ जब मेरे पिता, औंध के राजा, औंध राज्य के नये संविधान के संबंध में महात्मा गांधी का परामर्श और आशीर्वाद लेने वर्धा गये। इसी संविधान के अंतर्गत वह अपनी सम्पूर्ण सत्ता औंध की जनता को सौंपने जा रहे थे।

बापूजी की चर्चा के दौरान, जिसमें समय-समय पर श्री जमनालाल बजाज, काका साहेब कालेलकर, जयरामदास दौलतराम और दूसरे लोग सम्मिलित हुए, मेरा ध्यान श्रीमन्नारायणजी के शान्त, दयालु और स्पष्ट स्वर की ओर विशेष रूप से गया। वह उस समय वर्धा में वाणिज्य महाविद्यालय के प्राचार्य थे। औंध राज्य में 'विकेन्द्रित ग्राम लोकतंत्र' की स्थापना के विषय में उनका रुख व्यावहारिक तथा विवेकपूर्ण था। मैं उसी समय अर्थशास्त्र में उपाधि प्राप्त करके ऑक्सफोर्ड से लौटा था और श्रीमन्नारायणजी के विश्लेषण के साथ सहज ही सामंजस्य स्थापित कर सकता था।

कई दिनों और सप्ताहों तक भारतानंद (पोलिश इंजीनियर-संत-सूफ़ी) औंध के सौ ग्रामों के लिए हमारी प्रस्तावित योजना की सामाजिक तथा आर्थिक व्यावहारिकता के विषय में तर्क करते रहे। जैसा कि हमें बाद में पता चला, उनके विचार उस कार्य के लिए बहुत ही संगत और सार्थक थे, जिन्हें मैंने औंध के गांवों में क्रियान्वित करने का बीड़ा उठाया था।

प्रोफ़ेसर, समायोजक, राजदूत और राज्यपाल के उनके रूप में मैं समय-समय पर उनसे मिलता रहा। आज हम जिस शोर-शराबे से भरी अस्त-व्यस्तता और संघर्ष के बीच रह रहे हैं, उसमें उनके 'मौन' और विवेक के लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञता अनुभव करता हूं।

'व्यक्ति' के और उसके द्वारा उस समाज के, जिसमें वह आज रहता है, रूपान्तर के संबंध में गांधीवादी तरीके में, चारों ओर हैरानी होते हुए भी, उनकी निष्ठा अडिग थी।

उनका व्यक्तित्व और कृतित्व निस्संदेह जीवित रहेगा और हम सबको मार्ग-दर्शन और प्रेरणा देता रहेगा। □

उनकी मधुर स्मृति

गुलजारीलाल नंदा

□ □

श्रीमन्नारायणजी इस संसार से उठ गये! उनका निधन इतने आकस्मिक रूप में हुआ कि इतने समय वाद आज भी विश्वास नहीं होता कि वह हमारे बीच नहीं हैं। जव-जब मैं उनकी याद करता हूं, उनकी गंभीर और संयत आकृति मेरी आंखों के सामने आ जाती है। अत्यन्त राष्ट्रीय महत्त्व के कार्यों में वह लम्वे अर्से तक डूवे रहे और उन्हें कठिन समस्याओं तथा नाजुक स्थितियों का मुकावला करना पड़ा, फिर भी उनकी गंभीरता और संयम वरावर वने रहे। ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि वह कुछ आदर्शों के प्रति समर्पित थे और वह सच्चाई तथा अध्यवसाय के साथ अपने प्रयत्न करते रहते थे। अपने व्याख्यानों तथा लेखों में वह सदा गांधीवादी विचारों और कार्य-प्रणाली का प्रतिपादन करते थे। वह उसके अनुसार अपना जीवन भी व्यतीत करते थे।

श्रीमन्जी के साथ मेरा सम्पर्क वहुत समय पहले से आरंभ हुआ, जबकि मैं सेवाग्राम में वापूजी से विभिन्न कार्यों के वारे में सलाह-मशविरा करने के लिए वर्धा जाता था और सेठ जमनालाल वजाज के घर ठहरता था। उस समय श्रीमन्जी को हमने एक बुद्धिवादी, कवि, साहित्यिक रुचि और गहरी मानवीय सम्वेदनाओं का व्यक्ति पाया। वह बड़े ही खुशमिजाज थे और उनके साथ रहने में आनंद आता था।

वह योजना आयोग में मेरे साथी थे। देश की आवश्यकताओं तथा समस्याओं के बारे में हमारे विचार वहुत-कुछ समान थे। जब वह दूसरों से असहमत होते थे तो अपने विचारों को बड़े मुक्त भाव से, पर शालीनता के साथ व्यक्त करते थे। पिछले कुछ सालों के अंत में जब वह दिल्ली आते थे और हम लोग मिलकर देश की स्थिति पर विचार-विमर्श करते थे तो मैं देखता था कि वह कितने व्यथित थे। घटना-चक्र बड़ा तीव्र था और उसके प्रभुत्व को मस्तिष्क से हटा देना आसान नहीं था।

उनकी मधुर स्मृति सदा हमारे मन में बनी रहेगी। □

विरल व्यक्तित्व

जयदयाल डालमिया

□□

श्रीमन्नारायणजी के विषय में कुछ लिखना आसान नहीं है। वह इतने आकस्मिक रूप में गये कि आज भी विश्वास नहीं होता। उनसे प्रायः भेंट होती रहती थी। उनकी सरलता और सादगी बेजोड़ थी। वह ऊंचे-से-ऊंचे पद पर रहे, पर उनकी सादगी और सरलता में कोई अंतर नहीं आया। वर्धा का आवास, काठमांडू (नेपाल) का राजदूतावास और अहमदाबाद (गुजरात) का राजभवन उनके लिए एक समान थे।

भारतीय संस्कृति के प्रति उनकी निष्ठा बड़ी गहरी थी। वह जहां भी रहे, उन्होंने उसकी रक्षा की। जिस समय वह नेपाल में राजदूत थे, हम लोगों का वहां जाने का सुयोग हुआ। वहां के सभी क्षेत्रों और वर्गों में उन्होंने अच्छी प्रतिष्ठा स्थापित की थी। सरकारी अधिकारी उन्हें आदर की दृष्टि से देखते थे। उतना ही मान सार्वजनिक क्षेत्र के लोग देते थे।

उनकी बहुत बड़ी विशेषता यह थी कि राजनीति में रहते हुए भी वह दलगत और सत्तात्मक राजनीति के दलदल में नहीं फंसे और जिम्मेदारी के पदों पर काम करते हुए भी अहंकार से बचे रहे। सच बात यह है कि उनका ध्यान पदों की ओर नहीं, सेवा की ओर रहा। उन्होंने पदों की कभी इच्छा नहीं की। अपने गुणों के कारण उन्हें एक के बाद एक अनेक पद मिले और उन्होंने उन पदों को इसलिए स्वीकार किया, क्योंकि उनके द्वारा सेवा करने का उन्हें अवसर मिलता था।

रचनात्मक कार्यों में, विशेषकर शिक्षा में उनकी बड़ी दिलचस्पी थी। उस क्षेत्र में उनकी सेवाएं चिर-स्मरणीय रहेंगी। अर्थशास्त्र में उन्हें विशेष रस था। गांधीवादी अर्थव्यवस्था पर उन्होंने गहराई से चिन्तन किया था और कुछ पुस्तकें भी लिखीं।

लेकिन उनका सबसे बड़ा गुण तो उनका सुशील स्वभाव, मधुर व्यवहार और सुसंस्कृत आचार था। उनकी वाणी में संयम था और कर्म में प्रामाणिकता थी। वह कभी उत्तेजित नहीं होते थे और सबके साथ प्रेम तथा समानता का व्यवहार करते थे। उनके संबंध बड़े व्यापक थे और उन संबंधों को हरा-भरा बनाये रखने के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहते थे।

उनके निधन से एक ऐसा विरल व्यक्ति उठ गया, जिसकी आज बड़ी आवश्यकता थी। पर प्रभु की इच्छा के आगे किसकी चलती है। □

भारत के सच्चे प्रतिनिधि

खड्गमान सिंह

□ □

स्व० श्रीमन्नारायण जब नेपाल में भारतीय राजदूत के पद पर थे, उस समय मैं राजसभा की स्थायी समिति का सदस्य रहा, अतः सरकारी स्तर पर उनसे कोई बातचीत नहीं होती थी, क्योंकि नेपाल के संविधान के अनुसार वहां की राजसभा की कार्य-प्रणाली कुछ और है—भारत की राज्यसभा की जैसी नहीं। फिर भी श्रीमन्नारायणजी से बराबर भेंट-वार्तालाप होता था और माध्यम थे स्व० तुलसी मेहरजी, जिन्हें १९७७ का नेहरू पुरस्कार मिला था।

श्री तुलसी मेहर महात्मा गांधी के साबरमती आश्रम में सन् १९२० से २५ तक रहे और महात्माजी का प्रिय पात्र बनने का उन्हें सौभाग्य मिला था। मेहरजी के प्रयास से काठमांडू में 'नेपाल गांधी स्मारक निधि' की स्थापना हुई, जिसका उद्घाटन सन् १९५२ में तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने किया था। इस संस्था की कार्यकारिणी समिति का मैं सदस्य रहा। मेहरजी और इस संस्था के नाते श्रीमन्नारायणजी से निकट सम्बन्ध रहा।

श्रीमन्नारायणजी अल्पभाषी, मृदुभाषी तथा सत्यवक्ता थे। मनसा-वाचा-कर्मणा वह सर्वोदयी थे। उनके कार्यकाल की अवधि में दोनों देश के बीच हमारे सम्बन्ध और भी अच्छे बन गये थे। उनके प्रयास से ही हमारा (पूर्व-पश्चिम) 'महेन्द्रराजमार्ग' के पूर्वी भाग के निर्माण का अभिभार भारत ने लिया था। वह पूरा भी हो गया है और उस क्षेत्र के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। मेरे जानते यहां सात-आठ व्यक्ति भारतीय राजदूत के पद पर रहे। सभी ने दोनों देशों के बीच सम्बन्ध मधुर और मजबूत बनाने की कोशिश की। फिर भी श्रीमन्नारायणजी के समय में यहां के भारतीय राजदूतावास में भारतीय संस्कृति, भावना और व्यवहार जिस प्रकार प्रदर्शित हुए, वैसे किसी समय नहीं। धार्मिक पर्वों पर आत्मीय मित्रों को आमंत्रित कर भजन-कीर्तन तथा धार्मिक चर्चाएं होती थीं। राष्ट्रीय उत्सव या अन्य अवसर पर रात्रि भोज के अवसर पर चारों ओर दीपमाला रहती थी, जिससे उत्पन्न शोभा मित्रों के मन मोह लेती थी। सारांश में, श्रीमन्नारायण ने अपनी कार्यावधि में सभी तरह से भारत का सच्चा प्रतिनिधित्व किया था।

अन्त में एक विशेष बात यह कि जो भी उनसे मिलते, उनकी मिलनसारिता और सौजन्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते और अपने इस दुर्लभ गुण के कारण श्रीमन्नारायण ने हमारी मित्रता प्रगाढ़ बनाने में प्रशस्त योगदान दिया। भगवान ऐसे सज्जन और नेपाल के सच्चे मित्र श्रीमन्नारायणजी की आत्मा को परम शान्ति प्रदान करें! □

सर्मपित जीवन के प्रतीक

काशिनाथ त्रिवेदी

□□

कोई ४२ साल पहले की बात है। मैं उन दिनों वर्धा के महिला आश्रम में वहां की बहनों को हिन्दी सिखाने का काम कर रहा था। सन् १९३६ का जमाना था। बापूजी उन दिनों वर्धा की मगनवाड़ी में रह रहे थे। बाद में वे हरिजनों की बस्तीवाले सेगांव नामक एक छोटे-से गांव में रहने लगे। आगे चलकर यही सेगांव सेवाग्राम कहलाने लगा। उन दिनों विनोबाजी भी वर्धा का अपना पुराना आश्रम छोड़कर वहां से कुछ दूर हरिजनों की ही बस्तीवाले नालवाड़ी गांव में रह रहे थे। वर्धा की बजाजवाड़ी में स्वर्गीय जमनालालजी बजाज अपने परिवार के साथ रहते थे। वे अपने जमाने के एक बहुत ही कुशल और सजग जौहरी रहे। लेकिन उनकी परख का दायरा हीरा-मोती और मणि-माणिक से हटकर अपने समय के नर-रत्नों की परख में सीमित हुआ था। उन्होंने अपने को महात्मा गांधी का 'पांचवां पुत्र' माना था और वे अपने माने हुए पिता के हर छोटे-बड़े काम की सिद्धि के लिए अपने को तन-मन-धन से अर्पित किये हुए थे। अपनी बिरादरी को बढ़ाते रहने की एक अनोखी-सी धुन उन्हें दिन-रात लगी रहती थी। वे जब कभी, जहां कहीं भी, जाते थे, उनकी आंखें समानशील साथियों की खोज में चारों ओर भटकती रहती थीं और, जब कोई ऐसा होनहार साथी उनकी निगाह में बैठ जाता था, तो वे उसे अपने प्रेम-जाल में फंसाने का पूरा प्रयत्न करते थे। वे उसे अपना भरपूर प्रेम और विश्वास देते थे। उसे कुछ दिन अपने साथ रखते थे। घुमाते थे। बहुत नजदीक से नये साथी को देख-परख लेते थे और जब वह उनकी कसौटी पर खरा उतरता था, तो वे उसे पूरी आत्मीयता के साथ अपना बनाने की, अपनी बिरादरी में समा लेने की, कोशिश में कोई कसर नहीं रखते थे। अपने जीवनकाल में अपने बापू के जीवन-कार्य की सिद्धि के लिए उन्होंने देश के कोने-कोने में घूम-घूमकर जिन नर-रत्नों को खोजा था और राष्ट्रसेवा के काम में जिन्हें बापू का अपना साथी-संगी बना दिया था, उनकी गिनती सम्भव नहीं है।

इन्हीं नर-रत्नों में एक भाई श्रीमन्नारायणजी भी थे। जमनालालजी की चकोर आंखों ने ही उन्हें खोजा था और अपनी इस खोज पर वे मुग्ध थे। भाई श्रीमन्नारायणजी की शैक्षणिक योग्यता और विद्वता से भी अधिक वे उनके शील से, सौजन्य से, शालीनता से, कुलीनता से और उनके स्वभाव की सरलता तथा मृदुता से बहुत प्रभावित हुए थे। अपने खोजे हुए इस नये मानव-रत्न को वे अपने बापू के पास भी ले गए और उनसे भी भाई श्रीमन्जी का अच्छा परिचय करा दिया। बापू भी अपने समय के एक ही मानव-पारखी थे। उन्होंने श्रीमन्जी के सत्व को समझ लिया और बड़ी सहजता से उन्हें अपना भी लिया। आगे चलकर इन्हीं श्रीमन्नारायणजी को जमनालालजी ने अपनी दूसरी कन्या मदालसा के वर के रूप में अपनाया और अपने बापू के सान्निध्य में आश्रम-पद्धति से दोनों का विवाह भी हर्ष और उल्लास के वातावरण में सादगी के साथ रचा दिया।

वर्धा के महिला आश्रम में रहते हुए मैंने भाई श्रीमन्‌जी को सबसे पहले तब देखा था, जब वे पहली ही बार अपने भावी ससुर श्रीजमनालाल बजाज के साथ वर्धा आए थे। जब वर्धा में ही उनका विवाह किया गया, तो उसके साक्षी बनने का सुयोग भी मुझे मिला। ब्याह के कुछ ही समय बाद वे वर्धा आकर रहने लगे। पहले कुछ समय तक उन्होंने वर्धा के नवभारत विद्यालय का काम देखा और जब स्वर्गीय श्रीगोविन्दराम सेकसरिया की ओर से वर्धा में पहला वाणिज्य महाविद्यालय खुला, तो श्रीमन्‌जी ने उसके आचार्य का काम संभाला। उन्हीं दिनों गांधीजी की प्रेरणा से वर्धा में राष्ट्रभाषा-प्रचार के साथ हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा का काम भी चला। भाई श्रीमन्‌जी इन कामों से भी जुड़े। जब पूज्य काका साहेब कालेलकर के सम्पादकत्व में वर्धा से 'सबकी बोली' नामक मासिक पत्र निकलने लगा, तो श्रीमन्‌जी उससे भी जुड़ गए। इस प्रकार उत्तरोत्तर उनका कार्य-क्षेत्र बढ़ता गया और वे अपने कन्धों पर नई-नई जिम्मेदारियां उठाते रहे।

सन् १९३७ में गांधीजी ने अपने साप्ताहिकों में बुनियादी शिक्षा की अपनी कल्पना और योजना पर सिलसिले से लिखना शुरू किया, तो भाई श्रीमन्‌जी का ध्यान उस ओर भी गया और उन्होंने बापूजी के सामने प्रस्ताव रखा कि बुनियादी शिक्षा की उनकी धारणा पर व्यापक चिंतन-मन्थन के लिए वर्धा में ही एक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन बुलाया जाय और उसकी अध्यक्षता स्वयं गांधीजी करें। उनका यह प्रस्ताव मान्य हुआ और अक्तूबर, १९३७ के तीसरे सप्ताह में नवभारत-विद्यालय, वर्धा के प्रांगण में बुनियादी शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने के लिए देश-भर के शिक्षा-शास्त्री, विचारक और लोकनेता आमंत्रित किये गये। उन दिनों देश के आठ-नौ प्रान्तों में कांग्रेसी-मंत्रिमण्डलों ने पहली बार शासन का भार संभाला था, इसलिए इन राज्यों के शिक्षा मंत्री भी अपने-अपने उच्च शिक्षाधिकारियों के साथ वर्धा के इस सम्मेलन में इकट्ठे हुए थे। बापू की अध्यक्षता में तीन दिन तक सम्मेलन की कार्यवाही चली। उत्पादक उद्योग द्वारा शिक्षा की बात और शिक्षा में स्वावलम्बन की बात पर गरमागरम बहसें हुईं। उस समय के हमारे देश के कई धुरन्धर शिक्षाशास्त्रियों ने और अर्थशास्त्रियों ने बापू के इन विचारों का कड़ा विरोध किया और इनको अव्यावहारिक भी कहा। विरोध करनेवालों में स्वर्गीय डॉक्टर जाकिरहुसैन-जैसे बापू को बहुत माननेवाले और उनके प्रति गहरी श्रद्धा रखनेवाले उस समय के प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री भी थे। स्वर्गीय श्री के० टी० शाह-जैसे देश के जाने-माने अर्थशास्त्री ने भी शिक्षा में स्वावलम्बन वाले बापू के विचार का जोर-शोर से खण्डन किया। बापू ने अपने इन दिग्गज साथियों की प्रखर टीकाओं का हंसते-हंसते स्वागत किया और जब सम्मेलन के अन्त में बुनियादी शिक्षा की रूपरेखा के साथ उसके शिक्षा-क्रम को तैयार करने के लिए देश के शिक्षा-शास्त्रियों की समिति गठित करने का समय आया, तो बापू ने उसकी अध्यक्षता करने के लिए डॉक्टर जाकिर हुसैन को राजी कर लिया और समिति के सदस्यों में स्वर्गीय श्री के०टी० शाह को भी आग्रहपूर्वक लिया। इस समिति में बापू के अपने पुराने साथियों में से स्वर्गीय किशोरलाल मशरूवाला, स्वर्गीय श्रीकृष्णदास जाजू और पूज्य विनोबाजी-जैसे धुरन्धर जीवन-शास्त्रियों और शिक्षा-शास्त्रियों को भी सम्मिलित किया गया था। डॉक्टर जाकिर हुसैन की अध्यक्षता में बनी बुनियादी शिक्षा की इस समिति ने छह महीनों के कठिन परिश्रम के बाद अपनी जो रिपोर्ट तैयार की, वह 'जाकिर हुसैन-रिपोर्ट' के नाम से प्रसिद्ध हुई और उस समय की भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सन् १९३८ के अपने हरिपुरा अधिवेशन में उसे स्वीकृत करके सारे देश में बुनियादी शिक्षा का काम खड़ा

करने और चलाने के लिए अखिल भारत हिन्दुस्तानी तालीमी संघ का गठन करने का निर्णय किया और गांधीजी के सीधे मार्गदर्शन में इस संघ ने सेवाग्राम को अपनी साधना का केन्द्र मानकर बुनियादी शिक्षा के प्रचार-प्रसार का काम शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उस समय की सब राज्य सरकारों ने और केन्द्रीय सरकार ने भी बुनियादी शिक्षा का स्वागत किया और अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र में उसके प्रयोग शुरू किये। सारे देश के उच्च शिक्षाधिकारी वर्धा आकर बुनियादी शिक्षा का प्रशिक्षण प्राप्त करने लगे। सन् १९३८ और १९३९ के सालों में सारे देश में बुनियादी शिक्षा की धूम-सी मची रहीं। केन्द्र और राज्य की सरकारों ने उसे माना, राष्ट्रीय कांग्रेस ने उसका समर्थन किया, उसे अपनाया, बापू की प्रेरणा और उनका सीधा मार्ग दर्शन उसे मिला। शुरू के वर्षों में उसकी काफी चर्चा रही। खासी चहल-पहल भी रही। शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोगों की एक नई दिशा खुली। काम उत्तरोत्तर बढ़ता-फैलता गया, पर वह वहुत कम जगहों में अपनी जड़ जमा सका। देश की आम और खास जनता बुनियादी शिक्षा के मर्म को पकड़ नहीं पाई। शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे शिक्षा मंत्रियों से लेकर उच्च शिक्षाधिकारियों और आम शिक्षक-शिक्षिकाओं तक के विशाल शिक्षा-जगत् को बुनियादी शिक्षा का सारा विचार और कार्यक्रम इस हद तक रुका और जंचा ही नहीं कि वे उसे मुक्तमन से अंगीकार और स्वीकार करके उसे मूर्तरूप देने के काम में जी-जान से जुट सकें।

भाई श्रीमन्जी बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में चल रही इन सारी गतिविधियों को और उसमें आते रहे सारे चढ़ाव-उतार को निकट से देखते-समझते रहे और अपनी शक्ति-युक्ति-भर वे उसके पोषण-संवर्धन के प्रत्यक्ष कामों के साथ अपने को बराबर जोड़े भी रहे। उनके मन में इस वात की गहरी वेदना वनी रही कि देश के शिक्षा-जगत् के सामने गांधीजी ने अपने अनोखे जीवन-दर्शन के निचोड़ के रूप में बुनियादी शिक्षा का जो एक मौलिक विचार और कार्यक्रम रखा था, उसकी ठोस अच्छाइयों को समझने का और उसकी विराट सम्भावनाओं का ठीक-ठीक आकलन करने का कोई प्रामाणिक, उत्कृष्ट और सही प्रयत्न देश के शिक्षा-जगत् ने किया नहीं। अपनी तरफ से वे अपने जीवन के अन्तिम समय तक अपनी पूरी शक्ति और भक्ति के साथ इस वात की कोशिश करते रहे कि सन् १९३७ से लेकर सन् १९७७ तक के चालीस सालों में बुनियादी शिक्षा के मूलभूत तत्त्वों की उपेक्षा करके देश ने, उसकी सरकारों ने और देश के समूचे शिक्षा-जगत् ने जो कुछ, जिस हद तक, खोया है, उस पर सब फिर से अन्तर्मुख होकर सोचें और अपनी इस वड़ी और दुर्भाग्यपूर्ण भूल को जल्दी-से-जल्दी सुधार लेने के काम में तीव्रता और तत्परता से लग जायं। बुनियादी शिक्षा के विषय में उनकी अपनी दृष्टि और आस्था विलकुल स्पष्ट थी। उनकी अपनी प्रतीति यह थी कि भारत-जैसे गुलामी, गरीबी और बेकारी में गले-गले तक डूबे हुए ७० प्रतिशत निरक्षरों के देश की आम जनता में अपने रोज-रोज के जीवन के प्रति नई आस्था, चेतना और विश्वास जगाने में बुनियादी शिक्षा या नई तालीम की रीति-नीति जिस हद तक कारगर और सफल हो सकती है, उस हद तक आज की दूसरी कोई प्रचलित शिक्षा-पद्धति सफल या कारगर हो नहीं सकती। अपने इसी विश्वास के कारण वे देश के प्रधानमंत्रियों से लेकर मुख्यमंत्रियों और शिक्षामंत्रियों तक के दरवाजे बार-बार खटखटाते रहे और उनसे अनुरोध करते रहे कि स्वतंत्र भारत के शिक्षा-जगत् की सारी व्यवस्था को जड़-मूल से बदलने के लिए वे स्वयं कमर कसें और अपने देशवासियों को भी अपनी-अपनी कमरें कस लेने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित और

अनुप्राणित करना शुरू करें।

सन् १९७२ में उनके ही अनुरोध और आग्रह पर भारत की उस समय की प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी सेवाग्राम पहुंची थीं और वहां उन्होंने अखिल-भारत राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन का उद्‌घाटन किया था। अपने प्रधानमंत्री की इस अनुकूलता से आश्वस्त होकर उन्होंने देश के विभिन्न राज्यों की सरकारों के मुख्यमंत्रियों और शिक्षामंत्रियों से सीधा सम्पर्क साधा और उनको प्रेरित किया कि वे अपने-अपने राज्य में राज्य-स्तर के शिक्षा-सम्मेलन बुलाकर उनमें बुनियादी शिक्षा या नई तालीम के काम को फिर खड़ा करने के वारे में गम्भीरता से सोचें। सन् १९७५ तक वे लगातार इसी प्रयत्न में लगे रहे। कई राज्य-सरकारों द्वारा आयोजित राज्य-स्तर के शिक्षा-सम्मेलनों में स्वयं सम्मिलित होकर उन्होंने बुनियादी शिक्षा अथवा नई तालीम के पक्ष में अपनी वात वहुत स्पष्टता से और दृढ़ता से रखी और सवको प्रेरित किया कि वे सेवाग्राम के राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन की सिफारिशों को ध्यान में रखकर अपने-अपने राज्य में भी बुनियादी शिक्षा के मूलभूत तत्त्वों को अपनाने और राज्य की सारी शिक्षा-व्यवस्था को नीचे से ऊपर तक बदलने के विषय में गम्भीरता से सोचें और शिक्षा के क्षेत्र में आमूलचूल परिवर्तन करने के लिए कमर कसें।

जून, १९७५ से लेकर जनवरी, १९७७ तक देश में आपातकाल का जो अभूतपूर्व चक्र चला, उसमें भी वुनियादी शिक्षा के पक्ष में उनका चिन्तन तीव्रतर होता गया और जव मार्च, १९७७ में हुए लोकसभा के चुनावों में इन्दिराजी की सरकार गिरी और मोरारजी भाई देसाई के नेतृत्व में जनता-सरकार का गठन हुआ, तो वे फिर अपनी पूरी शक्ति से सारे देश में नई तालीम को पुनः प्रतिष्ठित करने के काम में जुट गए। नौ महीनों के कठिन परिश्रम के वाद वे भारत-शासन के नये प्रधानमंत्री और नये शिक्षामंत्री को राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन के मंच पर आने और सम्मेलन में आये हुए प्रतिनिधियों से सीधी वातचीत करने के लिए राजी कर पाए। १८,१९,२० दिसम्बर, १९७७ को नई दिल्ली में हुए इस राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन की अध्यक्षता स्वयं श्रीमन्जी ने की और प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई देसाई ने अपने उद्‌घाटन-भाषण में देश की वर्तमान शिक्षा-पद्धति को जड़मूल से बदलने की आवश्यकता पर जोर दिया और राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी द्वारा प्रवर्तित और प्रतिपादित नई तालीम के मूलभूत तत्त्वों को भारत की राष्ट्रीय शिक्षा-व्यवस्था में पूरी समझदारी और जवावदारी के साथ प्रतिष्ठित करने की हिमायत की।

भारत-शासन के शिक्षामंत्री श्री प्रतापचन्द्र 'चन्द्र' ने भी सम्मेलन में आए प्रतिनिधियों से सीधी चर्चा की और राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में अपेक्षित परिवर्तनों का समर्थन किया। इस सम्मेलन में देश के कई राज्यों के शिक्षामंत्री, विश्वविद्यालयों के कुलपति, उच्च शिक्षाधिकारी, शिक्षा-शास्त्री और लोकसेवक बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए थे। लगभग सभी ने एक स्वर से यह स्वीकार किया कि देश की वदली हुई राजनैतिक परिस्थिति में और आम जनता की वदली हुई मनःस्थिति में देश की समूची शिक्षा-व्यवस्था को नये आधारों पर खड़ा करने में चूकना नहीं चाहिए। नई जनता-सरकार के प्रतिनिधियों ने नई दिल्ली में राजघाट की गांधी-समाधि की साक्षी में जो सामूहिक प्रतिज्ञा ली थी, उसमें राष्ट्रपिता गांधीजी द्वारा सूचित रीतिनीति के अनुसार सारी राज्य-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था, शिक्षा-व्यवस्था और अर्थ-व्यवस्था खड़ी करने का संकल्प भी निहित था।

भाई श्रीमन्‌जी के मन में जनता-पक्ष के प्रतिनिधियों के इस संकल्प के कारण यह धारणा पुष्ट हुई थी कि नई जनता-सरकार के कार्यकाल में बुनियादी शिक्षा के काम को नीचे से ऊपर तक पर्याप्त समर्थन मिल सकेगा और देश में उत्पादक श्रम के साथ जुड़ी और स्वावलम्बन तथा लोक-सेवा के आधार पर खड़ी नई शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार शुरू हो सकेगा। नई दिल्ली के शिक्षा-सम्मेलन की सफल समाप्ति के बाद वे आगे के अपने काम की व्यूह-रचना में जुट गए। जब तक नई दिल्ली में रहे, सम्मेलन के निर्णयों को अमली रूप देने के लिए सम्बन्धित मंत्रियों और शिक्षा-धिकारियों से विचार-विमर्श करते रहे। फिर वे नई दिल्ली से वर्धा-पवनार के लिए इस संकल्प के साथ निकले कि पवनार में पूज्य विनोबाजी को नई दिल्ली में हुए राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन की चर्चाओं और निर्णयों की जानकारी देकर उनका मार्ग-दर्शन प्राप्त करेंगे और फिर नई दिल्ली पहुंचकर चर्चाओं के सूत्र को आगे बढ़ाएंगे। पर पता नहीं, क्यों, भारत-भाग्य-विधाता को भाई श्रीमन्‌जी का यह मनोरथ रुचा नहीं, और उसने उनको विनोबाजी के पास जाने से रोककर बीच रास्ते से ही अपने पास सदा-सदा के लिए बुला लिया। **'अति विचित्र भगवन्त गति को जग जाने योग'** वाली बात हुई।

सन्‌ १९३७ के अक्तूबर महीने में वर्धा में हुए बुनियादी शिक्षा के पहले राष्ट्रीय-सम्मेलन के कारण ही मुझे उन दिनों भाई श्रीमन्‌जी के निकट सम्पर्क में आने का अवसर मिला था। सम्मेलन की समाप्ति के बाद जब उसके कार्य-विवरण को तैयार करने और उसे पुस्तकाकार छापने का प्रश्न खड़ा हुआ, तो भाई श्रीमन्‌जी के संकेत पर यह काम मुझे सौंपा गया और मैंने सम्मेलन की सारी कार्यवाही का अथ से इति तक संकलन-सम्पादन करके उसकी छपाई की व्यवस्था खण्डवा के कर्मवीर-प्रेस में की। 'शिक्षा में अहिंसक क्रांति' के नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित वर्धा के पहले बुनियादी शिक्षा-सम्मेलन का यह हिन्दी कार्य-विवरण बुनियादी शिक्षा के मर्म को समझने की रुचि रखनेवालों के लिए आज भी उतना ही मूल्यवान और मननीय है, जितना वह आज से ४०-४१ बरस पहले था। हिन्दी में बुनियादी शिक्षा की यही मूल पुस्तक है। इस पुस्तक के निमित्त से भाई श्रीमन्‌जी के साथ जिस परिचय का आरम्भ हुआ, वह उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया और हमारे बीच परिवार की-सी आत्मीयता और निकटता पुष्ट होती रही।

सितम्बर, १९३९ में दूसरा महायुद्ध शुरू हुआ। उस समय की अंग्रेज सरकार ने भारत को भी इस युद्ध के साथ सहसा जोड़ दिया। जोड़ने से पहले भारतवासियों को अपने विश्वास में नहीं लिया। इसके विरोध में भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस ने राज्यों की सरकारों में बैठे अपने मंत्रि-मण्डलों को त्यागपत्र देकर बाहर आ जाने का आदेश दिया। राज्यों में कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की समाप्ति के साथ ही कई राज्य-सरकारों ने बुनियादी शिक्षा के काम में रुचि लेना और उसे बढ़ावा देना बन्द कर दिया। बिहार-जैसे कुछ प्रान्तों में वहां के सहृदय और सहानुभूतिशील अंग्रेज शिक्षाधिकारियों के समर्थन और प्रोत्साहन से बुनियादी शिक्षा के प्रयोग चलते रहे। सन्‌ १९४० में गांधीजी ने अंग्रेज सरकार की युद्ध-नीति के विरोध में देशव्यापी व्यक्तिगत सत्याग्रह शुरू किया। अगस्त, १९४२ में राष्ट्रीय कांग्रेस के आवाहन पर सारे देश में **भारत छोड़ो** आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ।

इन आन्दोलनों के चलते भाई श्रीमन्‌जी को जेल-यात्रा के अवसर मिले। जेल-जीवन में भी उनका अध्ययन, चिंतन और लेखन चलता रहा। उन दिनों रूस की पंचवर्षीय योजनाओं की

देश-विदेश में बड़ी चर्चा थी। भारत में भी पंडित जवाहरलाल नेहरू ने देश के चौमुखी विकास के लिए एक योजना तैयार करने का सूत्रपात किया था। भाई श्रीमन्जी ने उन्हीं दिनों गांधीजी के समग्र जीवन-दर्शन को ध्यान में रखकर गांधी-विचार के अनुरूप एक योजना-ग्रंथ तैयार किया, जिसकी उन दिनों देश में काफी चर्चा रही। यह ग्रंथ मूलतः अंग्रेजी में लिखा गया था। बाद में हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित हुए। मई, १९४४ में गांधीजी जेल से छूटे। जेल में रहते हुए उन्होंने देश की कई मूलभूत समस्याओं के साथ शिक्षा की समस्या पर भी गहन चिन्तन किया था। जब वे जेल से बाहर आए, तो अपने चलाए हुए सारे रचनात्मक कार्यों के विषय में उन्होंने नए सिरे से और नई दृष्टि से अपने साथियों के साथ बैठकर सहचिन्तन शुरू किया। बुनियादी शिक्षा को भी उन्होंने एक नई दिशा दी। नया आयाम दिया। गर्भधारण के समय से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक के समय को उन्होंने मनुष्य-मात्र की शिक्षा-दीक्षा का समय माना और बुनियादी शिक्षा को, जो आरम्भ के वर्षों में ७ से १४ साल की उम्र के बालकों के लिए सोची गई थी, मनुष्य के पूरे जीवन की शिक्षा तक फैला दिया। इस शिक्षा को उन्होंने नई तालीम का नाम दिया। विनोबाजी ने आगे चलकर इसी को नित्य नई तालीम कहना शुरू किया। इस तरह बुनियादी शिक्षा के अर्थ में यह जो नई गहराई और व्यापकता आई थी, उसने भाई श्रीमन्जी को और भी प्रभावित और आकर्षित किया। वे उसके आजीवन-प्रचारक, सेवक, उपासक, आराधक और साधक बनते चले गए। उसकी उपयोगिता और अमोघता में उनकी आस्था दृढ़ होती गई। वे उसके व्यापक और सघन प्रचार के हिमायती बनते गए।

सन् १९४७ के अगस्त महीने की १५ तारीख को भारत राजनैतिक दृष्टि से स्वतंत्र हुआ। सदियों पुरानी उसकी परतंत्रता समाप्त हुई। अंग्रेजी राज की समाप्ति के साथ ही स्वतंत्र भारत के लोक-जीवन का एक नया अध्याय शुरू हुआ। आरम्भ के कुछ वर्षों में स्वतंत्र भारत को अपने दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन की झुलसाने वाली आंच में से गुजरना पड़ा। इसी आंच के चलते देश की बलिवेदी पर बापू को अपना बलिदान देना पड़ गया। उनके बलिदान से विभाजन के कारण भड़की आग तो तत्काल बुझ गई, पर दूसरी अनेकानेक विकट समस्याओं के कारण स्वतंत्र भारत की स्थिति उत्तरोत्तर गम्भीर और चिन्ताजनक होती चली गई। इन समस्याओं से निपटना देश की पहली आवश्यकता बन गई। इसलिए स्वतंत्र भारत में नई पीढ़ी की शिक्षा-दीक्षा के लिए प्राथमिकतापूर्वक जो आमूलचूल परिवर्तन दृष्ट और आवश्यक थे, उनकी उपेक्षा ही हुई और अंग्रेजों या राजा-महाराजाओं के राज में चल रही शिक्षा-प्रणाली ही स्वतंत्र भारत में भी लगभग ज्यों की त्यों, बहुत थोड़े हेर-फेर के साथ चलती रही। बापू की नई तालीम में निष्ठा रखनेवालों के लिए यह स्थिति बहुत दुःखद थी। चिन्ताजनक भी थी। वे शासन में बैठे हुए अपने साथियों को इसकी याद दिलाते रहे। शिक्षा के क्षेत्र में जड़मूल परिवर्तनों की आवश्यकता पर जोर देते रहे, पर राजकाज की अटपटी गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त हमारे राजनेता तब से लेकर आज तक भी शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की बात को प्राथमिकता के साथ उठा नहीं पाए हैं। भाई श्रीमन्जी के संवेदनशील हृदय को हमारी सरकारों की इस प्रकट अक्षमता से भारी ठेस पहुंचती रहती थी और वे घोर निराशा के बीच भी आशा की किरण प्रकटाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील बने रहते थे।

स्वतंत्र भारत में भाई श्रीमन्जी को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कई दायित्वपूर्ण

पदों पर काम करने के सुअवसर प्राप्त हुए। वे लोकसभा के सदस्य चुने गए। राष्ट्रीय कांग्रेस के महामंत्री बने। योजना-आयोग की सदस्यता उन्हें प्राप्त हुई। नेपाल में भारत के राजदूत का काम करने का सौभाग्य उन्हें सुलभ हुआ। वे गुजरात के राज्यपाल भी बने। स्वतंत्र भारत की उच्च राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने अपने आचारों, विचारों और कामों की काफी गहरी छाप उन सब पर छोड़ी, जो विभिन्न जिम्मेदारी वाले इन पदों पर रहते हुए उनके सम्पर्क में आए। वे जहां भी रहे, वहीं नई तालीम के अपने मिशन को कभी नहीं भूले। गुजरात राज्य के राज्यपाल का काम करते हुए उन्होंने वहां चल रही नई तालीम की शिक्षा-संस्थाओं को अपना भरपूर समर्थन दिया और उनके मार्ग की अनेक कठिनाइयों और बाधाओं को दूर कराने में सक्रिय सहयोग भी दिया। स्वतंत्र भारत की समुन्नति के लिए वे जितना जोर नई तालीम पर देते थे, उतना ही जोर नशाबन्दी पर भी देते रहे। नई तालीम की सफलता के लिएं वे नशाबन्दी को बहुत आवश्यक मानते थे। स्वतंत्र भारत की सक्रिय राजनीति से हटने के बाद भी उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम तीन-चार वर्षों में नई तालीम, नशाबन्दी और गौवध-बन्दी के लिए जिस समर्पण-भाव से अथक प्रयत्न किए, उनकी याद कभी भुलाई नहीं जा सकेगी।

भाई श्रीमन्‌जी भारत के उन बड़भागी व्यक्तियों में रहे, जिन्हें उत्तम कुल, शील और संस्कारवाले सुखी, सम्पन्न और पुरुषार्थी माता-पिता की गोद में अपना आरम्भिक जीवन बिताने का सुअवसर मिला। उन्होंने अपने समय की ऊंची शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की। फिर उनका प्रारब्ध उन्हें राष्ट्रसेवा के क्षेत्र में खींच लाया। उन्हें अपनी रुचि और वृत्ति के अनुकूल सेवाक्षेत्र मिल गया। लगातार ४०-४१ सालों तक वे भारतमाता के चरणों में अपनी उत्तम सेवा का नैवेद्य चढ़ाते रहे। अपने पारिवारिक जीवन को संभालते-संवारते हुए वे अपने को राष्ट्र की सेवा के लिए भी पूरी निष्ठा और दक्षता के साथ तैयार करते रहे। स्वतंत्र भारत के राष्ट्रीय जीवन में वे अपना एक खास स्थान बना पाए थे। यही उनके जीवन की एक विशिष्ट उपलब्धि मानी जाएगी। बा-बापू और विनोबा की गोद में खेलकर और पढ़-लिखकर सयानी हुई मदालसा बहन उन्हें अपनी धर्मपत्नी और जीवन-संगिनी के रूप में मिलीं; इसे भी उनके जीवन का एक सुभग संयोग ही मानना होगा। अपने वैवाहिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन में दोनों ने एक-दूसरे के पूरक-पोषक बनकर अपनी आदर्श गृहस्थी का जो नमूना हमारे सामने खड़ा किया है, वह भी अपनी जगह बहुत प्रेरणाप्रद रहा है।

पिता के और ससुर के कुलों की जिस कुलीनता, संस्कारिता और सम्पन्नता का उत्तराधिकार भाई श्रीमन्‌जी को मिला था, उसके कारण उनके सादगीपसन्द और आडम्बरहीन जीवन में भी एक प्रकार की नफासत सहज ही आ गई थी। वे स्वभाव से सहृदय और भावुक थे। युवावस्था की भावुकता ने उन्हें कवि बना दिया था। वे हिन्दी में और अंग्रेजी में कविताएं लिखते रहे थे। उनके कुछ कविता-संग्रह प्रकाशित और प्रशंसित भी हुए। उन्होंने हिन्दी में और अंग्रेजी में अपने गहन अध्ययन और चिन्तन के निचोड़-रूप में जिन छोटी-बड़ी पुस्तकों की और ग्रंथों की रचना की, वे भी खूब सराहे गए और पढ़े गए। पत्र-व्यवहार की उनकी अपनी एक विशिष्ट शैली थी। पत्रों के उत्तर वे बड़ी तत्परता से और लगभग बिना चूके देते थे।

भाई श्रीमन्‌जी ने अपने जीवन-काल में अपने समकालीन महापुरुषों के महान् जीवन से

प्रेरणा लेकर अपने जीवन और कार्य को जितना उज्ज्वल, सफल और श्रेयस्कर बनाया है, उसके लिए वे हमारे बीच सदा स्मरणीय बने रहेंगे। वस्तुतः वह समर्पित जीवन के प्रतीक थे। □

गांधी-मार्ग के पथिक

यशपाल जैन

□ □

सवेरे बड़े तड़के जब फोन पर समाचार मिला कि श्रीमन्नारायण का वर्धा जाते हुए ग्वालियर में अकस्मात् देहान्त हो गया तो इस दुखद समाचार पर सहसा विश्वास नहीं हुआ। बात इतनी अप्रत्याशित थी कि अनहोनी लगी। वर्धा जाने की पिछली शाम को ही तो उन्होंने फोन पर बातें की थीं। अन्य अनेक चर्चाओं के बीच उन्होंने हाल ही में दिल्ली में हुए अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन के विषय में अपना गहरा सन्तोष और प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा था कि उस सम्मेलन के जो निष्कर्ष निकले हैं, उनके बारे में उन्होंने प्रधानमंत्री श्री मोरारजी भाई तथा शिक्षामंत्री डा० प्रतापचंद्र 'चन्दर' से विस्तृत चर्चा की है और उन्होंने उस ओर विशेष ध्यान देने का आश्वासन दिया है। वे कुछ अवश्य करेंगे। अन्त में उन्होंने कहा था कि अगली बार जब मैं दिल्ली आऊंगा तो हम लोग मिलकर और बहुत-सी बातों पर चर्चा करेंगे। उनके मधुर स्वर मेरे कानों में गूंज रहे थे। बड़ी देर तक स्तब्ध होकर सोचता रहा कि आखिर यह क्या हुआ?

श्रीमन्जी के साथ मेरा लगभग ३७ वर्ष पुराना संबंध था। मैंने उन्हें अनेक रूपों में देखा। वह वर्धा के सेकसरिया कालेज के प्राचार्य थे। शिक्षा में, विशेषकर बुनियादी तालीम में उनकी बड़ी गति थी। गांधी विचारधारा के वे बड़े गम्भीर व्याख्याता थे। गांधीवादी संयोजन के सिद्धान्तों पर उन्होंने एक बड़ा सारगर्भित ग्रंथ लिखा था। इतना ही नहीं, महात्मा गांधी की प्रायः सभी रचनात्मक प्रवृत्तियों में उनका सक्रिय योगदान रहा था। लेकिन इस सबसे बड़ी बात यह थी कि वे मानवीय मूल्यों के उपासक थे। व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह मानवीय मूल्यों की स्थापना करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहे। मुझे याद है कि जब वह योजना आयोग के सदस्य थे तो वह इस बात का बराबर प्रयास करते रहे कि स्वतंत्र भारत का आर्थिक ढांचा इस प्रकार का हो कि प्रत्येक देशवासी के जीवन में नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को ऊंचा स्थान मिले और देशवासियों का चरित्र-बल बढ़े। उनकी दृष्टि में खरे मानव का चित्र सदा प्रमुख रूप में रहा और उसी को उन्होंने जीवन में सर्वोच्च स्थान पर आसीन करने का प्रयत्न किया।

श्रीमन्जी का जन्म १३ जुलाई १९१२ में उत्तरप्रदेश के इटावा नगर में हुआ था। उनकी शिक्षा आगरा तथा इलाहाबाद में हुई। जिस समय वह वर्धा में सेकसरिया कालेज के प्राचार्य थे, उन्हें महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने का अवसर मिला। गांधीजी के जीवन तथा उनके सिद्धान्तों में उनका इतना गहन विश्वास पैदा हुआ कि वे उनके मार्ग के पथिक बन गये। उन्होंने गांधीजी

की आर्थिक नीतियों का बड़ा बारीकी से अध्ययन किया और अपनी पुस्तकों तथा प्रवृत्तियों द्वारा प्रतिपादित किया कि किस प्रकार गांधीजी के आर्थिक सिद्धान्तों के आधार पर ही लोकतंत्र की नींव रखी जा सकती है और लोकतंत्र को स्थायी बनाया जा सकता है।

उन्होंने सन् १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लिया और देश के स्वतन्त्र हो जाने पर गांधीवादी विचारधारा को प्रसारित करने के लिए सन् १९४८ में विश्व भ्रमण किया। वह सन् १९५२ से लेकर १९५७ तक संसद सदस्य रहे और राष्ट्रीय कांग्रेस के महामंत्री के रूप में काम किया। १९५२ से १९५८ तक उन्होंने कांग्रेस महासमिति के पत्र 'इकनामिक रिव्यू' का संपादन किया। सन् १९५८ में वह योजना आयोग के सदस्य हो गये। इस पद पर रहकर उन्होंने योजना आयोग की दिशा को गांधीजी के सिद्धान्तों की ओर मोड़ने का अनेक प्रकार से प्रयास किया। सन् १९६४ में वह नेपाल में भारत के राजदूत नियुक्त हुए और १९६७ से १९७३ तक गुजरात के राज्यपाल रहे।

श्रीमन्जी ने इन पदों पर रहकर जो महत्त्वपूर्ण सेवा की, उसे देखने का मुझे अवसर मिला। जब मैं काठमांडू गया तो मैंने पाया कि उनकी सादगी और नीति-निष्ठा की वहां के लोगों पर गहरी छाप पड़ी है और गुजरात में तो उन्होंने राज्यपाल के रूप में अनेक अद्भुत कार्य कर दिखाये। गुजरात गांधीजी की जन्मभूमि और प्रारम्भिक कर्मभूमि रही थी। श्रीमन्जी ने गांधी-वादी प्रवृत्तियों को वहां पर इतना प्रोत्साहन दिया कि गुजरात के निवासी आज भी बड़े आदर से उनका स्मरण करते हैं।

श्रीमन्जी उच्च कोटि के शिक्षाविद् और अर्थशास्त्री थे। गांधीजी के प्रति उनका इतना गहरा आकर्षण और उनके सिद्धान्तों के प्रति उनकी इतनी गहरी निष्ठा थी कि वह अपने जीवन के अन्तिम समय तक शिक्षा और आर्थिक क्षेत्र में उन्हीं के सिद्धान्तों को प्रतिस्थापित करते रहे।

श्रीमन्जी चरित्र के धनी थे। उन्हें सुसंस्कृत जीवन के संस्कार अपने माता-पिता से प्राप्त हुए थे। महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा, जमनालालजी बजाज तथा अन्य अनेक महापुरुषों के सतत् संसर्ग से वे परिपुष्ट हुए। वस्तुतः उनका जीवन अनासक्त कर्मयोग का जीवन था। अपने पूज्य पिताजी के इस गुण का स्मरण करते हुए उन्होंने लिखा है :

"आदरणीय पिताजी की जिन्दगी स्वयं अनासक्त कर्मयोग का उदाहरण थी। उन्होंने बहुत समय तक बड़ी योग्यता से वकालत की। साथ ही साथ सार्वजनिक कार्यों में योगदान किया। अवकाश ग्रहण करने के बाद उन्होंने रामायण, विनय-पत्रिका और गीता का बहुत गहन अध्ययन किया, यद्यपि उनकी प्रारम्भिक भूमिका उर्दू और फारसी की थी, हिन्दी और संस्कृत की नहीं। वकालत के दिनों में भी एक पुराने और कर्मठ थियोसोफिस्ट के नाते उनका धार्मिक तथा आध्यात्मिक अभ्यास निरन्तर चलता रहा। वह हमें सदा समझाते रहते थे कि योगियों को ढूंढ़ने के लिए वनों में, जंगलों में तथा तीर्थस्थानों में जाने की जरूरत नहीं है। हम तो गृहस्थ जीवन में ही बहुत से योगियों को सहज पा सकते हैं और उनके दर्शन कर सकते हैं। वह कहते थे कि जो माता सुबह से रात तक अपने कुटुम्ब का पालन करती है, बच्चों की देखभाल करती है, अतिथियों की सेवा करती है, सबों को खिलाकर अन्त में खाती है, वह योगी नहीं है तो और क्या है ? योगी बनने के लिए गेरुए कपड़े पहनने की जरूरत नहीं होती।"

श्रीमन्जी के जीवन में धार्मिक संस्कारों की जड़ें बड़ी गहरी चली गयी थीं। लेकिन धर्म

नें उनके लिए कभी साम्प्रदायिक रूप धारण नहीं किया। वह उस धर्म को जानते और मानते थे जो जीवन का मर्म है और जिस पर चलकर जीवन धन्य और कृतार्थ बनता है।

राष्ट्रप्रेम उनमें कूट-कूटकर भरा था। अपने विद्यार्थी जीवन में उन्होंने मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' से गहरी प्रेरणा प्राप्त की। उन्होंने स्वयं लिखा है, "विद्यार्थी जीवन में हमने कविवर मैथिलीशरणजी की 'भारत-भारती' से गहरी प्रेरणा ली थी। अंग्रेजी की 'लांग फेलो' की कविता 'दिस इज माइन ओन नेटिवलैंड' हमें कंठस्थ हो गयी थी। इकवाल की ये पंक्तियां हम सभी गाया करते थे :

सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा
हम वुलवुलें हैं उसकी वह गुलिस्तां हमारा !

"उन दिनों 'वन्देमातरम्' का राष्ट्रगीत तो अंग्रेजी राज्य के प्रति वगावत का प्रतीक वन गया था, फिर भी वह हरेक की जुवां पर रहता था। पं० माखनलाल चतुर्वेदी की 'फूल की चाह' शीर्षक कविता भी लोकप्रिय वन गयी थी :

मुझे तोड़ लेना वनमाली
उस पथ पर देना तुम फेंक
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जायें वीर अनेक !

"और हमारे देश के संवंध में तो महाभारत के महाकवि ने हजारों वर्ष पहले ही घोषित किया था : 'दुर्लभं भारते जन्म'। रामायण के कवि-सम्राट वाल्मीकि ने स्वयं भगवान राम की वाणी द्वारा मातृभूमि की भक्ति का सन्देश दिया था।

अपि स्वर्णमयी लंका, न मे लक्ष्मण रोचते
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

इस प्रकार देशप्रेम से उनका सम्पूर्ण जीवन छलछलाता रहा।

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम को निष्ठापूर्वक अपनाया जाय, इसके लिए श्रीमन्जी गुजरात के राज्यपाल के पद से मुक्त होने के वाद 'गांधी स्मारक निधि' में आए और निधि के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने इस संस्था में नये प्राण फूंके। कुछ ही वर्षों में गांधी स्मारक निधि की विभिन्न प्रवृत्तियां सक्रिय हो उठीं। पिछले दिनों उन्होंने निधि के तत्वावधान में सम्पूर्ण भारत की रचनात्मक प्रवृत्तियों में संलग्न संस्थाओं के निष्ठावान कार्यकर्ताओं का एक विशाल सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया। उसके वाद अखिल भारत प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन अहमदाबाद में किया और अपने निधन से कुछ ही दिन पूर्व भारत के शिक्षाविदों तथा उस क्षेत्र के कार्यकर्ताओं का जो सम्मेलन दिल्ली में हुआ, उसकी चर्चा हम आरम्भ में कर चुके हैं।

श्रीमन्जी चाहते थे कि राष्ट्रीय जीवन का प्रत्येक अंग पुष्ट वने। इसके लिए वह शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व देते थे। आजकल की शिक्षा-संस्थाओं में दी जाने वाली शिक्षा से उन्हें संतोष नहीं था। वह उसमें आमूल परिवर्तन करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि हमारी शिक्षा ऐसी हो, जो देशवासियों को उस भारतीय संस्कृति में ढाले, जिसने किसी समय सारे संसार को एक महान सन्देश दिया था।

श्रीमन्जी अत्यन्त मिलनसार थे और उनका सबसे बड़ा गुण यह था कि उनमें अहंकार

का लेश भी नहीं था। उनका कर्म में गहरा विश्वास था। उनमें कर्तापन की भावना नहीं थी। उनके सम्पर्क बड़े व्यापक थे। कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं था, जिसके साथ उनका सम्पर्क न हो। वह अनेक संस्थाओं के साथ सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे और इसका कारण यही था कि वह अपने देश के नेताओं तथा नयी पीढ़ी के साथ अपना सजीव संबंध बनाए रखना चाहते थे।

श्रीमन्जी रचनात्मक क्षेत्र तथा राजनीति के बीच की एक शक्तिशाली कड़ी थे। वह बड़े-से-बड़े राजनेता के जितने निकट थे, उतने ही निकट वह रचनात्मक कार्यकर्ताओं के साथ थे। वे दोनों के बीच समन्वय साधते थे।

श्रीमन्जी अच्छे लेखक थे। उन्होंने गांधीवादी अर्थशास्त्र पर तो लिखा ही है, साथ ही ललित निबन्ध, संस्मरण, कविताएं आदि भी लिखी हैं। उनकी अनेक पुस्तकें हिन्दी तथा अंग्रेजी में उपलब्ध हैं। लेकिन स्मरण रहे कि उन्होंने लिखने के लिए अथवा कला के लिए कभी कुछ नहीं लिखा। वह साहित्य को जीवन का अभिन्न अंग मानते थे और जो जीवन की गहराई में से उठकर आता था, उसे वाणी प्रदान करते थे।

श्रीमन्जी बड़े ही मधुर मित्र थे। जो भी कोई उनके पास जाता था, उनकी शिष्टता तथा शालीनता से विभोर हो उठता था। उनका हृदय अत्यन्त संवेदनशील था। वह दूसरे के दुःख को देख नहीं सकते थे और दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न करते थे।

श्रीमन्जी के निधन से एक ऐसा स्थान रिक्त हो गया है, किसकी कभी पूर्ति नहीं हो सकती, एक ऐसा गांधीवादी सेवक उठ गया है, जिसकी सेवाएं चिर-स्मरणीय रहेंगी। □

राष्ट्र के गौरव

श्रेयांसप्रसाद जैन

□□

जीवन एक यात्रा है। इस यात्रा में व्यक्ति को संघर्ष के दौर से गुजरना पड़ता है। वह सफलता ही क्या, जो आसानी से प्राप्त हो। सेवा-भाव और त्याग का बिगुल बजाते हुए श्री श्रीमन्नारायणजी ने अपनी जीवन-यात्रा अन्त तक की। यह विश्वास नहीं होता कि श्रीमन्जी की पहली पुण्य तिथि ३ जनवरी को आ रही है। ऐसे क्षण में स्मृति के अंकुर उभर आते हैं।

व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र का निर्माण होता है। जो व्यक्ति अपना समग्र जीवन समाज के रचनात्मक कार्यों में त्याग की भावना के साथ व्यतीत करता है, वह राष्ट्र का गौरव होता है। इस प्रकार के जीवन को जीते हुए श्रीमन्जी जैसा व्यक्तित्व विरला ही नजर आयेगा।

श्रीमन्जी से मेरा निकट का सम्पर्क रहा। मेरी उनसे भेंट अक्सर स्व० कमलनयनजी बजाज के साथ होती थी। और भी अनेक अवसरों पर मिलना हो जाता था। उनका आत्मीय

भाव और अनुशासन अपने-आप में अद्वितीय था। वे बड़े ही मिलनसार थे। वे मृदु और मित-भाषी थे। सेवा-भावी पुरुषों की पहचान अलग ही होती है, जिनसे प्रेरणा का स्रोत वहता ही रहता है।

व्यक्ति जो कुछ सीखता है, ग्रहण करता है और अनुभव प्राप्त करता है, वह उसके गुण का द्योतक है। परन्तु इसके पीछे किसी-न-किसी का हाथ अवश्य होता है। श्रीमन्जी पूज्य गांधीजी, संत विनोवा और जमनालालजी के सान्निध्य में रहे। उनके व्यक्तित्व को उभारने में वहन मदालसा का बहुत बड़ा त्याग रहा। इन लोगों से जो कुछ मिला, उन्होंने मुक्तभाव से ग्रहण किया, अपनाया और समाज तक पहुंचाया। रचनात्मक कार्यों के क्षेत्र में यह पुष्प पल्लवित हुआ, विकसित हुआ और अपनी सुगन्ध से राष्ट्र को सुगन्धित वनाया।

श्रीमन्जी अच्छे लेखक, साहित्यकार और कवि भी थे। उन्होंने अनेक पुस्तकें हिन्दी तथा अंग्रेजी में लिखीं। वे गांधीवादी विचारों के उद्घोषक थे। वे व्याख्याता, अर्थशास्त्री और शिक्षा-विशेषज्ञ थे। उन्होंने राजनीति में भी अनेक उच्च पदों पर रहकर राष्ट्रीय दायित्व निभाया, यह उनकी वहुमुखी प्रतिभा का द्योतक है।

उनकी जन्म-भूमि यद्यपि इटावा (उत्तरप्रदेश) थी, तथापि उनका कार्यक्षेत्र वर्धा रहा। यही नहीं, वे समग्र समाज में छाये हुए थे। वर्धा में तो शिक्षण-संस्थाओं का जाल विछाने में श्रीमन्जी की महान भूमिका रही। वस्तुतः यह उनकी शिक्षा की अभिरुचि का एक सफल उदा-हरण है। उन्होंने शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता पर सदैव बल दिया।

जीवन में रचानात्मक कार्य करते हुए विविध क्षेत्रों में श्रीमन्जी ने यश कमाया। समय-समय पर अनेक संस्थाओं ने उनका सम्मान किया। वे अपने-आपमें एक जीवित-संस्था थे। एक और विशेष गुण श्रीमन्जी में यह था कि इतने दीर्घ काल तक सार्वजनिक जीवन में रहते हुए उन्होंने कभी प्रसिद्धि पाने की चेष्टा नहीं की। उन्होंने उक्त प्रवृत्ति के विपरीत सदैव दूसरों को आगे वढ़ाकर स्वयं निःस्वार्थभाव से विभिन्न क्षेत्रों में सेवा करने में सन्तोष माना। "सन्तोष एव पुरुषस्य परम् निधानम्" यह पंक्ति श्रीमन्जी पर पूर्णतः चरितार्थ होती है।

सादा जीवन और उच्च विचार उनके जीवन का मूल मन्त्र था। संयम, सात्विकता और करुणा उनके उच्च आदर्श थे। इस प्रकार आजीवन अर्जन, सर्जन और विसर्जन के सुभग समन्वय द्वारा उन्होंने जन-गण के ध्येय और श्रेय को सम्पन्न किया।

श्रीमन्जी परिपक्व अवस्था के पूर्व ही चल वसे। भारत माता की गोद में पले हुए ऐसे राष्ट्र-पुत्रों का निश्चय ही राष्ट्रीय जीवन में विशिष्ट स्थान रहेगा। उनकी पावन स्मृति युग-युगान्तरों तक एक यादगार रहेगी। □

उनका बहुमुखी व्यक्तित्व

मोटूरि सत्यनारायण

□□

लगभग १९३६ के अक्तूबर की बात है। श्रद्धेय देशभक्त जमनालाल बजाजजी ने स्फुरद्‌रूपी सुसंस्कारी एक युवक का परिचय कराते हुए मुझसे कहा, "यह तरुण अभी लन्दन से वापस आये हैं। आई० सी० एस० करने इंग्लैण्ड गये थे। वहां इनका मन नहीं लगा। बापू के रचनात्मक कार्य में लग जाना चाहते हैं। मैं चाहता हूं कि यह पहले राष्ट्रभाषा प्रचार-कार्य में लग जायं। आप इन्हें साथ रखिये।" मैं उन दिनों राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का मंत्री बनकर वर्धा गया ही था। वेष-भूषा में चुस्त, बातचीत में दुरुस्त, बरताव में विनयी, शकल-सूरत में मोहक, उस तरुण के व्यक्तित्व से मैं बहुत ही प्रभावित हुआ। मेरी उम्र ३४, उनकी उम्र २४। उम्र का भेद बहुत ज्यादा न होते हुए भी, हम दोनों के संस्कार, शिक्षा-दीक्षा में मुझे बड़ा अन्तर मालूम होता था। उनमें यूरोप से लौटने पर भी भारतीयपन झलकता था। फिर भी उनकी आई० सी० एस० की धाक से मैं कुछ दब-सा गया।

बहुत कम अर्से में हम दोनों एक-दूसरे के निकट हो गये। दो-तीन महीने तक एक ही साथ भाई-भाई की तरह रहते, खाते-पीते और काम करते रहे। राष्ट्रभाषा के प्रचार-कार्य, संयुक्त मंत्रित्व के साथ-साथ पूज्य महात्माजी के अन्य कार्यों में भी वे दिलचस्पी लेने लगे। तीन-चार महीनों में उनके वर्चस्व, तेजस्विता, सुसंस्कृतिपूर्ण व्यक्तित्व का गांधी-परिवार पर असर पड़ गया। ४० से अधिक वर्ष का समय बीतने पर भी आज उनकी उम्र ६५ साल से अधिक होने पर भी पिछले २८ दिसंबर, १९७७ को जब उनसे गांधी स्मारक निधि के कार्यालय में मिला था तो हम दोनों में पिछली स्मृतियों पर बड़े उल्लास के साथ बातें होने लगीं। कहने लगे, "हम दोनों फिर से एक बार गांधीजी के काम में अपने को पुनरर्पित करें।" कार्यक्रम भी तय हो गया। पर ईश्वर भी कितने कठोर और निर्दयी हैं कि उनको अकस्मात इस संसार से उठाकर ले गये।

श्रीमन्‌जी ने अपने लुभावने व्यक्तित्व से हजारों मित्र बनाये। स्मरण ही नहीं आता कि कभी वे किसी से रुष्ट हुए हों। यह भी स्मरण नहीं कि किसी को रुष्ट होने का अवसर दिया हो। अरुचिकर प्रसंगों में भी वे कभी कुपित होते हुए दिखाई नहीं देते थे। उद्रिक्त परिस्थितियों में भी उनका संयम असाधारण-सा दीखता था। अपनी सहनशीलता से उन्होंने जितना मित्र-संचय किया उतना शक्ति-संचय भी किया। पहले उनकी रुचि, विद्यार्थी जीवन में ही, कविता लिखने की थी। उन्होंने कुछ अपनी कविताएं छपाई भी थीं। बड़े चाव से वे कविता सुनते थे और कविता-पाठ करते थे। जैसे-जैसे उनके विचारों की प्रौढ़ता बढ़ी, अनुभव विस्तृत हुआ, ज्ञान की गहराई बढ़ने लगी, उनके व्यक्तित्व में गरिमा भी आयी। रचनाओं में प्राणवान निदेशपूर्ण निश्चित विचार-धारा का स्रोत भी फूटा। उनका भाग्य था और वे मानते भी थे कि उनकी धर्मपत्नी मदालसाबहन की क्रियात्मक सहायता मिलती रही, उनके प्रेरणादायी साहचर्य से वे लाभान्वित भी हुए।

श्रीमन्नारायण उनका नाम था। लेकिन अपने साथियों और मित्रों के बीच वे 'श्रीमन्' ही के नाम से पहचाने जाते थे। श्रीमन्‌जी का जन्म एक सुसंस्कारी, सुविख्यात परिवार में हुआ। उनके पिता धर्मनारायणजी मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) में वकालत करते थे। वे प्रकाण्ड पंडित थे। हिन्दी, उर्दू और संस्कृत के ज्ञान के साथ-साथ उच्च आदर्श तथा विचार रखनेवाले व्यक्ति थे। श्रीमन्‌जी के माता-पिता दोनों एनी वेसेन्ट के दिव्यज्ञान-समाज के सदस्य थे। श्री धर्मनारायण ने अपने पुत्रों को ऊंची शिक्षा दिलायी। जब इस सुसंस्कारी परिवार से परिचय हुआ तब स्वर्गीय जमनालालजी ने श्री धर्मनारायण की अनुमति से गांधी-परिवार में शामिल होने के लिए श्रीमन्‌जी को न्योता दिया। साथ ही अपनी योग्य पुत्री मदालसा का पाणिग्रहण कराने के लिए अनुमति मांगी। श्रीमन्‌जी और मदालसा का विवाह एक आदर्श विवाह था।

विना किसी आडंवर के सीधे-सादे ढंग पर विवाह संपन्न हुआ। देश के कोने-कोने से आशीर्वाद प्राप्त हुए। विवाह के बाद श्रीमन्‌जी को उनके व्यक्तित्व में शक्ति फूंकनेवाली एक साथी मिल गयी और मदालसावहन को उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को एक नया और अनोखा रूप देने के लिए एक शिल्पी मिल गये। अपने चालीस वर्ष के वैवाहिक जीवन में इस आदर्श दंपति ने अनोखा और अपूर्व कार्य किया। श्रीमन्‌जी का अधिकतर जीवन शिक्षण संस्थाओं के कार्य-कलापों में लगा। वे वर्धा के कामर्स कालेज के प्राचार्य वने, कवि और रचयिता वने, महात्मा गांधी के विचारों के व्याख्याता और प्रचारक वने, सेवाग्राम तथा वर्धा की शिक्षण संस्थाओं के निर्माता वने, भारतीय अर्थ-विकास के लिए गांधीय योजना के प्रणेता वने, और साथ ही महात्मा गांधी के निकटस्थ अनुयायी वने।

गांधीजी ने श्रीमन्‌जी के बारे में ठीक ही कहा कि श्रीमन्‌जी एक अनोखे रत्न हैं, जिनमें विनय, विद्वत्ता तथा निश्चलता का एक असाधारण संगम है। उन्होंने मातृभूमि के लिए अपना एक वहुत ही संपन्न और तेजस्वी समृद्धिदायक पेशा छोड़कर महान त्याग किया। वाकई श्रीमन्‌जी वड़े भाग्यवान थे, अन्यथा महात्मा जी की कंजूस कलम से ऐसे उद्‌गार पानेवाले भाग्यवान व्यक्ति और कितने होंगे? 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लेकर उन्होंने १८ महीने की जेल की यातना सहन की। महात्माजी के दिवंगत होने के वाद उनके विचारों के प्रचार के लिए मदालसाबहन के साथ संसार के सभी भूभागों का पर्यटन किया।

१९५२ में वे संसद के सदस्य चुने गये। कांग्रेस के सेक्रेटरी बने, योजना आयोग के सदस्य बने। नेपाल के राजदूत वनने के बाद गुजरात के राज्यपाल नियुक्त हुए। पिछले चार-पांच वर्षों से गांधी-विचारधारा को पुनर्जाग्रत करने के लिए वे तरह-तरह की योजनाएं बनाकर कार्यान्वित करते रहे। पूज्य विनोबाजी के आशीर्वाद प्राप्त होने के कारण उन्हें अपने विचारों को लोकप्रिय वनाने, दूर-दूर तक पहुंचाने, उच्च स्तरीय मनीषियों तथा मेधावियों को आकृष्ट करने में पूरी सफलता मिली। उनकी प्रतिभा जैसे वहुमुखी थी, वैसे ही उनकी अभिरुचियों में भी विस्तृत विविधता थी। 'गांधी स्मारक निधि' के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने अपने कार्य-क्षेत्र को वहुत व्यापक बनाया। नागरी-लिपि-विस्तार, प्राकृतिक चिकित्सा, नयी तालीम, भूदान और ग्रामदान आंदोलन आदि-आदि कितने ही कार्यों को सक्रियता का रूप देने के लिए योजनाएं बनायीं। सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, गांधी शांति प्रतिष्ठान आदि संस्थाओं के नेता बने। 'गांधी-मार्ग' नामक मासिक पत्रिका के संपादक भी रहे।

कांग्रेस की 'आर्थिक-समीक्षा' के संपादक के रूप में उन्होंने बड़ी नामवरी प्राप्त की। १९३७ में महात्माजी की नयी तालीम के रूप की कल्पना करने के लिए जो समस्त भारत के शिक्षामंत्रियों का सम्मेलन हुआ, उसे साकार बनाने का काम श्रीमन्जी ने अपने ऊपर लिया। पिछली दिसंबर में ही अखिल भारतीय स्तर के राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन किया और उसके वे अध्यक्ष थे, जिसका भारत के प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने उद्घाटन किया।

हिन्दी-प्रचार के आंदोलन को उनका सबसे बड़ा योगदान मिला। विश्व हिन्दी-सम्मेलन का नागपुर में जो प्रथम अधिवेशन हुआ, उसकी सफलता में उनका प्रेरणादायी व्यक्तित्व था। वे हिन्दी को भारतीय धरातल से उठाकर अंतर्राष्ट्रीय आंगन में पहुंचाना चाहते थे। इसके लिए 'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना की। वे चाहते थे कि यह काम जल्दी संपन्न हो। इसके लिए मेरे सहयोग की मांग की थी। इस विषय पर तथा कई अन्य बातों पर उनके दिवंगत होने के दो दिन पहले दिन-भर बातें होती रहीं।

यह निश्चय हुआ कि जनवरी के अंत में हम दोनों दो दिन साथ रहेंगे, और वर्ष-भर के लिए कार्यक्रम बनायेंगे। उनसे विदा होकर मैं मद्रास वापस चला आया। वे ३१ दिसंबर को मेरे नाम पर एक पत्र लिखकर वर्धा के लिए रवाना हुए। वर्धा पहुंचने के पहले ही रास्ते में हृदयाघात का शिकार बनकर वे इस संसार से उठ गए। उनका प्रेम-भरा पत्र, उनकी मृत्यु के समाचार के साथ ही मुझे मिला :

३१ दिसंबर, ७७

प्रिय श्री सत्यनारायणजी,

उस दिन आपसे बहुत समय बाद जरा फुरसत से मिलकर बड़ी खुशी हुई। मुझे आशा है कि आप भारती-संगम को शिक्षा मंत्रालय द्वारा आवश्यक आर्थिक सहायता दिलाने में प्रयत्नशील रहेंगे। यह कार्य भी बहुत महत्त्व का है और हमें आगे बढ़ना होगा।

'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' को ठीक ढंग से शुरू करने के लिए भी आपकी सहायता की बहुत आवश्यकता है। यह विद्यापीठ और केंद्रीय हिन्दी-संस्थान एक-दूसरे के पूरक बनें, यह हमें प्रयत्न करना है। इन दोनों के कार्यों में द्वैगणन (डुप्लीकेशन) का कोई प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए।

नागरी लिपि के संबंध में आपने जो आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ के १९५९ में दिये गए भाषण की प्रतिलिपि दी थी, उसे मैं ध्यान से पढ़ गया हूं। मेरे खयाल से उसमें व्यक्त किये गए विचार आज भी बहुत उपयोगी हैं, किन्तु उसे प्रकाशित करने के पहले उसमें दो प्रकार के सुधार कर लेने होंगे, एक तो आंकड़ों को अद्यतन बनाना है, और दूसरे यह पूरी तरह स्पष्ट कर देना है कि नागरी लिपि को प्रादेशिक लिपियों के स्थान पर नहीं, लेकिन उनके अतिरिक्त एक सामान्य लिपि के रूप में प्रचार करना है। आप जानते ही हैं कि पूज्य विनोबाजी हमें बार-बार समझाते हैं कि नागरी लिपि 'ही' नहीं, किंतु नागरी लिपि 'भी' का प्रचार करना है। नागरी लिपि परिषद के कार्य में इस दृष्टि का निरंतर ध्यान रखा जा रहा है।

नागरी लिपि के दूसरे सम्मेलन की रिपोर्ट भी साथ में आपकी जानकारी के लिए भेज रहा हूं। उसके विधान की एक प्रति भी।

आपने जो भाषण मेरे पास छोड़ा था, उसको भी श्री जयदयालजी के पत्र के साथ भेज रहा हूं।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

१९५१ में भारत के प्रथम राष्ट्रपति पूज्य राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में अखिल भारतीय स्तर पर एक वृहत् सांस्कृतिक सम्मेलन का लालकिला, दिल्ली में आयोजन हुआ था, जिसका महाराष्ट्र के महान देशभक्त श्री शंकरराव देव के साथ मैं भी एक संयोजक था। श्रीमन्जी भी उसके प्रतिनिधि थे। इस सम्मेलन में दो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित हुए। एक था भारतीय संविधान की धारा ३५१ के अनुसार हिन्दी-प्रचार को आगे बढ़ाने के लिए एक संस्था की स्थापना और दूसरा भारत की भिन्न-भिन्न भाषाओं के द्वारा अभिव्यक्त तथा प्रस्तुत साहित्य के संगठित रूप को भारतीय संस्कृति के रूप में व्यापक तथा प्रवहमान बनाने के लिए एक संस्था की स्थापना।

पहले प्रस्ताव के अनुसार अखिल भारतीय हिंदी-परिषद की स्थापना आगरे में हुई, जो इस समय केंद्रीय हिंदी संस्थान के रूप में कार्य कर रही है। दूसरी संस्था को सुसंगठित करने के लिए मेरे पास न समय रहा, न साधन ही। भाई श्रीमन्जी ने इस संस्था की स्थापना में बड़ी दिलचस्पी ली, जो इस समय 'भारतीय संगम' के नाम से पंजीकृत है, जिसके श्रीमन्जी स्वयं अध्यक्ष थे।

इस संगम के लिए दिल्ली शहर की मशहूर बस्ती चाणक्यपुरी के बीच में भारत सरकार ने एक कीमती स्थान प्रदान किया है, जिस पर एक भव्य तथा आलीशान मकान बनाया है, जिसमें अब तक १५ लाख रुपये लग चुके हैं। फिर भी मकान अधूरा पड़ा है। पांच-दस लाख रुपये और प्राप्त होने पर ही उसका काम पूरा हो सकता है। इस मकान में १९५१ की मौलिक परिकल्पना के अनुसार सारे कार्य-कलाप, उच्च स्तरीय साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्य होंगे। श्रीमन्जी की धर्मपत्नी मदालसाबहन चाहती थीं कि इसमें मैं भी कुछ शक्ति लगाऊं और उसको पूरा कराऊं।

उक्त पत्र में उन्होंने इसी बात को दुहराया है। मैं आशा करता हूं कि उनकी धर्मपत्नी अपने शक्तिशाली पति की इस अंतिम इच्छा को अपने सशक्त हाथों से पूरा करवाने के लिए प्रयत्नशील रहेंगी और उनका प्रयत्न अवश्य सफल होगा।□

गांधी-विचार के व्याख्याता

सादिक अली

□□

श्रीमन्‌जी के सम्पर्क में आने के मुझे बहुत-से मौके मिले थे। मैंने उन्हें हमेशा संजीदा पाया। राजनीति, अर्थनीति, शिक्षा, भारतीय संस्कृति और पश्चिमी विचार आदि बहुत-से मामलों में उनकी बड़ी गति थी। गांधीजी और उनके समग्र विचारों की उनके मन पर सबसे गहरी छाप थी और उन्हें लोकप्रिय और भारत की नवीन समाज-व्यवस्था का आधार बनाना उनका मिशन बन गया था। गांधीजी ने भारत की जनता की भलाई और कल्याण का कोई भी महत्त्वपूर्ण मसला अपने विचारों से अछूता नहीं छोड़ा था। श्रीमन्‌जी ने उनके निकट विद्यार्थी और अनुयायी के रूप में व्यापक मात्रा में सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक विषयों में अभि-रुचि ली।

अपने जीवन के आरंभ में वह मुख्यतः विद्वान् थे, लेकिन जब वह गांधीजी के सम्पर्क में आये तो उन्होंने अनुभव किया कि विद्वान होना ही काफी नहीं है। उन्होंने साफ देख लिया कि जनता और उसकी समस्याओं के सम्पर्क के विना विद्वत्ता बेमानी और बेकार है। उन्होंने अपनी विद्वत्ता को कभी नहीं छोड़ा। गांधीजी के विचारों का अध्ययन करना उन्होंने अपने जीवन का मुख्य कार्य बना लिया। लेकिन वह क्रियात्मक क्षेत्र में भी उतरे और उसमें सफलता प्राप्त की। यह अनिवार्य था कि वह आजादी से पहले की गांधीजी की बहुत-सी सामाजिक तथा राजनैतिक प्रवृत्तियों में भाग लें, लेकिन वह कांग्रेस की राजनीति के कोई खास अंग नहीं थे। परन्तु आजादी के बाद जवाहरलालजी ने, जोकि स्वयं बड़े विद्वान थे, देखा कि श्रीमन्‌जी की सेवाओं की जरू-रत है। कई साल तक कांग्रेस के महासचिव के रूप में वह उस महान राजनैतिक संस्था के सामने उपस्थित समस्याओं के नजदीक रहे। कांग्रेस के हाथ में राजनीति की बागडोर थी और उस पर भारत जैसे बड़े देश और बड़ी आबादी की किस्मत को नई दिशा में मोड़ने की जिम्मेदारी भी थी। कांग्रेस को बड़ी विकट समस्याओं और परिस्थितियों से जूझना था। धीरे-धीरे श्रीमन्‌जी कठिन परिस्थिति में विभिन्न मसलों के बीच संतुलन बनाने के लिए रास्ता खोजने और समस्याओं को सुलझाने या संकट को दूर करने में माहिर हो गये। उन्होंने दूसरे विरोधी विचारों के साथ समझौता कर लेने के व्यावहारिक विवेक के मर्म को पा लिया।

जब वह योजना आयोग के सदस्य बने तो उन्हें काम करने के लिए और भी बड़ा क्षेत्र मिल गया। नई समाज-व्यवस्था कायम करने के लिए भारत के सामने जो जद्दोजहद थी, उससे संबं-धित बहुत-सी समस्याओं की उन्हें विस्तृत जानकारी मिली। वह जानते थे कि बुनियादी बातों के बारे में गांधीजी के विचार और अनुभव क्या हैं, लेकिन वह उनकी मर्यादाओं को भी जानते थे। उन्होंने इस बात से संतोष कर लिया कि गांधीवादी विचारों को वह जितना कारगर कर सकते हैं, करेंगे। उन्होंने महसूस किया कि देश और उसके नेताओं पर दूसरे विचारों और दर्शनों

का भी प्रभाव है। कुल मिलाकर योजना आयोग की सदस्यता का अनुभव उनके लिए मूल्यवान रहा।

गुजरात के राज्यपाल के रूप में उन्हें कार्य का नया क्षेत्र मिला। नई जिम्मेदारी की गरिमा के प्रति वह सजग थे। उन्होंने यह भी महसूस किया कि उस पद का उपयोग अनेक क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य को बढ़ावा देने के लिए किया जा सकता है।

गुजरात के राज्यपाल का पद छोड़ने के तत्काल बाद वह गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष हो गये। निधि के अध्यक्ष के नाते वह इस बात के लिए उत्सुक थे कि विभिन्न प्रकार के रचनात्मक कार्यों के लिए गांधी निधि जो सुविधाएं दे सकती थी, उनका पूरा-पूरा उपयोग करें। रचनात्मक काम में लीन होते हुए भी राजनैतिक हवा और उसके बहने की दिशा उनकी निगाह से ओझल नहीं थी। वह जानते थे कि गांधीजी की समग्र दृष्टि थी, जिसमें जीवन के सभी पहलू समाये हुए थे। रचनात्मक कार्य भारतीय राजनीति या भारतीय लोकतंत्र की गुणवत्ता से एकदम अलग नहीं हो सकता था। यदि भारतीय लोकतंत्र ही गुणहीन था तो अन्य कार्यों पर भी उसका दुष्प्रभाव पड़ता। वह दलगत राजनीति में अधिक नहीं थे, लेकिन देश की राजनीति में वह बहुत ही दिलचस्पी रखते थे। वह अपनी राय मुक्तभाव से व्यक्त करते थे, लेकिन उनके शब्दों में शालीनता और संयम होता था। नरमी और शालीनता गुण हैं, पर वे विशेष राजनैतिक स्थिति में आलोचना के शिकार भी हो जाते हैं। इसलिए श्रीमन्‌जी पूरी तरह विवाद से परे नहीं थे।

वह पुस्तकों को प्रेम करते थे और उन्होंने स्वयं गांधीजी-विषयक साहित्य की वृद्धि में योग दिया। उनकी शैली सरस और स्पष्ट थी। गांधीजी के कुछ विचारों तथा देश की कुछ समस्याओं को साफ तौर से समझने के लिए कोई भी उनकी पुस्तकों में आसानी से डुबकी लगा सकता है, क्योंकि उनमें लोकतंत्र तथा समाजवाद के प्रयोग हैं। उनका दृष्टिकोण पूर्णतया धर्मनिरपेक्ष था। जाति-पांति की प्रथा का उनके लिए कोई मूल्य नहीं था।

अपने निजी जीवन में उनका स्वभाव बड़ा मधुर था। यही कारण है कि उनके मित्रों का दायरा बहुत बड़ा था। वह और उनकी ख्यातिनामा पत्नी मदालसा बड़े ही उदार मेजबान थे।

बड़े दुःख की बात है कि जिस समय वह देशवासियों के लाभ के लिए शिक्षा-संबंधी अपने विचारों को अमल में लाने में जुटे थे, उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। □

शिक्षा के सम्वर्द्धक

मा० म० शाह

□ □

मैं जुलाई १९४१ में वर्धा के गोविंदराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय में एक साधारण प्राध्यापक के नाते आया। तत्पश्चात पिछले तीस वर्षों में महाविद्यालय का उप-प्राचार्य, प्राचार्य,

शिक्षा मंडल का प्रबंधमंत्री और बाद में प्रधानमंत्री का कार्य मुझे सौंपा गया। श्रीमन्जी लोक-सभा-सदस्य के नाते चुनाव के पश्चात साधारणतः वर्धा के वाहर ही रहे और महाविद्यालय तथा शिक्षा मंडल का कार्य पूर्णरूपेण मेरे जिम्मे. रहा।

मेरी विविध प्रवृत्तियों में मुझे उनके अधिक समीप आने का और समझने का अवसर प्राप्त हुआ, विशेषतः शिक्षा मंडल की स्वर्ण जयंती और हीरक जयंती के संयोजन में मुझे उन्हें बहुत ही नजदीक से देखने का और समझने का अवसर मिला। साथ ही सेवाग्राम तथा दिल्ली में शिक्षा-सम्मेलन के समय शिक्षा-संबंधी विविध पहलुओं पर विचार-विमर्श कर शिक्षा-सुधार की प्राथमिकता के वारे में उनकी लगन और चिंतन का अनुभव हुआ। वे विविध राष्ट्रीय प्रवृत्तियों में संलग्न रहे। पंडित नेहरू के विश्वासपात्र, राष्ट्रीय महासभा के सचिव, योजना आयोग के सदस्य, नेपाल में भारत के राजदूत तथा गुजरात के राज्यपाल इन सभी स्थानों पर उन्होंने अपनी जिम्मेदारी अत्यन्त सफलतापूर्वक निभाई। फिर भी वे शिक्षा-सुधार की आवश्यकता और प्राथमिकता को कभी नहीं भूले। राष्ट्र-निर्माण में शिक्षा के महत्त्व का उन्होंने प्रतिपादन किया और शिक्षा-सम्मेलनों का आयोजन कर भारत के विद्वानों और शिक्षाप्रेमियों को एकत्र कर शिक्षा-सुधार की दिशा में आवश्यक चर्चा, सुझाव और लेखन द्वारा राष्ट्र के सामने शिक्षा-सुधार-विषयक प्रस्ताव रखे। शिक्षा-सम्मेलनों के अंत में शिक्षा-सम्मेलन का निष्कर्ष, उनके द्वारा प्रकाशित अभिमत, आज भी शिक्षा-प्रेमियों के लिए मार्गदर्शक है।

श्रीमन्जी का शिक्षा-सुधार-संबंधी मनन और चिंतन इतना चिरंतन था कि जब स्व० कमलनयनजी की स्मृति में कुछ कार्य करने का प्रश्न आया तव उन्होंने शिक्षा-संबंधी विचार-विमर्श का आयोजन करने के लिए बजाज ट्रस्ट की ओर से डेढ़ लाख रुपये का दान प्राप्त किया। इस राशि को वैंक में रखा गया है और इससे व्याज के रूप में प्राप्त आय लगभग पंद्रह हजार रुपये का प्रतिवर्ष भारत के सभी विश्वविद्यालयों में से प्रत्येक विश्वविद्यालय के सर्वोत्तम छात्र को वर्धा में निमंत्रित कर दो दिन तक चर्चा होती है और अंत में अभिमत द्वारा विद्यार्थियों की राय देश के सामने रखी जाती है। पिछले वर्षों में चर्चा के लिए ये विषय रखे गये :

१९७५ जनवरी	भारत की वर्तमान आर्थिक समस्याओं के संदर्भ में गांधीवादी मार्ग
१९७६ जनवरी	शिक्षा में गांधीवादी मूल्य
१९७७ जनवरी	गांधीजी की समाजवाद-संबंधी विचारधारा
१९७८ जनवरी	महान उद्देश्य के लिए शुद्ध-साधन—गांधीजी
१९७९ जनवरी	राष्ट्रीय पुनर्रचना में विद्यार्थियों की भूमिका-संबंधी गांधीजी के विचार

दिल्ली में १८-१९-२० दिसम्बर, १९७७ को शिक्षा-सम्मेलन का उन्होंने आयोजन किया। इस कार्य में वे काफी व्यस्त रहे, स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहा। फिर भी उनकी शिक्षा-सुधार की लगन के कारण १९७८ जनवरी के कमलनयन वजाज स्मृति शिक्षा परिसंवाद के लिए वे दिल्ली से वर्धा रवाना हुए। पर ईश्वर ने उन्हें प्रवास में ही उठा लिया।

कमलनयन वजाज स्मृति आंतर विश्वविद्यालयीन प्रतियोगिता का लगातार दो दिन वे पूर्णतः संचालन करते थे तथा भाषणों के आधार पर अभिमत तैयार करते थे, जिसकी विद्यार्थियों के वीच पूर्णतः चर्चा हुआ करती थी। अंतिम स्वीकृत अभिमत भारत के शिक्षा से संबंधित

अधिकारी तथा शिक्षा विशेषज्ञ को भेज दिया जाता था।

शिक्षा मंडल के अंतर्गत अनेक महाविद्यालय चलते हैं। इन विद्यालयों को उनका मार्ग-दर्शन मिलता रहा और संभाव्य शिक्षा-सुधार के व्यावहारिक प्रयास किये जाते रहे। गोविंदराम सेक्सरिया वाणिज्य महाविद्यालय, मातृभाषा के माध्यम द्वारा शिक्षा देने में भारत में प्रथम है। उनके प्रयास से नागपुर विश्वविद्यालय ने मातृभाषा माध्यम की दिशा में कदम उठाया।

शिक्षा मंडल द्वारा संचालित संस्थाओं के कार्यकर्तागण कभी भी उन्हें भूल नहीं सकते। वे सबमें विश्वास का वातावरण और उत्साह निर्माण करते थे। यदि किसी से कोई भूल हो जाय तो उस भूल को वे अत्यन्त उदार, सौम्य, सहानुभूतिपूर्ण और उत्साहपूर्वक भाषा में समझाते थे। उनके जमाने में कार्यकर्ताओं में प्राण, उत्साह और कार्यरत रहने की उमंग रहा करती थी। मेरे जीवन के शिक्षा मंडल के दीर्घकाल के अनेक वर्षों में मैं प्राचार्य तो रहा, किन्तु मेरे ऊपर कुछ अवसरों पर बड़ी जिम्मेदारी डाली गयी उसमें से कुछ अवसर थे—संस्था की स्वर्ण जयंती, नेपाल महाराज की भेंट तथा हीरक जयंती। इन जिम्मेदारियों को उठाने में मुझसे कुछ त्रुटियां अवश्य हुई होंगी, किन्तु उन्होंने मुझे हमेशा उदारतापूर्वक उत्साहित ही किया। जो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आया, वह कभी भी उनका स्नेह और सद्व्यवहार नहीं भूल सकता।

वे शिक्षा मंडल, वर्धा के आधार-स्तम्भ थे। उनके प्रयास से पिछले तीस वर्षों में शिक्षा मंडल की गतिविधियां बढ़ती रहीं। अनेक संस्थाएं निर्मित हुईं, शिक्षामंडल को शिक्षा के क्षेत्र में विशेष स्थान प्राप्त हुआ।

वर्धा के नागरिक भी श्रीमन्‌जी को कभी नहीं भूल सकते। वर्धा में शिक्षा की सुविधा तो उनके कारण हुई ही, साथ ही उनके कारण ही भारत के श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ नेताओं की भेंट वर्धा और सेवाग्राम में होती रही और उनके दर्शन और भाषण का लाभ मिलता रहा।

महात्मा गांधी के आशीर्वाद और ऋषि विनोबा की प्रेरणा से उन्होंने अपने जीवन को रचनात्मक प्रवृत्तियों के लिए पूर्णतः समर्पित कर दिया था। भारतीय जनजीवन के रचनात्मक कार्यों में वे सतत प्रयासरत रहे। उनके दीर्घ जीवन के सागर के मोती एक छोटी गागर में रखे जायं तो वे होंगे, कर्तव्यपरायणता, सतत प्रयास, अनुशासन, लगन तथा उचित मार्गदर्शन। प्रभु हमें इनमें से कुछ मोती ग्रहण करने की सद्‌बुद्धि और शक्ति दें। □

उनकी अपूर्व क्षमता

रा० कृ० पाटिल

□ □

अपने दिवंगत मित्र और साथी डा० श्रीमन्नारायण को अपनी प्रेम-भरी आदरांजलि अर्पित करने का सुयोग मिलने पर मुझे हर्ष है। उनके काफी निकट आने का मुझे अवसर मिला था,

क्योंकि गांधीजी और विनोबाजी की प्रेरणा से वर्धा में चलने वाली रचनात्मक प्रवृत्तियों के साथ मैं सम्वद्ध था।

उनके विषय में मेरे मन पर सबसे प्रमुख छाप यह है कि किसी भी चर्चा में उसके मुख्य बिन्दुओं को पकड़ लेने और कार्य की सर्वसम्मत दिशा निश्चित करने की उनमें अपूर्व क्षमता थी। बैठकें कितनी बड़ी क्यों न हों, उनमें भाग लेने वालों की संख्या कितनी भी अधिक क्यों न हो, यदि श्रीमन्जी के हृदय में उसका संचालन होता तो वह निश्चय ही हरेक व्यक्ति को धीरज के साथ सुनते और उन परिणामों पर पहुंचते, जिनमें प्रत्येक भाग लेने वाला अनुभव करता कि उसके योगदान को स्थान मिला है। यह बात विशेष रूप से जनवरी १९७६ में विनोबाजी के मार्ग-दर्शन में उनके द्वारा बुलाये गये आचार्य-सम्मेलन में देखने में आई। वह मसला इतना विवादास्पद था और उसमें भाग लेने वाले इतनी तरह के लोग थे कि हर किसी को संतुष्ट करना टेढ़ी खीर थी, लेकिन एक सर्वसम्मत निवेदन तैयार किया गया और मैंने स्वयं उनके मुंह से सुना कि इसके लिए उन्हें कितना परिश्रम करना पड़ा। इसके अतिरिक्त और भी बहुत-सी बैठकों का मुझे निजी अनुभव है, जिनमें मुझे स्वयं उनकी इस अद्वितीय क्षमता को देखने के मौके मिले। इसके लिए ध्येय के प्रति निष्ठा, चरित्र की सच्चाई, दूसरों के विचारों के प्रति आदर और पर्याप्त मानसिक एकाग्रता की आवश्यकता थी। श्रीमन्जी में ये सब बातें बड़ी मात्रा में थीं।

उनका एक और गुण था—उनकी संगठन-शक्ति तथा विगतों को ध्यान से देखना। उनके मार्ग-दर्शन और देख-रेख में बहुत-सी संस्थाएं चलती थीं और श्रीमन्जी के प्रशासक तथा समाज-सेवी जीवन के विविध अनुभवों का लाभ लेती थीं। वह इस कहावत को शब्दशः चरितार्थ करते थे, "हर चीज अपने उचित स्थान पर और हर चीज के लिए जगह।" उनका घर, उनका कार्यालय, उनकी फाइलें और उनका आचरण, ये सब उपर्युक्त लोकोक्ति की जीती-जागती मिसालें थीं।

यद्यपि वह बहुत ऊंचों के साथ सम्वद्ध थे और अत्यन्त विशिष्ट थे, तथापि उनमें उस सामाजिक कार्यकर्त्ता की सादगी और विनम्रता थी, जिसने राष्ट्र की सेवा की गांधीवादी परम्परा को भली प्रकार आत्मसात कर लिया था। उनके आकस्मिक निधन से भारत का एक बहुमुखी सेवक और बहुतों का सद्भावना-पूर्ण मित्र और साथी उठ गया। □

वह अजातशत्रु थे

जेठालाल जोषी

□ □

आज से ४१ वर्ष पहले की स्मृतियां ताजा हैं। सन् १९३७-३८ में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के प्रधानमंत्री श्रीमन्नारायणजी हिन्दी-प्रचार के सिलसिले में अहमदाबाद आये थे। उन दिनों मैं

अहमदाबाद केन्द्र का केन्द्र-व्यवस्थापक था। मेरी श्रीमन्नारायणजी से भेंट हुई। यह मेरी उनके साथ पहली मुलाकात थी।

श्रीमन्‌जी नेपाल राज्य में भारत के राजदूत के रूप में गये थे। उनके प्रशस्त कार्य से प्रभावित हो राष्ट्रपतिजी ने प्रधानमंत्रीनी के सद्‌परामर्श से श्रीमन्‌जी की गुजरात राज्य के राज्यपाल-पद पर नियुक्ति की। उन्होंने साढ़े पांच-छह वर्ष तक गुजरात राज्य के राज्यपाल के पद पर रहकर गुजरात की और गुजरात की जनता की महत्त्वपूर्ण सेवाएं कीं। राज्यपाल के अतिरिक्त महामहिम राष्ट्रपति के प्रतिनिधि के रूप में भी गुजरात का शासन-कार्य श्रीमन्‌जी को संभालना पड़ा था। राष्ट्रपति के शासनकाल में भी उन्होंने बड़ी तत्परता के साथ गुजरात को अपनी सेवाएं दीं। उन दिनों गुजरात में भयंकर अकाल की परिस्थिति पैदा हो गई। ऐसे समय में लोगों के राहत कार्य और जनता को अन्न तथा दैनिक आवश्यकता की चीजें पहुंचाने की व्यवस्था करना मामूली बात नहीं थी। श्रीमन्‌जी ने बड़ी तत्परता के साथ पूरी तरह जाग्रत रहकर अपना कार्य किया। स्वयं अकालग्रस्त स्थानों में पहुंचे तथा लोगों के बीच जाकर उनके दु:ख-दर्द की बातें सुनीं और उनकी मदद की। दो-चार स्थानों पर तो राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के महासचिव श्री शंकर-रावजी लौढ़े तथा मैं भी उनके साथ गये। श्रीमन्‌जी की परिश्रमशीलता और जागरूकता को देख-कर हम लोग दंग रह गये।

इस अकालग्रस्त परिस्थिति में अंबर चरखे हजारों की संख्या में वितरित किये गये। पूरा प्रयत्न रहा कि एक भी व्यक्ति अन्न से वंचित और बेकार न रह जाये।

श्रीमन्‌जी के स्वभाव में मानवता भरी-पूरी थी। देहातों की सुविधा-असुविधा की ओर उनका सदा ध्यान रहता था। एक देहात के प्रसूतिगृह के लिए मुझे भी उनसे निवेदन करना पड़ा। साबरकांठा के एक छोटे देहात में वहां के एक गृहस्थ के दान से तथा लोगों के सहयोग से प्रसूतिगृह शुरू करने के बारे में स्वास्थ्य मंत्री से प्रार्थना की जाती रही, पर सरकार की ओर से संतोषजनक उत्तर नहीं मिल रहा था। स्वास्थ्य मंत्री के सामने प्रश्न था कि यह कार्य ग्राम-पंचायत से संबंध रखता है। देहात के कार्यकर्ता दो-तीन वर्षों से परेशान थे कि क्या किया जाय? उस गांव से मेरा नजदीकी संबंध था। दान देने वाले भाई ने मुझे पत्र लिखा। मैं श्रीमन्‌जी से मिला और निवेदन किया कि यह लोकहितकारी कार्य है। आप स्वयं इस कार्य को जल्दी करवा देने में सहायता करें। वह काम फौरन हो गया। आज वह प्रसूतिगृह चल रहा है।

अहमदाबाद अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलन का तेरहवां अधिवेशन तत्कालीन शिक्षा मंत्री श्री वी० के० आर वी० राव की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन का उद्‌घाटन श्रीमन्‌जी के प्रेरणादायी मंगल प्रवचन से हुआ। सांप्रदायिक दंगों के कारण उन दिनों बड़ा आतंक था। गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति ने सम्मेलन के बारे में श्रीमन्‌जी से परामर्श किया। उनकी सलाह से गुजरात राज्य के तत्कालीन शिक्षामंत्री श्री गोरधनदासजी चोखावाला को स्वागताध्यक्ष बनाया गया। इस अधिवेशन को सफल बनाने के लिए श्रीमन्‌जी ने पूरा सहयोग दिया।

तीर्थराज प्रयाग भारतीयों का प्रेरणादायी पवित्र तीर्थस्थान है। वहां पर राजर्षि पुरुषो-त्तम दासजी टंडन की प्रतिमा के अनावरण की पावन विधि श्रीमन्‌जी के हाथों सम्पन्न हुई।

श्रीमन्‌जी की पोशाक पूर्णत: शुद्ध खादी की होती थी। वह नियमित रूप से प्रतिदिन

चरखा कातते थे। नित्य चक्की पीसते थे। राजभवन को मेहमानों के लिए खाली कर दिया था और स्वयं सपरिवार एक छोटे-से बंगले में ही निवास करते थे।

राजभवन में श्रीमन्‌जी का अध्ययन-कक्ष, प्रार्थना-मंदिर, मुलाकातियों से मिलने का विशाल कमरा, विश्वकवि रवीन्द्र कक्ष तथा मुख्य राजभवन के इर्द-गिर्द का विशाल प्रांगण मैंने देखा है। इसी राजभवन में चरखा और चक्की को भी स्थान दिया गया था। मदालसाबहन ने बताया कि मैं श्रीमन्‌जी के हाथ का पिसा आटा खाती हूं। कायिक श्रम तथा कर्म-निष्ठा की दृष्टि से वह नियमित चक्की पीसते थे। वह तथा मदालसाबहन धर्म में श्रद्धा रखते थे। राजभवन में संत तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' का तथा श्रीमद्‌भागवत का पारायण हुआ था। ऐसे धार्मिक अवसरों पर दोनों भक्ति-रस में लीन हो जाते थे।

श्रीमन्‌जी अपने विचारों के पक्के थे। उन्हें राजदूत तथा राज्यपाल पद-निर्वाह करना पड़ता था। उनके यहां आने वाले अतिथियों में देश-विदेश के अनेक अतिथि सामिष भोजन करनेवाले होते थे, परन्तु श्रीमन्‌जी के रसोईघर में कभी अंडा या मांस को प्रवेश नहीं मिला। भोजन की मेज पर शुद्ध शाकाहारी भोजन परोसा जाता था। शराब तो कोसों दूर रहती थी।

इन्दौर के श्री रामेश्वर दयाल तोतला ने एक नयी स्वस्थ प्रवृत्ति आरंभ की। उन्होंने 'राष्ट्रीय सहमति मंच' संस्था की स्थापना की। इस सहमति मंच के प्रथम अध्यक्ष श्री हृदयनाथ कुंजरू थे। वह काफी वृद्ध हो चुके थे। उनके स्थान पर अखिल भारतीय स्तर के पुरुष की आवश्यकता थी। श्री तोतलाजी चाहते थे कि श्रीमन्‌जी राष्ट्रीय सहमति मंच के अध्यक्ष पद को स्वीकार करें। श्रीमन्‌जी इन्दौर तथा पूना-अधिवेशनों के अध्यक्ष रहे और अपने भाषणों में राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया।

श्रीमन्‌जी तथा हम वर्धा समिति के कार्यों में सदा साथ रहे। वह अ० भा० राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कोषाध्यक्ष चुने गये थे। विश्व हिन्दी विद्यापीठ के वह कर्णधार थे। और भी अनेक रचनात्मक संस्थाओं को उन्होंने अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

वस्तुत: आरंभ से ही विधायक कार्यों में उनकी गहरी रुचि रही। उनका स्वभाव इतना मधुर था कि उनसे कभी किसी को चोट नहीं पहुंची। यही कारण है कि वह अजातशत्रु थे।□

सर्वोदय के सुकवि

आशाराम शर्मा

□ □

श्रीमन्‌जी की कविता भौतिकता और आध्यात्मिकता के बीच सर्वोदय का सेतु है। वे दरिद्र-नारायण की सेवा ही लक्ष्मीनारायणजी की सच्ची भक्ति समझते थे। वे बंगला के भक्त-कवि चंडीदास की तरह ही मनुष्य को अपना आराध्य मानते थे। चंडीदास ने लिखा है :

"शुनहु मानुष भाई !
सवार उपरे मानुष सत्य, ताहार उपरे नाई ॥"

श्रीमन्‌जी लिखते हैं :

"खोजता था ईश को पर पा गया मानव हृदय को।"

तथा :

"मनुज प्रीति की मंजुलता में, मेरा जीवन पुष्प खिला।"

तथा :

"नहीं मिला मेरा प्रियतम, कवि !
नभ के दिव्य सितारों में.
देखा नहीं कभी उस मुख को,
मुक्ता के इन हारों में,
गया अन्त में एक खेत पर
जहां कृषक करता था श्रम,
ज्योंही देखे विन्दु भाल पर
दूर हुआ मेरा सब भ्रम !"

इस तरह हम श्रीमन्‌जी की कविता में श्रम-रस का उद्रेक पाते हैं। श्रम-रस में कृषि-सौंदर्य की उनकी यह अभिव्यंजना कितनी सुन्दर है :

"खेती ही है मेरी सम्पत्ति
श्रमकण ही हैं मेरे मोती ;
पृथ्वी पर हल चलने की
ध्वनि ही मेरा अनन्त गान !"

"श्रम भी रस है। स्वयं-प्रेरित श्रम में एक सूक्ष्म आनंदानुभूति है, रसोद्रेक है और निर्माण उसका स्थायी भाव है।" मेरे इस विचार को उनकी मान्यता थी और इस विषय पर प्रबन्ध लिखने के लिए उन्होंने मुझे प्रेरित भी किया था। सुविधाएं भी प्रदान की थीं, किन्तु मेरा दुर्भाग्य था कि मैं इस कार्य को पूर्ण नहीं कर सका।

श्रीमन्‌जी की रचनाएं क्रान्ति और शान्ति की समन्वय हैं। उनकी प्रारम्भिक रचनाएं प्रगतिवादी होते हुए भी प्रगतिवाद के सम्प्रदाय से मुक्त हैं। प्रगतिवाद के 'रोटी' पक्ष पर तो उन्होंने सुन्दर कविताएं लिखीं, किन्तु उनकी लेखनी ने 'रति'-पक्ष की सेवाएं स्वीकार नहीं कीं। 'मार्क्स' और 'फ्राइड' की अपेक्षा गांधी ने उन्हें अधिक प्रभावित किया। जहां तक मैंने समझा है, वे रोटी को जीवन की रानी समझते थे और कविता को जीवन की नर्स, नर्तकी नहीं। इसलिए उनकी रचनाओं में न तो मादकता है, न दाहकता। उनकी रचनाओं में विशुद्ध मानव-प्रेम है। उनके एक कविता-संग्रह का नाम ही 'मानव' है। उनका सबसे पहला कविता-संग्रह है 'रोटी का राग' इस कविता-संग्रह को बापू ने आशीर्वाद देते हुए लिखा था :

"रोटी का राग पढ़ गया हूं। कविताएं मुझको अच्छी लगी हैं। हेतु स्पष्ट और निर्मल है।"

महाकवि श्री० मैथिलीशरणजी गुप्त शुभकामना करते हुए लिखते हैं :

"हमें नये कवि का कृतज्ञ होना चाहिए, जिनका हृदय हमारी जठराग्नि से पिघल उठा है।"

काका साहेब कालेलकर लिखते हैं कि :

"श्रीमन्नारायण जी नये युग का नया सन्देश सुनाने में ही सन्तोष न मानकर स्वयं सेवा के क्षेत्र में कूद पड़े हैं, इसलिए उनकी कविता का मूल्य बहुत कुछ वढ़ गया है।"

"सिमिट सिमिट जल भरैं तलावा।
जिमि सद्‌गुण सज्जन पहुं आवा॥"

'तुलसी' की इस उक्ति के अनुसार श्रीमन्‌जी का जीवन अपने-आपमें सेवा का, संयम का, शालीनता का सादगी का महाकाव्य है। उनकी रचनाओं में जो वेदना है, वह मानवता की साधना और राष्ट्रीयता की चेतना है। (ऐसी वेदना मराठी के करुणा-शिल्पी साने गुरुजी की कविता में देखी जा सकती है, अन्यत्र दुर्लभ है।)

श्रीमन्‌जी की यह रचना देखिए। इसमें कितना दर्द है !

"मनुज को क्यों मनुज खाए ?

प्रेम के बदले मनुज तो
खून का प्यासा बना है
स्वार्थ में तल्लीन होकर
द्वेष से पूरा सना है !
नाश के साधन जुटाकर
नाश अपना कर रहा है
अन्ध होकर, बुद्धि खोकर
पाप घट निज भर रहा है।

तोप के गोले गिराकर
वीरता के गान गाए।
मनुज को क्यों मनुज खाए ?"

'रजनी में प्रभात का अंकुर' उनकी उज्ज्वल भावनाओं का कला-सिद्ध आविष्कार है। उनकी इन रचनाओं में माधुर्य, ओज और प्रसाद का त्रिवेणी संगम है। इन रचनाओं का रसास्वादन करते हुए पाठक लोकोत्तर आनंद के प्रयाग-तीर्थ का यात्री वन जाता है। श्री मैथिलीशरण गुप्त इस संग्रह के विषय में लिखते हैं :

"अंधेरे में प्रकाश के अंकुर को देखकर वे स्वयं तो आश्वस्त हैं ही, दूसरों को भी उन्होंने आशा का सन्देश दिया है। कवित्व के निमित्त नहीं, मनुष्य के लिए उनका प्रयास है। देवत्व के अभिलाषी न होकर वे नरत्व चाहते हैं।"

यथा :

"यह माथा तो तभी झुकेगा
मानव बन जब आओ।"

उनके कुछ सुभाषित देखिए :

१. फूलों के प्रति प्रेम दिखाना
सभी जानते जग में, यार !
कांटों से भी प्रीति निभाना,
फूलों से सीखें सुख-सार !

२. फूल न तोड़ो ऐ माली, तुम,
भले डाल पर मुरझायें;
वना नहीं सकते जिनको हम,
तोड़ उन्हें क्यों मुस्कायें ?

३. है आसान देव वन जाना
बड़ा कठिन वनना इन्सान।
पूजा जाना सदा सुलभ है,
पूजा करना कला महान्।

४. मानव, तू क्यों मद करे, दिखा ज्ञान-विज्ञान ?
तुझ जैसा ज्ञानी रचा, उसका ही कर ध्यान।

आधुनिक साहित्य की सच्ची कसौटी पर उनकी रचना स्वर्ण-रेखा वने या न बने, किन्तु उनकी रचना में प्रत्येक रसिक पाठक के हृदय पर अमृत-रेखा खींचने की सामर्थ्य है। उनकी कविता के वारे में कवीन्द्र रवीन्द्र लिखते हैं :

"काव्य के लिए दो तत्त्वों की आवश्यकता होती है—सम्यक् अनुभव और शैली पर नियंत्रण, जिसके द्वारा अपने अनुभवों को भिन्न आकार-प्रकार की भाषा अर्थात् जादू-भरे पंखों की शब्दावली में अनूदित किया जा सकता है। इस दृष्टि से अग्रवाल की कविताएं सचमुच मूल्यवान् प्रतीत होती हैं।"

'रजनी में प्रभात का अंकुर' इस संग्रह की रचनाओं का शिल्प सहज-सुन्दर है। क्लिष्टता की कुरूपता से अकलंकित, बेदाग मोती की तरह।

देखिए :

"जीवन का यह अनुपम बाग !
अश्रु-हास आलोक-तिमिर का
कैसा सुन्दर राग !
फैला है सुरभित पुष्पों का,
सुखद प्रेममय गान,
पतित पंखुड़ी भरती सांसें
करती जीवन त्याग !
एक ओर पुलकित पिक गावे,
मत्त भ्रमर गुंजार;
ओर दूसरी आकुल क्रन्दन,
करता पीड़ित काग !"

इस तरह एक-से-एक अमर रचनाएं इस संग्रह में हैं। इस संग्रह ने भारत-भारती का भण्डार समृद्ध किया है।

श्रीमन्‌जी के पांच कविता-संग्रह हैं—१. रोटी का राग, २. मानव, ३. अमर आशा, ४. रजनी में प्रभात का अंकुर, ५. जीवन-निर्झर।

'जीवन-निर्झर' उनकी अंग्रेजी काव्य-कृति 'फाउंटेन ऑफ लाइफ़' की पद्यानुकृति है। इसका सरस अनुवाद उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मदालसाबहन ने किया है। अनुवाद इतना सफल हुआ है कि ऐसा लगता है, मानो मदालसाबहन की हिन्दी-रचनाओं का अनुवाद श्रीमन्‌जी ने 'फाउंटेन ऑफ लाईफ' के रूप में अंग्रेजी में किया है। इस विषय में श्री हरिभाऊ उपाध्याय लिखते हैं :

"अनुवाद में मधुर भावुकता झलक उठी है। उसने मूल रचनाओं को अपनी ललित शब्दावली द्वारा कहीं निखार दिया है तो कहीं मूल भाव को भी अधिक श्रृंगार दिया है।"

इस अनुवाद का रहस्य श्रीमन्‌जी की इस रचना में मिलता है :

"कदम मिलाकर चलते जावें
दृढ़ आशा उर रख कर,
साथिन, चलो चलें हम दोनों
सेवा के शुभ पथ पर।"

मैंने अपने जीवन-काल में ऐसे सेवा-भावी युगल बहुत कम देखे हैं। यह सब 'बापू', 'बाबा' और 'काकाजी' का संस्कार था। किन्तु लगता है सुगंधित पुष्प के लिए मनुष्य और ईश्वर में प्रतिस्पर्धा है। और विजय सदैव ईश्वर की होती है।

श्रीमन्‌जी ने अपनी लेखनी से राजनीति, गांधी-दर्शन, अर्थशास्त्र इत्यादि विषयों पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में अनेक ग्रंथ प्रसूत किए हैं, किन्तु उन्होंने जो ललित निबंध लिखे हैं, उनका मूल्य बहुत बड़ा है। साहित्यालोचन की तुला पर अभी उनका मूल्यांकन होना शेष है। मुझे विश्वास है उनके ललित निबंध मां सरस्वती के चरणों के स्वर्ण-नूपुर अवश्य सिद्ध होंगे।

अन्त में इतना ही कहना है कि उनकी कविता कदाचित् कमल का फूल नहीं है, किन्तु कपास का फूल अवश्य है जोकि मानवता का लज्जावरण है :

"साधु चरित शुभ चरित कपासू।
निरस बिसद गुनमय फल जासू।।
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा।
वंदनीय जेहि जन जस पावा।।" □

—रामचरितमानस

सेवाव्रती

निर्मला गांधी

□□

"वड़े भाग मानुष तन पावा"—यह उनका लेख मुझे बहुत पसंद आया था। लगता था, उसी विचार के अनुसार उनका जीवन चल रहा था।

कई वड़ी-वड़ी जगहों पर वे काम करते रहे। फिर भी उनकी नम्रता, शालीनता विशेष थी। कहीं भी रहे, चाहे नेपाल में भारत के राजदूत हों, चाहे अहमदावाद में गुजरात के राज्यपाल हों, वहां वापू के विशाल परिवार के छोटे-से-छोटे व्यक्ति को ढूंढ़ निकालना, अपने पास वुलाना, मिलना, उसका स्वागत करना, यह मदालसा वहन और श्रीमन्जी कभी नहीं चूके।

उसका जीवंत प्रमाण अभी देखने में आया। श्रीमन्जी और मदालसावहन जव अहमदावाद में थे, तो वापू की मानी हुई बेटी लक्ष्मीवहन मारुती का उन्होंने वड़ी मेहनत करके पता करवाया। वहुत प्रेम से उनको, उनके परिवार को राजभवन में वुलाया। प्रेम से स्वागत-सत्कार किया और आत्मीयता का ऐसा संवंध वढ़ाया कि कई साल के वाद लक्ष्मीवहन के वेटे हरिभाई ने अपनी शादी तय की तो शादी के लिए परिवार, मित्र और भावी पत्नी को लेकर अहमदावाद से वर्धा आये और दिवाली के दिन उनकी शादी सेवाग्राम आश्रम में बहुत सत्कारपूर्वक, सब बड़े बुजुर्गों की उपस्थिति में, प्रेमपूर्वक संपन्न हुई। इसमें मदालसावहन की कौटुंविक भावना ही मुख्य कारणरूप थी। आज जब समाज से परिवार-भावना लुप्त-सी हो रही है, ऐसे समय हमें श्रीमन्जी का विशेष स्मरण होता है। उन्होंने और मदालसाबहन ने बापू के व्यापक कुटुम्व की भावना को निभाने में वहुत योगदान दिया।

वे अनेक संस्थाओं के प्रमुख रहे। पर सव संस्थाओं का काम वारीकी से देखने का उनका स्वभाव था। संस्था में कहीं गलत खर्च हो रहा हो तो उनसे सहन नहीं होता था।

हमारे ट्रस्ट की वैठकों में वे विना थके लगातार घंटों मौजूद रहते थे और खूब वारीकी से सब वात सोचते थे। नयी तालीम के जन्म से ही वह दीपक थे। आर्यनायकमजी-दंपति ने यह काम नहीं लिया होता तो वापूजी श्रीमन्जी को इस काम को सौंपने वाले थे। पिछले सालों में उन्होंने प्रान्त-प्रान्त में नयी तालीम समितियां गठित करके विश्वविद्यालयों के कुलपतियों आदि का सम्मेलन दिल्ली में करके शिक्षा-मंत्री और प्रधानमंत्री के सहयोग से सर्वानुमति से देश भर में नयी तालीम को अमल में लाने का प्रस्ताव पारित करवाया था।

श्रीमन्जी अखिल भारत गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष हुए तो दिल्ली आना-जाना होता था। वहां वह गांधी स्मारक निधि की राजघाट कालोनी के छोटे से व्लाक में गुजारा करते थे। परिवार बड़ा था, मेहमान आते-जाते थे, जगह वहुत छोटी पड़ती थी। आफिस था, कागजों और कितावों का पसारा था, पर श्रीमन्जी ने अधिक स्थान की व्यवस्था नहीं होने दी। उनका आग्रह था कि "वापू का काम करना है तो यहां इसी तरह रहना चाहिए।" वे बहुत बोलते नहीं

थे, अपने मन की बात थोड़े से शब्दों में कह देते थे।

जैसे वे अपने सब काम फुर्ती से करने के आदी थे, वैसी ही भगवान ने उनको मृत्यु भी दी। न कुछ बीमारी, न दवाई, न इंजेक्शन, न किसी की सेवा। आखिरी श्वास तक सेवा करते-करते अपने करतार के पास चुपचाप चले गए। जैसे बाबा ने कहा, उनकी आत्मा सद्गति को ही प्राप्त हुई है।" □

प्रेममयपर मार्थ जीवन के प्रतीक

गुरुशरण

□ □

आचार्य श्रीमन्नारायणजी अखिल भारत आचार्यकुल के अध्यक्ष हुये तो मुझे संयुक्त मंत्री और बाद में मंत्री के नाते उनके अधिक निकट आने का अवसर प्राप्त हुआ। उसके पूर्व परिचित तो मैं उनसे कई वर्षों से था। उन्हें इटावा (उ० प्र०) का कहने में मुझे बड़ा गौरव अनुभव होता था। छैराहे के पास जमनाजी की ओर जाते हुए उनका पैतृक मकान अभी भी है। उनके चाचाजी बाबू सूर्यनारायणजी इटावा में रहते थे। वे उस जमाने के बी० ए० पास थे, जब पूरे इटावा जिले में उंगलियों पर गिनने लायक लोग ही इतना पढ़-लिख पाये थे। वे जिले के थियोसोफिस्ट लोगों में अग्रगण्य थे। उन्होंने थियोसोफिकल इन्फेंट स्कूल भी खोला था, जो छोटे बच्चों का उस समय सबसे अच्छा स्कूल माना जाता था।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अध्ययन के उपरान्त मैं १९५४ में वर्धा पहुंचा और १९५६ तक दो वर्ष तालीमी संघ सेवाग्राम, परमधाम आश्रम पवनार, गांधी विचार परिषद बजाजवाड़ी, और बाद में महिला आश्रम के शिक्षक प्रशिक्षण केन्द्र में अध्यापक के रूप में रहा। इन दो वर्षों में श्रीमन्जी से प्रायः मिलना हो जाता था। देखते ही वे बड़े आत्मीय भाव से मिलते और परिवार की पूछताछ करते। उनका वह स्नेह मेरे लिए एक बहुत बड़ी सम्पत्ति था। जब वे गुजरात के राज्यपाल थे, मैं गांधी विचार के साक्षात्कार-श्रृंखला में उनका इंटरव्यू लेने राजभवन, अहमदाबाद गया तो दो घंटे तक लम्बी बातचीत हुई, जो पटना से प्रकाशित 'अमृत' मासिक में छपी। उनके स्पष्ट चिन्तन और निष्ठापूर्वक किये गए कामों का लेखा-जोखा तो मैंने लिखा ही; पर दो बातों ने मुझे बेहद प्रभावित किया। एक तो उनका सादा रहन-सहन और उसमें भी एक व्यवस्थितता। दूसरे, राज्यपाल होकर सुबह-सुबह राजभवन में हाथ-चक्की चलाकर आटा पीसना और नित्य-नियम से चरखा चलाना। मैं तो देखकर दंग रह गया। उनका स्वयं का कमरा, अतिथि-कक्ष तथा बैठक सब में भारतीय संस्कृति की गहरी छाप थी। राज्यपाल पद के पूर्व वे नेपाल में भारत के राजदूत रहे थे। वहां से मिली उपहार की वस्तुएं करीने से सजी हुई थीं। उन्होंने अपने समय में दूतावास की दावतों में शराब का दिया जाना बन्द करके एक बहुत साहस का काम किया था।

एक सफल कवि और लेखक के नाते साहित्य में उनकी गहरी रुचि थी। उनके काव्य संग्रह 'अमर आशा' में उनके जीवन की दिशा का बोध होता है—

"असत रजनी के तिमिर में
सत्य आलोकित करूं मैं
और कर कर्तव्य पूरा
शान्ति से फिर, प्रभु, मरूं मैं !"

उनका जीवन साधना का जीवन था। उन्होंने हिन्दी और अंग्रेजी में जिस साहित्य का निर्माण किया है, वह इस पीढ़ी और आगे आने वाली पीढ़ियों को गांधी-विचार समझने में सहायक और मार्ग-दर्शक होगा।

गांधी-विचार के विभिन्न क्षेत्रों में श्रीमन्जी के व्यक्तित्व और कर्तृत्व की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है, पर सबसे अधिक शिक्षा के क्षेत्र में उनका योगदान कहा जा सकता है।

अक्टूबर १९७२ में उन्होंने सेवाग्राम में प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित कर शासन का ध्यान शिक्षा की बुनियादी समस्याओं की ओर आकृष्ट किया। सरकारी और गैर-सरकारी दोनों ही प्रकार के शिक्षाविदों को एक मंच पर लाने का सराहनीय प्रयास किया। विनोबाजी ने योग, उद्योग और सहयोग तीन शब्दों में एकसूत्र के रूप में बहुत ही प्रेरक संदेश दिया। जनता सरकार के बनने के बाद उन्होंने फिर दूसरा राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन दिल्ली में प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के सान्निध्य में आयोजित कर जनता और सरकार दोनों का ध्यान आकृष्ट किया। वे शिक्षा जगत की समस्याओं से पूर्ण परिचित थे। १९६८ में राष्ट्रीय विचार-धारा वाले वर्धा के नवभारत विद्यालय तथा १९४० में स्थापित गोविन्दराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय के प्राचार्य के रूप में वे काम कर चुके थे। उन्होंने मातृभाषा में स्नातक और स्नातकोत्तर शिक्षा दी जाने की दिशा में केवल कहा ही नहीं, बल्कि शब्दावली तैयार कराई, ग्रंथ प्रकाशित करवाये और वर्धा शिक्षा मंडल द्वारा संचालित महाविद्यालयों में उसे आरंभ भी कराया। उन्होंने वर्धा के अतिरिक्त नागपुर और जबलपुर में वाणिज्य महाविद्यालयों की स्थापना कराई। वाणिज्य शिक्षा को तकनीकी और रोजगार प्रधान बनने की दिशा में अग्रगण्य कार्य किया।

राज्यपाल पद से निवृत्त होने के बाद वर्धा में जीवन-कुटीर उनका स्थायी निवास रहा। 'गांधी स्मारक निधि' के अध्यक्ष हो जाने पर अनेक रचनात्मक संस्थाओं ने उनकी विद्वत्ता और कर्मठता का लाभ लेने के लिए उन्हें अपने से जोड़ा।

मुझे आचार्य सम्मेलन का स्मरण आता है। यद्यपि वह आचार्यकुल संगठन से अलग बुलाया गया था, फिर भी मुझे उन्होंने निमंत्रण भेजा और मैं देखकर अभिभूत था कि बड़े-बड़े कुलपतियों और न्यायाधीशों की एक राय करके उन्होंने सर्व-सम्मत प्रस्ताव पारित करा लिया, जिसमें तत्कालीन आपातकाल को अधिक समय तक बनाये रखना देश और समाज के लिए घातक कहा गया। आचार्य सम्मेलन ने सत्य को वाणी दी और उसका असर भी हुआ। विनोबाजी ने निर्भय, निर्वैर और निष्पक्ष आचार्यों के अनुशासन की बात कहकर देश को एक दिशासूचक संकेत दिया।

उनके परामर्श से द्वितीय अखिल भारतीय आचार्यकुल सम्मेलन ग्वालियर में रखा गया

तो वे मुझसे कहने लगे कि अब मंत्री के रूप में कार्य करो, क्योंकि उसके पहले उनके अध्यक्ष के निर्वाचन के समय मंत्री कोई नहीं चुना गया था। तीन संयुक्त मंत्री वनाये गये, जिनमें दो अन्य दूसरे कार्यों में लग गये। मुझे उनसे सीखने और समझने का सुअवसर सहज ही मिल गया। वे १२ और १३ नवम्बर, ७७ को सम्मेलन की अध्यक्षता करने ग्वालियर आये और उसके कुछ ही दिन वाद ३ जनवरी, १९७८ को वे हम सबको छोड़कर चले गये।

उनकी ये पंक्तियां याद आ रही हैं।

"हो अगर निर्मल, अहिंसक
प्रेममय परमार्थ जीवन,
सूर्य-सा सुन्दर विभामय
हो न क्यों अवसान मेरा।" □

जाना तो अवश्य ही है

र० न० त्रिवेदी

□ □

नागरी लिपि परिषद् की स्थापना सन् १९७५ में एक स्वतन्त्र निकाय के रूप में श्रीमन्नारायणजी द्वारा की गई। परिषद् का काम श्रीमन्जी ने मुझे सौंपा था। उद्घाटन-समारोह के लिए उप-राष्ट्रपति श्री बा० दा० जत्ती साहव को आमन्त्रित किया गया। उस समय की एक घटना मुझे याद है। उद्घाटन समारोह का निमन्त्रण-पत्र छपने दे दिया गया। संयोग से उस निमन्त्रण-पत्र में त्रुटि रह गयी। श्रीमन्जी हर काम को बड़े गौर से देखते थे। मुझे डर लगा कि यदि यह कार्ड श्रीमन्जी के पास गया तो वह निश्चित नाराज होंगे। त्रुटि बिलकुल न हो, इस बात का ध्यान वह रखते थे। हमने वह कार्ड दोबारा छपवा लिया तथा श्रीमन्जी को भी दिखा दिया। इसमें कोई त्रुटि नहीं थी। संयोग से किसी ने वह अशुद्ध कार्ड उनकी मेज पर रख दिया। उन्होंने उसे देखा। उसमें त्रुटि थी। फौरन मुझे बुलाया गया। मेज पर कार्ड देखकर मैं समझ गया कि अब मुझे अवश्य ही डांट पड़ने वाली है। उन्होंने मुझे बैठने को कहा और पूछा कि सव कार्ड भेज दिये हैं क्या? मैंने कहा, "जी हां!" उन्होंने कहा, "यह कौन-सा कार्ड है, इसमें तो काफी त्रुटियां हैं।" मैंने उन्हें सारी स्थिति समझाई। उन्होंने वजाय नाराज होने के मुझे बड़े प्यार से समझाया कि सभी काम "चाहे छोटे-से-छोटा या बड़े-से-बड़ा हो, सावधानी रखनी चाहिए। आपने मुझे वता दिया, यह अच्छा किया, आगे से अगर गलती भी हो जाये तो आप मुझे बता दें। उसका भी समाधान हो सकता है।"

सबसे वड़ी वात श्रीमन्जी में मैंने यह पाई कि वह रोज के काम को रोज निपटाते थे। मैंने जब कभी उन्हें वर्षा पत्र लिखा, फौरन जवाव मिला। उनके निर्देश इतने स्पष्ट तथा सरल

होते थे कि समझने में बड़ी आसानी होती थी। बड़े-से-बड़े सम्मेलन श्रीमन्जी के समय में आयोजित किये। वह हर छोटे-बड़े काम को वारीकी से देखते थे। मंच की सज्जा से लेकर सभी कामों में दिलचस्पी लेते थे। राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन बड़े पैमाने पर दिल्ली में आयोजित किया गया। उसके लिए रात-दिन काम में लगे रहे। नियमित रूप से अखवार तथा देश-विदेश की पत्रिकाएं पढ़ते थे और ताजी-से-ताजी जानकारी रखते थे। शिक्षा के प्रति उनका अटूट प्रेम था। वह दिन मुझे याद है जब शिक्षा-सम्मेलन समाप्त हुआ और वे बाबा (विनोबाजी) से मिलने वर्धा जा रहे थे। दो तारीख को सुबह उन्होंने मुझे बुला लिया और कहा कि जितने भी भुगतान करने हों, उनके चेक उनसे ले लिए जाएं। छोटा-मोटा हिसाब मेरे पास भी रहता था। वह भी उन्होंने तत्काल साफ कर दिया। सारे दिन काम करते रहे, चेकों पर हस्ताक्षर किये तथा मिलने वालों से मुलाकात की। संयोग से उसी दिन मैं छुट्टी पर जाने वाला था। घर से वे ठीक समय पर निकले, मैं और वे स्टेशन पहुंचे। स्टेशन पर वे मुझे नागरी सम्मेलन के लिए निर्देश देते रहे। जब ट्रेन चलने वाली थी, उससे पहले उन्होंने मुझसे कहा, "पता नहीं, क्यों, मुझे आज मदालसाजी को अकेले छोड़ते हुए अच्छा नहीं लग रहा है। कभी हमने उन्हें इस तरह नहीं छोड़ा है। मेरा मन ठीक नहीं है। आप जाकर मदालसाजी से मिल लें और सेवक आदि का इन्तजाम ठीक करवा दें।" मैंने कहा, "यदि आप अच्छा महसूस नहीं कर रहे हैं तो रुक जाएं।" वह बोले, "मुझे बाबा से मिलना है, इसलिए जाना तो अवश्य ही है।" ट्रेन चल दी। उनके अंतिम शब्द आज भी मेरे कानों में गूंज उठते हैं। □

भारत-ज्योति

जनार्दनराय नागर

□□

श्रीमन्नारायण अपने इस भव का रूप त्याग कर भारत की एक ज्योति हो गये हैं। श्रीमन्जी जब जीवित थे, तब वह जाति और समाज के संकीर्ण घेरे लांघ चुके थे। व्यक्तित्व की गुण-सम्पदा बताने वाले सभी विशेषण त्याग कर श्रीमन्जी मानव का एक सौम्य, शान्त, धीमान तथा संयत स्वरूप बनते गये थे। राजनीति, शिक्षा, समाज तथा तत्व-ज्ञान के सभी क्षेत्रों में जाग्रत जिज्ञासा के धनी श्रीमन्जी इन भूमियों के कर्मवीर भी थे। सच तो यह है कि श्रीमन्जी महात्मा गांधी के सरस्वती पुत्र थे। आत्मज, जो जीवनदायिनी विद्या की अस्मिता से ही जन्मता है। निस्संदेह राजस्थान विद्यापीठ कुल (उदयपुर, कोटा, अजमेर, हटूंडी तथा मौलासर) के कुलपति श्रीमन्जी राष्ट्रीय भारतीय शिक्षा की राष्ट्रव्यापी मति बन गये थे। महात्मा गांधी के बाद उनके जीवन के तत्व-बोध पर आधारित भारत-शिक्षा को व्यावहारिक, उपयोगी तथा सार्थक शिक्षा के रूप में विकसित करने के लिए महान एवं महत्वपूर्ण बुद्धिमतापूर्ण राष्ट्रीय यज्ञ श्रीमन्जी ने ही किया है।

भारत की राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद भारत के शिक्षा मंत्रियों ने आत्मविश्वास तथा अजय संकल्प से रहित उत्तेजनापूर्ण चिन्तन तो किया और करवाया है, किन्तु भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा की भारत-ज्योति का आविर्भाव तो श्रीमन्जी के धीमान नयनों से ही मानो हुआ है। इसीलिए मैं श्रीमन्जी को भारत की राष्ट्रीय शिक्षा का कुलपति एवं आचार्य दोनों ही मानता हूं। संकीर्णता, पूर्वाग्रह, अहम् के मद से रिक्त तथा मानव-जीवन की कलाओं की संवेदना से भरपूर श्रीमन्जी भारतीय मानव की गहन और सनातन अन्तरात्मा की ज्योति थे।

'श्रीमन्नारायण अग्रवाल' यह नाम बहुत सुनता था, परन्तु परिचय न था। यों नेताओं से निकट परिचय साधने का सौभाग्य मुझसे दूर ही रहा है। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की नई दिल्ली की बैठक में प्रभात के मुखरित सूर्य प्रकाश में खड़े तथा पण्डित नेहरू को समाचार-पत्र से कुछ पढ़कर सुनाते हुए मैंने श्रीमन्जी को पहली बार देखा। उत्फुल्ल, किन्तु अन्यमनस्क नेहरू इस शान्त, गंभीर श्रीमन्नारायण से कुछ सुन रहे थे। श्रीमन्जी ने कहा था, "जयप्रकाशजी के इस वक्तव्य का मैंने यही उचित उत्तर दिया है।" जयप्रकाश का वह वक्तव्य क्या था, मुझे अब याद नहीं। पण्डित नेहरू ने सन्तोषपूर्वक प्रसन्न होकर सिर हिलाया और श्रीमन्जी की ओर देखकर भारत-राष्ट्र का वह स्वप्न-दृष्टा मुस्करा दिया। मैंने देखा कांग्रेस का महासचिव अपना अनिवार्य कर्तव्य कर सकने के सन्तोष से भर गया है। किन्तु राजनीति के क्षेत्र में वर्षों तक राष्ट्र की सामाजिक, आर्थिक तथा राजकरण की नीतियों के चिन्तन तथा प्रयास में जिम्मेदारी के साथ व्यस्त श्रीमन्जी का यह संस्मरण आज भी मैं भूल नहीं पाया हूं। राजनीति में श्रीमन्जी प्रायः चमकते हुए अपना शान्त किन्तु अटल प्रभाव बढ़ाते हुए चले और राजदूत तथा राज्यपाल बने। श्रीमन्जी का दूसरा नाम सहायता तथा प्रामाणिकता भी है, जो बहुत ही कम राजनीतिज्ञों का कहा जा सकता है। श्रीमन्जी भारतीय गुलामी के घोर अन्धकार में महात्मा गांधी के सेवाग्राम में बापू के श्रीचरणों में बैठकर राष्ट्रीय रचनात्मक कार्य करते थे और एक स्वतंत्रता सैनिक की भांति स्वतंत्रता का युद्ध भी लड़ते थे। आजादी के सूर्योदय के समय श्रीमन्जी राष्ट्रीय मुक्ति-संग्राम के एक तुष्ट धन्य सेवक के रूप में राष्ट्रध्वज को सलामी दे रहे थे। बापू के परम भक्त राष्ट्र के भामाशाह स्वरूप जमनालाल बजाज के जामाता और बहन मदालसा के समान जीवन-साथी श्रीमन्नारायण एक राजनेता के रूप में मुझसे धारित नहीं होते। श्रीमन्जी को मैं भारतीयश्री, सुकृति तथा मंगल की भारत-ज्योति के रूप में ही धारित कर पा रहा हूं।

जीवन-समन्वय के दृष्टा तथा मनीषी हरिभाऊ उपाध्याय, हमारे दासाहब, अपने अन्तिम समय में यही चाहते थे कि हटूंडी का महिला शिक्षा-सदन राजस्थान विद्यापीठ में मिला दिया जाय और श्रीमन्जी उनके बाद कुलपति बनाये जाएं। राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के कुलपति पद पर श्रीमन्जी को प्राप्त करना निस्संदेह दासाहब की कृपा का ही फल था। श्रीमन्जी के पास पदों की कमी नहीं थी। प्रतिष्ठा में तनिक भी न्यूनता नहीं थी। तब श्रीमन्जी गुजरात के राज्यपाल थे। श्रद्धेय दासाहब हम सबको छोड़कर चले गये, हटूंडी का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व हमें दे गये तथा कुलमातु श्री गंगा-स्वरूप भागीरथी उपाध्याय (जीजी) की सेवा का सौभाग्य भी हमें प्रदान कर गये। पितामह-स्वरूप दासाहब राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर के उद्धारक भी थे, जिस समय पण्डित नेहरू के नाम से हम पर भयंकर जांच बिठाई गई थी। बिजलियां गिर चुकी थीं और हम भाग्य की आंधी में भविष्य की सुरक्षा के लिए कांप रहे थे। तब राजस्थान के तत्कालीन शिक्षा-

मंत्री हरिभाऊ उपाध्याय ने हम डूबतों को बचाया। स्वर्गीय मनीषी राज्यपाल सम्पूर्णानन्दजी राजस्थान विद्यापीठ और मुझ सामाजिक कार्यकर्ता को जानते थे। विद्यापीठ का इसी भांति उद्धार हुआ, जिस भांति समर्थ वराह ने पृथ्वी का उद्धार किया था। राजस्थान विद्यापीठ की पृथ्वी भी प्रतारणा के समुद्र में डुबो दी गई थी। परन्तु दासाहब के द्वारा प्रभु ने कार्यकर्ताओं के इस जनतंत्रीय कुल की रक्षा ही की। अतः दासाहब हमारे कुलपति ही नहीं, पितामह-स्वरूप हो गये थे। दासाहब के जीवनादेश्य की पूर्ति के शेष कार्य का उत्तरदायित्व हम उनके कुलपुत्र इन्कार कैसे करते? किन्तु दासाहब ने हमें श्रीमन्जी जैसा कुलपति भी वरदान-रूप प्रदान किया। कुलपति श्रीमन्नारायण निस्संदेह राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर, कोटा, अजमेर-हटूंडी तथा मौलासर कुल के लिए एक प्रेरणा थे, स्पष्ट तथा अचूक प्रकाश-पुंज थे? मुझे वह दिन याद है जब विद्यापीठ का शिष्ट-मण्डल अहमदाबाद में राजभवन में श्रीमन्जी से मिला था। गुजरात के शान्त तथा सौम्य राजभवन में हम राज्यपाल से नहीं, श्रीमन्जी से ही मिले। श्रीमन्जी ने हमारी बात सुनी और कुलपति पद सुशोभित करने के लिए अपनी अनुग्रह-पूर्ण स्वीकृति दे दी। कहा, "मैं सेठों से चन्दे के लिए न तो कहूंगा और न लिखूंगा। विद्यापीठ को राजनैतिक दायरों और पूर्वाग्रहों से दूर रहना होगा। मेरी यही दो शर्तें हैं।" मैंने प्रसन्नता-पूर्वक श्रीमन्जी की दोनों ही शर्तें स्वीकार करते हुए कहा, "विद्यापीठ तो सभी विचारधाराओं का संगम है, सभी दृष्टियों की राष्ट्रीय चेतना है। विद्यापीठ किसी भी एक राजनैतिक दल की संस्था नहीं है। विद्यापीठ का संविधान कार्यकर्ताओं के कार्य-संदर्षों तथा जीवन-द्वंद्वों से पिछले तीन दशकों में उद्भवित हुआ है। हम शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, जन-कल्याण तथा जन-चैतन्य का कार्यकर्ताओं का जनतंत्रीय संगठन-कुल है। राष्ट्रीय चेतना हमारा लक्ष्य है तथा राष्ट्रीय व्यक्तित्व हमारा धर्म है।"

श्रीमन्जी विश्वस्त हुए, हम प्रसन्न, सन्तोष से भरे, भविष्य की प्रफुल्ल आशा लेकर उदयपुर लौटे। अवश्य, हमें बहन मदालसा मिली। श्रीमन्जी यदि भारत-चेतना हैं, तो मदालसा भी निस्संदेह श्रीमन्जी के जीवन की ज्योति हैं। नई दिल्ली के सन् १९७७ ई० के दिसम्बर मास के भारत राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की पूर्व रात्रि में संचालन समिति की बैठक समाप्त हुई नहीं कि मदालसा ने द्वार पर खड़े होकर श्रीमन्जी को तनिक घूर कर हम सब से कहा, "बाहर जाने के लिए द्वार बन्द है। जबतक तुम सब शिक्षाविद् भारत की संततियों की राष्ट्रीय सार्थक तथा जीवन-निर्माण करने की भी शिक्षा-दृष्टि, नीति और रीति का फैसला नहीं कर लेते, तबतक मैं आप सब बातूनियों को इस कमरे से बाहर नहीं जाने दूंगी। आज अर्से से मैं कमरे के बाहर खड़ी आपकी सब बातें धार कर बिखर जाने वालों को सुनती आ रही हूं, आज फैसला चाहती हूं।" सब स्तब्ध, स्तम्भित। श्रीमन्जी सस्मित असंग। एक खामोशी छा गई। तब मैंने कहा, "बहनमदालसा, हमने तो श्रीमन्नारायणजी को पकड़ रखा है।" मदालसा ने छूटते ही कहा, "तुमने क्या खाक पकड़ रखा है। इनको तो मैंने पकड़ रखा है।" परन्तु क्या बहन मदालसा ने श्रीमन्नारायणजी को सच-मुच ही पकड़ रखा था? वह १७ दिसम्बर १९७८ ई० की रात्रि का प्रथम चरण था, जब तरुण-मांगल्य और बाल-कल्याण कार्य के लिए मथती रहने वाली महर्षि विनोबा भावे की मूक शिष्या मदालसा नारायण ने इस भारत के राष्ट्रीय शिक्षा के सदाशयी कार्यकर्ताओं को गांधी-स्मारक के सभा-कक्ष के द्वार पर रोका था। एक प्रकार से हमें कमरे में बन्द ही कर दिया था। १८ दिसम्बर ७८ ई० को प्रधान मंत्री मोरारजीभाई ने भारत राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन का उद्-

घाटन कर हमारे द्वार मानो खोले अवश्य, पर अर्गला तो श्रीमन्जी ने ही खोली थी। नई दिल्ली के शिक्षा मंत्रालय पर यह अर्गला कभी की पड़ी हुई थी। १६७२ ई० में श्रीमन्जी ने सेवाग्राम में भारत राष्ट्रीय शिक्षा का प्रथम राष्ट्र यहां सम्पूर्ण कर इस अर्गला को भारत-शिक्षा की वेदी में समिधा बना दिया था। सेवाग्राम के सादे, सरल, अत्यन्त पुनीत वातावरण में भारतवर्ष के शिक्षा-मंत्रीगण, सर्वोदय के नेतृ-कार्यकर्ता, गांधीजी की नई तालीम के व्रती कार्यकर्ता, राष्ट्रीय शिक्षा से प्रेरित व्यक्ति, भारतीय प्रादेशिक राज्यों के शिक्षा-पदाधिकारी और राष्ट्रीय स्तर की ख्याति के शिक्षा संस्थाओं के संचालक-गण, सभी मन्य और मान्य व्यक्तित्व आज की शिक्षा के मणिकर्णिका घाट पर स्नान कर बापू की कुटिया के आंगन में एकत्र हुए थे। इन मनस्वी मतिमानों के प्रेरणा-स्रोत श्रीमन्जी ने 'बेसिक एज्युकेशन' के खण्डहरों में पुन: अजय आत्म विश्वास के साथ 'महात्माजी की नई तालीम' की शुद्ध-बुद्ध अग्नि प्रज्वलित की। मैं तो पहली बार सेवाग्राम गया था और बापू की कुटिया के पुराने लालटेन के पास चुपचाप जा खड़ा हुआ था। मेरा ३०-३२ वर्षों का शिक्षा-कार्य करने का अभिमान स्वयं ही पिछल गया। उस बापू के लालटेन से जैसे अनदिखी किन्तु प्रत्यक्ष ज्योति निकली और मेरी शून्य आंखों में भर गई। बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के सजे-सजाये कुलाध्यक्षों के कक्षों में मुझको विचित्र मनमोहक टेबल-लेम्प तथा रंग-विरंगे टेलीफ़ोन ही दिखाई दिये हैं। हमारे कालेजों, स्कूलों और विद्या-भवनों में करीना तथा कलात्मक साज-सज्जा है, पुस्तकालय एवं वाचनालय हैं। बाग हैं, वगीचे हैं और इनमें कक्षा के कैदखाने तथा उनमें ली जाती तथाकथित परीक्षाएं हैं। किन्तु सेवा-ग्राम की बापू की कुटिया की वह पुरानी वड़ी बेढंगी लालटेन, जिसकी रोशनी में महात्मा गांधी ने भारत की कोटिश: जनता देखी थी, उसकी सहस्रों पगडंडियां निहारी थीं, आज वुझा पड़ा था, स्मृति-चिह्न था। सेवाग्राम की बापू की कुटिया और बापू का कार्यालय मिट्टी की दीवारों में छुपे हुए बांसों की जालियों के खपरैल हैं। किन्तु मुझे ऐसा भान हुआ मानो गंगा की समस्त पवित्रता और हिमालय की शान्त स्वच्छता ने यहीं आकर आकार धारण किया है। उस अत्यन्त सौम्य, शान्त, सरल, स्वच्छ और पवित्र वातावरण को बापू-कुटिया की यह लालटेन मानो भारतीय ज्योति का प्रकाशक एक वुझा हुआ दीप था। किन्तु वुझा हुआ यह दीप गांधीजी की अन्तर-ज्योति से दिगन्त में प्रज्वलित हो रहा था। इसी वुझे हुए लालटेन की अतींद्रिय ज्योति में मुझे भारत की राष्ट्रीय शिक्षा की चेतना मिली श्रीमन्जी के लोचनों में थिरकती और भारत के शिक्षाविदों के रोम-रोम में सिहरती हुई। सेवाग्राम के उस राष्ट्रीय शिक्षा के यज्ञ-धूम्र के सात्विक वादलों में मुझे श्रीमन्जी का सदा सम-प्रसन्न मुख-मण्डल तैरता हुआ दिखाई दिया था। आज वही सौम्य मुख-मण्डल मुझे अनन्त के अथाह व्यामोह में खोजना पड़ रहा है।

श्रीमन्जी स्वयं सजीव व्यक्तित्व थे। देह-त्याग के वाद भी स्नेहियों, शिष्यों, अनुगामियों और सराहकों के नयन गहन में सजल स्मृति की दिव्य छवि होकर चिरंजीवी हैं। श्रीमन्जी भारत के चोटी के राष्ट्रीय सामाजिक नेतृ-कार्यकर्ताओं की प्रथम पंक्ति के नर-रत्न थे और हमारे जैसे राष्ट्र-सेवियों के हृदय में सदैव एक शाश्वत चिरन्तन प्रकाश बने रहेंगे। शिक्षा का प्रकाश यदि आत्मा का स्वयं प्रकाश और जीवन सौंदर्य की श्लाघ्य शक्ति एवं अन्त:करण का सौजन्यपूर्ण औदार्य एक अपार अथाह करुणापूर्ण वात्सल्य नहीं है तो क्या है? क्या हमारे भारत ज्योति कुलपति श्रीमन्जी ऐसे ही वात्सल्य-शील नहीं थे? थे, अवश्य थे।

सच तो यह है कि श्रीमन्जी भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा के कुलपति ही थे। अपने संयत और सौम्य सार्वजनिक जीवन के महत्वपूर्ण क्षेत्रों में श्रीमन्जी जैसे चिंतक, विचारक तथा सामाजिक कार्यकर्ता थे, किन्तु भारत की सन्ततियों की शिक्षा-दीक्षा एवं जीवन-निर्माण की विराट-राष्ट्रीय समस्या के तो वह दृष्टा ही हो गये थे। महात्माजी की वेसिक शिक्षा पर आधारित नई तालीम के श्रीमन्जी 'औलिया' हो गये थे। गांधीजी ने भारत की सनातन शाश्वत आत्मा के शील, शक्ति और सौन्दर्य को अपने वेसिक शिक्षा के प्रत्यक्ष द्वारा आतमसात् किया, किन्तु श्रीमन्जी ने उस दिव्य प्रत्यक्ष को जैसे मीमांसा दी, व्यवस्था दी, नाम और रूप दिया। वेसिक शिक्षा के गत्यात्मक, सजीव, सृजनात्मक तथा सार्थक स्वरूप को श्रीमन्जी ने भारतीय शिक्षा के चिंतन के सदैव व्यक्त होते हुए आयामों में देखा। गांधीजी की बेसिक शिक्षा को मानव-जाति की शिक्षा-दीक्षा के लिए जीवन-दर्शन तथा जीवन-क्षमता की शक्ति और सौंदर्य श्रीमन्जी ने दिया है। भारत के कुलपति, उपकुलपति, प्राचार्य, उपाध्याय, प्रधानाचार्य, अध्यापक तथा शिक्षक जैसे आधुनिक-शिक्षा-प्रणाली के अंधेरे कैदखाने में अपना दम तोड़ चुके थे, तव श्रीमन्जी ने गांधीजी की विलमाई हुयी वेसिक शिक्षा की ज्योति का पुनः आवाहन किया और उसको भारत ही नहीं, विश्व-मानवता की शिक्षा के लिए प्रकाश स्वरूप प्रतिष्ठित किया। वर्धा का सन् १९७२ का 'सेवाग्राम राष्ट्रीय शिक्षा मन्तव्य' भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा के लिए निस्संदेह आधारभूत दस्तावेज है।

तभी कुलपति-अभिषेक होने के तुरंत बाद श्रीमन्जी ने राजस्थान विद्यापीठ कुल-संसद को अपने प्रथम आह्वान में कहा कि राजस्थान विद्यापीठ के जनतंत्रीय शिक्षा, साहित्य, संस्कृति, लोक-कल्याण तथा जन-चैतन्य के कुल का ध्येय भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा का ही होना चाहिए। पश्चिम के मार्गों पर भ्रमणकर भारतीय शिक्षाविद् थक गया है, संभ्रमित तथा रूढ़-जड़मति होता गया है। गांधीजी की प्रेरणा ही उसमें नयी संजीवनी पूरेगी, महात्माजी का प्रकाश ही उसके नयनों में भारतवर्ष की मानवता के लिए आत्म-विश्वास तथा अस्मिता प्रेरित करेगा। महात्मा गांधी का जीवन-दर्शन ही सत्य और अहिंसा पर आधारित नये शान्त, विधायक, ऊर्ध्व, साहसिक कृत-निश्चयी तथा आध्यात्मिक जीवन-सौंदर्य से कांतिवान मानव-समाज का आविर्भाव कर सकता है, अणु-बम की हिंसक तथा शोषण की कुशल जीवन-दृष्टि नहीं। महर्षि विनोबा के वेदांत अनुभव से महाप्राण प्राप्त कर श्रीमन्जी ने महात्मा गांधी के शिक्षा-दर्शन तथा प्रक्रिया को पूरी तरह आत्मसात कर लिया था, तभी वह शांत, अविचल स्वर में भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा के दो-दो राष्ट्रीय सम्मेलनों का संयोजन एवं संचालन कर सके तथा भारत-शिक्षा को लेकर जो सदियों का अंधकार सारे राष्ट्र में छाया हुआ है, उस पर प्रकाश का प्रहार कर सके।

श्रीमन्जी कार्यकर्ताओं के साथ कार्यकर्ता, विचारकों के मध्य चिंतक एवं नेताओं के बीच प्रेरणा-स्रोत दिखाई देते थे। मैंने श्रीमन्जी से सभी भांति के व्यक्तियों को बातें करते, परामर्श करते तथा विश्वासपूर्वक उनसे अपनी समस्याओं का हल प्राप्त करने के लिए वार्तालाप में लिप्त पाया है। यद्यपि मैं ऐसे प्रसंगों से दूर ही रहा हूं, तथापि मुझको ऐसा अनुभव होता रहा कि मैं जानता हूं, श्रीमन्जी से क्या कहा जा रहा है, पूछा जा रहा है और वह क्या उत्तर देने जा रहे हैं? जयपुर में राष्ट्रीय शिक्षा की दृष्टि से राज्य सरकार ने उच्च स्तरीय सर्वोच्च समिति बनाई और श्रीमन्जी के सक्रिय मार्गदर्शन में उसने राजस्थान राज्य की प्रथम प्राथमिक माध्यमिक राष्ट्रीय शिक्षा की

व्यावहारिक योजना घड़ी। समिति की प्रथम बैठक में तत्कालीन शिक्षा मंत्री राजस्थान ने कहा, "शिक्षा के बारे में रिपोर्टों से तो बड़ा कमरा भरा है। सरकार को तो व्यावहारिक योजना, जो राजस्थान के शिक्षा-बजट में चलाई जा सके, चाहिए। ऐसी योजना बनाकर दें। समिति में मौन छा गया। मैंने हाथ उठाकर कहा, "योजना का आधार-भूत प्रारूप तीन दिनों में मैं प्रस्तुत करूंगा।" उसी दिन संध्या को श्रीमन्जी जयपुर आ गये। मैंने आधारभूत प्रारूप उनको साररूप से बताया। श्रीमन्जी उस प्रकार सुनते रहे, जैसे मेरे साथ विचार करते जा रहे हैं। प्रारूप समिति को दिया गया। समिति ने उस प्रारूप के बारे में मुझको कुछ भी नहीं कहा, किन्तु श्रीमन्जी ने मुझको लिखा, "आपकी प्राथमिक माध्यमिक राष्ट्रीय शिक्षा की सारी योजना मैं देख रहा हूं। यह तो सेवाग्राम मन्तव्य के फलितार्थों पर बनी है। राजस्थान सरकार को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए, परन्तु क्या यह सरकार राष्ट्रीय शिक्षाविद् की योजनाएं स्वीकार कर लेती है ?"

सच तो यह है श्रीमन्जी स्वाधीन प्रगतिशील विश्वव्यापी मानव-चेतना के शुद्ध-बुद्ध भारतीय संस्करण थे। इस धरती की भौगोलिक सीमाएं उनको रोकती नहीं थीं और न आसमान का अनन्त दिक् उनको संभ्रम में डालता था। कुलपति श्रीमन्जी ठोस, व्यावहारिक तथा गांधीजी की दृष्टि से तराशा और महर्षि विनोबा द्वारा तपाया हुआ सोना ही कुल-संसद में परोसते थे। राजस्थान विद्यापीठ कुल-संसद के कुलपति श्रीमन्जी का उद्बोधन स्वयं में शिक्षा-कुलों के लिए मार्ग-दर्शन है।

सर्वोपरि श्रीमन्जी मुझे एक 'ज्ञान-कुमार' की भांति ही लगे। वह जैसे भारतीय नागरिकता के सनत्कुमार ही थे। ज्ञान-विज्ञान की चेतनाओं को जीवन की चादर के रूप में वह बुनते रहते थे। कबीर जैसे थे। उनका चिंतन संशयहीन, उनका विचार स्पष्ट, उनकी प्रतिज्ञा व्यावहारिक तथा खरी। मजा यह कि गांधीवादी होते हुए भी श्रीमन्जी गांधीवादी 'पण्डे' नहीं थे। यन्त्र, तंत्र तथा मंत्र को श्रीमन्जी ने गांधीजी के बेसिक शिक्षण के चैतन्य में डुबोया। आधुनिक विज्ञान तथा सामाजिक शिक्षण का बड़ा सुन्दर, सुघड़ समन्वय श्रीमन्जी की दृष्टि में था। नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के अंतिम दिवस मैंने उनको कहा, "श्रीमन्जी, मैं उदयपुर जा रहा हूं। संदेश ?" श्रीमन्जा ने मुझे मानो सुदूर से देखा, कहा, "राजस्थान में इस मन्तव्य के अनुसार विद्यापीठ राष्ट्रीय शिक्षा का काम आरंभ कर दें।" यह श्रीमन्नारायण का अंतिम संदेश है, किसे पता था ?

उनके निधन के समाचार से सारे भारत की एक धूमिल रेखा मेरी आंखों के आगे घूम गई, सारे राष्ट्र की अस्मिता के खण्डहर मेरी आंखों के आगे घूम गये। भारत की कोटि-कोटि संततियों का स्नेही भारत की राष्ट्रीय शिक्षा का वैशम्पायन, महात्मा गांधी का समर्थ मीमांसक और महर्षि विनोबा का श्रद्धालु शिष्य, बहनमदालसा का जीवन-साथी, काल के अथाह में खो गया।

किन्तु वह ज्योति क्या बुझ गई है ? नहीं, अपार्थिव होकर वह ज्योति का आकाश ही हो गये हैं। □

नलिनी के सदृश

भगवतशरण अधौलिया

□□

श्रीमन्जी में बहुत से गुण समाहित थे। सादगी, सरलता-सहजता और बहुउद्देशीय विनयशीलता उनके विशेष गुण थे। ये गुण उन्हें प्रकृति के प्रसाद के स्वरूप में प्राप्त हुए थे। कुयोगों, सुयोगों और संघातों में भी ये गुण उनमें पूर्णतः सुरक्षित थे। मैं जब भी अपने और उनके मध्य प्रस्थापित स्नेह, सहयोग और पारस्परिक विश्वास की सुध करता हूं, तो मुझे उनके इन गुणों की सहज सक्रियता का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सदा आभास मिलता रहा है।

वर्धा का कॉमर्स कालेज १९४० में प्रारम्भ हुआ था। स्वनामधन्य जमनालालजी के सद्प्रयत्नों का वह सुफल था। श्रीमन्जी प्राचार्य हुए थे, और मैं उप-प्राचार्य। कालेज के उद्घाटन समारोह में, जिसकी अध्यक्षता सरदार वल्लभभाई पटेल ने की थी, श्रीमन्जी ने मेरे सहयोग, लगनशीलता और कार्य-दक्षता पर पूरी दृष्टि रखी थी।

महात्मा गांधी के 'करो या मरो' के शंखनाद ने सम्पूर्ण देश को व्यापक आंदोलन के लिए प्रेरित किया। शीर्षस्थ सारे नेता गिरफ्तार हुए। श्रीमन्जी सुरक्षा वन्दी बना लिए गए। सर्वप्रथम सरकार ने वर्धा कालेज को सीलबन्द करने का कुचक्र चलाया। जैसे ही पुलिस की लारी कालेज पहुंची, मैंने धरना देकर उन्हें रोका। धरना कुछ ही देर चल पाया था कि वर्धा के कलेक्टर को सूचना मिली कि चिमूर आष्टी में पुलिस अफसरों की हत्या कर दी गई है, और थाने पर जनता का कब्जा है। इस हड़बड़ाहट में कालेज से सारी पुलिस हटा ली गई। मेरे इर्द-गिर्द केवल पांच पुलिस जवान ही छोड़ दिए गए। मैं उनके मध्य धरना देते हुए रात भर बैठा रहा। अगले दिन वर्धा के चौराहे पर भाषण देते हुए मैं भी पकड़ा गया और जेल पहुंचा दिया गया। अब मैं और श्रीमनजी दोनों जेलों में बन्द हो गए। सरकार ने कालेज सीलबन्द कर दिया, और पुलिस का पहरा बैठा दिया।

आगे जब महात्माजी और अन्य शीर्षस्थ नेता छूटे। श्रीमन्जी और मैं भी जेल से बाहर आए। इसके पूर्व ही डॉ० टी० जे० केदार के, जो उस समय नागपुर विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर थे, सद्प्रयत्नों से कालिज की सील हटा ली गई और कालेज पूर्ववत चलने लगा। अब मैं और श्रीमन्जी एक-दूसरे के और नजदीक आ गए।

कुछ काल बीतने के बाद महात्मा गांधी ने दो प्रमुख बातों की ओर देश का ध्यान खींचा। पहली बात मातृभाषा शिक्षण से संबंधित थी, और दूसरी का सम्बन्ध राष्ट्रभाषा के स्वरूप और उसके नामकरण से था। पहली बात के लिए श्रीमन्जी के निर्देशन में ९ अगस्त, १९४६ को एक सम्मेलन का आयोजन हुआ। महात्मा गांधी ने सम्मेलन का उद्घाटन किया, और उसमें पंडित रविशंकर शुक्ल, डा० रघुवीर और अन्य विद्वानों ने भाग लिया। सम्मेलन के निर्णयों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए श्रीमन्जी के निर्देशन और सहयोग से दो संस्थाएं स्थापित की गईं।

इनका उद्देश्य था अर्थ-वाणिज्य संबंधी मातृभाषा में पठन-पाठन के लिए व्यवस्थित सामग्री तैयार करना। 'अर्थ-संदेश' का प्रकाशन और 'अर्थ-साहित्य प्रकाशन मंडल' की स्थापना इसी क्रम में हुई थी। श्रीमन्जी ने प्रथम के लिए मुझे प्रधान संपादक और द्वितीय के लिए प्रधान संचालक नियुक्त किया। 'अर्थ-संदेश' का प्रकाशन हुआ। उसके दो ही अंकों ने अच्छी ख्याति अर्जित की। पुस्तक प्रकाशन के लिए पुस्त-पालन, अर्थशास्त्र और सांख्यिकी की पारिभाषिक शव्दावलियां प्रकाशित की गईं, जिन्हें डा० रघुवीर के सान्निध्य और मार्गदर्शन में तैयार किया गया था। इस सुदृढ़ नींव के आधार पर नागपुर विश्वविद्यालय में हिन्दी और मराठी में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देने का सफल प्रयोग हुआ, जिसमें पं० कुंजीलाल दुबे का, जो उस समय नागपुर विश्वविद्यालय के कुलपति थे, और मुझे श्रीमन्जी का पूरा समर्थन और सहयोग प्राप्त हुआ।

राष्ट्रभाषा का स्वरूप और उसका नाम—इस संबंध में भी एक सम्मेलन श्रीमन्जी के आयोजन और महात्मा गांधी की अध्यक्षता में वर्धा कालेज में ही हुआ था। डा० ताराचन्द, मौलाना सुलेमान नदवी, श्री सियारामशरण गुप्त प्रभृति अनेक सज्जनों ने इसमें भाग लिया था। अन्तिम निर्णय हिन्दी की वजाय 'हिन्दुस्तानी' की ओर झुका हुआ था। इसके वाद श्रीमन्जी ने एक पुस्तक लिखी। शीर्षक था 'मीडियम ऑफ इंस्ट्रक्शन' (शिक्षा का माध्यम)। प्रश्न पर वे महात्मा जी के विचारों के पक्षधर थे। पुस्तक के प्रस्तावक शव्द भी उन्हीं के थे। श्रीमन्जी के हिंदुस्तानी के रुख से मुझे अत्यधिक ठेस लगी थी। मैंने भी एक पुस्तक लिखी,जिसका शीर्षक था, 'एजूकेशन थ्रू मदर टंग' (मातृभाषा में शिक्षा)।

मुझे ऐसा लगा कि वह मेरे प्रयास से प्रसन्न नहीं थे। परन्तु मैंने सोचा कि यह तो सैद्धांतिक मतभेद है। इसका स्थायी प्रभाव नहीं रहेगा।

श्रीमन्जी ने अपने जवलपुर कॉमर्स कालेज के लिए मुझे प्राचार्य बनाया तो पूरे विश्वास के साथ कालेज की स्थापना और व्यवस्था का सारा भार मुझे सौंपा।

दिल्ली में संविधान सभा में राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर जीवन्त वहस हो रही थी जो निर्णायक दौर में थी। अपने स्वभाव के अनुसार मैं दिल्ली पहुंचा। डा० रघुवीर के यहां ठहरा, और उनके निर्देशन में हिंदी के पक्ष में कई लेख लिखे जो प्रमुख पत्रों में वहां प्रकाशित हुए। साथ ही साथ मैंने सेठ गोविन्ददासजी से मिलकर दक्षिण भारत के संविधान सभासदों से सम्पर्क साधा और उनसे वार्ता की। संविधान सभा जिस दिन निर्णायक मत देनेवाली थी,मैं सुनने के लिए दीर्घा में पहुंचा। श्रीमन्जी दीर्घा में पहले से ही उपस्थित थे। संविधान सभा का मत हिन्दी के पक्ष में रहा। उसके वाद हम दोनों मिले। श्रीमन्जी मेरे इन लगातार प्रयत्नों से कुछ प्रसन्न से नजर नहीं आए। सैद्धान्तिक दृष्टि से मैंने उन्हें संतुष्ट करने का प्रयत्न किया।

परिस्थितियों का दौर कुछ और आगे चला। श्रीमन्जी ने मुझे वर्धा वापस आने का आदेश निकाला। सिद्धान्ततः मैंने वर्धा वापिस जाने से इनकार कर दिया। अंततः मैंने डी० एन० जैन कालेज की स्थापना कर दी। इससे श्रीमन्जी कुछ और रुष्ट हो गए।

आगे के वर्षों में मेरे और श्रीमन्जी के वीच प्रायः अलगाव की स्थिति ही रही। श्रीमन्जी ने इन लम्बे वर्षों में राजकीय पथ पर बढ़कर अनेक महत्वपूर्ण पदोंको सुशोभित किया। डी० एन० जैन कालेज से १९७१ में मैंने पूरा अवकाश ले लिया। दोनों के बीच इस अन्तराल के समय में भी मुझे सदा ऐसा आभास मिलता रहा था कि श्रीमन्जी और मेरे वीच पूर्व-स्थापित स्नेह की,धाराएं

नितान्ततः गायव नहीं हुई थीं। वे जव भी जवलपुर आए और मुझसे उनका साक्षात्कार हुआ, तो उन्होंने अपनी परिचित मुस्कान के साथ ही मेरी कुशल-क्षेम पूछी। इसके अलावा वे उन लोगों से, जो उनसे कहीं अन्यत्र भी मिलते थे, मेरे वारे में वरावर पूछते थे और उनसे मेरे कार्य-कलापों की पूरी जानकारी प्राप्त करते रहते थे। इसे मैं उनके स्वाभाविक गुणों की महानता का ही परिचायक मानता हूं।

१९७१ से १९७६ का मेरा समय अन्य कार्यों में वीता, फिर मैंने अपने प्रिय विषय गांधी अर्थ-साहित्य लेखन को हाथ में लिया। ग्रन्थ लेखन का कार्य मैंने डेढ़ वर्ष में ही परिपूर्ण कर लिया। अव उसके प्रकाशन की समस्या थी। अतः मैंने श्रीमन्‌जी को इस वावत पत्र लिखा। वे उस समय गांधी शान्ति प्रतिष्ठान और गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष थे। मेरे पत्र का उत्तर उन्होंने तुरंत दिया। लिखा था कि मुझसे मिल कर उन्हें खुशी होगी। मेरी भेंट उनसे वर्धा में उनके निवास-स्थान 'जीवन कुटीर' में हुई। वे वड़े ही स्नेह और आत्मीयता के साथ मिले। मैंने अपने उद्देश्य और मन्तव्य की ओर उनका ध्यान खींचा, और अपने ग्रन्थ की सम्पूर्ण रूप-रेखा उनके सामने प्रस्तुत कर दी। वे वोले, "आपने ग्रन्थ तो पूरे परिश्रम और मनोयोग से लिखा है, पर यह है विशालकाय और वहुत ही व्यय-साध्य। फिर भी मैं यथाशक्य मदद दूंगा। आप अपने ग्रन्थ के चारों खण्डों के एक-एक अध्याय की साफ प्रतियां (यदि हो सके तो १५ दिसम्वर तक) मेरे दिल्ली के पते पर भेज दीजिए। जैसे ही मैं शिक्षा सम्मेलन की व्यस्तता से निवृत्त हूंगा, मैं आपको पत्र दूंगा।" मैंने उनसे विदा ली। वे मुझे वाहर तक पहुंचाने आए।

काल के दुर्दान्त विधान की घटना को कौन सोच सकता था। वह अकस्मात चले गए। वे उस नलिनी के सदृश थे, जो अपने सौरभ के लिए खिलती जा रही थी। पूर्ण रूप से अभी खिल भी नहीं पाई थी कि क्रूर-काल ने उसे बीच में ही तोड़ डाला। □

मार्गदर्शक पाथेय

नारायण जाजू

□ □

तीस-पैंतीस वर्ष पुरानी वात है। पूज्य वापू सेगांव (आज का सेवाग्राम) में जाकर वस गये थे। उस समय वह गांव भारत के सर्वसाधारण देहात का एक नमूना था। वर्धा से सेवाग्राम तक जाने का न कोई रास्ता था, न फोन और न विजली। वरसात में तो विदर्भ की चिकनी काली मिट्टी के कारण वैलगाड़ी के कच्चे रास्ते से चलना ही कठिन था। वर्षा ऋतु में एक दिन स्व० जमनालालजी वजाज के साथ इंग्लैंड से लौटा हुआ और उत्तर प्रदेश का रहने वाला एक युवक सेवाग्राम जा रहा था। जमनालालजी को वापू ने कहा था कि सेवाग्राम आना हो तो पैदल आया करो। वजन भी घटेगा। उसी आदेश को मानकर वे पैदल जा रहे थे और अपने मेहमान को भी

पैदल ले जा रहे थे। वैसे ही अंधेरा था और जोरों से पानी वरसने लगा। रास्ते के कीचड़ में पांव फंसे जा रहे थे। चलना दूभर हो गया। उस समय उनकी परेशानी देखकर साथ चलने वाले हम वालकों को इंग्लैंड रिटर्न की फजीहत देख मन-ही-मन खूब आनंद हो रहा था। वह युवक श्रीमन्नारायणजी थे। उस समय किसे पता था कि यह व्यक्ति हमारा प्रिय शिक्षक भी होगा और जीवन का मार्गदर्शक भी।

जमनालालजी वजाज के संपर्क में आने के वाद श्रीमन्‌जी वर्धा के स्थायी नागरिक हो गये और वर्धा में रम गये। वे वजाज-परिवार के जामाता वने।

जव वह नवभारत विद्यालय में हमारे अध्यापक हुए तव उनसे अधिक सम्पर्क आया। अपनी संयमित वाणी, व्यवस्थित पोशाक और गंभीरता के कारण अन्य अध्यापकों से वे एकदम अलग लगते थे।

१९४० में वाणिज्य महाविद्यालय के प्राचार्य वनने पर उनसे मिलने का मौका और भी कम हो गया। उस जमाने में प्राचार्य से डर लगता था। उनके पास विना काम से जाने की हिम्मत नहीं होती थी। पर कालेज के हर कार्यक्रम और प्रवृत्ति में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में उनकी छाप वनी रहती थी। कालेज में भारत के वड़े-से-वड़े नेता आमंत्रित किये जाते थे। राष्ट्रीयता का वातावरण था। शिक्षा के साथ देश के प्रति कर्तव्य की भावना से वातावरण सुरभित था। उसी समय श्रीमन्‌जी कवि हैं, कविता रचते हैं और कविता-पाठ भी करते हैं, यह मालूम हुआ।

विद्यार्थी और शिक्षक के नाते उनका संपर्क रहा। यों वे पारिवारिक सम्वंध में जीजाजी लगते थे, पर जो स्थायी सम्वन्ध जुड़ा, वह विद्यार्थी के रूप से ही। उनसे निकट सम्पर्क रहा, ऐसा न था; पर वे कभी दूर भी नहीं लगे। जब भी कोई विद्यार्थी उनसे मिलता, उनका सहज सौजन्य-मय हंसी या स्मित से स्वागत होता। शांत और मृदु शब्दों में वात सुनी जाती और राय दी जाती। इस सौजन्यमय व्यवहार की अमिट छाप विद्यार्थियों के मन पर रह जाती थी। पर सारे व्यवहार में एक प्रकार की शिष्टता रहती थी। विना सूचना दिये और आज्ञा लिये न उनसे दफ्तर में मिला जा सकता था, न घर पर।

श्रीमन्‌जी के पास अपनी समस्या लेकर जाने पर ध्यान से उन्होंने बात न सुनी हो, ऐसा कभी नहीं हुआ। साथ ही तटस्थ भाव से योग्य मार्गदर्शन और सलाह मिलती रही। पर वह सारा ऐसे होता, जैसे गम्भीर जल की धार अपनी गरिमा से बह रही हो और आप उससे जितना जल ले सकें, ले लें।

वे वहुत श्रम करते थे। साथ ही उनका सतत चिंतन, लेखन भी चलता रहता। वह जो पाथेय हमें दे गये हैं, वही हमारा मार्गदर्शन है। □

अध्यापन के क्षेत्र में

बलराम बनमाली

□ □

आचार्य श्रीमन्जी गांधीजी के आकर्षण के कारण और श्रद्धेय जमनालालजी बजाज के आग्रह से वर्धा सन् १९३६ में आये। आते ही वे नवभारत विद्यालय में अध्यापक तथा शिक्षामंडल में प्रबंध मंत्री नियुक्त हुए। १९३८ में वे नवभारत विद्यालय के प्रधानाचार्य और उन्हीं के प्रयत्नों से तथा श्रद्धेय जमनालालजी की प्रेरणा से स्थापित गोविन्दराम सेकसरिया महाविद्यालय में १९४० में प्राचार्य नियुक्त हुए। मैं उनका १९३६ से १९५० तक विद्यार्थी रहा। १९५२ में संसद के सदस्य चुने जाने के कारण वे अध्यापन-कार्य से मुक्त हो गये।

श्रीमन्जी ने जिस किसी क्षेत्र में पदार्पण किया, उसमें पूर्णरूपेण सफल रहे। इसका मुख्य कारण यह है कि वे स्वीकृत कार्य को बड़ी लगन से करते थे। प्रत्येक क्षेत्र के लिए उनकी अपनी मान्यताएं एवं सिद्धान्त थे। उनका वे कभी उल्लंघन नहीं करते थे। अध्यापन-कार्य में उनकी मान्यता थी कि अध्ययन में विद्यार्थी की केवल सहायता करना अध्यापक का कर्तव्य है। पढ़ाई कैसी करना, इसकी बुनियादी बातें वे छात्रों को सिखा देते थे। फिर स्वयं अध्ययन का अभ्यास उनसे करवाते थे। अड़चन के समय सहायता करते थे।

श्रीमन्जी विद्यार्थियों से भरपूर लेखन-कार्य करवाते थे। उनकी कापियां उनकी उपस्थिति में जांचते थे। गलतियों को नोट बुक में अगली बार सुधारकर लिख लाने के लिए अनिवार्य करते थे। हाईस्कूल में तथा कालेज में उन्होंने बरसों अंग्रेजी विषय का अध्यापन किया। कक्षा में वे विद्यार्थियों से पाठ पढ़वाते थे। कठिन शब्द एवं वाक्यों को समझाते थे और फिर अन्त में विद्यार्थियों को स्पष्टीकरण करने को कहते थे। इससे विद्यार्थी स्वयं अपना अध्ययन करने के लिए समर्थ हो जाता था। अध्ययन में आत्मनिर्भरता का यह सबक आज भी हमारे लिए बड़ा फलदायी सिद्ध हुआ है।

श्रीमन्जी ने अनेक ग्रंथ अंग्रेजी साहित्य के लिखे हैं। जीवन-निर्झर (फाउन्टेन आफ लाइफ) यह उनका प्रथम अंग्रेजी कविता संग्रह है, जिसकी रवीन्द्रनाथ टैगोर ने प्रस्तावना लिखी है। १८ वर्ष की उम्र में वह संग्रह उन्होंने लिखा। श्रीमन्जी हृदय से सदय कवि थे। अतः कक्षा में भी कविता का अध्यापन तल्लीनता से करते थे। उनका पढ़ाना इतना स्पष्ट और मनोरम होता था कि विद्यार्थी तुरन्त उसे आत्मसात कर लेते थे।

श्रीमन्जी विद्यार्थियों पर कभी झुंझलाते या नाराज नहीं होते थे, वैसे भी उनकी प्रवृत्ति मधुर और हृदय कोमल था। विद्यार्थियों के साथ तो उनका व्यवहार बड़ा ही वात्सल्यपूर्ण होता था। अध्यापन भी बड़ा सरल होने से उनके वर्ग में कोई कभी ऊबता नहीं था। कुसुम के समान मृदु होते हुए भी वे अनुशासन के बड़े पक्के थे। मितभाषी और गंभीर प्रकृति के होने के कारण विद्यार्थियों के तथा अध्यापकों के मन में उनके प्रति आदरयुक्त भय बना रहता था। अशिष्टता के लिए वे कभी क्षमा नहीं करते थे।

केवल पुस्तकीय ज्ञान में श्रीमन्‌जी का कभी विश्वास नहीं रहा। उद्योगों के द्वारा शिक्षा, यही सच्ची शिक्षा है, ऐसा वे मानते थे। गांधीजी के शब्दों में वह बुनियादी शिक्षा है। बुनियादी शिक्षा प्रणाली उन्होंने सही अर्थ में अपनी सभी संस्थाओं में अपनायी। जब वे हाईस्कूल में प्रधानाचार्य थे तब वहां पर कताई-बुनाई, बढ़ई का काम, मिट्टी का काम, चर्म-उद्योग, कागज-उद्योग चलते थे। ये कार्य प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य था। कालेज में भी बैंक, स्वास्थ्य-बीमा, सहकारी भंडार, ग्राम सेवा आदि विभागों में विद्यार्थियों को व्यावहारिक शिक्षा देने का प्रबंध था। इतना ही नहीं, बल्कि इंटर कॉमर्स के बाद दो महीने किसी अच्छे फर्म में, बैंक में, या कारखाने में काम करना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य था। दो महीने के कार्य का प्रमाणपत्र पाने पर ही उसे बी० कॉम० की परीक्षा में प्रवेश मिलता था।

सही शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से ही उपलब्ध हो सकती है, ऐसा श्रीमन्‌जी का विश्वास था। अतः १९४६ से उन्होंने अपने कालेज में मातृभाषा का माध्यम प्रारंभ किया। मातृभाषा माध्यम का वह पूरे भारतवर्ष में पहला महाविद्यालय था। इस मातृभाषा-राष्ट्रभाषा माध्यम द्वारा शिक्षा का उद्‌घाटन स्वयं पूज्य गांधीजी ने किया था।

स्नातकोत्तर स्तर पर श्रीमन्‌जी 'संयोजन' विषय पढ़ाते थे। अर्थशास्त्र एवं आर्थिक संयोजन पर उनका गहरा अध्ययन था। 'गांधीवादी आर्थिक संयोजन' इस ग्रंथ के लिए स्वयं गांधीजी ने प्रस्तावना लिखी थी। विद्यार्थियों को चमचे से दूध पिलाना उन्हें कभी पसन्द नहीं था। एम० कॉम० के विद्यार्थियों के साथ वे विषय की चर्चा करते थे, अनेक ग्रंथों का संदर्भ बताते थे और स्वयं घर पर पढ़ने की प्रेरणा प्रदान करते थे। आगे के घंटे में उस उल्लिखित भाग पर चर्चा कर आगे बढ़ते थे। कक्षा में वह केवल व्याख्यान देकर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं मान लेते थे।

किसी भी विषय पर अनेक ग्रंथ वे स्वयं पढ़ते थे और बाद में उस विषय की चर्चा करते थे। ग्रंथ खरीदने का उन्हें बड़ा शौक था। देश-विदेश में जाते थे, तो सैंकड़ों ग्रंथ खरीदकर कालेज भेज देते थे। परिणामतः गोविंदराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय का ग्रंथालय एक समृद्ध एवं मौलिक ग्रंथों से परिपूर्ण माना जाता था।

अध्यापक के नाते विद्यार्थियों के मन में श्रीमन्‌जी के प्रति प्रेम और आदर था। उनके मितभाषी एवं गंभीर स्वभाव के कारण विद्यार्थी उनसे बहुत अधिक घुलते-मिलते नहीं थे, फिर भी उनके प्रति मन में पितृतुल्य आदर और अपनापन रखते थे। □

सामाजिक-आर्थिक शक्तियों की संतान

रतनकुमार जैन

□ □

वीसवीं सदी में भारतवर्ष में जिन सामाजिक-आर्थिक शक्तियों ने देश को प्रगति-पथ प्रदान किया, श्री श्रीमन्नारायण उनकी एक अनुपम संतान थे। भारतीय परम्परा, सार्वजनिक धार्मिकता, पाश्चमात्य उदार दृष्टिकोण और आर्थिक-सामाजिक समानता के तत्त्वों का उनके व्यक्तित्व में अद्‌भुत समाहार हुआ था। उनकी विचारधारा प्रगतिशील क्रांतिकारिता और आध्यात्मिक संस्कारशीलता से ओतप्रोत थी। देश में समानता के आधार पर सामाजिक और आर्थिक संतुलन-कारी सुधारों के वे पक्षपाती थे। परम्परा-पोषक सुधारकों और अभिनव क्रांतिदर्शी युक्तिवादी बुद्धिजीवियों के बीच वे संतुलन-सेतु थे। देश की विशाल, मूक, निरीह और अकिंचन जनता का संरक्षण उनकी कार्य-प्रवृत्तियों का उत्स था।

असंख्य दलित ग्रामवासियों की आवाज बुलंद करने के लिए उन्होंने राजनीति को स्वीकार किया, उनके संरक्षण का व्रत लेकर वे राजनीतिज्ञ बने और राजनैतिक स्वातंत्र्य पर आधारित समाजगामी अर्थ-रचना के वे व्याख्याता बने।

आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय उनके जीवन के केंद्र बिंदु थे, किंतु वे वितरण-प्रणाली में सुधार और लोकोपयोगी उत्पादन की दिशा में विशिष्ट तथा सम्पन्न व्यक्तियों को हृदय-परिवर्तन द्वारा वांछित प्रभाव उत्पन्न करना उपयुक्त समझते थे। उनका सामाजिक-आर्थिक क्रांति का दर्शन नैतिक धरातल पर अवस्थित था। समाज के कमजोर वर्गों के उत्थान, कल्याण और मुक्ति के लिए व्यापक आधार पर अहिंसक आंदोलन उन्हें प्रिय था। उपेक्षित और पिछड़े वर्गों की दशा में सुधार करने के लिए उनकी मान्यता थी कि आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक दृष्टि से उन्नत वर्गों में मनोवैज्ञानिक क्रांति उपयुक्त हृदय परिवर्तन के लिए संवेदनशीलता अवश्य उत्पन्न करेगी। उनका दृढ़ मत था कि आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक शक्तियों पर समाज का स्वामित्व होना चाहिए, कुछ विशिष्ट भाग्यशाली वर्गों के हाथों की कठपुतली, लोक-कल्याण का कार्यक्रम नहीं होना चाहिए। हां, यह समाजीकरण सत्यनिष्ठ और अहिंसक उपायों द्वारा अवश्य होना चाहिए।

श्रीमन्‌जी के कार्यकलाप बहुमुखी थे। उनका कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। मानव के उत्थान से संबंधित शायद ही कोई क्षेत्र उनके कार्यों की परिधि से अछूता रहा हो। वे एक दूर-दृष्टा शिक्षा शास्त्री थे, उनके अर्थशास्त्र की जड़ें देश की जमीन में गड़ी थीं, वे एक सुसंस्कृत राजनेता थे, भारतीयता के सर्वोत्तम राजदूत थे, कल्याणकारी लोकतंत्र के वे एक प्रतिनिधि पुरुष थे, सर्वधर्म समभाव और समन्वय उनकी धर्मनिरपेक्षता का मूलाधार था, गांधीजी के रचना-त्मक कार्यक्रम के वे एक प्रबल पुरस्कर्ता थे, उनका समूचा व्यक्तित्व विवेक, विनय और वत्सलता, इन तीन गुणों से विभूषित था, भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के वे एक प्रमुख सेनानी थे।

श्रीमन्‌जी के मतानुसार प्रबंध-विज्ञान के संदर्भ में रचनात्मक या सृजनशील शिक्षण

व्यावसायिक विकास के क्रम में प्रथम सोपान था।

प्रबन्ध विज्ञान में ट्रस्टीकरण एक नया सिद्धांत है। इस सिद्धांत के आविष्कर्ता महात्मा गांधी हैं। गांधीजी के बाद, जिन गिने-चुने व्यक्तियों ने श्रद्धापूर्वक और दूरदृष्टि के साथ इस सिद्धांत को परिष्कृत कर व्यवसाय विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित किया, उनमें श्रीमन्जी का महत्वपूर्ण स्थान है। श्रीमन्जी ने समाज के संगठित विकास में ट्रस्टीशिप की कल्पना को साकार करने में अद्वितीय योगदान दिया।

सामाजिक और आर्थिक सुधार के क्षेत्रों में श्रीमन्जी का बहुमुखी योगदान है। नियोजक और श्रमिकों के बीच संबंध भी उनकी पैनी नजरों से ओझल नहीं हो सके। एक बार बातचीत के दरम्यान उन्होंने कहा था, "आधुनिक व्यवसाय एक संयुक्त उपक्रम है, जिसमें श्रमिक और पूंजीपति सहभागी बनकर काम करते हैं। इसमें स्वामी-सेवक के संबंधों को कोई स्थान नहीं है। अतएव देश के आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति के लिए सेवा-नियोजकों और कर्मचारी वर्गों के बीच मधुर और संतुलनकारी संबंध स्थापित होना अत्यंत आवश्यक है। तनावरहित और कार्यसाधक संबंधों का तकाजा है कि सेवानियोजकों और श्रमजीवियों के बीच परस्पर समझदारी बढ़े और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित हो। सर्वहितकारी वातावरण ही उद्योग को कार्यकुशल बना सकेगा, समाज-सेवा में उत्पादन को अर्पित करने में समर्थ हो सकेगा और राष्ट्र के विकास के पथ को सुरक्षित कर सकेगा।" उनका निश्चित मत था कि "औद्योगिक क्षेत्र को सेवानियोजकों और श्रमिकों के संघर्षरत खेमों में विभाजित करना आत्मघातक है। सरकारी कायदे-कानून और नियंत्रण औद्योगिक शांति स्थापित करने में अधिक कारगर सिद्ध नहीं हो सकते। वस्तुतः, औद्योगिक संबंधों का मूलाधार अपने-अपने हितों को सुरक्षित रखते हुए सामाजिक एकता, समाजसेवा और समाज-कल्याण का विस्तार होना चाहिए, और यह कार्य हृदयपरिवर्तन से ही संभव है। □

अंतिम भेंट

हरिकृष्ण खरे

□ □

२ जनवरी १९७८ की रात को ७.२० से ७.२५ तक मैं श्रीमन्जी के साथ था। मैं जयपुर से वापस आया था। अतः बातचीत जयपुर कांफ्रेंस तक ही सीमित रही। वे प्रश्न करते गये, मैं उत्तर देता रहा। प्रश्न थे—अध्यक्ष कौन था, कितने प्रतिनिधि आये थे, कौन-कौन से विषयों पर चर्चा हुई, व्यवस्था कैसी थी, नागपुर से और कोई आया था, वर्धा से कौन आया था, नागपुर विश्वविद्यालय के अन्य महाविद्यालयों से कौन आया, आदि, आदि। मैंने सभी प्रश्नों के उत्तर दिये। इस चर्चा के दौरान तीन बातें उल्लेखनीय हैं : १. मेरे जयपुर जाने पर उन्होंने संतोष व्यक्त

किया और कहा, "अखिल भारतीय स्तर के सम्मेलनों में अवश्य जाना चाहिए। परिचय के साथ-साथ चर्चा-सत्रों में बहुत-कुछ सीखने को मिलता है। क्षेत्रीय स्तर पर भी इस भांति के सम्मेलनों का आयोजन किया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से इस कार्य के लिए ग्रांट भी मांगी जा सकती है।" २. जब उन्हें मैंने बताया कि कामर्स कांफ्रेंस के इतिहास में पहली बार अध्यक्ष-पद के लिए चुनाव हुआ। तो वे बोले, "कार्यकारिणी में ही नाम निर्धारित कर लेना चाहिए। चुनाव के कारण दलबन्दी अथवा मनमुटाव शिक्षा के क्षेत्र में उचित नहीं।" ३. जब मैंने उन्हें यह सूचना दी कि नागपुर कालेज से एक विद्यार्थी श्री नीलकंठन को वाद-विवाद में भाग लेने के लिए जयपुर भेजा था और उसे प्रथम पुरस्कार (१२५ रुपये नकद) मिला है तथा ढाल भी प्राप्त हुई है। तब वे बहुत ही प्रसन्न हुए और बोले, "जब मैं नागपुर आऊंगा तो उसको बुलाना। मैं उससे बात करना चाहूंगा।"

७.२५ हो चुके थे, उनका सामान भी अन्दर पहुंच चुका था। अतः उन्होंने कहा, "अब, आप जाइये। आराम कीजिये। इटारसी में 'टाइम्स आफ इंडिया' लेकर आ जाइयेगा। फिर हम नागपुर तक चर्चा करेंगे।"

इटारसी में ३ तारीख को प्रातः जब मैं गया, तब बर्थ सूनी थी। पता चला अस्वस्थता के कारण उन्हें ग्वालियर में ही उतार लिया गया। जब नागपुर पहुंचा तब स्टेशन पर ही पता चला कि प्रातः लगभग तीन बजे, ग्वालियर में उन्होंने अंतिम सांस ले ली। मैं प्रतीक्षा ही करता रह गया। □

उनकी सहज-सरल मुस्कान

मार्तण्ड उपाध्याय

□□

गत वर्ष ४ नवम्बर, १९७७ की बात है। पुण्यश्लोक जमनालालजी बजाज के नाम से 'जमनालाल बजाज प्रतिष्ठान' की स्थापना प्रधानमंत्री-निवास पर श्री मोरारजी भाई के हाथों हुई थी। वहां श्रीमन्‌जी से भेंट हुई थी, किसे पता था कि यह भेंट आखिरी भेंट होगी?

"आप बंबई आ रहे हैं न? वहां रिषभदासजी और रामकृष्ण के साथ मिलकर आपसे बातें करनी हैं। गीता प्रतिष्ठान और इस प्रतिष्ठान का भी आपसे कुछ काम लेना है। और भी बहुत सारी बातें करनी हैं।"

मंद-मंद मुस्कराते हुए धीमे-धीमे लहजे में वह बोल रहे थे।

मैंने कहा, "अभी कल मैं उदयपुर जा रहा हूं, पर हां, जनवरी-फरवरी में बंबई ही रहूंगा। वहां मिलना हो जाएगा और कामकाज की बात कर लेंगे।"

"ठीक है। जनवरी-फरवरी में कभी भी बंबई में मिल लेंगे। वहां तो मेरा आना-जाना होता ही रहता है।"

३ जनवरी, १९७८ को अकस्मात सूचना मिली कि वर्धा जाते हुए ग्वालियर पर श्रीमन् जी का देहान्त हो गया।

काकाजी (जमनालाल वजाज) से तथा उनके परिवार से हमारा पारिवारिक संबंध रहा है। काकाजी दा साहव (हरिभाऊजी उपाध्याय) को अपना छोटा भाई मानते थे। उसी हिसाव से काकाजी की सब संतानों ने, पुत्र-पुत्रियों ने, हमें आदर, स्नेह और प्रेम दिया—ऐसा प्रेम और स्नेह कि जो कभी-कभी खून का रिश्ता भी नहीं दे पाता है।

जमनालालजी की मृत्यु पर दासाहव ने मुझे लिखा था :

"जमनालालजी का चला जाना सपने जैसा लगता है। वे हमारे परिवार के अभिभावक थे।"

जैसे जमनालालजी गये, वैसे ही कमलनयन भी एकाएक अहमदावाद के राज भवन में, श्रीमन्‌जी और मदालसा के निवास पर चला गया। और आज श्रीमन्‌जी के अचानक चले जाने का दुस्संवाद मिला। मन जड़वत् हो गया। आंखों की पलकें झपकाते डर लगने लगा कि हृदय का वेग कहीं आंसू बनकर न बह निकले।

इस वार राखी के साथ मिले पत्र का मैं बीमार पड़ जाने से उत्तर नहीं दे सका था। उस दिन जब बीमारी का समाचार मिलने पर श्रीमन्‌जी और मदालसा तवीयत का हालचाल पूछने के लिए घर आये तो मदालसा ने कहा था :

"मेरी राखी का, भैया, तुमने जवाव नहीं दिया। क्यों? मैं कोई अपनी रक्षा के लिए पुराने ढंग से राखी नहीं भेजती हूं, यह समझना। मैं तो तुम से काम लूंगी काम। यों चैन से नहीं बैठने दूंगी। जो लिखा है तुमने, वह मैंने पढ़ा है। लिखना जारी क्यों नहीं रखते? अपने को सिकोड़ क्यों लिया है? ४०-४५ बरस एक जगह काम किया है तो अव जरा बाहर आकर कुछ प्रकट काम करो। अपना तेज दिखाओ। कुछ और करके दिखाओ।"

श्रीमन्‌जी वीच में बात काटकर मदालसा को उलाहना देते हुए बोल उठे :

"अरे, तुम इनके कुशल समाचार पूछने आई हो या लड़ने? लड़ फिर लेना। इन्हें जरा ठीक तो हो जाने दो।" और फिर अपनी चिरपरिचित मुस्कराहट से बोले थे, "जैसा चिकित्सक वतावे, वैसा ही आराम करें। भारी काम न करें। तवीयत ठीक रखें। काम तो बहुत करने को पड़े हैं। पर अभी शरीर और मन पर किसी तरह का वजन न पड़ने दें।"

"आप ऐसे ही वस उपदेश देते रहते हैं। आप कौन अपने शरीर का या घरवालों का ध्यान रखते हैं। कभी मेरा ध्यान रखा है आपने, जो इनको ध्यान रखने को कहते हैं?"

मैंने कहा, "मैं क्या कर सकता हूं। कभी सामने आकर काम करना सीखा ही नहीं।"

"अच्छा छोड़ो इन वातों को", मदालसा वोलीं, "जैसे अपने बेटे-बेटियों के साथ थोड़े-थोड़े दिन रह आते हो, कभी वहनों के घर भी आने का सोचा है मन में? तुम्हारा एक घर वर्धा में भी है। यह अब तक मन में न आया हो तो अब समझ लो कि एक घर वर्धा में भी है। वहां भी आकर दस-पंद्रह दिन रहो। वहुत भरा है मेरे मन में। अपन सब मिलकर सोचेंगे, विचारेंगे और कुछ करेंगे, लिखेंगे-लिखाएंगे।"

और जब जमनालाल बजाज, प्रतिष्ठान समारोह में श्रीमन् जी ने जनवरी-फरवरी में वंबई में मिलने और बात करने की बात कही तो मदालसा बीच में ही बोल उठी थीं :

"मेरी वर्धा के घरवाली वात यादहै न ? वंवई से तुम्हें और भाभी को वर्धा में ही आना होगा।"

और मैंने कहा था, "जरूर।"

पर वर्धा अकेली मदालसा वहन से मिलने जाने की हिम्मत कैसे करूं ? इस उलझन में एक साल बीत गया और मैं वर्धा न जा सका और न उनसे मिल सका।

श्रीमन्जी और मदालसा ! दोनों एक-दूसरे के सहयोगी और सहायक। इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है श्रीमन्जी की सन् १९३२-३३ में प्रकाशित अंग्रेजी कविता पुस्तक 'फाउंटेन आफ लाइफ' का कविता में ही किया गया अनुवाद 'जीवन निर्झर'। वह छपा भी अंग्रेजी-हिंदी में, एक ही पुस्तक में। एक पृष्ठ पर मूल अंग्रेजी कविता श्रीमन्जी की है और सामने के पृष्ठ पर मदालसा का हिन्दी पद्यानुवाद।

उसकी छपाई मेरी देख-रेख में हुई थी। मदालसा अंतिम प्रूफ में भी अपनी कविता में हेर-फेर कर दिया करती थीं। इस कारण छपाई में बड़ी असुविधा होती थी। एक बार तो यहां तक नौबत आ गई थी कि प्रेस वालों ने आधी छपी पुस्तक के बाद आगे छापने से इन्कार कर दिया था। उन दिनों श्रीमन्जी नेपाल में भारत के राजदूत के पद पर थे। वे और मदालसा अपने ज्येष्ठ पुत्र के विवाह की व्यवस्था करने दिल्ली आये थे और कमलनयन के यहां, जो उन दिनों संसद सदस्य थे, ठहरे हुए थे। उनसे वात की और मैंने प्रेस वालों के पक्ष को समझाते हुए कहा, "अगर ऐसी स्थिति रही तो और कोई प्रेस इस पुस्तक को नहीं छापेगा, मैं भी इसकी छपाई में कोई सहयोग नहीं दे पाऊंगा। मैं तो वहुत परेशान हो गया हूं। इधर-से-उधर करते-कराते और आपकी और प्रेस वालों की वातें सुनते-सुनते।"

मेरी वात सुनकर श्रीमन्जी बड़े धीरज से और मुस्कराते हुए बोले, "मार्तण्डभाई, अब यह काम तो आपको ही पार लगाना है। मदालसा की आदतआप जानते ही हैं। लेकिन हम लोग आगे से ध्यान रखेंगे कि आपको और प्रेस वालों को परेशानी न हो।

और मदालसा से जरा गंभीर और थोड़े कड़े स्वर में बोले, "मदालसा का, यह सब काट-पीट करनी हो तो कापी प्रेस से मंगवाकर उसमें कर लो। आगे से बार-बार यह झंझट नहीं चलेगी। अव जो तुम अंतिम बार कापी भेजोगी, उसीके अनुसार किताव छपेगी। तुम्हारे पास नहीं आवेगी।" फिर मुझे संबोधित करके बोले, "आप सारी कापी प्रेस से मंगवाकर मदालसा को दे दीजिए और उनके पास से ठीक होकर पाने के बाद आप ही अंतिम रूप से देखकर छपवा दीजिए।"

सन् १९३७। मद्रास हिन्दी साहित्य सम्मेलन मार्च-अप्रैल के दिन। सम्मेलन के सभापति जमनालाल बजाज थे। सम्मेलन में महात्मा गांधी, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, टी० प्रकाशम, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि देश के महान नेताओं ने भाग लिया था। और दक्षिण भारत के तमिल, मलयाली, कन्नड़ तथा तेलुगु भाषी पत्रों के अलावा अंग्रेजी के प्रमुख पत्रों में सम्मेलन की कार्य-वाही प्रथम पृष्ठ पर आकर्षक ढंग से छापी गई थी। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा के निमंत्रण पर सम्मेलन मद्रास में विशेषतः बुलाया गया था। सम्मेलन के भावी कार्यक्रम में दक्षिण भारत में हिन्दी-प्रचार के साथ-साथ नागपुर में सन् १९३६ में हुए सम्मेलन द्वारा स्थापित 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के कार्य को प्रमुखता दी गई थी। काका साहेब कालेलकर उसके अध्यक्ष हुए और

सत्यनारायण मंत्री। वहीं एक व्यक्ति एकदम प्रकाश में आया—श्रीमन्नारायण अग्रवाल।

मेरा उनका पहला साक्षात्कार मद्रास हिन्दी साहित्य सम्मेलन में हुआ। प्रथम भेंट में ही हम दोनों अभिन्न मित्र बन गए। सम्मेलन की समाप्ति पर जमनालालजी, श्रीमन्जी, आदि तो मद्रास में रह गये और आचार्य काका साहेब कालेलकर, दादा धर्माधिकारी, बहन मदालसा तथा भाई रामकृष्ण भारती आदि के साथ मैं दक्षिण भारत की यात्रा पर निकल पड़ा।

यात्रा करते हुए मद्रास से वर्धा की गाड़ी में बैठा तो मैंने देखा कि श्रीमन्जी भी मद्रास से वर्धा के लिए उसी डिब्बे में मौजूद हैं। फिर तो मद्रास से वर्धा तक की यात्रा बातों-ही-बातों में कट गई। दुनिया भर की बातें कीं। पर बोला मैं ही अधिक, यों यात्राएं उन्होंने अधिक की थीं। पर मैं तो अपनी ताजी दक्षिण भारत यात्रा की बातें करने में मग्न था। भाव-विभोर होकर मैं अपने अनुभव सुनाता जाता था और श्रीमन्जी बिना थके, बिना ऊबे, बिना टोके, सुनते जा रहे थे। बीच-बीच में मुस्कराहट के साथ एक-दो मामूली प्रश्न पूछ लेते थे। उनकी वह सहयात्रा अभी तक याद है। मेरी वाचालता और उनका मधुर मौन।

दूसरे ही दिन मैं वर्धा से इलाहाबाद चला आया। वहां से जब दिल्ली पहुंचा तो एक निमंत्रण-पत्र मिला, श्री जमनालालजी बजाज के नामसे छपा कि उनकी द्वितीय कन्या आयुष्मती मदालसा का परिणय मैनपुरी के लब्ध-प्रतिष्ठ वकील बाबू धर्मनारायणजी के द्वितीय पुत्र श्रीमन्नारायण से सम्पन्न होगा। मुझे आश्चर्य हुआ कि चार-पांच दिन मदालसा के साथ दक्षिण भारत के स्थानों की यात्रा और कोई २४ घंटों का मद्रास से वर्धा तक श्रीमन्जी का साथ रहा, पर दोनों में से किसी ने इस बात की भनक नहीं पड़ने दी कि यह सु-संबंध होने जा रहा है।

श्रीमन्जी, जमनालालजी जैसे प्रमुख नेता, बापू के पांचवें पुत्र के, दामाद बन गये, पर उनको प्रतिष्ठा केवल उसी के कारण नहीं मिल गई, वह अपनी लगन, कर्तव्य-निष्ठा, परिश्रम तथा निस्वार्थ सेवा-भाव से एक-एक सीढ़ी चढ़कर प्रतिष्ठा की ऊंची-से-ऊंची सीढ़ी पर पहुंचे थे।

मारवाड़ी शिक्षा-मंडल के मंत्री, नवभारत विद्यालय के आचार्य, गोविंदराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय के आचार्य, नई तालीम सम्मेलन के संगठक, सत्याग्रह संग्राम के सेनानी, संसद सदस्य, योजना आयोग, अ० भा० कांग्रेस कमेटी के महामंत्री, नेपाल में भारत के राजदूत, गुजरात के राज्यपाल, गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष, विनोबाजी द्वारा प्रस्थापित आचार्य कुल के प्रवर्तक और महात्माजी तथा विनोबाजी द्वारा प्रवर्तित रचनात्मक कार्यक्रमों एवं कार्यकर्ताओं के मार्गदर्शक। गोसेवा एवं मद्यनिषेध कार्यक्रमों के पुरस्कर्ता। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली को नई दिशा देने के लिए संयोजित विश्वविद्यालय के कुलपतियों की समिति के तथा जमनालाल बजाज और गीता प्रतिष्ठानों के संयोजक। हिन्दी तथा अंग्रेजी में दर्जनों विभिन्न विषयों की पुस्तकों के लेखक। इतना सब होते हुए भी उनमें गर्व का कहीं नाम नहीं। मधुरभाषी, विनम्र, मिलनसार और स्थिर गति। कम-से-कम बोलने वाले। जिस काम के पीछे पड़ जायें, उसे पूरा करके चैन लेने वाले।

ऐसा नहीं कि उनमें गुण ही गुण थे, उनकी कोई मर्यादा नहीं थी। प्रचार-प्रिय वह लगते थे। उनको सदा यह अहसास रहता था कि वह जो लिखते हैं, वह उपयोगी है और वह लोगों तक पहुंचना भी चाहिए। अपने प्रकाशकों को तैयार करने-कराने में वह रुचि लेते थे, वह अच्छा और

ढंग का निकले,इस बात का पूरा ध्यान रखते थे। उनके अनेक हिंदी प्रकाशनों को 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित किये जाने में मेरा हाथ रहा। इस कार्य को करते हुए उनसे अनेक बार मिलना होता था। उम्र में वह मुझसे चार वर्ष छोटे थे। मुझे बराबर बड़ा मानकर मान देते थे।

'सस्ता साहित्य मंडल' के अनेक प्रकाशनों और उसकी पुस्तक-मालाओं के प्रकाशन में उनकी प्रेरणा रही। मंडल के प्रकाशनों के प्रचार और प्रसार में वे काफी दिलचस्पी लेते थे। वह 'मंडल' के 'विधिवत' सदस्य नहीं थे, पर 'मंडल' के कामों में उनकी रुचि अंत तक बराबर रही।

श्रीमन्‌जी के जाने से ऐसा लगता है कि हमारा अपना भाई चला गया। परिवार का एक अमूल्य रत्न खो गया। हम गरीब हो गये। □

एक अपूरणीय क्षति

तरलोक सिंह

□ □

१९७८ के प्रारंभ में ही श्री श्रीमन्नारायणजी के निधन से राष्ट्र की एक अपूरणीय क्षति हुई और देश के जन-जीवन में एक गहरा अभाव व्याप्त हुआ। जो लोग उन्हें निकट से जानते थे, या जिन्हें उनके साथ विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने का सुयोग प्राप्त हुआ था, उन सभी को उनके आकस्मिक निधन से गहरा आघात पहुंचा है। अपने विनयशील, निरभिमानी और विनम्र व्यवहार तथा प्रत्येक को अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेवाली कार्य-प्रणाली से उन्होंने राष्ट्रीय जीवन के अनेक क्षेत्रों को स्पर्श किया था। राजनीति में,प्रशासन में,रचनात्मक कार्यों तथा गांधीजी और विनोबा-जी के आंदर्शों के अनुरूप समाज-सेवा के क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में, एक विद्वान और मौलिक लेखक के रूप में उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी है। उन्होंने-गांधीमार्ग को और प्रशस्त करने के लिए प्रत्येक क्षेत्र में रचनात्मक प्रयास किये और अनुकरणीय मार्ग-दर्शन दिया। उनका प्रत्येक प्रयास इसी आशा से होता था कि जन-हित के साथ-साथ राष्ट्र भी प्रगति की ओर अग्रसर रहे और राष्ट्रीय कार्यक्रमों को सहयोग प्राप्त हो। अपने सर्वमान्य मध्यमार्गी दृष्टिकोण के कारण वह विभिन्न विचारधाराओं के लोगों तथा राष्ट्रीय जीवन के बीच एक कड़ी के रूप में प्रस्तुत रहते थे। लोक-कल्याण-नीति के किसी भी महत्वपूर्ण विषय में उनके सामने कभी कोई ऐसी बाधा नहीं आई, जिसे उन्होंने आसानी से दूर न कर दिया हो।

हम एक-दूसरे से अनेक वर्षों से परिचित थे। किन्तु दो अवसर ऐसे आये जब हम दोनों को अत्यन्त निकट से एक साथ कार्य करने का संयोग मिला। जिन वर्षों में वह योजना-आयोग के सदस्य थे, उन्होंने राष्ट्रीय अर्थतंत्र और समाज के पुनर्निर्माण में गांधीवादी विचारों को मूर्त्त-रूप देने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। मद्यनिषेध के विषय में अपने प्रभाव और साधनों का पूर्ण

उपयोग करते हुए योजना का प्रारूप तैयार करने में उन्होंने पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा अन्य तत्कालीन नेताओं को सराहनीय सहयोग प्रदान किया। ग्रामदान के कार्य को समर्थन देने के लिए उन्होंने योजना की पूर्ति के हेतु साधन जुटाने में अथक प्रयास किये। उन्होंने रचनात्मक कार्य-कर्ताओं को दिन-ब-दिन अधिकाधिक सहयोग देते हुए ग्रामीण स्तर पर एकाग्रचित्त होकर काम करने की प्रेरणा दी। उनके प्रयासों से राष्ट्र को अमूल्य उपलब्धियां हुईं। कुल मिला कर ग्रामवासियों में सामाजिक चेतना जाग्रत करने के लिए उन्होंने गांधीवादी विचारधारा को संक्षेप में ठोस रूप प्रदान किया। इसके लिए कोई अन्य विकल्प भी नहीं था। तीसरी योजना के पूरे कार्यकाल में और उसके पश्चात भी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं तथा काम की व्यवस्था और सामाजिक आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए उन्होंने योजना में आधार-भूत यथार्थ को ही अपने सामने रखा।

श्रीमन्‌जी चाहे कार्यालय में होते या कार्यालय से बाहर, जहां भी वह होते, वहीं अपना भाव-प्रवण प्रभाव छोड़ जाते। गुजरात का राजभवन त्यागने के पश्चात, जब उन्हें गांधी स्मारक निधि का अध्यक्ष चुना गया, संभवतः तभी उन्होंने अपने सामाजिक जीवन का सर्वाधिक मूल्यवान योगदान किया। गांधीवाद की स्थापना के लिए रचनात्मक योगदान की मुख्य धारा में अपने जीवन के सभी मूल्यवान अनुभवों को मूर्त्तरूप देने का उन्हें अवसर मिला। रचनात्मक कार्य-कर्ताओं, राजनीतिज्ञों, प्रशासकों और विद्वानों के साथ उन्होंने अपने सम्पर्क बढ़ाये, ताकि अपने गांधीवादी आदर्शों और उद्देश्यों को फलीभूत कर सकें। शिक्षा, ग्राम-विकास, मद्यनिषेध और समाज के कमजोर वर्गों के कल्याण-कार्य के क्षेत्रों में उन्होंने निर्माणात्मक आन्दोलन चलाने के लिए कार्य किये। अपने सहयोगियों और उत्तराधिकारियों को बल प्रदान करने के लिए उन्होंने अनेक क्षेत्रों में महत्वपूर्ण पहल करके मार्गदर्शन दिया।

अपने सिद्धान्तों के प्रतिपादन के लिए श्रीमन्‌जी के कार्य करने के ढंग श्लाघनीय थे। उदाहरणतः, आपातकाल के दौरान १९७६ में आचार्य विनोबा द्वारा आयोजित आचार्य सम्मेलन के अवसर पर आपने चेतावनी दी कि इस अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य में अत्यन्त सावधानी और सजगता की निरन्तर आवश्यकता है। सम्मेलन का संयोजन स्वयं अपने आप में एक राष्ट्रीय कर्तव्य और समय की मांग के अनुरूप था। फिर भी दुर्भाग्यवश जनता ने जो निर्णय लिये, वे उससे भी अधिक निराशाजनक थे।

श्रीमन्‌जी का पूरा जीवन राष्ट्र के लिए समर्पित जीवन का एक मूल्यवान उदाहरण है। उन्होंने रचनात्मक कार्यों और उनके समन्वय के लिए अपने को समर्पित कर दिया। उनके गरिमा-युक्त जीवन का स्मारक उनके द्वारा राष्ट्र को दिया गया योगदान है। प्रत्येक व्यक्ति के साथ उनका मैत्रीपूर्ण व्यवहार, किसी भी विषय पर उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण और अथक श्रम, जनता और देश के हित में जो उन्होंने किया, उसे राष्ट्र कभी नहीं भूल सकता। उन्होंने अपना पूरा जीवन अपने तीन निकटतम परामर्शदाताओं—गांधीजी, विनोबाजी और जवाहरलालजी—के आदर्शों और मूल्यों की स्थापना के लिए समर्पित कर दिया था। □

सौम्यता की मूर्ति

सुशीला नैयर

□ □

पिछले वर्ष ३ जनवरी को श्रीमन्‌जी की आकस्मिक मृत्यु की खबर से सारे देश को भारी धक्का लगा। करीब दो दिन पहले नशाबन्दी के बारे में हम लोग प्रधानमंत्री से मिलने गये थे। उससे पहले श्रीमन्‌जी मेरे घर पर आये थे और क्या बात करनी चाहिए, इस बारे में उन्होंने बहुत अच्छे सुझाव दिये थे। प्रधानमंत्री से मिलकर हमलोग 'राजेन्द्र चक्षु विज्ञान केंद्र' में 'कस्तूरबा हेल्थ सोसायटी' से संबंधित एक बैठक के लिए गये और वहां करीब डेढ़ घंटा बातचीत हुई और चाय भी पी। स्वप्न में भी किसी को कल्पना नहीं हो सकती थी कि हम उनसे अंतिम बार मिल रहे थे। उस समय उनका स्वास्थ्य हर प्रकार से संतोषजनक दिखाई दे रहा था।

श्रीमन्‌जी को दमे की शिकायत समय-समय पर हुआ करती थी। उनकी पत्नी श्रीमती मदालसाबहन आक्सीजन का सिलिन्डर घर में रखती थीं ? कभी घर में आक्सीजन का सिलिन्डर खाली हो तो कस्तूरबा अस्पताल से भी आक्सीजन मंगवा कर घर में रखती थीं। हमलोग कभी-कभी उनका मजाक उड़ाते थे कि वे आक्सीजन को रामबाण मानती हैं। मगर शायद मदालसा-बहन की अंतरात्मा ने उन्हें बिना जाने ही प्रेरणा दी थी कि श्रीमन्‌जी को दमा नहीं, हृदय रोग के कारण श्वास में तकलीफ होती है। हृदय रोग के लिए आक्सीजन बहुत उपयोगी चीज है ही। श्रीमन्‌जी की डाक्टरी जांच कई बार हुई। ई० सी० जी० में हृदय-रोग दिखाई नहीं दिया। हृदय की परीक्षा करने पर हृदय-रोग के कोई चिह्न दिखाई नहीं दिये। इसलिए सब डाक्टरों ने उन्हें दमे का रोगी माना। दमे की बीमारी का ही इलाज होता रहा।

२ जनवरी १९७८ की शाम को वे ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस से दिल्ली से वर्धा के लिए रवाना हुए और मैं उसी रात अमृतसर एक्सप्रेस से झांसी के लिए रवाना हुई।

झांसी में ३ जनवरी की शाम को किसी ने आकर मुझे यह दुःखद समाचार दिया। हममें से किसी को भी विश्वास ही नहीं हुआ कि श्रीमन्‌जी के बारे में यह खबर सही हो सकती है। हमने ग्वालियर के जिलाधीश को फोन किया। तब पता चला कि खबर सचमुच सही थी।

शाम को शोकसभा करके रात की ट्रेन से मैं भी दिल्ली वापस गयी। शवयात्रा से पहले गांधी निधि में हम सब एकत्र हुए। श्रीमन्‌जी शांत सोये दिखाई देते थे। बिचारी मदालसाबहन को कैसे सान्त्वना दी जाय, कैसे उन्हें संभाला जाय, यह सवाल था। उस बिचारी पर अचानक वज्रपात हुआ था। मगर जमनालालजी, बापू और विनोबा से उन्होंने तालीम पायी थी। बड़ी बहादुरी से वे शव-यात्रा में साथ गईं। ईशोपनिषद् का श्लोक प्रत्यक्ष हमारे सामने था :

यह प्राण उस चेतन अमृतमय तत्व में, हो जाय लीन शरीर भस्मीभूत हो।
ले नाम ईश्वर का अरे संकल्पमय, तू स्मरण कर उसका किया तू स्मरण कर।।

जमनालालजी की दूसरी पुत्री मदालसाबहन से उनका विवाह हुआ। नव-दम्पति

लिए 'जीवन कुटीर' नाम का छोटा-सा घर नवभारत विद्यालय के पास ही वर्धा में बनाया गया। बापूजी ने स्वयं उस घर की संयोजना में गहरी दिलचस्पी ली और जब वह बन गया, तब वहां आकर रहे भी। जमनालालजी बापू के पुत्रवत् थे। श्रीमन्‌जी भी बापूजी के परिवार के अविभाज्य अंग बन गये।

बापूजी से वे अक्सर शिक्षा के बारे में चर्चा किया करते थे। इन्हीं चर्चाओं में से नयी तालीम सम्मेलन का विचार निकला। सम्मेलन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। तालीमी संघ की स्थापना हुई। डा० जाकिर हुसेन 'हिंदुस्तानी तालीमी संघ' के पहले अध्यक्ष और आर्यनायकम्‌जी संघ के पहले सचिव नियुक्त हुए। नयी तालीम का कार्य कुछ वर्षों तक तेजी से चला और सारे देश में फैला। मगर फिर कई कारणों से ठंडा पड़ने लगा। मृत्यु से पहले श्रीमन्‌जी उसे फिर से चलाने का प्रयास कर रहे थे।

श्रीमन्‌जी अर्थशास्त्र में गहरी दिलचस्पी रखते थे। उनकी लिखी 'गांधीवादी संयोजन' पुस्तक से सभी लोग परिचित हैं। नयी तालीम में उनकी गहरी दिलचस्पी थी, जो अन्त तक बनी रही। नागरी लिपि, अस्पृश्यता-निवारण और अन्य सभी रचनात्मक कार्यक्रमों में उनकी श्रद्धा थी। उन्हें आगे बढ़ाने का उनका प्रयास था।

'भारत छोड़ो' आंदोलन में सभी रचनात्मक प्रवृत्तियों के कर्णधार अधिकतर जेलों में पहुंच गये थे। फिर जब दूसरा विश्व युद्ध समाप्त हुआ, जेलों के दरवाजे खुले और भारत की स्वतंत्रता की तस्वीर उभरने लगी। उसके साथ-ही-साथ आये हिन्दू मुस्लिम फसाद, देश का विभाजन हुआ, रक्त की नदियां बहीं और ३० जनवरी, १९४८ को आया राष्ट्रपिता का बलिदान। देश को आजादी की मंजिल तक पहुंचाकर अपने राजनैतिक उत्तराधिकारी जवाहरलालजी को प्रधानमंत्री पद पर आसीन करके बापू चल बसे। गांधीजी के निकट अनुयाइयों के लिए दुनिया बदल गई। श्रीमन्‌जी और मदालसाबहन भी उनमें थे। वे विदेश-यात्रा पर निकले और दुनिया की परिक्रमा करके यूरोप, अमेरिका और जापान घूमकर करीब साल भर बाद घर लौटे।

१९५२ में लोकसभा के पहले चुनाव में श्रीमन्‌जी राजस्थान से एम० पी० चुनकर आये। पंडितजी उस समय कांग्रेस के अध्यक्ष थे। उन्होंने श्रीमन्‌जी को कांग्रेस कमेटी का सचिव नियुक्त किया। वे पूरी तरह से उस कार्य में जुट गये। गांधीजी के सभी कार्यों में उनकी अटूट श्रद्धा थी। नशाबंदी-कार्य क्यों आगे नहीं बढ़ रहा, इस पर विचार करने के लिए कांग्रेस की ओर से एक अध्ययन समिति श्रीमन्‌जी की अध्यक्षता में नियुक्त हुई। लोकसभा में १९५६ में अविलंब पूर्ण नशाबंदी लाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ। कांग्रेस के द्वारा किस प्रकार गांधीजी का रचनात्मक कार्य बढ़ाया जाय, इस बारे में श्रीमन्‌जी ने और नेहरूजी के बाद आये कांग्रेस-अध्यक्ष श्री ढेबर भाई ने कई ठोस कदम उठाये। देश के आर्थिक विकास की ओर भी उन्होंने ध्यान दिया और सरकार और कांग्रेस के पदाधिकारियों के साथ बैठकर हरएक विषय पर विचार करने की परम्परा बनाई गई।

१९५७ का चुनाव आ रहा था। श्रीमन्‌जी उसके लिए खड़े नहीं हुए। कांग्रेस सचिव अपने चुनाव में उलझ जायेगा, तो पार्टी के उम्मीदवारों की मदद कैसे करेगा, यह था उनका सोचना। चुनाव के बाद पंडितजी ने श्रीमन्‌जी को योजना-आयोग का सदस्य नियुक्त किया। श्रीमन्‌जी उस काम में जी-जान से जुट गये। उनके जिम्मे कृषि इत्यादि का विभाग था। कृषि,

गोपालन और नशाबंदी के कार्य को आगे बढ़ाने का उन्होंने सतत प्रयास किया। उन्हीं की प्रेरणा से नशाबंदी को सफल बनाने के रास्ते में क्या दिक्कतें हैं, उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है, यह अध्ययन करने के लिए सरकार ने हाईकोर्ट के जज श्री टेकचंद की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की। टेकचंद-कमेटी की रिपोर्ट आने तक श्रीमन्जी योजना-आयोग में नहीं रहे। कमेटी की रिपोर्ट धूल खाती रही। सरकार ने और योजना आयोग ने कमेटी की सिफारिश पर कोई कार्य नहीं किया।

१९६४ में जवाहरलाल जी की मृत्यु के बाद लालबहादुरजी शास्त्री भारत के प्रधानमंत्री बने। उन्होंने श्रीमन्जी को नेपाल का राजदूत बनाकर काठमांडू भेजा। श्रीमन्जी ने इस नयेक्षेत्र में भी अपूर्व सफलता प्राप्त की। नेपाल के हमारे दूतावास में शराब बंद हो गयी और भारतीय संस्कृति दूतावास की हरएक प्रवृत्ति में झलकने लगी। मदालसाबहन ने भी राजदूत की पत्नी के तरीके पर बहुत अच्छा काम किया।

श्री लालबहादुर शास्त्री की मृत्यु के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी १९६६ में प्रधानमंत्री बनीं। उन्होंने श्रीमन्जी को गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया। श्रीमन्जी के प्रयत्न से गुजरात का राजभवन रचनात्मक प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गया। श्रीमन्जी ने राज्यपाल की हैसियत से सारे राज्य के रचनात्मक कार्यकर्ताओं तथा रचनात्मक संस्थाओं से संपर्क साधा और उन्हें हर तरह से प्रोत्साहन दिया।

श्रीमन्जी के कार्यकाल में गुजरात में दो बार राज्य में राष्ट्रपति शासन हुआ। तब श्रीमन्जी ने अत्यन्त कुशलता से शासन को चलाया और नौकरशाही को कार्यकुशल बनाया।

श्रीमन्जी ने अपने राजदूत और राज्यपाल के जमाने में भी कई किताबें लिखीं, जिनमें गांधीजी के और विनोबाजी के उनके संस्मरण उल्लेखनीय हैं। उनकी लेखनी शक्तिशाली थी।

राजभवन से श्रीमन्जी वापस वर्धा आये और 'शिक्षा मंडल' के कार्य में जुट गये। नयी तालीम को फिर से जीवित करने का उन्होंनेअथक प्रयत्न किया। 'गांधी स्मारक निधि' के अध्यक्ष चुने जाने के बाद उन्होंने सभी रचनात्मक कार्यकर्ताओं और संस्थाओं के काम में तेजी लाने की कोशिश की। पवनार और सेवाग्राम में उन्होंने अनेक सफल सम्मेलनों का आयोजन किया।

सेवाग्राम की सभी संस्थाओं मेंवे गहरी दिलचस्पी रखते थे। कस्तूरबा हेल्थ सोसायटी के होल्डिंग ट्रस्टियों के वे अध्यक्ष थे। सोसायटी के सदस्य थे, गवर्निंग कौंसिल और स्टेंडिंग फाइनेंस कमेटी के भी सदस्य थे। वे हमेशा हम लोगों का मार्गदर्शन करते थे। समस्याओं को सुलझाने की वे अपार शक्ति रखते थे।

जब आपात-स्थिति आयी तो कब मुझे जेल भेज दिया जायेगा, यह आशंका हमारे सामने खड़ी हो गयी। श्रीमन्जी ने मुझे आश्वस्त किया, "चिन्ता न करो, आपको बंद करेंगे तो हम आपको छुट्टी पर भेज देंगे और मेडिकल कालेज को चलाते रहेंगे। सोसायटी के काम में बाधा नहीं आयेगी।"

कोई भी समस्या हमारे सामने खड़ी होती थी, हम तुरन्त श्रीमन्जी के पास सलाह लेने जाते थे। वे हमेशा समय निकाल कर सोच-विचार कर उचित सलाह देते थे और अक्सर हमारी समस्याएं हल कर देते थे। मैंने कभी उन्हें गुस्सा करते नहीं देखा। कभी उन्हें ऊंचा बोलते नहीं सुना। वे सौम्यता की मूर्ति थे।

इंदिराजी के वे निकट के लोगों में से थे, मगर आपात-स्थिति के जमाने की कई बातों से वे परेशान रहते थे। विनोबाजी के पास नियमित जाकर सलाह-मशविरा करते थे। इसी में से उद्योगपतियों का सम्मेलन बुलाने का विचार हुआ और फिर आचार्यों का सम्मेलन बुलाया गया? दोनों सम्मेलन बहुत सफल रहे। आचार्यों का सम्मेलन आपात-स्थिति में हुआ था। आचार्य लोग बहुत दबी ज़बान से बोले, और इतना ही कहा कि अब उसे चालू रखने से लाभ नहीं होगा। मगर उतना मतभेद और मामूली टीका भी इंदिराजी सहन न कर सकीं। श्रीमन्जी को बड़ा धक्का लगा। वे पूरा प्रयास करते रहे थे कि प्रधानमंत्री की मदद करें। विनोबाजी की सहायता से उन्हें गलती से बचा लें। पर उनके प्रयत्न कारगर नहीं हुए।

१९७६ के दिसम्बर में चुनावों की घोषणा हुई। नेता लोग जेलों से छूटे। जनता पार्टी बनी, चुनाव लड़ी और उसमें सफलता प्राप्त कर सकी। श्रीमन्जी चुनाव में खड़े नहीं हुए थे। मगर जनता पार्टी की सफलता से बहुत प्रसन्न हुए। बहुत काम करने थे उन्हें, कराने भी थे जनता सरकार से। मगर भगवान ने कुछ और ही सोचा था। उनका कार्य समाप्त हो चुका था।

श्रीमन्जी के जाने से सेवाग्राम और वर्धा की संस्थाएं आज अपने को अनाथ-सी महसूस करती हैं। किसके पास सलाह लेने को जायं! रचनात्मक प्रवृत्तियों को वे जो उत्तेजना दे रहे थे, वह ठंडी-सी पड़ गई हैं। श्रीमन्जी की कमी कभी पूरी नहीं हो सकेगी, ऐसा लगता है। मगर फिर भी ईशोपनिषद् का श्लोक याद आता है—

"पूर्ण में से पूर्ण को यदि लें निकाल, शेष तब भी पूर्ण ही रहता सदा।"

श्रीमन्जी के अधूरे छोड़े कार्यों को पूरा करने का प्रयास करना हम सबका धर्म है। □

धर्म भावना के पुजारी

एस० एस० त्रिवेदी

□□

भाई श्रीमन्जी की याद करता हूं तो मेरे स्मृति-पटल पर एक सौम्य, हंसमुख तथा ओजस्वी मूर्ति आ खड़ी होती है! मेरा उनका परिचय करीब तीस वर्षों का था। मैंने उन्हें एक शिक्षक, एक प्राचार्य और एक शिक्षा-शास्त्री के नाते देखा। वर्धा जब राष्ट्र का केन्द्र था, उस समय भाई श्रीमन्जी अंग्रेजी के शिक्षक और समाजसेवी थे। नवभारत विद्यालय में अंग्रेजी के एक धुरंधर विद्वान के नाम से प्रसिद्ध थे। बाद में गोविन्दराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय का प्राचार्य-पद संभाला। उन्होंने पूज्य बापूजी के विचारों के विद्यालय का निर्माण किया। शिक्षा-प्रणाली में भारत भर में मातृभाषा का माध्यम शुरू करने का श्रेय उनकी कुशाग्र बुद्धि और दूरदर्शिता का द्योतक था। महाविद्यालय के प्राध्यापकों को प्रोत्साहित कर मातृभाषा में उन्होंने पुस्तकें लिखवाईं और उन्हें पाठ्यक्रम में स्वीकार करवाया।

आज भारत भर में मातृभाषा का माध्यम हो गया है। यह उनकी लगन और प्रयत्नों का फल है। श्रीमन्जी का ध्यान हमेशा विद्यार्थियों की सर्वांगीण उन्नति की ओर रहा। वे उनके चरित्र-निर्माण तथा स्वावलंबन की दिशा में अध्यापकों का ध्यान दिलाते रहे और कालेज के विद्यार्थियों की प्रवृत्तियों की सदा पूछताछ करते रहे। पूज्य बापूजी के विचारों की शिक्षा का स्वप्न कैसे साकार होगा, यही उनकी अंतिम इच्छा रही और उसके लिए उन्होंने मरते दम तक प्रयत्न किया। सन १९७२ में अखिल भारत राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन उन्हीं की प्रेरणा से बुलाया गया और उसके बाद गांधीवादी शिक्षा-विचारधारा को गति मिली। जब कभी शिक्षा मंडल में शिक्षा के बाबत चर्चा होती, श्रीमन्जी कहते कि विद्यार्थियों को 'पढ़ो और कमाओ' के लिए तैयार करने हेतु 'शिक्षा मंडल' के प्राध्यापकगण अग्रसर हों। दिल्ली जाते समय 'शिक्षा मंडल' की सभा में यह साफ तौर पर जाहिर किया था कि वहां से आने के बाद योजना को साकार रूप देना होगा, जिसमें 'शिक्षा मंडल' जैसे मातृभाषा के माध्यम में अग्रणी रहा, वैसे ही अब भी शिक्षा को नया मोड़ देने में अग्रणी बने। ईश्वरीय कोप के कारण यह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाई।

भाई श्रीमन्जी को मैंने अजातशत्रु पाया। वे किसी का दिल दुखाना जानते ही नहीं थे। क्रोध तो कभी भी नहीं करते थे। 'शिक्षा मंडल' की कई सभाएं ऐसी थीं, जिनमें वातावरण उत्ते-जनात्मक रहा, परंतु ऐसे समय भी मैंने देखा कि श्रीमन्जी ने उसे हंसकर ठंडा कर दिया। एक समय तो उन्होंने अपने विपक्षी राजनैतिक नेता से बात करके 'शिक्षा मंडल' के एक नौकर को नौकरी पर ले लिया। वे पूरे उदार मन के थे। उनके सहवास में जो आया, उसने उन्हें सदा गहन-गंभीर और सरल पाया। दांवपेंच करना तो उनका स्वभाव ही न था। सब के साथ एकसा बर्ताव करते थे। उनके जीवन में सादगी को खास स्थान रहा। किसी भी पद पर रहे, अपने आचरण से उसकी शोभा बढ़ाई। बापूजी और विनोबाजी के सान्निध्य में रहकर जो कुछ सीखा, वह सब मानो आत्मसात् कर लिया था! विविध विचारधाराओं का समन्वय करना उनका बायें हाथ का खेल था। यह उनकी विशेषता थी। वे भारतीय संस्कृति और धर्म-भावना के पुजारी थे। हमेशा कालेज में विद्यार्थियों की प्रार्थना पर जोर दिया करते थे। उनका विश्वास था कि प्रार्थना से जीवन में शुचिता आती है। सबसे प्रेम-भाव रखने को कहा करते थे। अपने देश में ऐसे विरले व्यक्ति हैं, जिन्होंने इस जगत और परलोक दोनों को अच्छी तरह सांधा हो। ईश्वर में अटूट विश्वास था, परंतु कोरे आडम्बर के बिलकुल विरोधी थे। उनका जीवन एक सेवाभावी और सौजन्यता का जीता-जागता उदाहरण रहा है। उनमें सत्य, अहिंसा, प्रेम, त्याग, निस्पृहता तथा आदर्शवाद का सम्मिश्रण हमें मिला। हिंदी के अनन्य साहित्यकार तथा शिक्षाशास्त्री तो वे थे ही। गांधीवाद के भाष्यकार के नाम से प्रसिद्ध थे। उनके विचार साफ और सुलझे हुए थे।

जब वे नेपाल के राजदूत थे, वर्धा आये थे। मैंने उस समय उनसे पूछा था कि राजदूत के नाते आपको कूटनीति अपनानी पड़ती होगी। श्रीमन्जी हंसे और बोले, "मुझे तो केवल सत्य का ही सहारा रहा और मैं सफल होता गया!" इससे उनकी सत्य-निष्ठा का प्रमाण मिलता है। मैं तो उन्हें भारतीय संस्कृति का प्रतीक मानता हूं। ऐसा एक अनूठा व्यक्तित्व अब हमारे बीच से उठ गया और उसकी स्मृतियां ही रह गईं। □

कर्मयोगी का मधुर व्यक्तित्व

डा० लक्ष्मीनारायण भारतीय

□□

श्रीमन्नारायणजी गांधीजी के उन अनुयायियों में से थे, जो उनके विचारों को कार्यरूप में परिणत करके काकाजी (जमनालालजी) की भी इच्छा-पूर्ति करते थे। इसीलिए मातृभाषा-माध्यम के द्वारा वर्धा में कामर्स कालेज में ग्रेजुएट एवं पोस्ट ग्रेजुएट की पढ़ाई शुरू हुई और बड़ी सफलता-पूर्वक चली, क्योंकि नागपुर-जबलपुर में भी श्रीमन्जी के प्रयत्नों से ऐसे कालेज खुले। गांधीजी हमेशा मातृभाषा-माध्यम के और हिन्दी के पक्षपाती रहे। यही काम श्रीमन्जी ने आगे बढ़ाकर ठोस दिशा में प्रगति कर दिखाई।

इसी प्रकार गांधीवादी योजना उन्होंने बड़े अध्ययनपूर्वक बनाई और जब स्वयं योजना-आयोग के सदस्य बने तो गांधीजी के विचारों को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया। प्रथम पंचवर्षीय योजना इस दृष्टि से बुनियादी रूप में महत्व की रही, भले ही बाद में ये बुनियादें बदलती गयीं। इस प्रकार का जो योगदान श्रीमन्जी का राष्ट्रकार्य में रहा, उसका ऐतिहासिक मूल्य है।

पर श्रीमन्जी का सबसे बड़ा योगदान शिक्षा के क्षेत्र में रहा। वे स्वयं शिक्षा-शास्त्री थे, एक विद्यालय के आचार्य, फिर कालेज के प्राचार्य एवं बाद में कई संस्थाओं में पदासीन। सरकारी क्षेत्र में भी इस क्षेत्र की दृष्टि से उनकी धाक थी। मृत्यु के पूर्व तो उन्होंने गांधीजी के विचारों के अनुसार शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की पूरी योजना बना डाली थी। अंतिम दिनों में उनका सारा ध्यान शिक्षा की ओर था। वह जितना भी करके दिखा गये, उसके आधार पर गांधीजी की शिक्षा का, उनकी योजना का काम अब भी आगे बढ़ाया जा सकता है।

जैसे वे गांधीजी के कार्यों में संलग्न थे, उसी प्रकार विनोबाजी के साथ जुड़ गये थे और उनके एक विशेष आधार-स्तम्भ बन गये थे। इधर जब आपात-स्थिति के कारण सर्वोदय वालों में दो धड़े हो गये, तब तो वे विनोबाजी के और भी निकट आ गये और आचार्यों के संगठन में, नागरी लिपि के प्रचार में तथा अन्य प्रवृत्तियों में पूरे सहायक बन गये। पुराने साथी कुछ अलग से पड़ गये थे, लेकिन श्रीमन्जी बराबर उनके साथ रहे और कई बार तो वे दो धड़ों के बीच कड़ी भी बन जाते रहे।

इन महापुरुषों के कार्यों में सहायता और सहयोग करते हुए भी उन्होंने लेखक, कवि, विचारक आदि के नाते भी अपनी भूमिकाएं खूब निभाईं और कई महत्वपूर्ण कृतियां दीं। वास्तव में वे गांधी-विचार में ओत-प्रोत और तदनुकूल आचरण में प्रतिबद्ध रहे, इसीलिए चाहे वे राज-दूत रहे हों, चाहे राज्यपाल या योजना-आयोग में, उन्होंने अपनी शालीनता, मधुरभाषिता आत्मी-यता में कभी कमी नहीं आने दी। एक बार मैं अहमदाबाद गया था, जहां वे राज्यपाल थे। किसी वजह से मेरा संदेशा उन तक नहीं पहुंचा। पर जब दूसरे दिन बैठक में मैंने पूछा तो उन्होंने फौरन जांच कराई और स्टाफ की भूल के लिए खेद प्रकट करके राजभवन मुझे और मेरे लड़के को बुलाया। काफी देर तक घरेलू व अन्य बातें हुईं। उस समय उनका निवास भी देखते बनता था।

वहन मदालसा ने पूरा राजभवन मानो गांधी आश्रम में परिवर्तित कर दिया था।

श्रीमन्जी का नाम सामने आते ही उनकी नम्र, गंभीर, शालीन एवं मृदु मूर्ति सामने आ जाती है। एक वार मेरे स्वर्गीय मित्र कमलदेव नारायण, जो असम में हिन्दी प्रचार समिति के संचालक थे, मेरे साथ श्रीमन्जी से मिलने गये। जव मुलाकात के वाद, जो पहले बिना तय किये हुई थी, हम लोग वाहर आये तो कमल ने कहा, "कैसे शालीन, गंभीर और मृदु व्यक्तित्व वाले व्यक्ति हैं श्रीमन्जी ! मैंने बहुतों से मुलाकातें कीं, पर यह मुलाकात मैं कभी भूल नहीं सकता।" ऐसे वे सभी के साथ पेश आते थे। मुलाकाती से उसके काम के वारे में दिलचस्पी से सव बातें सुनकर चर्चा करते और मार्गदर्शन भी देते। वे वड़े वनते गये, पर वड़प्पन का गर्व नहीं रक्खा। जिम्मेदारियां ओढ़ते गये, पर कभी असंतुलित नहीं हुए। नये संवंध वढ़ाते गये, पर पुराने संबंध कभी नहीं भूले। कभी वंवई या अन्यत्र मुलाकात हो जाती तो सारे परिवार की कुशल क्षेम पूछते।

श्रीमन्जी की भौतिक काया चली गई, पर उनका कर्मयोगी मधुर व्यक्तित्व सदा अमर रहेगा। □

अविस्मरणीय स्मृतियां

दिग्विजयसिंह राठौड़

□ □

श्रीमन्नारायणजी मुख्य रूप से आध्यात्मिक पुरुष थे। जव मैं भड़ौंच का कलक्टर था, तब राजपीपला में अक्सर मुकाम करना पड़ता था। क्योंकि यह तालुका और प्रांत का प्रमुख स्थान था। वहां के विश्रामगृह में एक फोटो था, जिसमें पंडित नेहरू, मोरारजी भाई, डा० जीवराज मेहता वगैरह के साथ एक व्यक्ति चल रहा था, जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा था। इस व्यक्ति की आंखें ऋषि की तरह दिखाई देती थीं। मैं कई वार उस फोटो को देखता रहता था। यह व्यक्ति कौन है, इसका किसी को पता नहीं था। मैंने जव श्रीमन्नारायणजी को प्रत्यक्ष देखा, तभी समझ में आया कि वह तस्वीर उनकी थी। वे जब योजना आयोग के सदस्य थे तब नवागाम वांध के शिलारोपण प्रसंग पर पंडितजी के साथ जा रहे थे।

श्रीमन्नारायणजी को प्रत्येक कार्य चौकस होकर और कर्त्तव्य की भावना से करने की आदत थी। १९६८ के सितंबर माह में भड़ौंच और सूरत में अभूतपूर्व वाढ़ आई थी। नर्मदा और ताप्ती के पानी एक हो गये थे। श्रीमन्नारायणजी हैलीकाप्टर से सूरत और भड़ौंच आये थे। शाम का समय था। मौसम बदरीला था और प्रकाश कम होने के कारण हेलीकाप्टर का पायलट अधिक समय तक रुक नहीं सकता था। श्रीमन्नारायणजी ने उसे अहमदाबाद जाने दिया और स्वयं शाम तक रुककर, परिस्थिति की पूरी जानकारी हासिल करने के पश्चात् ही देरी से मोटर

द्वारा अहमदाबाद रवाना हुए। इस प्रकार दो वर्ष पश्चात् जब भड़ौंच में भूकम्प का प्रकोप हुआ तो वे मुझे लेकर एकदम भड़ौंच के लिए रवाना हो गए। इसका फायदा यह हुआ कि राज्य के उस समय के मुख्य सचिव और अन्य अधिकारी भी तुरन्त भड़ौंच पहुंच गये और राहत-कार्य अविलंब शुरू हो गया।

श्रीमन्नारायणजी में स्त्री-सम्मान की उत्कट भावना थी। ध्रांगध्रा लश्करी केन्द्र है। ट्रेनों में सफर करने वाली वहनों को लश्कर के जवान छेड़ते हैं, ऐसी बात उनके सुनने में आई थी। इसी समय वर्तमान गुजरात राज्य की प्रधान श्रीमती हेमावहन आचार्या अन्य वहनों के साथ जिस डिब्बे में यात्रा कर रही थीं, उस डिब्बे में लश्कर के कुछ जवानों के घुसकर असभ्य वर्ताव करने पर श्रीमती हेमावहन ने उनका बहादुरी से मुकाबला किया। लोगों में यह धारणा थी कि यह घटना दबा दी जाएगी, लेकिन श्रीमन्नारायणजी ने लश्कर के अधिकारियों को समझाया कि उन्हें इस मामले की गहरी छानवीन करवाकर अपराधी व्यक्तियों को उचित दंड मिलता है, यह देखना चाहिए। ऐसा करने से उनकी इज्जत वढ़ेगी और लोग लश्कर के अधिकारियों को सम्मान की दृष्टि से देखेंगे। इस मामले में श्रीमन्नारायणजी ने काफी परिश्रम किया था, जिसके परिणाम-स्वरूप गुनहगारों को सवक के रूप में सजा हुई और श्रीमती हेमावहन का सार्वजनिक सम्मान हुआ। श्रीमती हेमावहन जनसंघ की सदस्य थीं, लेकिन यह न्याय का प्रश्न था और न्याय के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने वाले श्रीमन्नारायणजी को यह वात रोक नहीं सकी थी।

उनकी आत्मीयता का क्षितिज पशु-पक्षियों तक फैला हुआ था। वे राजभवन की गाय की देखभाल पर बराबर ध्यान देते थे। दिल्ली जाते समय दिल्ली में गुजरात के राज्यपाल द्वारा भेंट दी हुई सफेद मोर की जोड़ी को मुगलगार्डन में भेंट देना वे नहीं भूलते थे। डांग में मिले हुए पोपट की मृत्यु पर उन्होंने एक दिन उपवास किया था।

मुश्किल में फंसे हुए व्यक्ति के लिए उनके मन में हमेशा सहानुभूति रहती थी। एक वार मुसाफरी पर जाते समय राजभवन से थोड़ी दूरी पर उनकी मोटर पर पत्थर गिरा। मैंने तुरन्त मोटर रुकवाई। ए० डी० सी० ने जो पुलिस अधिकारी थे और आजू-बाजू के अन्य लोगों ने एक व्यक्ति को पकड़ा। इस व्यक्ति ने यह पत्थर पुरानी दुश्मनी के कारण एक साइकिल सवार पर फेंका था, लेकिन उसी समय राज्यपाल की कार वहां से गुजरने के कारण वह पत्थर उसके हुड पर गिरा। पुलिस इस व्यक्ति को परेशान न करे, इस हेतु उन्होंने मुझे बार-बार हिदायत दी थी।

श्रीमन्जी राष्ट्रीय प्रश्नों की गहरी जानकारी रखते थे। उनका वाचन गहरा और विशाल था। राष्ट्र के स्वास्थ्य के लिए गौवध-वंदी आवश्यक है, ऐसा वे मानते थे। इस हेतु वे उस समय के कृषिमंत्री वावू जगजीवनराम की दिल्ली में अक्सर मुलाकात लेते थे। चुनाव-पद्धति में परि-वर्तन जरूरी है, यह मानते हुए वे इस संबंध में चुनाव कमिश्नर को चर्चा हेतु अक्सर चाय-नाश्ते पर आमंत्रित करते थे।

गुजरात में राष्ट्रपति शासन के आठ माह के शासनकाल में उन्होंने राज्य की उत्तम सेवा की थी। जनता के प्रश्नों का वे तेजी से निपटारा करते थे। अंतिम फाइल देखने के बाद ही वे रात्रि में सोते थे, चाहे इस काम में रात के दो क्यों न बज जाते। महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के संवंध में जनता के प्रतिनिधि और सरकारी अधिकारियों को हाजिर रखकर व्यापक छानवीन के पश्चात् ही गुणदोष के आधार पर वे न्यायपूर्ण निर्णय लेते थे।

सच्चे गांधीवादी के रूप में उनके मन में हरेक के लिए समभाव था। किसी के लिए कोई पूर्वाग्रह नहीं था। इस कारण से राजभवन में श्री शंकराचार्य महाराज भी पधारते थे और एक सामान्य हरिजन सेवक भी आता था। पोरबंदर के महाराज तथा जामनगर की राजमाता भी आती थीं तो गांवों में सेवा करने वाले भाई-बहन भी आते थे।

चाय-नाश्ते और भोजन पर जनता के सभी वर्गों के प्रसिद्ध व्यक्तियों को निमंत्रित कर राज्य के राजकीय और आर्थिक प्रवाहों की वे जानकारी प्राप्त करते थे। राज्य के आध्यात्मिक व्यक्तियों की भी वे जानकारी रखते थे और उनके संपर्क में रहते थे।

अहमदाबाद में दंगे के समय निष्पक्ष होकर वे परिस्थिति पर बारीक नजर रखते थे। उस समय राजभवन में जो स्टाफ था, उसी से काम चला लेना पड़ता था, क्योंकि शहर का स्टाफ आ नहीं सकता था। देर रात तक फोन आया करते थे। ऐसे समय रात्रि के दो बजे एक आवश्यक व्यवस्था कर मैं उनसे मिलने गया। मैंने सोचा कि मुझे उन्हें नींद में से जगाना पड़ेगा, लेकिन मैंने आश्चर्य के साथ देखा कि वे कुर्सी पर बैठे-बैठे प्रार्थना कर रहे थे। वे हर एक बात की खबर रखा करते थे। ऐसे प्रसंग पर एक दिन हमें सुबह का दूध नहीं मिल सका था और हम लोग चाय नहीं पी सके थे। उन्हें इस बात का पता चलते ही उन्होंने राजभवन की गाय का दूध हम सबके लिए भेजा था।

संविधान के अनुसार राज्यपाल का अनुसूचित जनजाति के प्रति विशेष दायित्व होता है। इसके लिए वे डांग जिले की प्रसंग-प्रसंग पर मुलाकात लेकर वहां की अनुसूचित जनजाति की बस्ती के लिए आवश्यक सूचनाएं दिया करते थे। कच्छ में कंडला बंदरगाह के विकास के लिए उन्होंने काफी परिश्रम किया था। इसके उपरांत गुजरात के विकास की भावी योजना उन्होंने पर्याप्त यत्न से तैयार की थी। हर महीने के तीसरे शुक्रवार को साबरमती हरिजन आश्रम की प्रार्थनासभा में हाजिर रहकर उन्होंने उस संस्था के साथ घरेलू संबंध बनाये रखा था। इतना ही नहीं, गांधी-विचारधारा के व्यक्तियों को समय-समय पर निमंत्रित करके उस विचारधारा को जीवित रखा था। गांधी विचारधारा का उनका अभ्यास इतना गहन था कि एक बार तत्कालीन राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरि ने एक मुमुक्षु को श्रीमन्नारायणजी से संपर्क स्थापित करने को कहा था। □

शिक्षा के प्रति समर्पित

हुकुमचंद अग्रवाल

□ □

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी तथा सर्वोदय के अग्रदूत विनोबाजी के विश्वस्त सहयोगी श्रीमन्नारायण जी का राष्ट्रीय विकास के अनेक क्षेत्रों में योगदान रहा, किन्तु उनका सर्वाधिक योगदान शिक्षा के क्षेत्र में रहा। बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों पर आधारित शिक्षा नीति के रूप में मान्यता

दिलाने के लिए वे जीवन के अंतिम क्षणों तक प्रयास करते रहे। गहन अध्ययन और विश्लेषण करने के बाद उनका यह दृढ़ विश्वास था कि आर्थिक-सामाजिक समस्याओं से ग्रस्त देश को त्राण पाने के लिए गांधीजी द्वारा सुझाई गई शिक्षा-प्रणाली ही उपयुक्त है।

परतंत्र भारत में अंग्रेजों ने शिक्षा के जिस ढांचे को अपनी स्वार्थ-पूर्ति तथा नौकरशाही को मजबूत करने की दृष्टि से तैयार किया था, उसे राष्ट्र के नेताओं ने भली-भांति समझ लिया था तथा उसके स्थान पर विचार करने के लिए आज से कोई चार दशक पूर्व सन् १९३७ में वर्धा में महात्मा गांधी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया था। उस शिक्षा सम्मेलन में प्रमुख राष्ट्रनेताओं तथा शिक्षाविदों ने भाग लिया था। श्रीमन्नारायणजी उस समय तक देशभक्त श्री जमनालालजी बजाज के प्रयासों से वर्धा आ चुके थे तथा वहां की दो प्रमुख संस्थाएं राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा शिक्षा मंडल के कार्यों के एक सक्रिय सचिव के रूप में देखभाल कर रहे थे।

वर्धा-सम्मेलन में जिस बुनियादी शिक्षा को अपनाने का निर्णय किया गया था, उसका आधार विद्यार्थियों में क्रांति उत्पन्न करना था। श्रीमन्नारायणजी शिक्षा की इस मूल भावना से बड़े प्रभावित हुए तथा डा० जाकिर हुसैन के मार्गदर्शन में बुनियादी शिक्षा का जो ढांचा तैयार किया, उसके क्रियान्वयन के लिए प्रयत्नशील हो गये। यह भी एक संयोग था कि इसके बाद वे स्वयं भी शिक्षा के क्षेत्र में आ गये। १९३८ में राष्ट्रीय विचारधारा वाले वर्धा के नवभारत विद्यालय तथा १९४० में स्थापित गोविंदराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय के वे प्राचार्य नियुक्त हुए। उन्होंने शिक्षा के बुनियादी आधार को इन संस्थाओं में पुष्ट किया तथा शिक्षकों और छात्रों में समाज और राष्ट्रसेवा की भावना को जागृत किया।

मध्यप्रदेश में वाणिज्य शिक्षा के सूत्रधार श्रीमन्नारायणजी ही थे। ऐसे समय में जब मध्यप्रदेश (पूर्व में मध्यप्रांत और बरार) में वाणिज्य की शिक्षा के महत्व को समझाने का प्रयास भी नहीं किया जा रहा था, तब वर्धा के अतिरिक्त नागपुर तथा जबलपुर में वाणिज्य महाविद्यालयों की स्थापना का श्रेय श्रीमन्नारायणजी को ही है। उन्होंने इन महाविद्यालयों में वाणिज्य शिक्षा के मूल्यों में वृद्धि कराने तथा छात्रों में आत्म-विश्वास और श्रम प्रतिष्ठा के गुणों की अभिवृद्धि से प्रायोगिक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की थी। इस प्रकार वाणिज्य शिक्षा को तकनीकी और रोजगार-प्रधान बनाने का श्रेय भी उन्हीं को है।

स्वतंत्र भारत में गांधीजी द्वारा सुझाई गई बुनियादी शिक्षा को उचित स्थान न मिलने से श्रीमन्नारायणजी निश्चय ही चिंतित रहते थे, किन्तु अपने प्रयासों में उन्होंने कभी शिथिलता नहीं आने दी। उन्हें अनेक शासकीय एवं प्रशासनिक पदों पर कार्य करने का अवसर मिला था और उन पदों पर रहते हुए उन्होंने सदैव बुनियादी शिक्षा पर आधारित शिक्षा का ही समर्थन किया था। शिक्षा को स्पष्ट रूप प्रदान कराने के लिए उन्होंने अक्तूबर १९७२ में, जब वे गुजरात राज्य के राज्यपाल थे, सेवाग्राम में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया था, जिसमें सभी राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों, प्रमुख शिक्षाविदों तथा अनेक विश्वविद्यालयों के कुलपतियों ने भाग लिया था। पूज्य विनोबाजी ने भी इस सम्मेलन को सम्बोधित किया था। सम्मेलन की समाप्ति पर जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ था, वह बुनियादी शिक्षा का ही रूप था, जिसे 'शिक्षा सुधार के राष्ट्रीय चार्टर' के रूप में स्वीकार किया गया था।

सेवाग्राम-सम्मेलन में यह बात स्वीकार की गई थी कि हमारे पाठ्यक्रमों में भारत की समन्वित संस्कृति, परम्पराओं की जानकारी, स्वाधीनता आन्दोलन का इतिहास, अहिंसा, लोकतंत्र, समाजवाद तथा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के मूल सिद्धांतों का समावेश होना चाहिए। माध्यमिक और विश्वविद्यालयीन स्तर पर गांधी विचारधारा के अध्ययन की भी संस्तुति की गई थी, ताकि समाज-व्यवस्था में सत्य और अहिंसा की स्थापना कर उसे विकास की सुनिश्चित दिशा दी जा सके। इस सम्मेलन को विनोवाजी ने यह कहकर कि हमारी समूची शिक्षा योग, उद्योग और सहयोग पर आधारित होनी चाहिए, एक नई दिशा दी थी। विनोवाजी के इस सूत्र में सभी तत्त्व हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार विचारों के मंथन के प्रयास का श्रेय श्रीमन्नारायणजी को है, जो उनकी आकांक्षा का प्रतीक है। यह संतोष की बात है कि शिक्षा की इस पद्धति को महत्त्व दिये जाने की ओर अव ध्यान दिये जाने की संभावना है।

शिक्षा के माध्यम के संवंध में जिस वात को आज सभी विद्वान् स्वीकार करते हैं कि प्राथमिक स्तर से होकर उच्चतम शिक्षा मातृभाषा के द्वारा दी जानी चाहिए। उसकी आवश्यकता को श्रीमन्नारायणजी ने वहुत पहले ही समझ लिया था तथा उसका प्रयोग वर्धा के वांणिज्य महाविद्यालय में १९४६ में प्रारंभ भी कर दिया था। मातृभाषा द्वारा उच्च शिक्षा, जो उस समय अव्यावहारिक-सी लगती थी, आज उपयोगी लगने लगी है। श्रीमन्नारायणजी ने हिंदी में पुस्तकें तैयार कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। मातृभाषा में उपयोगी शब्दावली तैयार कराने में देश के विद्वानों का आह्वान करके इस दुष्कर कार्य को सरल वना दिया। यह सब कार्य श्रीमन्नारायणजी की लगन का परिणाम था।

अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने के मोह और मनोविज्ञान को श्रीमन्नारायणजी समझते थे। कुछ हद तक उसकी आवश्यकता का समर्थन भी करते थे, किन्तु स्वतंत्र भारत में अंग्रेजियत के प्रति अंधविश्वास को वे अच्छा नहीं मानते थे। वे दृढ़तापूर्वक कहते थे कि यदि प्रादेशिक भाषाओं का समुचित विकास किया जाना है, तो शिक्षा का माध्यम मातृभाषा में ही होना चाहिए। इस संवंध में वे चाहते थे कि केन्द्रीय स्तर की प्रतिस्पर्धा परीक्षाएं प्रादेशिक भाषाओं में भी संचालित की जायं।

आज के अर्थप्रधान युग में सामान्यतः इस बात पर जोर दिया जाता है कि शिक्षा अर्थकारी अर्थात् रोजगार-परक होनी चाहिए। ऐसा लगता है कि व्यक्ति को रोजगार के योग्य बना देना ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य है। श्रीमन्नारायणजी यद्यपि शिक्षा को रोजगार-प्रधान वनाने में विश्वास करते थे, तथापि नैतिकता के मूल्य पर नहीं। जीवन में नैतिकता को वे बहुत महत्व देते थे। जीवन में नैतिक मूल्यों की स्थापना के लिए 'सर्व-धर्म-समभाव' के आधार पर शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने की आवश्यकता प्रतिपादित करते थे। गांधी-विचार और सिद्धांत में उनकी अटूट आस्था होने के कारण चरित्र और नैतिक विकास पर हमेशा जोर देते थे। चरित्र के विना ज्ञान, बिना श्रम किये प्राप्त धन तथा आदर्श साधन की अवहेलना को वे अनैतिक मानते थे। शिक्षा-संस्थाओं में किसी भी प्रकार की अनियमितता अथवा अनैतिक आचरण का हमेशा विरोध करते थे।

श्रीमन्नारायणजी के चरित्र और चिंतन का विश्लेषण करने से हम पाते हैं कि उन्होंने जीवन में नैतिकता को सर्वोच्च महत्व दिया। यही कारण है कि वे जहां भी रहे, जिस किसी पद

को सुशोभित किया, जिन शासकीय संस्थाओं से अथवा अशासकीय संस्थाओं से सम्बद्ध रहे, अपने नैतिक गुणों के कारण ही लोकप्रिय हुए। इसी सच्चारित्र्य निर्माण के लिए उपनिषदों में विद्यार्थियों के लिए, 'सत्यं वद, धर्मं चर', 'स्वाध्यायान्मा प्रमदः', 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव', निर्देशों की ओर ध्यान आकृष्ट करते रहते थे।

श्री श्रीमन्नारायणजी के निधन से निस्संदेह राष्ट्र की एक बहुत बड़ी क्षति हुई है, उसकी पूर्ति उनके कार्यों के स्मरण तथा उनके अपूर्ण कार्यों को पूर्ण करने में सहयोग देने से ही संभव हो सकती है। □

एक लुभावना व्यक्तित्व

रामेश्वरदयाल दुबे

□□

किसी-किसी परिवार का संस्कार-परिपोषित वातावरण इतना मधुर होता है कि उसके प्रति सहज आकर्षण पैदा हो जाता है। स्वर्गीय बाबू धर्मनारायण अग्रवाल एडवोकेट (श्रीमन्जी के पिता) का परिवार मैनपुरी में एक ऐसा ही परिवार था। इस परिवार का प्रत्येक व्यक्ति विनम्रता की मूर्ति था।

बचपन से ही मेरा संबंध इस परिवार से रहा, क्योंकि मेरे अग्रज पं० मनसुखलाल दुबे एडवोकेट भी मैनपुरी में ही वकालत करते थे और धर्मनारायणजी के स्नेही मित्रों में रहे।

धर्मनारायणजी श्रीमती एनीबीसेंट की थियोसोफीकल सोसाइटी के सदस्य थे। सारा परिवार उस सोसाइटी के विचारों से प्रभावित था। धर्मनारायणजी सपरिवार सोसाइटी के मुख्य केन्द्र अड्यार (मद्रास) गये थे और वहां कुछ दिन रहकर वापस लौटे थे। मैनपुरी के कायस्थ पाठशाला हॉल में उनका भाषण था। श्रीमन्जी अपने पिताजी के साथ उस सभा में आये थे। जहां तक मुझे स्मरण है, इसी सभा में मैं श्रीमन्जी के निकट सम्पर्क में आया था। श्रीमन्जी का किशोरावस्था का लुभावना व्यक्तित्व और विनम्र स्वभाव मुझे बहुत प्रिय लगा था। मेरी मित्रता का सूत्रपात यहीं से हुआ था।

मैनपुरी के मिशन हाईस्कूल में हम दोनों समान कक्षा में पढ़ते हुए भी मात्र साथी थे। कारण, श्रीमन्जी छठी कक्षा में पढ़ते थे, जबकि मैं छठी स्पेशल कक्षा में था। मैं हिंदी मिडिल उत्तीर्ण कर स्पेशल कक्षा में दाखिल हुआ था। कुछ विषयों के वर्गों में हम दोनों साथ ही बैठते थे। दो वर्ष तक यह साथ रहा। फिर मुझे दूसरे स्कूल में जाना पड़ा। श्रीमन्जी का साथ छूट गया।

दो वर्ष की अवधि में मैंने कभी भी श्रीमन्जी को स्कूल में उछलते, कूदते, ऊधम मचाते नहीं देखा। गम्भीर बालक की तरह वे स्कूल में आते, ध्यान देकर पढ़ते और घर वापस चले जाते

थे। उनका यह गम्भीर स्वभाव और मनमोहक व्यक्तित्व सभी को प्रभावित करता था।

आगे चलकर हम दोनों के शिक्षा-क्षेत्रों में बहुत अंतर हो गया, मगर इस अंतर से हमारे पारस्परिक संवंधों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जव भी मिलते, सुहृद मित्रों की तरह मिलते, हमारा यह स्नेह-संबंध सदा वना रहा।

एम० ए० उत्तीर्ण करने के पश्चात् मैं एक हाईस्कूल में शिक्षक का काम करता था। राष्ट्रीय आंदोलन का जमाना था। रचनात्मक कार्यों पर उन दिनों गांधीजी बहुत जोर दे रहे थे। विलायत से लौटने पर श्रीमन्जी श्रद्धेय जमनालाल वजाज की पकड़ में आ गये थे और उन्हीं के निमंत्रण पर वर्धा पहुंच गये थे। जमनालालजी ने उन्हें मारवाड़ी शिक्षा मंडल का मंत्री वनाया था और वे मंडल की सारी व्यवस्था करते थे।

उन दिनों के वर्धा में एक विशेष आकर्षण था। गांधीजी, विनोबाजी, काका साहव कालेलकर, मशरूवालाजी आदि का वह निवास-स्थान बन चुका था। विभिन्न रचनात्मक राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का संचालन वहीं से होता था। राष्ट्रीय वातावरण के उन दिनों में ऐसे वर्धा के लिए किसके मन में आकर्षण पैदा न होता रहा होगा? मैंने उसे कुछ अधिक अनुभव किया और श्रीमन्जी को पत्र लिखा, अपनी इच्छा प्रकट की। उनका उत्तर मिला, "एक बार वर्धा आ जाइये, फिर निश्चय कीजिये।"

निश्चय क्या करना था! मैं वर्धा पहुंचा। श्रीमन्जी ने सवसे मेरा परिचय कराया और जुलाई १९३७ में मैं स्थायी रूप से वर्धा में वस गया। श्रीमन्जी की सलाह से 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' में काम करना आरंभ किया, जिसके वे कुछ समय तक मंत्री भी रहे थे।

आंदोलनों का यह युग था। वर्धा की शिक्षण संस्थाएं भी अछूती न रह गईं। श्रीमन्जी राजनीति के क्षेत्र में कूद पड़े, फलतः उन्हें जेल जाना पड़ा। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का उत्तर-दायित्व सम्हालते रहने की दृष्टि से काकासाहेव ने मुझे अनुमति न दी और मैं राष्ट्रीय आंदोलनों में भाग लेने से वंचित रह गया। श्रीमन्जी और मेरे कार्यक्षेत्रों में काफी दूरी आ गई। अपने-अपने क्षेत्र में हम लोग संलग्न रहे, पर इस अवधि में हम एक-दूसरे की खोज-खबर लेते रहे। श्रीमन्जी जव भी वर्धा आते, समिति की गतिविधियों की जानकारी प्राप्त करते और उचित मार्गदर्शन करते। कहना न होगा कि यदि श्रीमन्जी से प्रेरणा न मिली होती, उनका सहयोग न मिला होता, तो मेरा वर्धा पहुंचना न हो पाता और राष्ट्रभाषा-प्रचार के रचनात्मक क्षेत्र में लगा-तार ४० वर्ष तक जो अल्प-स्वल्प सेवा मुझसे बन सकी, उसके संतोष से मैं वंचित रह जाता।

इस लम्बी अवधि में श्रीमन्जी कहीं भी रहे हों—संसद-सदस्य और कांग्रेस के महामंत्री वनकर दिल्ली में, राजदूत वनकर नेपाल में, अथवा राज्यपाल बनकर गुजरात में, वर्धा से उनका संबंध बराबर वना रहा। वे वर्धा की संस्थाओं के हितचिंतन में ध्यान देते रहे। गुजरात से आने के बाद वे स्थायी रूप से वर्धा में रहने लगे। पिछले चार वर्षों में उन्होंने वीसियों रचनात्मक संस्थाओं का कार्यभार अपने ऊपर ले लिया था। उनकी व्यस्तता देखते ही वनती थी।

श्रीमन्जी के संबंध में ठीक ही कहा गया है कि गांधी विचार से ओतप्रोत उनका जीवन गांधीजी के आदर्शों को लेकर बना था। जो भी उनके निकट संपर्क में आता था, वे उसे आदर्श जीवन की प्रेरणा से भर देते थे। साधन और साध्य की शुद्धता और एकता पर उनकी-जैसी दृढ़ निष्ठा कदाचित ही देखने को मिलती है। अपने प्रारंभिक कार्यक्षेत्र वर्धा से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय

संस्थाओं तक उन्होंने अपनी सेवा का विस्तार किया और विभिन्न उच्चतम पदों को विभूषित करके राजनैतिक तथा रचनात्मक सभी कार्यों में गांधी-विचार-सूत्र को जिस कौशल के साथ अनुस्यूत किया, उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती।

गांधीजी के पास सेवाग्राम में आने वाली डाक कितनी होती थी, इसका अनुमान इस वात से लगाया जा सकता है कि गांधीजी के अलावा महादेव भाई, प्यारेलालजी, मशरूवालाजी भी रोज-की-रोज उसे नहीं निपटा पाते थे। पत्रों के उत्तर समय पर देना ही चाहिए, ऐसी गांधीजी की मान्यता थी। एक दिन श्रीमन्‌जी ने अपने घर पर मुझे बुलाया और कहा, "दुबेजी, आज आप मेरी थोड़ी सहायता करें। मुझे कालेज का जरूरी काम करना है। गांधीजी के कहने पर प्यारेलालजी ने गांधीजी के नाम आये २५ पत्र मुझे दिये हैं और इन पत्रों के उत्तरों का मसविदा मुझे सौंपा है। आप देखते हैं, इनमें कुछ पत्र वहुत लम्वे हैं। कृपया इन पत्रों के विषयों का सार तैयार कर दें, तो पत्र लिखने में सहूलियत होगी। मुझे ये सभी पत्र कल लौटाने हैं।"

यह काम मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया, और वहीं वैठकर काम में लग गया। करीव दो घंटे में काम पूरा कर पाया। यह देखकर आश्चर्य भी हुआ कि कैसे ऊल-जलूल पत्र गांधीजी के नाम आया करते थे। मन-ही-मन मैं थोड़ा आश्चर्य भी करता था कि पत्रों के उत्तरों का मसविदा वनाने जैसा महत्वपूर्ण कार्य श्रीमन्‌जी जैसे नये व्यक्ति को गांधीजी ने कैसे सौंप दिया? किन्तु इसका उत्तर भी मुझे तुरन्त मिल गया। गांधीजी की कसौटी पर श्रीमन्‌जी पहले ही खरे उतर चुके थे।

एक वार मेरे बड़े भाई पं० मनसुखलाल दुवे वर्धा पहुंचे। श्रीमन्‌जी की पत्नी श्रीमती मदालसाजी को यह ज्ञात हो चुका था कि मेरे भाई वावू धर्मनारायणजी के निकट के मित्रों में से हैं। अतः उन्होंने मेरे भाई को भोजन के लिए अपने घर पर वुलाया। एक दिन पहले ही मुझे यह सूचना मिल गई थी। दूसरे दिन प्रातः तड़के ही घूमने से लौटते समय श्रीमन्‌जी मेरे घर पर आये और अलग ले जाकर मुझसे कहा, "भाई मनसुख लालजी पुराने विचारों के आदमी हैं। मदालसा ने उन्हें घर पर भोजन के लिए वुलाया है। शायद उनके लिए दाल-भात-रोटी (कच्चा खाना) ठीक न रहेगा। मैं उनकी भावना का आदर करना चाहता हूं। इसलिए मैंने मदालसा से पूड़ी-साग आदि बनवाने के लिए कह दिया है। ठीक है न?"

मैंने "विलकुल ठीक" कहकर उन्हें विदा किया। सच यह था कि मेरे ऊपर से भी एक भार उतर गया था। वड़े भाई ने निमंत्रण मिलने पर मुझसे पूछा था, "वहां कच्चा खाना तो नहीं मिलेगा? यह वर्धा है।" मैं स्पष्ट उत्तर न दे पाया था। सोचता ही था कि अपनी ओर से उस संवंध की सूचना श्रीमन्‌जी को दे आऊं, परन्तु श्रीमन्‌जी की विनम्रता ने मेरी समस्या पहले ही हल कर दी। किस सीमा तक श्रीमन्‌जी दूसरे की भावनाओं का खयाल रखते थे, उसका यह एक छोटा-सा उदाहरण है।

श्रीमन्‌जी नहीं चाहते थे कि मैं वर्धा समिति के काम को छोड़ूं। वे मानते थे कि इस क्षेत्र का दीर्घकालीन अनुभव समिति के लिए उपयोगी होगा, परन्तु कुछ परिस्थिति ऐसी पैदा हो गई कि मुझे वर्धा छोड़ने का निश्चय करना पड़ा। कुछ अस्वस्थ था ही, चला आया। श्रीमन्‌जी के पत्र आते रहे, मेरी खोज-खबर लेते रहे। जब उन्हें ज्ञात हो गया कि मैं अपने निश्चय पर दृढ़ हूं, तो उन्होंने लिखा, "मैं नहीं चाहता कि आप योंही वर्धा छोड़कर चले जायें। मैं आपको ससम्मान विदा करना चाहता हूं। आप वर्धा आयें।"

मुझे मजाक सूझा। मैंने श्रीमन्‌जी को लिखा, "आप मुझे स-सम्मान वर्धा से भेजना चाहते हैं, किन्तु मैं तो अपना सामान पहले ही यहां ले आया हूं। फिर भी आप की आज्ञा मानकर वर्धा आऊंगा।"

जब वर्धा पहुंचा, तो श्रीमन्‌जी 'सम्मान' और 'सामान' की शब्द-समानता पर बड़े प्रसन्न हुए। जी-भरकर मुस्कराये।

कौन जानता था कि उनकी उस मधुर मुस्कराहट से इन पंक्तियों का लेखक इतनी जल्दी वंचित हो जायेगा! □

कुछ झलकियां

उमाशंकर शुक्ल

□□

आचार्य श्रीमन्नारायणजी का मेरा संबंध जब से वे वर्धा आये, तब से था और अंत तक वह संबंध इतना दृढ़ हो गया था कि मैं उनके घर का-सा सदस्य बन गया था। पत्रकार होने के नाते मैं उनके और भी निकट आ गया था। वे भी मुझे अपने छोटे भाई की तरह मानते थे।

जब उनके साठ वर्ष पूर्ण हुए तो मैंने उनसे कहा, "मैं आपके संबंध में एक अभिनंदन ग्रंथ निकालना चाहता हूं और वह आपको वर्धा में भेंट किया जायगा। आप उस समय वर्धा पधारें।" उन दिनों वे गुजरात के राज्यपाल थे। उन्होंने आनाकानी की, संकोच किया, पर मेरा प्रबल आग्रह देखकर स्वीकृति दे दी। मेरे पास समय नहीं था। बस, एक मास शेष था। इस बीच मैंने उनके संबंध में लोगों से लेख लिखवाए और वर्धा के 'राष्ट्रभाषा प्रेस' में ग्रंथ समय पर तैयार कर लिया। 'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' के प्रांगण में अभिनंदन-ग्रंथ समर्पण समारोह बड़ी सफलता से सम्पन्न हुआ।

इतने कम समय में विशाल ग्रंथ तो तैयार हो नहीं सकता था, लेकिन हमारे छोटे-से प्रयास को भी श्रीमन्‌जी ने खूब प्रोत्साहन दिया। ऐसा था उनका बड़प्पन।

'वर्धा-सेवाग्राम' के विषय में कोई पुस्तक नहीं थी। सेवाग्राम आने वाले यात्री ऐसी पुस्तक की आवश्यकता अनुभव करते थे। श्रीमन्‌जी ने मुझे अहमदाबाद से पत्र लिखा कि पुस्तक तैयार कर दो। मैंने 'राष्ट्रतीर्थ वर्धा और सेवाग्राम' पुस्तक तैयार कर दी। पुस्तक में कोई कमी न रह जाय, इसलिए मैंने उनसे कहा कि वे पुस्तक की पांडुलिपि देख लें और भूमिका लिख दें। उन्होंने मुझे अहमदाबाद बुलवाया, पुस्तक देखी, प्रसन्न हुए और भूमिका लिख दी। अच्छे कार्यों में उनकी सदा दिलचस्पी रहती थी।

गांधीजी की मृत्यु के बाद वर्धा और सेवाग्राम का महत्व कम हो गया था। मैं भारत के कई प्रमुख अखबारों का प्रतिनिधि था। काशी, कलकत्ता, पटना, लखनऊ,लाहौर आदि के अख-

वारों ने कहा कि चूंकि अब गांधीजी नहीं हैं, इसलिए उन्हें खबरों की जरूरत नहीं है। मेरा काम मंदा पड़ गया। श्रीमन्‌जी ने मुझसे कहा, "वर्धा जिले में कोई साप्ताहिक अखबार नहीं है। आप कोई साप्ताहिक क्यों नहीं निकालते?" उनकी प्रेरणा से मैंने सन् १९५२ में 'जागरण' पत्र निकाला। २६ वर्ष से लगातार 'जागरण' प्रकाशित कर रहा हूं। श्रीमन्‌जी उसमें बराबर लिखते रहे और समय-समय पर पत्र को रोचक बनाने के लिए मार्गदर्शन भी दिया करते थे।

श्रीमन्‌जी और मदालसा बहन विदेश के दौरे पर गांधी तत्वज्ञान का प्रचार करने गए थे। वहां से वे जो लेख भेजते थे, उनका हिन्दी अनुवाद करने का मुझे मौका मिला। मैंने उनसे कहा, "आप तो विदेशों की यात्रा कर आए, पर मैंने आपके लेखों के जो अनुवाद किये, उससे मैंने भारत में रहकर ही विदेश यात्रा का आनंद लूट लिया।" इस बात पर वह खूब हंसे।

श्रीमन्‌जी नेपाल में भारतीय राजदूत थे। एक बार उन्होंने मुझे नेपाल आने का निमंत्रण दिया। यह सन् १९६५ की बात है। मैं काठमांडू गया। अकेला ही था। उन्होंने मुझे आठ दिन वहां रखा और पूरा प्रबंध किया। चलते समय एक लिफाफा पकड़ा दिया और कहने लगे, "ये नेपाली नोट हैं, इन्हें हवाई अड्डे पर भारतीय नोटों में बदलवा लें।" वे एक हजार रुपए के नोट थे। हवाई जहाज द्वारा मुझे पटना भिजवाया और वहां से मैं काशी होते हुए वर्धा आया। यह थी उनकी उदारता।

गत वर्ष श्रीमन्‌जी ने दिल्ली में शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया था। शिक्षा प्रणाली में कुछ परिवर्तन हो, ऐसा वे चाहते थे। उन्होंने मुझसे कहा कि शिक्षा-सम्मेलन में भाग लेने के लिए दिल्ली चलना है। मैं राजी हो गया। इसी बीच मेरा स्वास्थ्य अचानक खराब हो गया और सेवाग्राम के मेडिकल कालेज में मुझे भरती होना पड़ा। मैं दिल्ली नहीं जा सका। पर श्रीमन्‌जी बराबर मेरी याद करते रहे। मैं दो जनवरी १९७८ को अस्पताल से छुटी पाकर वर्धा घर आया तो अगले दिन सवेरे पता चला कि श्रीमन्‌जी नहीं रहे। उनकी याद आज भी मन को विभोर कर देती है। □

आदर्श और यथार्थ के संगम

श्रीनारायण अग्रवाल

□ □

श्रीमन्‌जी का व्यक्तित्व बहुमुखी और सर्वांगीण रूप से विकसित था। उनके व्यक्तित्व के अनेक उज्ज्वल पहलू थे और हर पहलू तेजस्वी तथा आकर्षक था, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से अपना प्रभाव चारों ओर निरंतर डालता रहता था। वे ख्याति-प्राप्त शिक्षा-शास्त्री, उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ और अर्थ शास्त्री, गण्यमान्य साहित्यकार तथा गांधीवाद के प्रकांड भाष्यकार थे।

अत्यन्त कार्यव्यस्त रहते हुए और विविध स्तर के कार्यों का अम्बार सामने होते हुए

भी उनके चेहरे पर शिकन नहीं आती थी। थकावट और ऊबना तो जैसे वे जानते ही नहीं थे। स्मित मुद्रा से, सहज रूप से, वातावरण को मधुर और स्नेहपूर्ण रखते हुए, गंभीर-से-गंभीर और पेचीदा प्रश्नों पर सही और तर्क-शुद्ध निर्णय लेने की क्षमता उनमें थी। काम करने की उनकी गति में कमाल की तेजी होती थी। मनोरंजन के लिए अलग से समय उनके पास नहीं रहता था। कार्य में इतने तल्लीन और एकरूप हो जाते थे कि दूसरी बातों के लिए उनके पास अवकाश ही नहीं रहता था।

शिक्षा उनका प्रधान क्षेत्र था। शिक्षा के उद्देश्यों के बारे में आचार्य श्रीमन्जी ने 'बिना मांगे मोती मिलें' नामक अत्यन्त रोचक तथा उद्बोधक पुस्तक में लिखा है :

"सा विद्या या विमुक्तये' केवल आध्यात्मिक विचार नहीं है। मुक्ति का अर्थ सिर्फ 'निर्वाण या स्वर्ग-प्राप्ति न लगाया जाय। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो इहलोक और परलोक दोनों में हमें बन्धनों से मुक्त कर सके। वर्तमान शिक्षा तो दोनों ही दृष्टि से उपयुक्त नहीं है। न इस जीवन में हमारे नवजवानों को स्वतंत्र, स्वाश्रयी और स्वाभिमानी बनाती है और न उन आध्यात्मिक शक्तियों का विकास ही करती है, जो परलोक में कुछ काम आ सकें।"

"दुविधा में दोऊ गए, माया मिली न राम !"

आदर्शवाद और यथार्थवाद का श्रीमन्जी में सुन्दर संगम और समन्वय हुआ। सौजन्य और कलात्मकता उनमें विपुल मात्रा में थी। यद्यपि वे अब हमारे बीच पार्थिव शरीर से विद्यमान नहीं हैं, फिर भी बहुत समय तक उनकी स्फूर्तिदायक तथा स्नेहपूर्ण प्रेरणा हम सबको मिलती रहेगी। उनके द्वारा स्थापित की हुई और उनका सही एवं सबल मार्गदर्शन और आशीर्वाद प्राप्त की हुई अनेक संस्थाएं वर्धा में हैं। सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय, ग्रामीण महाविद्यालय, जानकी देवी विज्ञान महाविद्यालय आदि उन्हीं के अथक परिश्रम और सूझबूझ के सुफल हैं। वे सब सुचारू रूप से फूली-फली हैं और ज्ञान-विज्ञान की किरणें चारों ओर फैला रही हैं। ये सब संस्थाएं आर्थिक रूप से स्वावलंबी हैं और इस बात का सबूत हैं कि श्रीमन्जी आदर्शवादी होते हुए भी कितने व्यवहारकुशल थे। इन संस्थाओं के सामने समय-समय पर अनेक कठिन समस्याएं पैदा होती थीं, परन्तु श्रीमन्जी अपनी कुशाग्रबुद्धि से और व्यवहारवादी दृष्टिकोण से उन समस्याओं की तह में पहुंच जाते थे और सही हल प्रस्तुत कर देते थे। उनके द्वारा लिए गये निर्णय समय की कसौटी पर सही सिद्ध हुए। व्यावहारिक दृष्टिकोण से निर्णय लेने की इस अनुपम शक्ति के कारण उन्होंने जिस काम को हाथ में लिया, वह सफल और सराहनीय सिद्ध हुआ। उनके ये कार्य दीप-स्तंभ की तरह हमारा मार्ग प्रशस्त करते रहेंगे और हमें प्रेरणा देते रहेंगे। □

राष्ट्रीय चेतना के सफल गायक

मदनमोहन शर्मा

□□

जीवन के विकास के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति नित नये विचार ग्रहण करे और उन्हें नये परिवेशों में प्रस्तुत करे। श्रीमन्नारायणजी का जीवन कुछ ऐसा ही रहा। सफल राजनीतिज्ञ, कुशल प्रशासक और मधुर भावों की अभिव्यक्ति के कवि, ये श्रीमन्‌जी के वे तीन रूप हैं, जिनमें उनका संपूर्ण जीवन समा जाता है। इस लेख में हम उनके कविरूप की चर्चा करेंगे।

गरीबों के कष्टों से लाभ उठाकर जो लोग मौज करते हैं, वे उन अभावग्रस्तों की पीड़ा को नहीं जान सकते। रोटी कोट्यावधि पीड़ित और दलित मनुष्य-जाति की प्रतिनिधि है। सन् १८५७ के विद्रोह का प्रारम्भ रोटी के माध्यम से ही हुआ था। अतः कवि ने सबसे पहले 'रोटी का राग' गाया और रोटी की समस्या के माध्यम से भारत की गरीब जनता की व्यथा का चित्रण किया :

साधारण जीवन के सुख-दुख
गाऊंगा आडम्बर त्याग।
सम्प्रति विद्याहीन-जनों का
करुणामय रोटी का राग।।

कृषि-प्रधान भारत का सच्चा प्रतीक किसान है। उसके श्रम से पूर्ण, फिर भी अभावग्रस्त जीवन की ओर कवि की दृष्टि गई। किसान की वेदना समुचित रूप में कवि की वाणी में अभिव्यक्त हुई :

गया अन्त में एक खेत पर
जहां कृषक करता था श्रम,
ज्योंही देखे बिन्दु भाल पर
दूर हुआ मेरा सब भ्रम।
स्वेद कणों में प्रियतम की, कवि
मुझको सुखमय झलक मिली,
इस रहस्य की प्रखर रश्मि से
मेरी जीवन-कली खिली।

उसने खेती के लिए पसीना बहाने वाले किसान को, श्रम के प्रतीक को, देश की खुशहाली के आधारभूत को, अपने गान का विषय बनाते हुए कहा :

पृथ्वी पर हल के चलने की
ध्वनि ही मेरा अनन्त गान !

श्रम किये जाने वाले स्थानों से कवि ने प्रेरणा ग्रहण की :

नदी किनारे पत्थर पर ही
धोबी के अति ध्वनिमय श्रम में,
ग्रामवधू की शिला-सहेली
आटा-चक्की की घन्-घन् में,
जीवन का रसपूर्ण विहाग !
यहां सुनो रोटी का राग !

ये सभी श्रमिक आतप, वर्षा, हिम में सतत श्रम कर अपने शरीर को सुखाकर भी अपने लिए पेट भर अन्न नहीं जुटा पाते; इस ओर कवि ने ध्यान खींचा :

तप वर्षा हिम में श्रम करके
सुखा रहे हैं सदा शरीर,
तो भी निर्धनता ने घेरा
कब तक कहो धरें हम धीर !
मन को कब तक नाच नचावें,
कड़ी धूप में हम क्या गावें ।

ऐसे कड़े पसीने से देश की खुशहाली की नींव को मजबूत बनाने वालों के घरों की स्थिति की ओर भी कवि की निगाह जाने से नहीं चूकी :

नहीं सुनहरी
चमक-दमक है,
बस गोबर ही
विमल कनक है,
इस पर ही जीवन निर्झर है !
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

इस गरीब कृषक को सभी अच्छी तरह जानते हैं, फिर भी कोई उस के प्रति सहानुभूति नहीं रखता और न दो मीठे शब्द ही बोलता है। उसकी इस व्यथा की अनुभूति को कवि ने कितनी सहजता से व्यक्त किया है :

हम दुर्बल, निर्धन कृषकों को
सभी सताते हृदय खोलकर,
शान्ति प्रेम तो कभी न आते
फूटे मुंह भी कभी बोलकर !

गांधीवाद के निष्णात आचार्य होने के कारण खादी में कवि की अपूर्व आस्था रही। खादी के उत्पादन से गरीब के पेट भरने का निकट का संबंध है। अपनी इस आस्था को कवि ने इन शब्दों में मुखर किया :

इस साधारण खादी में भी
है अनुपम सौंदर्य झलकता,
इसके भी धागों में कविवर,
है उनमत आनन्द छलकता !

कवि का हृदय देशप्रेम की भावना से ओत-प्रोत है, किन्तु भारत मां की वैभवहीनता पर कवि विचलित हो उठा है। गरीबों का अधभूखा पेट और अधढंका तन कवि के भावुक मन को व्यथित कर देता है :

भूखी है परतंत्र हुई है,
नहीं रहा मुख पर सौंदर्य,
तन पर अच्छे वस्त्र नहीं हैं
लोप हुआ सारा ऐश्वर्य !
दुःखपूर्ण माता का हाल,
उठो ! उठो ! भारत के लाल !

गुलामी की स्थिति से उत्पन्न गरीबी की इस भयावह स्थिति से उबरने का कवि की दृष्टि में एक ही उपाय है और वह यह कि देश आजाद हो और उसके लिए हिल-मिलकर प्रयत्न करें :

अब तो स्वतंत्रता ही तीर्थ हमारा !

हिल मिलकर अब काम करेंगे
आजादी भारत पा जाये !

मानव-जीवन को इस संसार में सुखमय बनाने की दृष्टि से आवश्यक है कि मानव-मानव से प्रेम करे। कवि के हृदय में मानवप्रेम का बिरवा पुष्पित-पल्लवित हुआ।

मनुज प्रीति की मंजुलता में
मेरा जीवन-पुष्प खिला ।

ईश्वर की खोज मानव-जन्म का एक परम उद्देश्य है, क्योंकि वह उसकी सन्तान कहलाता है और मरणोपरान्त उसी में लीन होना उसके लिए अभीष्ट है, किन्तु इस उपलब्धि के लिए मानव-जीवन में ही मनुष्यता का पाना आवश्यक है :

खोजता था ईश को, पर
पा गया मानव हृदय को !

किये बिना कम] पीर जगत की
जीवन क्या, बस एक भार है;
मानवता का धर्म भूलकर
अन्धकार-ही-अन्धकार है !

इस तथ्य की प्रतीति के पश्चात भी मानव मानव से प्रेम करने के स्थान पर उसे निगलना चाहता है, उसके नाश की क्रिया में रत है, यह क्या कम आश्चर्य की बात है ?

मनुज को क्यों मनुज खाये ?
प्रेम के बदले मनुज तो
खून का प्यासा बना है;
स्वार्थ में तल्लीन होकर
द्वेष से पूरा सना है !
नाश के साधन जुटाकर

नाश अपना कर रहा है !
अन्ध होकर, बुद्धि खोकर
पाप घट निज भर रहा है !
प्राण लेने की कला में
अति निपुण जग बन गया है;
किन्तु जीवन की कला का
ज्ञान ही अब गुम गया है !

अतः आवश्यक है कि मानव-जीवन में प्रेम का सागर लहराये। इस आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुए कवि कहता है :

प्रेम-मय मानव-दृगों बिन
प्रकृति भी सूनी बनेगी !
हो अगर प्रेमल हृदय तो
प्रेम से दुनिया सनेगी !

जीवन प्रेम, प्रेम जीवन है,
सुख-दुख दोनों उसके अंग !
इसी प्रेम का नाम विश्व है
आओ प्रिय, नाचें हमसंग !

कवि की दृष्टि से यह वास्तविकता ओझल न रह सकी कि गरीबों में तो फिर भी प्रेम का अंकुर फलता-फूलता है, पर धनिक लोग तो इस दिशा में प्रायः शून्य हृदय ही पाये जाते हैं।

इस पैसे की दुनिया में तो
ललचाते फिरते भिखमंगे
लेकिन प्रेमनगर में अक्सर,
धनिक लोग ही मिलते नंगे !

१९४२ का वर्ष भारत में राजनैतिक क्रांति का वर्ष था। भारत की परतंत्रता से पीड़ित और गुलामी की धारा में बद्ध देश को मुक्त कराने की इच्छा रखने वाली आजादी के दीवानों का यह मस्ती का वर्ष था। लोगों के इस मस्ती-भरे उल्लास का वर्णन कवि ने इन शब्दों में किया :

यौवन का उत्साह निराला
स्नेह रश्मियों का उजियाला,
जन-जाग्रति से मन मतवाला
सेवामय अरमान !

संसार में वही व्यक्ति अपना जीवन सफल मान सकता है जिसने साधना का पथ अपनाया हो दुःख की अग्नि में अपने को तपाकर खरा सिद्ध किया हो। इसके लिए आह्वान करता हुआ कवि कहता है :

बना साधनामय जीवन, कवि,
तप-किरणों से दुःख तपाओ,

निज अनुभव की भाप बनाकर
ऊंचे बादल से छाओ !

लेकिन इतना ही पर्याप्त न होगा। यह भी अनिवार्य है कि वह दूसरों के दुःखों को देखकर मन में वेदना, पीड़ा, टीस, कचोट का अनुभव करे और निराश न होते हुए दूसरों को सुखी बनाने का प्रयास करे।

क्या तुम भी व्याकुल होते हो,
दुःख हमारे देख-देखकर
सुखी बनाओ मनुज दुखारे !
हो न निराश कभी तुम पल भर
पंथी ! बढ़े चलो निज पथ पर !

भारतीय संस्कृति से अभिभूत कवि 'प्राणिनामार्तनाशनम्' के सिद्धांत के अनुरूप सेवामय जीवन को महत्व देता हुआ उपर्युक्त विमल सिद्धांत का प्रतिपादन करता है :

यदि जीना है सच्चे जग में
तो फिर सीखें मरना;
दुखी जनों का दारुण दुख निज-
रक्त बहाकर हरना !

कवि की दृष्टि में जन्म लेकर मर जाना मात्र ही मानव का उद्देश्य नहीं है, वरन् उसकी जीवन की परिभाषा इस प्रकार है :

जीना अर्थ नहीं जीवन का
मरण नहीं है उसका अन्त,
फूला-फला सुवासित सुन्दर
जीवन ही आनन्द अनन्त !

कवि की मान्यता है कि देव बन जाना एक बार सरल है, पर सच्चे अर्थ में मानव बनना बहुत कठिन है। अपनी इस मान्यता को अभिव्यक्त करते हुए कवि कहता है :

है आसान देव बन जाना,
बड़ा कठिन बनना इन्सान
पूजा जाना सदा सुलभ है,
पूजा करना कला महान ।

अतः हमें मानवता की पूजा करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए, यही कवि की 'अमर आशा' है। जीवन सुख और दुःख का अद्‌भुत मिश्रण है। यदि दुःख न हो तो सुख का मूल्य नहीं रहता। जीवन में दुःख की महत्ता कवि ने इन शब्दों में प्रतिपादित की है :

दुख की अश्रुभरी आहों में
मुसकाती है जीवन-कान्ति !

अर्द्ध रात्रि की काली-काली
अलकों में ऊषा छिपती है

इस नश्वर जीवन में ही तो
शाश्वत की गरिमा दिखती है !

जैसे सुख का मूल्य समझने में दुख की महत्ता है, वैसे ही मृत्यु का भी महत्वपूर्ण स्थान है :

मृत्यु न होती तो जग सोता
हंस-हंसकर फिर लड़-भिड़कर नित
ऊब-ऊबकर गाता रोता !
अनाचार का सिक्का चलता
नीति, धर्म का मान न होता !
नीरस तो जग हो ही जाता
मानव-प्रेम रतन भी खोता !

वहुत से लोग संसार में बुराई ही बुराई देखते हैं। कवि का कहना है कि यह उनका दृष्टि-कोण है। जैसा दर्पण होगा, वैसा ही उसमें प्रतिविम्ब दिखाई देगा :

आप भले तो जग भला यह अनुभव का सार ।
दर्पण सा विम्वित करे, जग जन-भाव विचार ॥

श्रीमन्नारायणजी जन-मन को छूने वाली भावनाओं की सशक्त अभिव्यक्ति के कवि और लेखक थे। साहित्यिक, सामयिक तथा राष्ट्रीय चेतनाओं की अभिव्यक्ति का सुखद त्रिवेणी संगम उनकी रचनाओं में है। उनकी रचनाओं की भाषा संस्कृतनिष्ठ किन्तु सरल और सहज-ग्राही है, जिसमें भावों की मधुरिमा के साथ-साथ आत्मा की अनुगूंज है। जीवन-निर्झर उनकी कविताओं का अत्यन्त प्रभावशाली संग्रह है। उनकी रचनाओं में साहित्यिकों के लिए रस, राष्ट्रप्रेमियों के लिए निर्मल राष्ट्रप्रेम और भावुकों के लिए निर्मल भावनाएं उपलब्ध हैं।

'रोटी का राग', 'मानव', 'अमर-आशा' तथा 'जीवन-निर्झर' उनके काव्य संग्रह हैं। ये सभी पुस्तकें उदात्त विचारों से परिपूर्ण हैं और प्रेरणा का अक्षय स्रोत हैं। □

वे अमर हैं

धर्मदास सोनटक्के

□ □

२ जनवरी १९७८ का दिन। मैं उस दिन वंगले की सफाई करने में व्यस्त था, क्योंकि एक माह के दौरे के वाद ३ तारीख को वाबूजी वर्धा आ रहे थे। वावूजी के आफिस की चद्दरें धोईं। इसके पहले अनेक वार हम दो-तीन लोग मिलकर वाबूजी के आफिस की सफाई और सब सामान अच्छी तरह से जमाने का काम करते थे। लेकिन इस वार मुझे अकेले ही सब काम करना था, सब

फाइलों की धूल आदि झाड़कर साफ़ की। सिर्फ बिछायत करना बाकी रखा।

३-१-७८ को सुबह ४ बजे उठकर मैं अपने आफिस का अधूरा बचा काम करने में लग गया। चद्दरें बिछाईं, मेज पर मेजपोश डालकर उस पर फाइल पेन आदि रखा। इतने में फोन की घंटी बजी। मुझे लगा, किसी का गलत नम्बर होगा। उस समय चार बजकर पच्चीस मिनट हुए थे। पर वह फोन गलत नम्बर न होकर भयंकर था। अतिशय दुःख का था। फोन पर प्राचार्य बनमालीजी बोल रहे थे। एकदम खिन्न आवाज़ में "धर्मा पूज्य बाबूजी आम्हाला सोडुन गेलेत..."

मैं दो-तीन मिनट कुछ भी नहीं बोला। फोन का चोंगा नीचे रखा, मुझे चक्कर आने सरीखा लगा। हे भगवान, मैंने क्या सुना? मुझे विश्वास नहीं हुआ, मैंने फिर फोन किया, और पूछा, "यह सच है क्या?" उन्होंने कहा, "हां, धर्मा, हां, ग्वालियर में स्वर्गवास हुआ। ऐसा हमारे पास तार आया है।"

उस समय मैं अकेला ही खूब रोया। आंखों से अश्रुधारा बह रही थी। सिर ऊंचा करके आफिस को देखा तो आफिस साफ-सुथरा दिखाई दिया। उसके पहले मुझे लग रहा था कि बाबूजी आफिस देखकर कितने खुश होंगे, क्योंकि आफिस के प्रत्येक दरवाजे और फाइल को मैंने साफ किया था। किन्तु मेरा दुर्दैव...

हम सबको छोड़कर बाबूजी चले गये। वे देश के आधार-स्तम्भ थे। वे एक बड़े साहित्यकार, अहिंसावादी, गांधीवादी, अर्थशास्त्री और समाजसेवी थे। वे नेपाल के राजदूत, गुजरात के राज्यपाल रहे और भारत की बहुत-सी संस्थाओं के अध्यक्ष थे। मैंने उनको और मानीजी (मदालसाजी) को चक्की चलाते देखा। वे अपने हाथ के पिसे आटे की रोटी खाना पसंद करते थे। उनका स्वभाव अतिशय प्रेमल था। वे कभी-किसी को कष्ट नहीं देते थे। 'शिक्षा-मंडल' के अन्तर्गत चलने वाले कालेजों को उनके नेतृत्व से ख्याति प्राप्त हुई। 'शिक्षा मंडल' के संस्थापक काकाजी (जमनालाल) थे। लेकिन उसको ख्याति दिलाने वाले बाबूजी थे। वर्धा शहर को बड़े-बड़े नेताओं से भेंट तथा दर्शन करवाने का श्रेय भी उन्हीं को था। वे गये नहीं, अमर हैं। □

संयमी जीवन, स्नेहपूर्ण स्वभाव

नामदेव देटे

□ □

बाबूजी का मेरा संबंध एकदम नजदीक का आया। सन् १९४२ से उनकी सेवा का मुझे मौका मिला। मेरा पूरा जीवन 'शिक्षा-मंडल' में बीत रहा है। इसी कारण मुझे बाबूजी की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ। मुझे उनके परिवार का एक सदस्य माना जाता है, इस माध्यम से मेरा संबंध अत्यन्त निकट का रहा।

१९५३ की बात है। बाबूजी दिल्ली में पालमिंट के मेंबर थे। २२, फिरोजशाह रोड पर

रहते थे। रात और दिन एक-सा काम चलता था। खाने-सोने का भी कोई ठिकाना नहीं रहता था। फिर भी एक दिन शाम को घर पर आये। मुझे पुकारा। किसी ने कहा, मैं बीमार हूं तो मेरी कोठरी में आ गये। देखा तो मैं आधा बेहोश-सा पड़ा था। उन्होंने अपने हाथ से तुरन्त मुझे दवा दी।

बाबूजी ने हिंदुस्तान-भर में अनेक काम किये। वे बहुत-सी रचनात्मक संस्थाओं के मार्ग-दर्शक पदाधिकारी थे। उनका संबंध सारे भारत से था। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति रचनात्मक कार्यों में लगा दी थी। वे शिक्षासुधार, ग्रामोद्धार, गोसेवा, नशाबंदी, गांधी-विचार का प्रचार, हरिजन-सेवा, सर्वधर्म सामंजस्य आदि कार्यों में अपने आप समर्पित थे। उन्होंने शिक्षा-मंडल, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान, गांधी स्मारक निधि, कृषि गोसेवा संघ आदि विभिन्न अखिल भारतीय संस्थाओं के पदाधिकारी का पद विभूषित करके अत्यन्त मौलिक मार्गदर्शन किया था।

मुझे उनकी सेवा में २६ साल रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इतने वर्षों की सेवा में ऐसा कभी नहीं देखने को मिला कि उन्होंने कभी किसी से अशांति से बात की हो। हमेशा शांति कायम रखते थे। इतने वर्षों में देखा, वे हमेशा समत्व बुद्धि कायम रखते थे। उनकी विशेष बात यह थी कि किसी भी विषय पर उनकी मध्यम दृष्टि रहती थी। उनका जीवन अत्यंत सादगी से भरा हुआ था। उनका संयमी जीवन और स्नेहपूर्ण स्वभाव हम सबके लिए लुभावना था।

ऐसे विविध गुणों से युक्त अजातशत्रु नवरत्न बाबूजी की जब भी याद आती है तो आंसू छलक पड़ते हैं।

ऐसे सत्शील बाबूजी चिरनिद्रा में सो गए हैं। उनके बताये सन्मार्ग पर हम चलते रहें, यही भगवान से प्रार्थना है। □

पावन संस्मरणों कीहरियाली

पूर्णिमा पकवासा

□ □

यद्यपि श्रीमन्जी आज सशरीर अपने बीच नहीं हैं, लेकिन उनकी जाग्रत प्रभुमय चेतना विलीन नहीं हुई। सूक्ष्म चेतना के रूप में वे सदैव हमारे बीच हैं और रहेंगे।

विविध पहलुओं से विकसित उनका जीवन ऐसा सम्पन्न हुआ कि जिससे वे स्वयं तो समृद्ध बने ही, साथ में अन्य अनेक के जीवन में भी वैसी प्रेरणा उनके द्वारा मिली।

उनका जीवन सर्वांगीण था। विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने सिद्धि प्राप्त की। वे एक आज्ञा-कारी सुपुत्र, प्रेमपरायण पति, नम्र जामाता, प्रेमल पिता और दादा, प्रखर समाजसेवक, विचार-

शील राजनीतिज्ञ, सम्पन्न शिक्षक, सिद्धहस्त लेखक-कवि, चिंतनशील, अध्यात्मप्रिय, सहृदय तथा सात्विक ऋषि-आत्मा थे।

शिक्षाविद् के रूप में वे विद्यार्थी जगत में अत्यन्त लोकप्रिय थे। उन्होंने अनेक विद्यार्थियों को मार्गदर्शन देकर उनके जीवन को सही मार्ग पर जाने की प्रेरणा दी थी। माता-पिता से प्राप्त आध्यात्मिक संस्कार की बुनियाद इतनी गहरी थी कि उसका संवल उनको अपने जीवन के प्रत्येक कार्य में मिलता रहा और उसी ऐश्वर्य के वल पर उनका जीवन-प्रकाश अविरत सफलता-पूर्वक चलता रहा।

पूज्य वापू के सान्निध्य ने देश-प्रेम की भावना उनके हृदय में ऐसी भर दी कि जिससे वे सत्याग्रही वनकर आजादी के संग्राम में जेल निवासी बने। जैसे कुछ सत्याग्रहियों के जीवन में जेल-निवास उनके आध्यात्मिक जीवन का विकास करने में आशीर्वादस्वरूप हुआ, वैसे ही श्रीमन्जी के वारे में घटित हुआ। उनका मनन, चिंतन, लेखन, साधना उन दिनों एक सीमा तक पहुंच गये, फलतः उनके चिंतनप्रद और प्रेरणादायी पुस्तकों की रचना उनके द्वारा हुई।

उनके साथ मेरा अधिक परिचय मध्यप्रदेश के गिरिनगर पंचमढ़ी में हुआ। उन दिनों मैं इलाहावाद साहित्य सम्मेलन की राष्ट्रभाषा विशारद की परीक्षा की तैयारी कर रही थी। श्रीमन्जी, मदालसा वहन, और दो नन्हें भरत-रजत के साथ पंचमढ़ी के पहाड़ों में घूमते हुए साहित्यिक चर्चा करने में वहुत आनंद आता था। मेरे पाठ्यक्रम की एक पुस्तक तुलसीकृत रामायण के कुछ अध्यायों की चर्चा उनके साथ होती थी। उस समय उनके विचार और चिंतन का दर्शन वड़े विशद रूप में हुआ था।

वे अपने विचारों और कार्यों में बहुत ही चुस्त थे। जब वे गुजरात राज्य के राज्यपाल के पद पर थे, उस समय हमारी ऋतंभरा संस्था को डांग के आदिवासी क्षेत्र में कार्य प्रारंभ करने के लिए सापुतारा गिरिनगर में जमीन की जरूरत थी। प्रारंभिक चर्चाएं चालू थीं। जब यह बात श्रीमन्जी के सामने रखी गई, तो उन्होंने संवंधित सभी विभागों के सचिवों की सभा राजभवन में बुलाई, और विचार-विमर्श के पश्चात एक प्रस्ताव स्वीकार करवाया, जो कि सापुतारा में चलती हुई ऋतंभरा की वर्तमान शैक्षणिक तथा आध्यात्मिक प्रवृत्तियों की वुनियाद है।

ऐसे मेरे प्रिय भाई के पावन संस्मरणों की हरियाली हृदय में सदा बनी रहेगी। □

एक विदेह व्यक्तित्व

महादेवी ताई

□ □

श्रीमन्जी अब अपने पार्थिव शरीर से नहीं रहे, लेकिन उनकी स्मृति आज भी हृदयपटल पर बनी है। काल-प्रवाह कहां और कब रुकता है। देखते-देखते बारह महीने निकल गये।

श्रीमन्जी में वहुत से गुण थे। हमारे संवंध तो वहुत ही घनिष्ट थे। वे मुझे अपनी वड़ी वहन जैसी मानते थे। कितने मृदु, कितने कोमल शब्दों से पुकारते थे ? हमारी तो वात अलग थी, उनके नौकर-चाकरों तक ने उनके मुंह से कभी क्रोध से भरे या कठोर शब्द नहीं सुने। "हमारे साहव तो मानो भरे हुए घड़ा हैं"—ऐसा उनके नौकरों के मुंह से कई वार मैंने सुना है। जो भी उनके संपर्क में आया, कुछ न कुछ लेकर ही गया। वे ऐसे सज्जन थे, जिसके लिए रामायण में आया है :

धूमउ तजइ सहज करुआई। अगरु प्रसंग सुगन्ध वसाई।।

मैंने एक हरिजन वालिका को रखकर उसे पढ़ाया-लिखाया और शादी करवा दी। हम ठहरे आश्रम के फकीर। जैसे-तैसे सव निपट-निपटा गया। लेकिन वहन मदालसा और श्रीमन्जी ने मुझसे वढ़कर उस परिवार को प्रेम-वात्सल्य दिया। उसे अपने परिवार से तनिक भी अलग नहीं माना।

स्व० काकाजी (जमनालालजी) के स्नेह, श्रद्धा के कारण पूज्य वापू और विनोवाजी ने वर्धा कर्म-केन्द्र वना लिया था। उसी केन्द्र-विन्दु से श्रीमन जी ने भी जीवन-यात्रा प्रारंभ की। देश के सभी भागों में गये और परदेश में भी गये। फिर भी इस क्षेत्र को नहीं भूले। भिन्न-भिन्न रचनात्मक संस्थाओं से अपना तादात्म्य जोड़े रहे और अंत तक अपने संवंधों को निभाया। आखिर में उन्हीं कार्यों में अपने को विसर्जित भी कर दिया। जव तक वे हमारे वीच रहे, स्व० काकाजी का अभाव महसूस नहीं होने दिया। श्रीमन्जी के जाते ही एक साथ दोनों का अभाव अनुभव होने लगा। देश, समाज और परिजन की इस क्षति को कौन भरेगा ?

वर्धा में होते थे तो मदालसा वहन के साथ रोज पूज्य वावा के पास आते थे। मंदस्मित मुद्रा में वैठते थे और सहज भाव से देश-विदेश के समाचारों, लेखों, चित्रों आदि की जानकारी वावा को देते थे। वावा के सामने विनम्रतापूर्वक अपना विचार रखते थे। उनकी सौम्य, साम्य-मूर्ति। उनके सौजन्य से वावा संतुष्ट रहते थे। यदि कभी किसी कारण श्रीमन्जी पवनार नहीं आते थे, तो वावा याद करते, "क्यों आज श्रीन्म वाहर गया है क्या ?" यदि कभी सार्वजनिक हित-चिंतन में व्यावहारिक अड़चन आती थी, तो भी तुरंत श्रीमन्जी को याद किया करते थे। उनका आश्रम में आते रहना अपने आप में सवके लिए सुखद और मंगल लगता था।

वे एक साथ उत्तम लेखक, वक्ता, कवि, राजनीतिज्ञ, गांधी भक्त और संत थे। सत्ता के वड़े-से-वड़े पदों पर रहकर भी उससे जनक की तरह अलिप्त रहे। उन्होंने संतुलन साध लिया। तुलसीदास के शब्दों में वे अपने को—"जोग-भोग मंह राखेउ गोई" की तरह रखते थे।

वे गृहस्थ थे, लेकिन गृहस्थी में जलकमलवत रहे। वे सच्चे कर्मयोगी थे। वाहर से सतत सर्वत्र क्रियाशील दीखते हुए अंदर से वैरागी थे। सतत परमेश्वर में मन लगा रहता था और "सियाराममय सव जग जानी" की भावना से वह कर्म में संलग्न रहते थे।

अपने विषय में वे स्वयं ही अपनी कविता में लिख गये हैं :

"नाम की चिंता नहीं, अस्तित्व मिट्टी में मिले,
वीज-सा मैं मर मिटूं, पर राष्ट्र तरु फूले-फले।"

"अनासक्ति ही पुण्य है,
मोह पाप का मूल।"

ऐसे पुरुष किसी विशेष प्रयोजन से ही भेजे जाते हैं, और काम होते ही उन्हें वापस बुला लिया जाता है।

उन्होंने जो सुगंध बिखेरी है, उससे समाज को, राष्ट्र को और मानव मात्र के तप्त हृदय को शांति मिले। □

वह व्यक्ति नहीं, संस्था थे

मोहनलाल भट्ट

□ □

सन् १९३७ में हरिपुरा कांग्रेस के समय चटाई से वने एक कमरे में श्री राधाकृष्ण वजाज ने श्रीमन्नारायणजी का प्रथम परिचय कराया। वे वर्धा से श्रीमती मदालसा के साथ लग्न में वंधकर हरिपुरा आए थे। मैंने देखा युवक श्रीमन्नारायण तेजस्वी किन्तु विनयी तथा शांत स्वभाव के हैं। किन्तु उस समय ऐसी कोई कल्पना नहीं हुई कि वे इतना शीघ्र इतने ऊंचे उठ जायेंगे। शिक्षा और रचनात्मक कार्य में प्रेरणा देने वाले एक नेता का रूप ले लेंगे।

उसके वाद तो उनसे मिलना नहीं हो पाया, परन्तु १९३८ में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' ने अपना कार्य गुजरात में उठाया और श्री काकासाहेव कालेलकर ने गुजरात के हिन्दी कार्य को, राष्ट्र-भाषा प्रचार के काम को, वढ़ावा देने के लिए लिखा तो राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति के साथ गुजरात में जो कार्य चल रहा था, उसे जोड़ दिया गया और गुजरात में भी गुजरात प्रांतिक राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वना ली गई।

काकासाहेव के साथ श्रीमन्नारायणजी समिति का कार्य कर रहे थे। १९३८ के वाद श्री सत्यनारायणजी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का कार्य संगठित करने के लिए मद्रास से आए थे। फिर जव वह मद्रास लौट गए तो श्रीमन्जी राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के मंत्री वने।

समिति का कार्य वहुत वेग से आगे वढ़ा; परन्तु गांधीजी एवं श्री टंडनजी में हिन्दी हिंदुस्तानी की लिपि के संवंध में मतभेद पैदा हो गया और गांधीजी ने हिंदुस्तानी प्रचार सभा का अलग संगठन वनाया। उस समय समिति से श्री काकासाहेव एवं श्रीमन्जी का संस्थागत संबंध छूट गया। परंतु समिति के प्रति श्रीमन्जी का सद्भाव एवं प्रेम सदा वना रहा।

१९५१ में जव हिन्दी साहित्य सम्मेलन पर अदालत द्वारा रिसीवर वैठाया गया, उस समय समिति पर भी संकट आ गया और उन्हीं दिनों समिति का मंत्री पद संभालने की जिम्मेदारी मुझे उठानी पड़ी, वर्धा आने पर श्रीमन्जी, राधाकृष्ण वजाज आदि पुराने गांधी कार्य में संलग्न लोगों का सद्भाव और सहानुभूति मुझे तथा संस्था को प्राप्त हुई।

श्रीमन्जी योजना आयोग के सदस्य वनकर दिल्ली गए और उन्होंने पंचवर्षीय योजना के कार्य में सहयोग दिया, पर उसके साथ ही दिल्ली में उस समिति के बहुत बड़े आधार स्तंभ बन गये। समिति को हिन्दी के लिए उनकी बड़ी सहायता प्राप्त हुई। समिति के लिए सरकार के द्वारा सहयोग और सहायता पाने में हमें उनसे बड़ी मदद मिली।

नेपाल में राजदूत वनकर जब वे काठमांडू गए तो वहां हिन्दी के कार्य को बढ़ावा देने, लोगों में उसका प्रचार करने आदि जनरुचि को बढ़ाने के लिए उन्होंने प्रयत्न किया।

'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की रजत जयंती के समय समारोह की अध्यक्षता के लिए पं० जवाहरलाल नेहरूजी को, और उद्घाटन के लिए राष्ट्रपति राजेन्द्र वावू को तैयार करने का दायित्व श्रीमन्जी ने ही उठा था। लिया, वे दोनों अपने अस्वास्थ्य के कारण नहीं आ सके तो टेप रिकार्ड किया हुआ उनका अध्यक्षीय और उद्घाटन भाषण लेकर स्वयं उपस्थित हुए। श्री लाल-वहादुर शास्त्री अध्यक्षपद पर आसीन हुए और समारोह सुचारु रूप से सम्पन्न हुआ।

गुजरात के राज्यपाल वनने के वाद जव कभी वर्धा आये, उन्होंने हर बार राष्ट्रभाषा प्रचार समिति में पधारने का और कार्यक्रम में भाग लेने का नियम-सा बना लिया था। समिति भी उनके आगमन की सूचना मिलने पर उनके योग्य आयोजन करने से नहीं चूकती थीं। और अपने संगठन और अपनी कठिनाइयों के संवंध में वरावर उनसे परामर्श किया करती थी। वड़े ध्यान से वे सव बातों को सुनकर अपनी सलाह-सूचना देते थे।

राज्यपाल के पद से मुक्त होने के बाद तो उन्होंने संस्था के काम में प्रत्यक्ष रस लेना आरंभ कर दिया था। वे समिति के कोषाध्यक्ष वने थे। संस्थान ने विश्व हिंदी सम्मेलन का आयो-जन किया, उसमें उनका मुख्य हाथ था और उनके आग्रह से ही विश्व हिंदी विद्यापीठ की योजना की गई। श्री काकासाहेब कालेलकर तथा विदेश से आये हुए मुख्य प्रतिनिधियों द्वारा विश्व हिंदी विद्यापीठ के भवन की नींव डाली गई, जो अब वनकर तैयार हो गया है।

'राष्ट्र भाषा प्रचार समिति' के कार्य में ही उनका योग नहीं था, उन्होंने अपने ऊपर कई रचनात्मक कार्यों का भार उठा लिया था। गांधी स्मारक निधि के वे अध्यक्ष थे। सर्व सेवा संघ के भी वे प्रधान कार्यकर्त्ता थे। प्राकृतिक चिकित्सा में भी उनकी वहुत गहरी दिलचस्पी थी।

सत्याग्रह आश्रम, महिला विद्यापीठ, नागरी लिपि परिषद, इन सबमें उनका योगदान उल्लेखयोग्य था। श्रीविनोबाजी ने आचार्यकुल की स्थापना की और उसके कार्य में भी श्रीमन्-जी आगे रहे।

शिक्षा का क्षेत्र तो मानो उनका अपना ही क्षेत्र था। वर्धा की प्रधान शिक्षा संस्था के वे अध्यक्ष थे। सच तो यह है कि शिक्षा-क्षेत्र में ही सिद्धि प्राप्त करके वे सार्वजनिक क्षेत्र में विशेष शक्ति के रूप में उभरे और राज्यपाल के पद से मुक्त होने पर उन्होंने अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन बुलाया था, जिसमें समर्थ शिक्षा-शास्त्रियों ने भाग लिया था। वे बहुत दिनों से अनुभव कर रहे थे कि शिक्षा के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन आवश्यक है। इसी दिशा में विचार-विमर्श के लिए यह सम्मेलन वुलाया था। इस सम्मेलन की विशेषता यह थी कि वहुत से प्रस्ताव इसमें न लाकर जो विचार-विमर्श हुआ उसका सार निकालकर, सर्वसम्मति से एक प्रस्ताव स्वीकार किया गया, जिससे शिक्षा-क्षेत्र में सुधार और परिवर्तन के लिए निश्चित दिशा और कार्य-पद्धति की असंदिग्ध सूचना मिल सके।

वास्तव में वे व्यक्ति नहीं थे, संस्था थे, जिसमें अनेक रचनात्मक कार्य, विचार तथा भावनाओं का समन्वय हुआ था। □

गांधी विचार और कार्य के एक ध्वजवाहक

विश्वनाथ टण्डन

□ □

श्रीमन्नारायणजी के आकस्मिक निधन से देश ने गांधी-विचार और कार्य का एक ध्वजवाहक खो दिया। इस समय उनकी अवस्था केवल ६५ वर्ष की थी और वे जनता सरकार की स्थापना के अवसर का लाभ उठाकर देश को गांधी की दिशा में ले जाने के लिए प्राणपण से प्रयत्नशील थे। मृत्यु के पूर्व, नौ महीनों से, वे इस बात का प्रयास कर रहे थे कि गांधीनिष्ठ कार्यकर्त्ताओं और सरकार के बीच का फासला कम हो, देश की शिक्षा को गांधीजी के विचारों के अनुरूप एक नई दिशा मिले, तथा देश में मद्य-निषेध लागू किया जाए। राष्ट्र-पिता की स्मृति में स्थापित 'गांधी स्मारक निधि' के अध्यक्ष होने तथा अपने स्वयं के विचार, अनुभव तथा सामाजिक प्रतिष्ठा को देखते हुए उनके लिए यह स्वाभाविक ही था।

विगत तीस वर्षों से भी अधिक समय से श्रीमन्जी गांधी-जीवन और विचार के व्याख्याता के रूप में अधिकाधिक सामने आते गये थे। वे १९३६ में सेठ जमनालाल बजाज के संपर्क में आये और इसके फलस्वरूप उनका जो संपर्क गांधीजी से स्थापित हुआ था, उससे उनकी प्रतिभा को एक नई दिशा मिली थी।

मेरा और उनका परिचय १९२८ की जुलाई में उस दिन हुआ था, जब हम लोग एक सहपाठी के नाते इंटर प्रथम वर्ष में गणित वर्ग के लिए एकत्र हुए थे। यह घटना आगरा कालेज, आगरा की है। मैंने फर्रुखाबाद के किश्चियन हाई स्कूल से पास करके इंटर विज्ञान में प्रवेश लिया था और श्रीमन्जी ने मैनपुरी के मिशन हाई स्कूल से पास करके इंटर आर्ट्स में, जिसमें गणित उनका विषय था। दोनों का गणित वर्ग साथ-साथ होता था और हम लोगों की कुल संख्या साठ से अधिक रही होगी। गणित वर्ग के प्रथम दिवस छात्र तो अधिकांश में एक-दूसरे से अपरिचित थे। एक-एक कर या दो-दो, तीन-तीन की टोलियों में प्रवेश ले रहे थे, और पहले से पहुंचे छात्र नवागंतुकों को कुतूहल के साथ देख रहे थे। मैं भी कुछ पहले पहुंच गया था। श्रीमन्जी कुछ बाद में आये थे। उनके रूप, उनकी भाव-भंगिमा और उनके ढंग से एक विशिष्टता टपकती थी। ऐसा याद पड़ता है कि वे सभी एकत्र छात्रों के लिए आकर्षण-बिंदु बन गये थे। दुबले-पतले और गौर वर्ण के, बंद गले का कोट तथा धोती पहने, सिर पर गोल फेल्ट टोपी, गंभीर सौम्य और सज्जन मुद्रा, इन सबके मिलने से वे व्यक्ति-विशेष लगते थे। प्राध्यापक के आने के बाद जब हम लोगों ने अपना-अपना परिचय दिया, तब यह पता लगा था कि वे कौन हैं और कहां से आये हैं।

उस दिन का अमिट चित्र आज भी मेरे सामने उपस्थित हो जाता है।

श्रीमन्‌जी ने सभी प्राध्यापकों पर बहुत अच्छी छाप छोड़ी थी। एक अच्छे विद्यार्थी होने के साथ-साथ वे एक अच्छे वक्ता भी माने जाते थे। वे उन थोड़े छात्रों में थे, जिन पर प्राध्यापक-गण विशेष स्नेह प्रदर्शित करते थे।

मुझे विश्वास है कि श्रीमन्‌जी ने भी मेरी भांति गांधीजी के प्रथम दर्शन १९२९ में ही किये थे, जबकि बापू अपने उत्तर-प्रदेश का दौरा प्रारंभ करने के लिए सितम्बर में आगरा आये थे और वहां कुछ दिन ठहरे थे। उस समय कालेज के हाल में हम सभी में एक विशेष उत्साह था और हममें बहुतों के सिर पर उस दिन गोल टोपी का स्थान या तो गांधी टोपी ने ले लिया था या फिर सिर नंगे रहने लगे थे। श्रीमन्‌जी का सिर नंगा रहने लगा था, ऐसा मुझे लगता है। एक ग्रुप-फोटो में जो फरवरी १९३० में डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ एक प्राध्यापक और कुछ छात्रों ने खिंचवाया था, उसमें श्रीमन्‌जी नंगे सिर हैं और मैं गांधी टोपी में। इससे ऐसा लगता है कि उस समय तक राष्ट्रीय आंदोलन का उन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा था और इसका समर्थन कुछ आगे होने वाली घटनाओं से भी होता है।

१९३० का वर्ष राष्ट्रीय आंदोलन का एक विशेष वर्ष था। उस वर्ष इंटर पास कर के वे प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्ययन हेतु चले गये थे। मैं आगरा कालेज में ही रहा। अतः उनसे मेरा संपर्क टूट गया था। फिर भी इतना तो मालूम हो गया कि विश्वविद्यालय के छात्रकाल में उनका एक अंग्रेजी पद्यसंग्रह 'दि फाउन्टेन आफ लाइफ' के नाम से प्रकाशित हुआ है, जिसमें भूमिका डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की है और जिसमें डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रशंसा के कुछ शब्द हैं।

श्रीजमनालालजी बजाज के कारण वर्धा आने पर उनकी रुचि शिक्षा की ओर और फिर कामर्स कालेज, वर्धा के प्राचार्य बनने पर अर्थशास्त्र की ओर मुड़ी। किंतु उनकी साहित्यिक प्रतिभा का लाभ उनकी लेखनी को सदैव मिलता रहा। उनके विचारों में स्पष्टता, भाषा में प्रवाह और सादगी उनकी शैली की विशिष्टता रही। अधिकांश व्यक्तियों ने उनको एक गांधीनिष्ठ अर्थशास्त्री के रूप में ही जाना और पहचाना था। यह स्वाभाविक ही था, क्योंकि १९४५ में प्रकाशित उनकी 'गांधियन प्लान' नामक पुस्तक को, जिसका प्राक्कथन गांधीजी ने ही लिखा था, बहुत ख्याति मिली थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामंत्रित्व काल में 'आर्थिक समीक्षा' का संपादन और फिर योजना-आयोग की उनकी सदस्यता ने उनके अर्थशास्त्री होने पर और भी मुहर लगा दी थी, यद्यपि १९४७ में उनकी एक पुस्तक 'ए गांधियन कांस्टीट्यूशन फार इंडिया' प्रकाशित हुई थी और उसका प्राक्कथन भी गांधीजी का ही था। उसमें उन्होंने लिखा था, "आचार्य अग्रवाल का मेरे लेखों का अध्ययन ही इस पुस्तिका के ढांचे का आधार है। कई वर्षों से वह उनकी व्याख्या करते रहे हैं।"

श्रीमन्‌जी की कुछ पुस्तकें जहां पद्य और निबंधों की हैं, वहां अधिकांश गांधी-आर्थिक विचार, भारतीय संयोजन, गांधी तथा विनोबा से संबंधित हैं। किंतु केवल इन्हीं के माध्यम से श्रीमन्‌जी ने गांधी-विचार और कार्य को आगे बढ़ाने का प्रयत्न नहीं किया। व्यक्तिगत रूप से तथा संसद सदस्य, कांग्रेस के महामंत्री, योजना-आयोग के सदस्य, नेपाल में राजदूत तथा गुजरात के राज्यपाल की हैसियत से भी, उन्होंने वैसा ही किया था।

जहां तक उनका एक व्यक्ति के नाते ऐसा करने का प्रश्न है, उन्होंने पूर्व और पश्चिम के

अनेक देशों का भ्रमण किया था, उन देशों में प्रचलित शिक्षा-पद्धतियों के बारे में जानकारी प्राप्त की थी और वहां के लोगों को सर्वोदय से अवगत कराया था। १९६५ में नेपाल के राजदूत बनने पर उन्होंने भारतीय दूतावास के भोजों में शराब बंद कर दी थी, और बाद में गुजरात के राज-भवन में भी ऐसा किया था। काठमांडू के दूतावास में शराब बंद करने पर इंडियन एक्सप्रेस के भूतपूर्व सुविख्यात संपादक फ्रैंक मोरेस ने इसके लिए उनकी बड़ी आलोचना की थी, किंतु इन बातों का श्रीमन्‌जी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सज्जनता तथा मृदुता के साथ-साथ उनमें दृढ़ता भी थी।

संसद की उम्मीदवारी के लिए वे प्रार्थी न थे और चयन के समय वे कांग्रेस के चार-आना सदस्य भी नहीं थे। उस समय चुनाव में सभी उम्मीदवारों से मिलकर उन्होंने अपने चुनाव-क्षेत्र के लिए एक आचार-संहिता तय की थी और सदस्य बन जाने पर वे अपने क्षेत्र के ५०० चुने व्यक्तियों को संसद के मुख्य कार्यों से पत्रक द्वारा अवगत रखते तथा उनसे सुझाव मांगते थे। अपने संसद काल में वे शिक्षा मंत्रालय की बुनियादी तालीम की स्थायी समिति के अध्यक्ष बनाये गए थे और उस नाते उनका यह प्रयास था कि प्रादेशिक सरकारें नई तालीम की शिक्षा-पद्धति को ईमान-दारी के साथ अपनायें। उसके संबंध में उन्होंने प्रचलित भ्रांतियां दूर कीं और यह बताया कि वह सर्वांगीण विकास में सहायक, शोषणहीन समाज को जन्म देने वाली 'जीवन द्वारा जीवन के लिए' शिक्षा है। उन्होंने नवयुवक सदस्यों का एक अनौपचारिक संगठन भी बनाया था, जो राष्ट्र की विभिन्न समस्याओं पर गांधी-दृष्टि से विचार करते थे।

कांग्रेस के महामंत्री बनने पर रचनात्मक कार्य को आगे बढ़ाने में उनके प्रयासों में तीव्रता आई थी। उनके काल में महासमिति का बुलेटिन 'आर्थिक समीक्षा' नियमित और पाक्षिक बना और उसमें राष्ट्र की समस्याओं पर गांधीनिष्ठ रचनात्मक दृष्टिकोण उपस्थित किया गया। इसका प्रयास भी हुआ कि प्रादेशिक कांग्रेसी सरकारें रचनात्मक कार्यक्रमों में, विशेष रूप से भूदान में, सक्रिय रुचि लें। इसके लिए क्षेत्रीय संगठन नियुक्त किये गए थे। कांग्रेस के हैदराबाद (१९५३) और आवड़ी (१९५५) अधिवेशनों में भूदान समर्थक प्रस्ताव पास किये, कांग्रेस कार्यकारिणी ने एक विशेष रचनात्मक उपसमिति का गठन किया, जिसमें अध्यक्ष ने अपने विशेषाधिकार से काकासाहेब कालेलकर, आर्यनायकमजी जैसे कुछ रचनात्मक कार्य के प्रमुख लोगों को मनोनीत किया। कार्यालय में एक रचनात्मक विभाग खोला गया था, जिसमें एक किसान उपविभाग भी था, जिसका काम भूमि-सुधारों को तीव्रता प्रदान करना था। श्रीमन्‌जी के कारण ही ग्रामीण पंचायत व्यवस्था का अध्ययन हुआ और भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस से संबंध नियमित हुए।

१९५८ में वे योजना-आयोग के कृषि, सामुदायिक विकास और सहकारिता सदस्य बने। वहां भी उन्होंने गांधीकार्य को आगे ले जाने का प्रयास जारी रक्खा। भूमिसुधार, सर्विस को-आपरेटिव की स्थापना, पशुसुधार आदि को प्रोत्साहन देने के प्रयत्न किये। तीसरी पंचवर्षीय योजना में ऐसी योजनाओं को स्थान दिलवाया, जिनसे आदिवासियों तथा हरिजनों की दशा में सुधार हो। लघु सिंचाई योजनाओं, भू-रक्षण, खुश्क खेती आदि के लिए पर्याप्त धनराशि उपलब्ध कराई। उन्होंने नई तालीम के प्रचार तथा प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में विकास की कोशिश की।

नेपाल के राजदूत बनने पर उन्होंने नेपाल-भारत मित्रता को जिस प्रकार सुदृढ़ बनाया, वह उत्तम राजनय का एक उदाहरण है, जिस पर गांधी-विचार की छाप थी। वह राजनय सच्ची सहानुभूति, सज्जनता तथा सत्यता पर आधारित था।

गुजरात के राज्यपाल के काल में उन्होंने उस प्रदेश की रचनात्मक संस्थाओं में विशेष रुचि ली और उनको प्रोत्साहन प्रदान किया। राज्य में बुनियादी तालीम की समीक्षा के लिए एक समिति नियुक्त की और ग्रामीण बेकारों को काम देने की योजना चलाई। बेकार इंजीनियरों और टेक्नीशियनों को अपना स्वयं का काम शुरू करने के लिए सुविधाएं दिलवाईं। अहमदाबाद में गंदी बस्तियों, गंदगी तथा प्रदूषण के निराकरण के प्रयास करवाये।

१९७३ में राज्यपाल के पद की अवधि समाप्त होने पर वे वर्धा वापस आये और तब सभी स्तर के कार्यकर्ताओं से इनका प्रत्यक्ष संपर्क प्रारंभ हुआ, जो समय के साथ बढ़ता गया था। इसका एक प्रमुख कारण १९७४ में उनका गांधी स्मारक निधि का अध्यक्ष बनना था। गांधी जन्म शताब्दी के बाद से निधि का विशेष कार्य गांधीनिष्ठ रचनात्मक संस्थाओं और कार्यकर्ताओं में सामंजस्य तथा मेल-जोल बैठाना और उनके गुणात्मक स्तर को ऊपर उठाने का रहा है। इसके कारण अध्यक्ष बनने पर श्रीमन्जी के लिए एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र खुल गया और अपनी व्यक्तिगत प्रतिष्ठा तथा प्रशासनिक गुणों के कारण वे इस कार्य के लिए बहुत उपयुक्त थे।

बहुत दिनों तक प्रशासन में रहने के कारण, उनको अपने नये दायित्वों को भली प्रकार समझने और अपने को उनके अनुकूल बनाने में कुछ समय अवश्य लगा। इन संस्थाओं और कार्यकर्ताओं का मानस प्रशासनिक लोगों के मानस से अलग होता है, किंतु श्रीमन्जी की आत्म-विश्लेषण तथा भूल को न दुहराने की वृत्ति, सज्जनता आदि गुणों ने उनको सफलता प्रदान की और वे स्नेहभाजन बनते गये।

भूदान आंदोलन के समय से ही श्रीमन्जी विनोबाजी तथा सरकार के बीच एक कड़ी का काम करते आये थे, और राज्यपदों से मुक्त होने पर, विनोबाजी के पंचशक्ति सहयोग के सिद्धांत के आधार पर तथा उनके मार्गदर्शन में, उस भूमिका को निभाने का उनको और भी अवसर प्राप्त हुआ। बुनियादी तालीम के लिए तो उनकी सक्रियता स्वाभाविक थी। १९३७ के वर्धा शिक्षा सम्मेलन को बुलाये जाने में, और बुनियादी तालीम की स्थापना का श्रेय इसी सम्मेलन को था, श्रीमन्जी का विशेष हाथ था। किंतु अब उन्होंने नागरी लिपि को विनोबाजी के विचारानुसार बढ़ावा देने, आचार्यकुल को सक्रिय करने, प्राकृतिक चिकित्सा को लोकप्रिय बनाने तथा मद्यनिषेध के पक्ष में कानून बनवाने के कार्यों को भी विशेष रूप से उठाया। आपातकाल में सरकार की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाने के लिए उन्होंने रचनात्मक ढंग से प्रयास किया था। जुलाई १९७७ में अखिल भारतीय रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन को दिल्ली में करके रचनात्मक संस्थाओं और भारत सरकार की दूरी को कम करने की चेष्टा की। उसी वर्ष उनकी मृत्यु से कुछ दिनों पूर्व दिसम्बर में दिल्ली में हुआ शिक्षा सम्मेलन उनकी एक बहुत बड़ी उपलब्धि थी। वह प्रधानमंत्री तथा केंद्रीय शिक्षा-मंत्री के हाथों को मजबूत करने वाला तथा भारतीय शिक्षा-पद्धति को एक नई दिशा देने की संभावना रखने वाला था।

इस प्रकार श्रीमन्जी अपने जीवन के लगभग अंतिम चालीस वर्षों से बापू के कार्य और विचार के प्रति समर्पित थे। वह अपने निजी जीवन में गांधीजी के तथा विनोबाजी के विचारों को उतारने में भी प्रयत्नशील रहे। उनका साधनशुद्धि पर बल, उनकी कर्मठता, उत्तरदायित्व की भावना, निष्कपटता, बारीकियों में जाने की वृत्ति आदि यह बताते हैं कि बापू से उन्होंने क्या-क्या लिया था। सच यह है कि ये गुण उनमें शुरू से ही विद्यमान थे, जिनको जमनालालजी, बापू

तथा विनोबाजी के संपर्क ने और भी निखरने का अवसर दिया। गांधीजी ने एक वार उनके वारे में लिखा था, "जीवन के जिस मार्ग का मैं पोषक हूं, उसके साथ संभवतः उनकी पूरी सहानुभूति है।" इस वाक्य में वापू की अचूक दृष्टि ने उनका सही मूल्यांकन कर लिया था। □

तटस्थ, स्पष्ट रचनात्मक दृष्टिकोण वाले श्रीमन्‌जी

पूरनचन्द्र जैन

□□

अच्छा आकर्षक चेहरा-मोहरा, स्वस्थ देह-मन-वुद्धि, ललाई-गोराई लिये, गेहुएं भरे वदनवाले श्रीमन्नारायण वहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे। उम्र उनकी अधिक नहीं थी। सत्तर के अंदर ही थे, लेकिन 'साठा' व्यक्ति के साथ कहीं कुछ भी जुड़ता हो, दिल-दिमाग में वे पाठा थे। कुछ विनोदी, अधिक गंभीर, शालीन और वेश-भूषा, खान-पान, रहन-सहन, व्यवहार में आभिजात्य श्रेणी के थे।

एक वर्ष होने को आ रहा है। ईसा के नये वर्ष के विलकुल आरंभ की दुर्भाग्यपूर्ण एक रात की याद दिलाता हूं। 'गांधी स्मारक निधि' के अध्यक्ष के नाते, निधि के तथा अन्य सार्वजनिक कार्यक्रम से दिल्ली आना-जाना उनका रहता था। २ जनवरी की शाम को निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार वे वर्धा रवाना हुए। मदालसावहन से, मुझ से, वातचीत करते अच्छे-भले चले। कार्यालय के एक साथी उन्हें पहुंचाने गये, जी० टी० एक्सप्रेस में विदा कर आए। अचानक मध्यरात्रि के करीव उनके निजी सचिव का, जो साथ ही गये थे, ग्वालियर से फोन आया, "आगरा स्टेशन से उनकी तवीयत खराव हुई, ग्वालियर स्टेशन पर उन्हें उतरने और अस्पताल जाने की सलाह दी गई, वहीं अस्पताल में वे हमें छोड़ गए। मदालसा वहन निधि के अपने निवास में फोन उठा नहीं रही हैं—शायद गहरी नींद सोई हैं, मैं उन्हें दुःखद सूचना दे दूं।" यों अप्रत्याशित अकस्मात वज्रपात हुआ। उस रात की अनहोनी खबर, उस खबर से एक ओर अनदेखी घटना का कल्पना-आधारित और दूसरी ओर मदालसावहन तथा हम साथियों पर गुजर रही आपबीती का चित्र आज भी उभर-उभर आता है। साथ ही आ घेरती हैं नई-पुरानी स्मृतियां एक के वाद दूसरी।

रियासतों में भी राजनैतिक संगठन बनने उत्तरदायी शासन और नागरिक अधिकारों की मांग उठाई जाने की नीति राष्ट्रीय कांग्रेस ने जाहिर की, तब जयपुर रियासत का प्रजा-मण्डल सन १९३६-३७ के लगभग गठित हुआ। गांधीजी की अनुमति और आशीर्वाद से काकाजी (जमनालालजी वजाज जो, जयपुर रियासत के एक बड़े ताजीमी ठिकानेदार के कस्वे सीकर के पास काशी-का-वास से वर्धा गोद गये थे), प्रजामण्डल के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। रियासत में प्रवेश पर पाबंदी लगने से उसे तोड़ने के सत्याग्रह-आंदोलन में वे गिरफ्तार किये जाकर नजरबंद रक्खे गये। और भी गिरफ्तारियां हुईं और दमन-चक्र चला। अंत में आंदोलन की सफल

समाप्ति के बाद काकाजी और अन्य नेताओं का जयपुर, राजस्थान, में आना-जाना रहा। उस समय श्रीमन्‌जी से प्रथम संपर्क हुआ होगा, लेकिन अधिक संपर्क और परिचय देश की स्वाधीनता के बाद बढ़ा। उनकी नजर मेरे ऊपर प्रथम संपर्क के समय से थी, यह तो उन्होंने पिछले वर्षों में गांधी स्मारक निधि के, मंत्रिपद के लिए मुझे खींच लाने के बाद एक बार अंतरंग बातचीत के दौरान सहज ही बताया।

गांधी-विचार और सत्य-अहिंसा के रास्ते देश की स्वाधीनता प्राप्ति और देश के नव-निर्माण, सर्वोदय समाज की स्थापना, आदि के प्रति आकर्षित होने, उस सब रुचि और भाग लेने आदि के कारण कई व्यक्तियों की रचनाएं, पत्र-पत्रिकाएं, पुस्तकें पढ़ने में आतीं, उनमें श्रीमन्‌जी का विशिष्ट स्थान था। भूदान-ग्रामदान नई तालीम, रचनात्मक कार्यक्रम और गांधी-निष्ठ संगठन तथा प्रवृत्तियों के प्रसंग में श्रीमन्‌जी के निकट परिचय बढ़ा जो एक तरह से पारिवारिकता तक पहुंच गया।

श्रीमन्‌जी ने, उच्च शिक्षा प्राप्त कर (कुछ समय विदेश में भी) गांधीजी के संपर्क में आने के बाद कुछ समय शिक्षक रहने के अलावा कांग्रेस संगठन के सक्रिय सेवक और महामंत्री से लेकर स्वैच्छिक सेवा-संस्थाओं और रचनात्मक प्रवृत्तियों के संचालन, योजना-आयोग की सदस्यता, राजनैतिक राजदूत, राज्यपाल आदि पदों को संभाला। किंसी भी संगठन, पद या कार्यक्रम में वे रहे, राजनैतिक प्रशासकीय दायित्व उन्होंने जो भी संभाला, उनकी गांधी-निष्ठा तथा सर्वोदय अर्थ और समाज-रचना की श्रद्धा, तड़प-लगन सब में दिखाई देती थी और, वैसे कार्यक्रम की नींव वे जगह-जगह जमा देते थे। शिक्षा, अर्थ रचना, रचनात्मक कार्यक्रम में समन्वय और क्रांति-तत्व, नव-समाज-निर्माण, भूदान-ग्रामदान-ग्राम स्वराज्य अभियान, आदि में उनकी विशेष रुचि थी। राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक बड़ी-छोटी परिषदों, सम्मेलनों, कार्यकर्तावर्ग और आचार्यों की विचार-गोष्ठियों तथा समाजों में किसी प्रस्ताव, वक्तव्य या अभिमत के लिए सर्वसम्मति अथवा सर्वानुमति बना लेने में वे बहुत कुशल थे। इसका एक कारण भिन्न या विरोधी विचार और तर्क को प्रकट होने देने और समय की तंगी होने पर भी उसे सुनने-समझने को पर्याप्त समय निकाल लेने, सहिष्णुता और धैर्य रखने की उनमें अद्‌भुत वृत्ति और क्षमता थी।

इस प्रकार की समन्वय-साधना और सहकार-भावना बढ़ाने में वे अधिकतर सफल होते थे। वे लोक-सेवक नहीं थे, लेकिन 'सर्वसेवा संघ' की सभाओं में वे सादर आमंत्रित किये जाते थे और विचार-विमर्श तथा चिंतन-मन्थन में उनका मूल्यवान योगदान रहता था। 'सर्व सेवा संघ' के आपातकालीन पवनार-अधिवेशन में एकता बनाये रखने का उनका प्रयास रहा, औपचारिक रूप में संगठन टूटा नहीं, लेकिन सर्वोत्तम कार्यकर्त्ताओं के बीच जो दरार पड़ी, उसे रोका नहीं जा सका। बाद में विनोबा के सान्निध्य में देश की परिस्थिति पर आचार्यों के सम्मेलन से सामयिक तटस्थ अभिप्राय जाहिर किये जाने में उनका बड़ा हाथ था। विभिन्न पक्ष, विशेषतः सत्तारूढ़ दल, उस अभिप्राय को सुन-समझ अपनी रीति-नीति-क्रम बदलते तो देश की परिस्थिति बिगड़ने से बचती और इतिहास शायद भिन्न हो जाता। गांधी स्मारक निधि की अध्यक्षता की अवधि में उनकी महत्ता की कुछ देन हैं देश के प्रतिनिधि शिक्षाविदों और शिक्षाशास्त्रियों की दो परिषदों द्वारा राष्ट्रीय शिक्षा का बुनियादी परिवर्तनों पर आधारित प्रारूप, प्राकृतिक चिकित्सा-पद्धति को कई एक राज्यों में मान्यता और उनकी संस्थाओं को अधिक सक्रिय किया जाना, रचनात्मक

संस्थाओं और कार्यकर्त्ताओं में परस्पर 'समन्वय-सहकार' और उनका गुणात्मक विकास, विकेन्द्रित अर्थ-रचना और सर्वोदय समाज-रचना कार्यक्रम की गतिशीलता, आचार्य सम्मेलन द्वारा राष्ट्रीय स्थिति पर स्वतंत्र पक्षमुक्त सर्वानुमत आधारित अभिमत की अभिव्यक्ति।

श्रीमन्जी का हिन्दी-अंग्रेजी भाषाओं पर बहुत अच्छा अधिकार था। वे अच्छे लेखक, वक्ता, विचारक, संभाषी थे। वह 'नरम उग्र' थे और विचार, समस्या, घटना आदि की खरी स्पष्ट समीक्षा-आलोचना करते हुए भी रचनात्मक दृष्टिकोण, अंत में अपनाते थे। कार्यक्रम जो तय हो जाता था, तय करा लेते, उसे व्यवस्थित तरीके और शीघ्रता से तथा सातत्य से आगे बढ़ाने, पूरा कराने में वे स्वयं जी-जान से लगते और साथियों, कार्यकर्त्ताओं को भी वैसा देखना चाहते थे, इसके लिए पूरा प्रयत्न करते और पीछे पड़ते थे।

देश के आज के सार्वजनिक जीवन, विशेषत: सर्वोदय और रचनात्मक क्षेत्र में श्रीमन्जी जैसे तटस्थ, स्पष्ट और रचनात्मक दृष्टिकोण वालों की कमी होती जा रही है। नया नेतृत्व और कार्यकर्त्ता शक्ति बढ़ाने की बहुत जरूरत है, ताकि सही लोक-जागरण हो और लोक-शक्ति ठीक पटरी पर चल सके। □

उनकी अंतिम इच्छा

पांडे गुरुजी

□ □

गुजरात के राज्यपाल पद से निवृत्त होने के पश्चात बाबूजी ने अपना सारा ध्यान सेवाग्राम, वर्धा तथा पवनार के रचनात्मक कार्यों को सुसंगठित करने में ही केंद्रित किया। सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के कार्यालय मंत्री के नाते मेरा उनसे अति निकट का संपर्क आया। मुझे छोटे भाई की तरह उनका प्यार मिला।

सेवाग्राम आश्रम के विकास के संबंध में दिन-रात उनका चिंतन चलता रहा और आश्रम की हर बात के संबंध में उनका योग्य मार्गदर्शन हमें मिलता रहा। वे हर शुक्रवार को आश्रम की सांयकालीन प्रार्थना में अंत तक नियमित रूप से रहते थे, और इसी समय प्रत्यक्ष निरीक्षण में देखी बातों और सुनायी गई कठिनाइयों के संबंध में उचित मार्गदर्शन देते थे। स्मारक कुटियों की सुरक्षा तथा दर्शनार्थी और अतिथियों की सेवाओं के विषय में वे कार्यकर्ताओं को हमेशा सचेत करते थे। आश्रम के आदि निवास में एक अंबर चरखा अखंड चले, आने वाले दर्शनार्थियों को बापू कुटी में अर्पण करने के लिए सूतगुंडी खरीदने की सुविधा हो, अपनी यह तीव्र इच्छा उन्होंने बार-बार प्रकट की। आश्रम तथा आश्रमवासियों के संबंध में बड़े बुजुर्ग की भूमिका उन्होंने अंतिम काल तक सफलतापूर्वक निभाई। आश्रम में आने वाले देशी-विदेशी समूहों के निवास की व्यवस्था की दृष्टि से तथा आई०ए०एस० जैसे प्रशिक्षार्थियों के प्रत्यक्ष अनुभवों के लिए आए हुओं

के रहने की दृष्टि से 'यात्री-निवास' की योजना वनाकर अथक प्रयत्न करके केंद्रीय शासन द्वारा मंजूर करवाई और उसका काम शुरू करवाया। इस तरह सेवाग्राम के विकास की दृष्टि से नित्य चिंतन-मनन करते रहते थे।

सेवाग्राम तथा भारत-भर में नई तालीम के प्रसार के संबंध में जीवन के अंतिम क्षणतक उनका प्रयास चलता रहा। श्रीमती आशादेवी आर्यनायकम् ने अपनी मृत्यु के पहले नई तालीम की सारी वागडोर वावूजी के हाथों में बहुत विश्वास के साथ सौंप दी थी। वावूजी ने भी पूरी शक्ति के साथ इस प्रयास को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया। १९७२ तथा १९७७ दिसंबर के अखिल भारतीय नई तालीम सम्मेलन इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। इन सम्मेलनों में प्रायः सभी वाइस चांसलरों ने, राज्यों के शिक्षामंत्रियों ने तथा केंद्रीय शिक्षामंत्री और प्रधानमंत्री ने नई तालीम के सिद्धांतों के लिए अपनी मान्यता व्यक्त की। 'नई तालीम' द्वैमासिक पत्रिका के द्वारा देश भर में नई तालीम के विचार का सतत प्रचार करते रहे।

वुनियादी तथा उत्तर वुनियादी के विचार का जितना प्रकाशन अव तक किया गया, उतना पूर्व वुनियादी और प्रौढ़ शिक्षा के संवंध में नहीं किया गया, इस बात को वावूजी बरावर महसूस करते थे और उसी दृष्टि से साथी कार्यकर्ताओं को ये कार्य बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करते थे। सेवाग्राम में बालवाड़ी (पूर्व वुनियादी वर्ग) नई तालीम ढंग से चले, यह उनकी तीव्र इच्छा रही इसलिए सौ० कुसुमताई पांडे को, जिन्होंने स्व० शांता नारुलकर के मार्गदर्शन में काम किया था, वालवाड़ी वर्ग की जिम्मेदारी सौंपी। आज भी यह वालवाड़ी नई तालीम के ढंग से चलाई जा रही है। ग्रामीण युवकों के लिए नई तालीम के ढंग से प्रौढ़ शिक्षा वर्ग चले, ऐसा वे वहुत चाहते थे।

दिल्ली में अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन के सफल आयोजन के वाद उन्होंने मुझसे कहा, "शिक्षा का यह काम तो अव शासन उठा लेगा, किंतु हमें अब खास करके पूर्व वुनियादों और प्रौढ़ शिक्षा, दो काम सेवाग्राम प्रतिष्ठान द्वारा सिद्ध करके दिखाने हैं। ग्रामीण बेकार युवकों को कुछ न कुछ उत्पादक उद्योगों की शिक्षा देकर तथा सुसंस्कार देकर काम पर लगाना, यह मुख्य काम अब हमारे सामने है। सेवाग्राम से हीं यह प्रयोग आरंभ हो, ऐसी मेरी इच्छा है।

देखना है, उनकी यह इच्छा कब पूरी होती है और कौन करता है! □

उनकी सच्चरित्रता

सीता राठी

□ □

मदालसाबहन से परिचय उनके विवाह के पहले से ही था, किन्तु वह उत्तरोत्तर बढ़ता रहा, और मैं उनकी अपनी एक बहन बन गयी। जीजाजी का सान्निध्य इसी से काफी मिला। वे अति मित-भाषी थे। मेरे साथ कभी उनकी, एक-दो वाक्यों के सिवा, कोई वातचीत नहीं हुई, फिर भी रोज-

रोज का मेरा उनके घर में जाना था और कभी-कभी तो महीनों जीजी के पास रहने का मौका होता था। इस कारण उनको वहुत नजदीक से देखने को मिला है।

उनको जिन्होंने देखा, सुना और पढ़ा है, वे सब जानते हैं कि वे कितने वड़े पंडित और विद्वान थे। उच्च पदों पर भी आसीन रहे। अनेक संस्थाओं के अध्यक्ष थे, लेकिन अहंकार उनको छू तक नहीं गया था। उनका जीवन जैसा पहले सादा-सरल रहा था, उसी प्रकार पदों पर रहते हुए भी उन्होंने आडम्वरहीन सादे जीवन ही को सदा अपनाया। नियमितता उनमें कूट-कूट कर भरी थी। १९६० और ६१ में मुझे दिल्ली में मदालसावहन के पास लगातार पांच महीने रहने का अवसर मिला। तब मैंने उनकी नियमितता देखी। यार्क रोड पर उनका निवास-स्थान था। उस समय वे योजना-आयोग में सदस्य थे। रोज सुवह पांच वजे प्रार्थना होती और उसके वाद कुछ देर महाभारत का पठन होता। विना नागा वे सदा प्रार्थना में उपस्थित रहते थे। इसी तरह विना परिश्रम किये भोजन करना उन्हें रुचता नहीं था। कताई तो करते ही थे, लेकिन कई वार चक्की चलाकर आटा पीसते थे। स्वावलम्बी भी थे। उनकी मेज पर सुई-धागा अक्सर रहता था। जरूरत पड़ने पर अपनी जाकेट के वटन तक स्वयं टांकते थे। कर्मठ तो वे शुरू से ही थे। इधर दो-तीन वर्षों से उनका स्वास्थ्य काफी नरम चल रहा था, किन्तु अंतिम समय तक वरावर काम करते रहे? सदा उन्होंने जोड़ने का काम किया। उदाहरण के लिए ढाई वर्ष पूर्व पूज्य विनोवाजी ने, "भारत में गोहत्या वंद न होगी तो मैं अनशन करूंगा", ऐसा अपना मत व्यक्त किया। उस प्रसंग को टालने के लिए जीजाजी ने अथक परिश्रम किया। उनको फोन द्वारा वार-वार वात करनी होती थी। वर्धा से ट्रंक-कॉल की लाईन जल्दी नहीं मिलती। अत: अपने ऑफिस में वे कई वार फोन के पास ही लेट जाते थे। उनका धैर्य तो पराकाष्ठा पर था। उनकी चरित्रता तो आवालवृद्ध सभी के लिए आदर्श स्वरूप और अनुकरणीय ही थी।

काकाजी (जमनालालजी) के जाने के वाद वर्धावासियों के लिए वही सच्चे मार्गदर्शक थे। राजकीय पदों से मुक्त होने पर उन्होंने वर्धा को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया तथा वापू और वावा के वतलाये हुए मार्ग का सदा अनुसरण किया। □

एक अविस्मरणीय प्रसंग

सत्यवती कन्हैयालाल मैया

□□

यद्यपि श्रीमन्नारायणजी आज इस संसार में नहीं हैं, तथापि देशवासियों, विशेषकर वर्धा निवासियों, के दिलों में उनकी याद आज भी ताजा है, उनमें वहुत-से गुण थे। वह प्रेम और सद्भावना के वीज सदा वोते रहते थे।

वजाज परिवार से मेरे परिवार का सौहार्द्र होने के कारण श्रीमनजी से मेरा परिचय

हुआ; लेकिन वह परिचय बहुत ही सामान्य था। पर एक ऐसा प्रसंग आया, जिसे मैं कभी भूल नहीं सकती। श्रीमन्‌जी उन दिनों संसद सदस्य थे और नई दिल्ली फिरोजशाह रोड की कोठी में रहते थे। उन्हीं दिनों मुझे कारणवश देहरादून से आते समय दिल्ली रुकना पड़ा। मेरे पतिदेव का देहान्त हो चुका था। वे व्यापारी थे। दिल्ली में कुछ व्यापारी कंपनियों से संबंध था। किंतु वे कम्पनियां मुझे तो जानती नहीं थी। मेरे परिचय के लिए वर्धा के तहसीलदार या कलेक्टर द्वारा प्रमाणित परिचय-पत्र की आवश्यकता थी। मैं बड़े धर्म संकट में पड़ी। वर्धा जाकर पत्र लेना और फिर दिल्ली वापस आना मेरे लिए संभव नहीं था। बहुत सोच-विचार के बाद मैं श्रीमन्‌जी के पास पहुंची और अपनी हैरानी उन्हें बताई। श्रीमन्‌जी ने तुरंत पत्र देकर मेरी परेशानी दूर कर दी।

उनकी इस उदारता की छाप मेरे मन पर बड़ी गहरी पड़ी। उनकी विशेषता यह थी कि वह दूसरों के दुःख में काम आने का बराबर प्रयत्न करते थे। उनके पास जो भी पहुंचता था, उससे वह बड़े प्रेम से मिलते थे, उससे उसकी तथा उसके घरवालों की कुशल-क्षेम पूछते थे और जो भी उसकी सहायता हो सकती थी, करते थे। ऊंचे स्थान पर भी जो छोटे-बड़े सबका बना रहता है, वही सच्चा इंसान है। उसकी सबसे बड़ी पूंजी स्नेह है। वह पूंजी मनुष्य को अमरत्व प्रदान करती है। उदारमना श्रीमन्‌जी को कभी भलाया नहीं जा सकेगा। □

नेक इन्सान

चन्द त्यागी

□ □

आहें आतिश-फिशां जो करता हूं, आग झड़ती है आशियाने से।
छा रहा है निफ़ाक़ घर-घर में, इत्तिफ़ाक उठ गया जमाने से ॥

बंगला देश में शैतानी, खूंरेजियों, और आग बरसने की खबरों से बेचैन होकर मैं सोचने लगा कि असल इंसानी फर्ज़ क्या है और आज रहबरे-वक्त कौन है? मेरी बेचैनी बेहद बढ़ गई और मैं बेताब हो उठा। आखिर नैनीताल से अहमदाबाद की ओर रवाना हो गया। सोचा, गुजरात के राज्यपाल श्रीमन्नारायण से मिलकर अपनी तसल्ली करूंगा।

१९ अप्रैल, १९७१ को अहमदाबाद पहुंचकर राजभवन को फोन किया तो पता चला कि शाम को ५ बजे प्रार्थना-सभा में मैं शामिल हो जाऊं। वहां गया और :

देखा जो है आंख ने हमारी, कहने को नहीं जबां को यारी।

राजभवन के हॉल में नीचे गद्देदार फर्श पर बैठकर पाकिस्तान के जुल्मोसितम के बारे में श्रीमन्‌जी से चर्चा हुई।

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से।
इस घर को आग लग गई, घर के चिराग से ॥

श्रीमन्‌जी ने बड़े गौर से मेरी बात सुनी। फिर बड़ी शांति से बताया कि इसका एक ही कारगर उपाय है और वह सबको मिलकर प्रार्थना करना। उन्होंने एक पुरअसर मिसाल दी कि जब चंद्रयात्रियों का यान बिगड़ गया और उसे ठीक करने की कोई इंसानी तदबीर काम में नहीं आई तो सारे जहान के लोगों ने ईश्वर से प्रार्थना की और मदद चाही। कहने की जरूरत नहीं कि वे लोग सही सलामत बच आये।

इसके बाद प्रार्थना हुई। संन्यासी, वैरागी, सिख, जैन, फारसी, मुस्लिम, ईसाई आदि मतों के प्रमुख संतों की वाणी से अमृत रस का पान करने का अवसर मिला। इस प्रार्थना से मुझे जो संतोष मिला, उसे मैं शब्दों में नहीं बता सकता।

जो फ़ज्ल करते नहीं लगती बार।
न हो उससे मायूस उम्मीदवार॥

उन चंद लमहों में मैंने महसूस किया कि नेक दिलों में रूहानियत की लहर उठाने के लिए नेक लोगों की जरूरत है। मैंने तहेदिल से प्रार्थना कि श्रीमन्‌जी जैसे नेक लोगों की हस्ती हमेशा बनी रहे और वे अपने मुल्क में दीन-दुखी लोगों के दुःख को दूर करते रहें, उन्हें शांति और अमन-चैन का संदेश देते रहें।

आज जब श्रीमन्‌जी हमें छोड़कर चले गये हैं, मेरी तमन्ना है कि मैं इस वतन-परस्ती के नादर नमूने को खुलासा लिखकर अपनी इजहारे-उल्फत का फर्ज अदा करूं, लेकिन मुझे इसके लिए लफ्ज़ नहीं मिल पा रहे हैं।

मुझसे तो अदा हो न सका जो है मेरा फ़र्ज़।
ऐ कुव्वते बेसाख़्ता, कर अपना अदा फ़र्ज़॥ □

मेरे गुरू

गणेशलाल कर्ण 'प्रवासी'

□□

आचार्य श्रीमन्नारायणजी को तीन पहलुओं से जानने और समझने का सुअवसर मुझे मिला। प्रथम तो एक साहित्यिक के नाते लेखक के रूप में उन्हें पढ़ा। दूसरे वक्ता के रूप में उन्हें सुना। तीसरे, गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष के रूप में उन्हें निकट से प्रत्यक्ष सेवा में रहकर जाना।

सन् १९७४ में मैंने 'गांधी स्मारक निधि' में प्रवेश किया। मेरी नियुक्ति केन्द्रीय कार्यालय, नई दिल्ली में हुई, किंतु मुझे निधि के उपकार्यालय, सेवाग्राम भेजा गया, जहां से सर्वोदय-विचार-परीक्षाओं का कार्य संचालन होता था। सन् १९७५ की जुलाई में परीक्षा-विभाग का कार्यालय सेवाग्राम से वर्धा आ गया। वर्धा आने पर श्रीमन्‌जी को निकट से देखने का मौका मिला।

संस्थागत सेवा में प्रारंभ से ही मेरी भूमिका वैचारिक रही है। संस्थागत कार्यों का प्रति-

वेदन तैयार करना, कार्यों की रिपोर्ट तैयार करना, प्रकाशन कार्य की जिम्मेदारी वहन करना तथा सभा-सम्मेलनों के आयोजनों में सक्रिय भाग लेना, ऐसे कार्यों में रहकर संस्था के अध्यक्ष, मंत्री और अन्य अधिकारियों से मेरा प्रत्यक्ष संवंध रहा है। लगातार पांच महीनों तक मैं उनकी सेवा में रहा। उनके हिंदी के पत्र लिखकर टाइप करता था। वे मेरे कार्य से संतुष्ट रहे। एक दिन उन्होंने विहार के सर्वोदय नेता स्व० श्री वैद्यनाथवावू के बारे में मुझसे पूछा। मैंने कहा कि मैं उनके साथ ही सर्वोदय आश्रम रानीपतरा, पूर्णिया का कार्यकर्ता हूं। काफी दिनों तक मैं उनके साथ रह चुका हूं।

श्रीमन्‌जी राष्ट्र के ऊंचे-से-ऊंचे पदों पर रहे। अनेक रूपों में उन्होंने देश की सेवा की। कुछ लोगों का कहना था कि वह सामान्य कार्यकर्त्ताओं से प्रायः मिलते-जुलते नहीं थे। विशिष्ट व्यक्ति ही उनके पास तक पहुंच पाते थे। पर वात यह नहीं थी। व्यस्तता के समय की वात दूसरी है। अन्यथा उनका दरवाजा सवके लिए खुला रहता था।

श्रीमन्‌जी को मैंने उच्चकोटि के विचारक, लेखक, वक्ता और नेता के रूप में जाना और निकट से देखा। उनके व्यक्तित्व को निकट से देखने के पश्चात् मैं कह सकता हूं कि वह और चाहे जो कुछ भी रहे हों, किंतु वे एक कुशल मार्गदर्शक तो थे ही। मुझे उनसे सूक्ष्म रूप से जो मार्ग-दर्शन मिला है, वह अनुभव की चीज है। मैं उनका अपने गुरु के रूप में आजीवन आदर करता रहूंगा। □

वर्धा अब सूना-सा है

कमला नेवटिया

□ □

श्रीमन्‌जी कई दृष्टियों से वहुत आगे बढ़े हुए थे। इसकी जानकारी घर के लोगों को भी पूरी नहीं थी। कई क्षेत्रों में वह विद्वान थे। पढ़-लिखकर विलायत से आये थे। विदेश से आने के वाद जल्दी काकाजी (श्रीजमनालाल वजाज) के संपर्क में आ गये। काकाजी को मनुष्य की पहचान वहुत जल्दी हो जाती थी, जैसे जौहरी हीरे को देखते ही पहचान लेता है। कौन मनुष्य कैसा है, इसकी पहचान काकाजी को वहुत जल्दी हो जाती थी।

मदालसा पूज्य वावा के पास तीन-चार साल रही। वे स्वयं मदालसा को रोज पढ़ाते थे। उस समय वावा वहुत ही कठोर थे। काफी गंभीर भी थे। उन दिनों उनके चेहरे पर मुस्कराहट नहीं दीखती थी। कमलभाई और मदालसा वहुत दिनों तक उनके पास कड़े नियमों में रहे। उस समय वावा के पास रहना जेल से कम नहीं था। घर भी नहीं आ सकते थे, न घर का भेजा खा सकते! ऐसे कठिन नियमों में कमलभाई और वहन मदालसा के दिन वीते। पूज्य वापूजी के पास भी मदालसा रही। इससे उसके जीवन में सादगी और संयमों का समावेश हुआ। लगता था कि ये लोग विवाह भी करेंगे या नहीं। मदालसा के वड़े होने पर माताजी को चिन्ता रहने लगी कि

अगर यह विवाह नहीं करेगी तो भविष्य में मुश्किल होगी। उस समय मदालसा के विचारों से विवाह मेल नहीं खाता था। काकाजी तो ध्यान रखते ही थे। मदालसा के विचारों के अनुकूल लड़का मिलना मुश्किल था। पर जब श्रीमन्‌जी ध्यान में आये तब उनसे वातचीत करके धीरे-धीरे उन्हें विवाह के लिए तैयार कर लिया। विवाह बापूजी के सामने वर्धा में हुआ। इससे घर वालों को, विशेषकर माताजी को बहुत संतोष हुआ।

विवाह के बाद श्रीमन्‌जी अपने घर गये। वहां कुछ दिन रहकर लौट आये। उन्हें और मदालसा को काकाजी ने यहीं रखा। कालेज अपना था। उसमें प्रोफेसर बना दिया। पढ़े-लिखे विद्वान तो थे ही। कई किताबें हिंदी में, कई अंग्रेजी में लिखीं। कविता भी लिखते थे। समय का पूरा उपयोग करते थे। धीरे-धीरे कई कालेजों से भाषण देने के लिए बुलावे आने लगे। वहां जा-जाकर भाषण देते थे। अपने अनुभव सुनाते थे। किस तरह से बच्चों को पढ़ाना, कैसे उनको समझाना, सब अध्यापकों को बताते थे। धीरे-धीरे उनका अनुभव बहुत बढ़ गया। काफी दूर-दूर के लोग अपने-अपने कालेजों में समारोहों के समय बुलाने लगे, और श्रीमन्‌जी के अनुभवों का फायदा उठाने लगे।

वह कालेजों को तो देखते ही थे, दूसरे कामों में भी हाथ बंटाते थे। दिल्ली की राजनीति में भी उनकी रुचि थी। वहां भी धीरे-धीरे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। परिश्रमी और बुद्धिशाली तो थे ही। धीरे-धीरे पंडित जवाहरलालजी के भी संपर्क में आने लगे। पंडितजी को राजनीति के कई मामलों में उनकी राय जंचने लगी, तो अपने निजी पत्र भी श्रीमन्‌जी को टाइप कराने के लिए सौंप देते थे। दिन में तो श्रीमन्‌जी को अपने काम से समय नहीं मिलता था। रात को १० से ११-१२ बजे तक पंडितजी के पत्रों का काम करते थे। फिर पांच बजे उठकर पंडितजी के पत्र कभी-कभी स्वयं टाइप करके पंडितजी को दे आते थे। पंडितजी पर इनकी योग्यता का काफी प्रभाव पड़ा। शास्त्रीजी ने इनकी योग्यता को देखकर राजदूत बनाकर नेपाल भेजा। वहां उन्होंने जो काम किया, वह बड़े महत्व का था। इतना ही नहीं, वहां के राजा और रानी को भारत-भ्रमण के लिए प्रेरित किया। वे भारत से बड़ी अच्छी छाप लेकर अपने देश को लौटे।

श्रीमन्‌जी जहां रहे, वहीं उनको प्रिय समझा गया। सभी जगह उन्होंने तन, मन, बुद्धि और परिश्रम से समाज-सेवा की। किसी भी चीज में अपना स्वार्थ नहीं रक्खा और साथ ही अपने नाम की भी चाह नहीं की। श्रीमन्‌जी ने आखिर तक देश की निःस्वार्थ भाव से सेवा की। गुजरात में पांच साल राज्यपाल रहे। राज्यपाल को वैसे देखो तो विशेष काम नहीं होता, पर श्रीमन्‌जी तो जन-सेवा के काम स्वयं निकाल लेते थे और उन्हें जी-जान से करते थे। शहर की सफाई रखना, शिक्षा कैसे देना, जो भी समय मांगे, उसे समय देना, सबकी इज्जत करना, आदि-आदि बहुत से कामों की जिम्मेदारी अपने मन से ही अपने ऊपर ले लेते थे।

आखिर में शिक्षा का बहुत बड़ा काम दिल्ली में कर गये। बच्चों की कैसी पढ़ाई होनी चाहिए, इसके लिए श्रीमन्‌जी ने काफी मेहनत की। वह जानते थे कि बच्चों पर ही देश का भविष्य निर्भर करता है।

विनोबाजी के कामों में भी उनका बड़ा रस था। वह पवनार जाते रहते थे और बहुत से कामों की जिम्मेदारी उन्होंने अपने ऊपर ले ली थी। विनोबाजी ने जो भी काम उन्हें सौंपा, उसे उन्होंने बहुत ही अच्छी तरह पूरा किया।

उनकी विशेषता यह थी कि खूब काम करते थे, पर हर घड़ी हंसमुख रहते थे। काम को उन्होंने कभी बोझ नहीं माना और सहज भाव से किया।

उनके जाने से रचनात्मक क्षेत्र की तो बहुत बड़ी हानि, हुई है और वर्धा अब सूना-सा लगता है। □

सहजता, विनम्रता और दृढ़ता के संगम

रामकृष्ण बजाज

□ □

श्रीमन्जी से मेरा प्रथम परिचय उस समय हुआ, जब वह नवभारत विद्यालय के प्रिंसिपल थे और मैं वहीं एक छात्र था। छात्रावास में ही दो छोटे-से कमरों में उनका निवास था। एक शांत और सरल व्यक्ति के रूप में उनकी दृढ़ता तथा अनुशासन-प्रियता का भी अनुभव मुझे हुआ। मैं विद्यालय की क्रिकेट टीम का कप्तान था। क्रिकेट खेलने के लिए हमने प्रिंसिपल श्रीमन्जी से मांग की कि हमें मैटिंग मंगा दी जाय। प्रिंसिपल साहब ने यह मांग अनुचित समझकर नामंजूर कर दी। दूसरे खेलों के कप्तान हमारे साथ हो गए और सबने मिलकर फिर से लिखित मांग की और कहा कि जब तक मैटिंग नहीं मंगाई जायेगी, कोई भी छात्र किसी भी खेल में भाग नहीं लेगा। इसके जवाब में प्रिंसिपल महोदय ने मुझे लिखित चेतावनी भेजी कि विद्यालय के नियमों के विरुद्ध काम करने के कारण मुझे स्कूल से क्यों न निकाल दिया जाय?

इस एक घटना से ही श्रीमन्जी के व्यक्तित्व और कार्यप्रणाली का पूरा अंदाज लग जाता है। जमनालालजी द्वारा स्थापित विद्यालय में, जमनालालजी द्वारा नियुक्त प्रिंसिपल, जमनालालजी के लड़के को नोटिस देने में ज़रा भी हिचकिचाहट न करें, इससे पता चलता है कि श्रीमन्जी व्यक्तिगत संबंधों को काम के बीच में न आने देकर संस्था के हित तथा अनुशासन को कितना महत्व देते थे।

श्रीमन्जी के व्यक्तित्व की इन विशेषताओं को काकाजी की पैनी नज़र ने अच्छी तरह परख लिया था। स्वयं गांधीजी ने काकाजी को १९३७ में लिखे एक पत्र में इसका उल्लेख किया था, "तुम्हारी श्रीमन्जी की खोज को मैंने अत्यंत आश्चर्यजनक माना है। उसमें विद्वत्ता, प्रौढ़ता और नम्रता का असाधारण मिश्रण है।" यही कारण था कि काकाजी श्रीमन्जी के प्रति आकर्षित होते गए और वर्धा की शैक्षणिक प्रवृत्तियों की अधिकाधिक जिम्मेदारी उनपर डालते रहे। एक संस्कारी व्यक्ति के रूप में भी काकाजी उनके प्रति स्नेह और सम्मान रखते थे। यह आकर्षण इतना प्रबल हुआ कि कुछ ही समय बाद १९३७ में मेरी बहन मदालसा का विवाह उनसे संपन्न हुआ और इस तरह वह मेरे जीजाजी बन गये।

उसके बाद से तो उनसे निकटतम संपर्क हुआ और कई पहलुओं में उन्हें देखा—स्वतंत्रता

संग्राम के सैनिक, शिक्षा-शास्त्री, गांधीवाद के व्याख्याकार, कांग्रेस दल के महामंत्री, संसद-सदस्य, राजदूत, राज्यपाल, अर्थशास्त्री। लेखक, कवि आदि। लेकिन जो भी कार्यक्षेत्र उन्होंने अपनाया, अपनी सादगी, सेवाभाव, विनम्रता तथा कर्तव्यनिष्ठा की गहरी छाप उन्होंने छोड़ी। जिस पद पर वह रहे, उसका उपयोग उन्होंने गांधी-विचारधारा और विनोवाजी के सर्वोदय विचारों को आगे बढ़ाने में ही किया। जहां भी रहे, अपने मधुर स्वभाव और स्मित-मुस्कान से उन्होंने सबको अपना आत्मीय बना लिया। मुझे यह देखकर वहुत ही आश्चर्य होता था कि वह इतने अधिक लोगों के साथ इतने मधुर संवंध कैसे बनाए रख सकते थे? निश्चय ही, उनके स्वभाव की सहजता तथा निश्छल व्यवहार ही इसका मुख्य कारण थे। जब वह नेपाल में भारतीय राजदूत थे, नेपाल के महाराजा तथा अन्य अधिकारियों से इतने आत्मीय संवंध उन्होंने वहां स्थापित किये कि महाराजा नेपाल ने अपने भारतीय प्रवास के दौरान श्रीमन्जी के कारण वर्धा आने का विशेष आग्रह किया और बाद में कहा भी कि भारत में इतनी जगह जाने के बावजूद वर्धा आकर उन्हें सबसे अच्छा लगा।

कार्य के प्रति एक निष्ठा उनके स्वभाव का एक और गुण था। जो भी काम हाथ में लेते, तन्मयता से उसे अंजाम देते। 'नेशनल बुक ट्रस्ट' की ओर से 'बिल्डर्स आफ मॉडर्न इंडिया' पुस्तक-माला के अंतर्गत स्व० काकाजी की जीवनी लिखने का काम उन्हें सौंपा गया, तव वह गुजरात के राज्यपाल थे। तत्काल ही उन्होंने काकाजी से संवंधित विस्तृत सामग्री का अध्ययन कर उस पर काम करना आरंभ कर दिया। इसी दौरान राज्य में राष्ट्रपति शासन लागू होने पर राज्यपाल के नाते शासन की वागडोर उन्हें संभालनी पड़ी। अतः पुस्तक का काम रोककर अपने कर्तव्य को प्राथमिकता देते हुए अपना सारा समय राज्य प्रशासन में लगाया। नया मंत्रिमंडल वनने के अगले दिन बादसे ही वह फिर पुस्तक के काम में जुट गए और उसे अच्छी तरह पूरा किया।

लेकिन उनके जिस असाधारण गुण ने सबको आर्कषित किया, वह था कैसी भी विकट परिस्थिति में अपना संतुलन न खोना और निरुत्साहित न होना। मैंने तो उनके चेहरे पर गुस्से की एक शिकन तक कभी नहीं देखी। इतना शांत और सौम्य स्वभाव अक्सर ढुलमुलपन का आवरण होता है। लेकिन उनके साथ ऐसा नहीं था। व्यक्ति या राष्ट्रहित में जो ठीक लगा, उसे निर्भय होकर उन्होंने कहा और वैसा ही व्यवहार भी किया। सिद्धांत के मसले पर उन्होंने कभी समझौता नहीं किया। देश में आपात-स्थिति के दौरान विनोबाजी ने आचार्य-सम्मेलन वुलाया था। श्रीमन्जी ने उसकी सफलता के लिए काफी काम किया। सरकार नहीं चाहती थी कि इस सम्मेलन को प्रोत्साहन मिले। कुछ क्षेत्रों में शायद यह भी धारणा थी कि यदि श्रीमन्जी विनोबाजी से कहें तो वे यह विचार छोड़ सकते हैं। यहां तक चर्चा सुनने में आई कि यदि श्रीमन्जी इन प्रवृत्तियों में सक्रिय रहे तो उनकी गिरफ्तारी तक की नौबत आ सकती है। लेकिन वह दृढ़ रहे और उन्होंने कहा कि अगर गिरफ्तार हो जाता हूं तो कोई बात नहीं।

उनकी एकाग्रता और सहजता का अनुभव उस समय हुआ जब पूज्य मां (जानकी देवी बजाज) वर्धा में बीमार पड़ीं। उनकी हालत वहुत ही नाजुक हो गई, इतनी कि विनोबा अपना क्षेत्र संन्यास छोड़कर पवनार से वर्धा के घर पर उन्हें देखने आए। हम सव काफी चिंतित थे, लेकिन श्रीमन्जी बड़ी तत्परता से मां की देख-रेख चिकित्सा आदि में लगे रहे।

वास्तव में उनकी इस संतुलित मनःस्थिति और सहजता का कारण उनकी थियोसोफि-

कल पृष्ठभूमि थी । अपने जीवन के प्रारंभिक काल से ही वह डा० एनी बेसेंट से बहुत प्रभावित थे। ईश्वर पर उनकी अगाध आस्था थी। आध्यात्मिक ग्रंथों का उन्होंने गहन अध्ययन किया थे। चिंतन-मनन उनका चलता ही रहता था। सो जो भी दायित्व उन पर आता, उसे प्रभु का आदेश और सेवा का साधन समझकर सहज भाव से निभाते थे।

पूज्य काकाजी ५३ वर्ष की उम्र में चले गए थे। फिर, भाई कमलनयनजी भी कम उम्र में गए। कमलनयनजी के जाने से सार्वजनिक कार्यों की जिम्मेदारी अधिक मात्रा में मुझ पर आई। ऐसे समय श्रीमन्जी के मार्गदर्शन, सलाह-मशविरा तथा सक्रिय सहयोग से मुझे बहुत सहायता मिली। यों भी काकाजी के अधूरे छूटे कामों को श्रीमन्जी ने न केवल उठा लिया था, बल्कि उन्हें बखूबी और पूरी लगन के साथ आगे भी बढ़ाया। वर्धा की छोटी-बड़ी संस्थाओं को अपने योग्य मार्गदर्शन से लाभान्वित किया, यहां तक कि विनोबाजी उन्हें एक सहारे की तरह देखने लगे। पारिवारिक मामलों में भी मुझे उनकी सलाह मिलती रहती, जो मेरे लिए बहुत उपयोगी होती। शिक्षा मंडल, विश्वनीड़म, गीता-प्रतिष्ठान, जमनालाल बजाज प्रतिष्ठान आदि के कार्यों में तो वह सक्रिय मार्गदर्शन करते थे, जिससे मैं इन प्रवृत्तियों के प्रति एक तरह से निश्चिंत ही हो गया था। पूज्य मां के साथ तो उनका ऐसा तादाम्य रहा कि वह अक्सर कहती थीं, श्रीमन्जी ने उनके लिए जो कुछ किया, वैसा लड़कों ने भी क्या किया होगा।

आमतौर पर लोग पुत्र को गोद लेते हैं, लेकिन काकाजी ने किस तरह गांधीजी को पिता रूप में 'गोद' लिया और वह किस तरह गांधीजी के 'पांचवें पुत्र' बने, यह सब जानते हैं। श्रीमन् जी ने भी वही परंपरा निबाही। उन्होंने अपनी भावना शब्दों में तो कभी प्रकट नहीं की, पर मौनपूर्वक अपने कामों से वह जामाता की जगह काकाजी के पुत्र बन गए, सहज स्वाभाविक रूप से। कब क्यों बने, इसका किसी को भान तक नहीं हुआ। □

मेरे जीजा जी

विमला बजाज

□□

स्थितप्रज्ञ की परिभाषा थे वे। धीर-गंभीर। विशेषताओं के पुंज। बड़े आश्चर्य की बात है कि उन्हें देखकर हमें आश्चर्य कैसे नहीं होता था!

उनके जीवन में कर्मशीलता का अटूट प्रवाह बहता था और अन्त तक बहता ही रहा। देश-भक्ति कूट-कूटकर भरी थी। न जाने कितनी संस्थाओं का बोझ उनपर था, फिर भी स्मित हास्या-न्वित चेहरा सदा खिला रहता था। उनकी भव्यता विशेष अवसर पर ही दिखायी देती हो, ऐसा नहीं, दैनिक जीवन में भी बराबर उसकी झलक मिलती थी। उनकी बोलचाल, हास्य-विनोद, सबमें संतुलन था। समय और नियमितता के बड़े पाबंद थे। सब कामों को बड़े व्यवस्थित ढंग से

करते थे। शायद इसी से वहुत काम कर पाते थे। संयम और धैर्य उनके चिर-साथी थे। उनका जीवन भावनामय और साधनामय था। भक्ति की धारा भी अविरल वहती थी। वे चाहे कितने ही व्यस्त हों, चेहरे पर कभी शिकन नहीं दीखती थी। सभी लोगों के लिए दो मीठे शव्द उनके पास रहते थे। सभी के दु:ख-सुख में भाग लेने वाले थे वे।

पिछले दो-तीन सालों में पूज्य माताजी की तवीयत की वजह से मेरा वर्धा काफी आना-जाना रहा। जीजाजी से अनायास मिलना होता ही था। वे नियमित रूप से माताजी के पास आते थे। मैं धीरे-धीरे उनके करीव आ गई थी। वे ऐसे मित्र वन गये थे, जिनके सामने अंतरतम की सव वातें कर सकती थी। वे भी निरपेक्ष भाव से सही राय देते थे। उनके संपर्क से मुझे वहुत-कुछ सीखने को मिला। किसी व्यक्ति से जव निकट का संवंध हो जाता है तो व्यक्ति के वारे में लिखना वहुत कठिन हो जाता है। वहुत-सी वातें हम अनायास रूप से ले लेते हैं। विश्लेषणात्मक दृष्टि रखना मुश्किल हो जाता है। फिर भी उपरोक्त कुछ विशेषताओं का मैंने जो उल्लेख किया है, वे स्वतः ही प्रकट हैं। उनकी कुछ वातें ऐसी थीं, जो प्रभावित किए विना नहीं रहती थीं। सवसे वड़ा उनके पास जो अस्त्र था, वह था उनका माधुर्य, जिससे कोई भी परास्त हो जाता था। दूसरा आकर्षण था उनका अहंकार-रहित जीवन। संयमित, नियमित, व्यवस्थित और अलिप्त। हम अगर उनके गुणों में से एकाध भी ले सकें, तो हम स्वयं ही उनके सही स्मारक वन सकते हैं। □

समन्वयवादी साधक

राधाकृष्ण बजाज

□□

श्रीमन्नारायणजी से मेरा परिचय १९३६ से रहा। वाद में तो रिश्ता होकर वे हमारे परिवार में ही दाखिल हो गये। उनसे बहुत ही निकट का परिचय आया, साथ काम करने का भी मौका रहा। कुल मिलाकर वे एकांगी नहीं थे, समन्वयवादी थे। आरंभ में प्रथम शिक्षा सम्मेलन वर्धा में हुआ। उसमें तो वे नये ही थे। पूज्य वापूजी के आदेश के अनुसार चलना इतना ही उनका काम था। फिर भी उनका वहां काम समन्वय का रहा। मारवाड़ी शिक्षा-मंडल में काम किया। वहां भी सवसे मेलजोल रखा। आपस में एक-दूसरे को जोड़ा। अपनी ओर से तोड़ने का काम उन्होंने कभी नहीं किया। अपना काम व्यवस्थित हो, समय पर हो, इस वारे में वे सदा दक्ष और जागरुक रहे।

वर्धा से वे पार्लियामेंट के चुनाव में खड़े हुए। सबसे उन्होंने मेलजोल साधा और अधिक से-अधिक मत उनको मिले। पार्लियामेंट के सदस्य होकर दिल्ली रहने गये, वहां भी वर्धा के लोग वरावर आते-जाते थे। उनके काम करा देने में सदा सजग रहते। जो वात कवूल कर ली, उसका

उन्हें ध्यान रहता और उसे पूरा करने का प्रयत्न करते ।

कांग्रेस के महामंत्री वने । जहां कहीं आपस में झगड़े होते, लोग उन्हें पंच वनाना पसंद करते । वड़ी युक्ति से वे झगड़ों का निपटारा करते और आपसी मेल करा देते ।

वाद में वे योजना आयोग में गये । वहां भी समन्वय का ही काम रहा । फिर नेपाल के राजदूत वने । वहां भी नेपाल सरकार और भारत सरकार के वीच मेल-मिलाप का अभूतपूर्व कार्य किया । सारी योजनाएं, सारे समारोह आपसी मेल-मिलाप के लक्ष्य से ही होते रहे ।

फिर गुजरात के राज्यपाल हुए। वहां भी सरकार और रचनात्मक कार्यकर्ताओं के बीच समन्वय साधने का प्रयत्न किया । शायद आज तक के किसी राज्यपाल ने रचनात्मक संस्थाओं से इतना संवंध नहीं स्थापित किया होगा, जितना उन्होंने किया । वहां भी आपसी मेल-मिलाप वढ़ाया । कुछ समय के लिए गुजरात में राज्यपाल का राज्य था । उस समय सरकारी अफसरों और जनसेवकों का समन्वय वैठाने में खूब काम किया ।

सरकारी पद छोड़ने के बाद स्थायी रूप से वर्धा आकर रहे । यहां भी पूज्य विनोवाजी के साथ मिलकर आपसी मेल-मिलाप का और कार्यों के समन्वय का जितना काम कर सकते थे, किया । महिला आश्रम, वर्धा के अधिवेशन में उन्होंने पूरी समन्वय की भूमिका अदा की । 'सर्व सेवा संघ' के १९७५ के पवनार-अधिवेशन में उन्होंने अपनी समन्वय बुद्धि की पराकाष्ठा की ।

अंतिम दिनों में वे 'गांधी स्मारक निधि', दिल्ली के अध्यक्ष थे । वहां भी उनका प्रयत्न वरावर समन्वय का रहता था । स्वर्गवास के कुछ दिन पूर्व ही दिल्ली में वहुत वड़े शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन हुआ था । वह सारा आयोजन इन्हीं की वदौलत हुआ । उसमें भी शिक्षा के क्षेत्र में समन्वय करने का उनका पूरा प्रयास रहा ।

१९७६ में आचार्य विनोवाजी ने गोसेवा के लिए उपवास करने का संकल्प किया था, उस समय भी सरकार के साथ समन्वय वैठाने का उनका प्रयत्न रहा और अंत में आपस का समझौता हुआ, उसमें भी प्रमुख हिस्सा श्रीमनजी का ही रहा ।

इस प्रकार चालीस साल के सार्वजनिक जीवन में हमने उन्हें आदि से अंत तक समन्वय-वादी ही देखा । □

मेरा प्यारा भाई

रामेश्वर नारायण

□ □

३ जनवरी, १९७८ को कलकत्ते के मकान में मैं सुबह ६.३० बजे के लगभग टहलने जाने की तैयारी कर रहा था । इतने में मेरे पोते नीरव ने आवाज दी कि दादाजी, दिल्ली से टेलीफोन है । मैंने फौरन आकर सुना तो सुरेन्द्र बोल रहे थे कि कल रात को दिल्ली से वर्धा जाते हुए ग्वालियर में

भाईसाहव श्रीमन्नारायण का निधन हो गया। मैं भौंचक्का-सा रह गया। वात कुछ समझ में नहीं आई कि क्या सुन रहा हूं। सुरेन्द्र ने और भी कहा कि उनके शरीर को दिल्ली ला रहे हैं और ४ जनवरी को सवेरे दाह-संस्कार होगा। मैं सहसा रो पड़ा। टूटी-फूटी आवाज में मैंने सुरेन्द्र से कहा कि मैं जल्दी-से-जल्दी दिल्ली पहुंचने का इंतजाम कर रहा हूं।

दिन भर किसी तरह विताकर हमलोग रात के हवाई जहाज से दिल्ली के लिए रवाना हो गये। हवाई जहाज लेट हो गया और दिल्ली पहुंचते-पहुंचते रात के १२ बज गये। १ बजे के लग-भग गांधी स्मारक निधि पहुंचे। वहां के गेस्ट हाउस के बड़े कमरे में श्रीमन् का शरीर वर्फ पर फूलों से सजा रखा था। चेहरा खुला था। आंखें वन्द थीं। भाव शान्त था, जैसे आराम से सो रहे हों। मदालसा शान्त और दुःखद भाव में पास ही वैठी थी तथा रजतकी वहू अमला वहीं वैठी गीता का पाठ कर रही थी।

मैंने महाभारत में पढ़ा था कि कृष्ण भगवान ने युधिष्ठिर से कहा था कि किसकी, कव, कैसे और कहां मृत्यु होगी, कोई नहीं जानता। वही चरितार्थ हुआ।

४ जनवरी को सवेरे ही से श्रीमन् के भौतिक शरीर के अंतिम दर्शन के लिए लोगों का तांता लग गया। जाने के वाद जितना सम्मान श्रीमन् ने पाया, उससे मालूम होता था कि उन्होंने देश और समाज की कितनी निस्वार्थ सेवा की थी। इंदिरा गांधी तीन बार आईं। ३ तारीख को दर्शन करने, ४ तारीख को निगमबोध घाट पर और ५ तारीख को शुद्धि के दिन। जव श्रीमन् की अर्थी ट्रक पर रखकर घाट की तरफ ले जा रहे थे, अपार जनसमूह साथ में था। घाट पर पहुंच-कर चिता सजाई गई। श्रीमन्‌जी के बड़े लड़के भरत ने दाग दी। लपटों ने श्रीमन् के भौतिक शरीर को, जिसको हम ६५ साल से देखते आये थे, जलाकर भस्म कर दिया। मदालसा वहां मौजूद थी। यह सव उसने अपनी आंखों से देखा, लेकिन वड़ी हिम्मत और धैर्य का परिचय दिया। यह सव गांधीजी और विनोवाजी की शिक्षा का ही फल था।

५ जनवरी को सबेरे हम लोग फूल बीनने गये। उनको जमा करके और धोकर एक हांडी में रक्खा और 'गांधी स्मारक निधि' लाकर उसी कमरे में एक चौकी पर रख दिया। दिन भर भजन-कीर्तन होता रहा।

उसी दिन शाम को शुद्धि की क्रिया कर दी गई। ७ जनवरी के सबेरे हम लोग वापस आ गये।

श्रीमन् मुझसे सिर्फ डेढ़ वरस छोटे थे, इसलिए हमारा वचपन, खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना, सब साथ ही चला। बचपन की कुछ बातें याद आ रही हैं।

श्रीमन् को बचपन में गाड़ियों का बड़ा शौक था। हर साल देवियों का एक मेला लगता था। वहां गांव के लोग लकड़ी की कई तरह की छोटी-छोटी गाड़ियां बेचने घूमते। श्रीमन् शौक से खरीदते और घर लाकर उनको रंगते और पहियों पर रवड़ चढ़ाते रस्सी बांधकर बहुत ही चाव से चलाया करते। पिताजी यह देखा करते।

पिताजी ने हम दोनों को तैरना सिखाया। गर्मी की छुट्टी में हमें इटावा भेज दिया जाता। जमुनाजी हमारे घर से करीव एक मील की दूरी पर थीं। हम लोग पैदल ही जाते-आते थे। जमुनाजी के घटवार करीव १५ दिन में तैरना सिखा देते थे। वह कमर में पहले बड़ी तुम्बी बांधते और धीरे-धीरे टोही करते जाते। आखिर में कोई तुम्वी नहीं बांधते और छुट्टा कर देते। हम

दोनों भाई तैरना सीख गये, जो जिन्दगी भर काम आया।

मैंने और श्रीमन् ने मैट्रिक पास करने तक रोटी नहीं खाई। हमको रोटी अच्छी नहीं लगती थी। रोज शाम को पूड़ी वनती थीं। साथ में अक्सर दही के आलू वनते, जो सवको पसन्द थे। वासी पूड़ी और आलू रख दिये जाते थे, जिन्हें सवेरे चूल्हे के सामने बैठकर गरम करके खाते। स्कूल जाने के समय रोटी वनती तो यह कहकर स्कूल चले जाते कि भूख नहीं है। स्कूल से लौटते तो मां परांठे वनाकर रख देती थीं। वह खाकर खेलने चले जाते। खेल से आने के वाद रोज की तरह फिर पूड़ी खाते। रोटी खाना तो कालेज में जाकर सीखा।

मां को हम सब भाई शुरू से ही 'भावी' कहा करते थे। शायद इसलिए कि सव चाचा लोग उनको भावी कहकर पुकारते थे। कभी-कभी कोई वाहर वाला आता और पूछता कि तुम अपनी मां को भावी कहते हो, तोहम जवाव देते कि वह मां नहीं है, भावी ही हैं। हम मां ही को भावी कहते थे, यह ज्ञान वचपन में हमको नहीं था।

पिताजी ने हम दोनों भाइयों को हारमोनियम पर गाना भी सिखवाया। लालसिंह मानसिंह आश्रम पास ही में था। वहां एक सूरदास पटेलजी वम्वई से गाना सिखाने के लिए रक्खे गये थे। हम दोनों भाई टहलते हुए चले जाते और पटेलजी से गाना सीखते। गाने में श्रीमन् ने मुझसे ज्यादा तरक्की की। मैं बिना हारमोनियम के सहारे गा नहीं पाता था, लेकिन श्रीमन् की आवाज सध गई थी और वहकती नहीं थी। वह बिना वाजे के भी भजन वगैरह अच्छा गाते थे। एक भजन जो वह गाते और हम सबको पसंद था, यह था :

राम से कोई मिला दे
बिन लाठी का निकला अंधा
राह से कोई लगा दे।

श्री जे० कृष्णमूर्ति के लेखों और कविताओं का असर पिताजी तथा हम दोनों भाइयों के ऊपर बहुत पड़ा। मेरा विश्वास है कि श्रीमन् ने 'फाउंटेन आफ लाइफ' की कविताएं कृष्णमूर्ति से प्रभावित होकर लिखी थीं।

श्रीमन् मैट्रिक में पढ़ रहे थे। गर्मियों की छुट्टियों में हम लोग इटावा गये। वहां के थियोसोफिकल लाज में हमारे वड़े चाचाजी सूर्यनारायणजी ने श्रीमन् का एक व्याख्यान रख दिया। विषय था "कृष्णमूर्ति की विचारधारा।" वहां के पुराने और वृद्ध मेम्वर लोग चाचाजी पर बहुत बिगड़े कि आपकी समझ को क्या हो गया है! कृष्णमूर्ति की विचारधारा तो हम लोग भी नहीं समझते। उसे १६ वर्ष का एक बच्चा क्या समझायेगा? और उसका व्याख्यान आपने लाज में रख दिया, क्योंकि वह आपका भतीजा है। चाचाजी भी कुछ चकराये।

लेकिन कार्यक्रम के अनुसार श्रीमन् का व्याख्यान हुआ, और जब श्रीमन् ने अंग्रेजी में बड़े विश्वास के साथ बोलना शुरू किया तो सव लोग ध्यान लगाकर सुनने लगे। श्रीमन् गहन, पर स्वाभाविक भाव से धारा-प्रवाह एक घंटे बोले। सुनने वाले दंग रह गये और चाचाजी को और श्रीमन् को बहुत बधाई दी। मैं भी उस व्याख्यान में मौजूद था और मुझे बहुत खुशी हुई।

मैनपुरी से मैट्रिक पास करने के वाद मैं सन् १९२७ में और श्रीमन् सन् १९२८ में आगरा कालेज आगरा में पढ़ने गये। हमारे दोनों बड़े भाई पहले से ही आगरा कालेज में थे। इस तरह हम चार भाई एक साथ आगरा कालेज में पढ़ते थे और वैश्य बोर्डिंग हाउस में रहते थे। कमरे तो

रहने के लिए अलग-अलग थे, लेकिन मैस एक ही था। भाईसाहब चतुर्भुज नारायण के बढ़ावा देने से हम दोनों भाइयों ने बोर्डिंग हाउस की वाक् प्रतियोगिताओं में भाग लेना शुरू किया और वाद में कालेज यूनियन की डिबेटों में भी भाग लेना शुरू किया। दो साल बाद श्रीमन् तो इलाहा-बाद चले गये। मैं आगरा कालेज में ही पढ़ता रहा। पढ़ने में श्रीमन् प्रथम श्रेणी के विद्यार्थी रहे और हर परीक्षा में प्रथम श्रेणी में आते रहे। इलाहाबाद में भी श्रीमन् बहुत अच्छे विद्यार्थियों में रहे और वहीं से अंग्रेजी में एम० ए० पास किया। डा० अमरनाथ झा के वह माने हुए विद्यार्थियों में थे।

श्रीमन् क्योंकि पढ़ने में बराबर बहुत तेज रहे, इसलिए पिताजी ने उन्हें आई० सी० एस० परीक्षा में बिठाया। उस साल पूरे भारत से सिर्फ चार ही लड़के लिए गये और श्रीमन् का स्थान शायद पांचवां था। इंग्लैंड में हर साल ३० लड़के आई० सी० एस० के लिए चुने जाते थे, इस-लिए यह तय हुआ कि श्रीमन् को इंग्लैंड भेजा जाय, क्योंकि पूरी आशा है कि वह वहां की प्रति-योगिता में जरूर सफल हो जायेंगे। और इसके फलस्वरूप उनको सन् १९३५ में इंग्लैंड भेज दिया गया।

लेकिन भगवान ने कुछ और भी रच रखा था। इंग्लैंड में भी वह सफल न हो सके। निराश होकर सन् १९३६ में वह भारत लौट आये। बाद में जो भी हुआ, उसे पाठक जानते हैं। श्रीमन् बराबर आगे बढ़ते गये और उस स्थान पर पहुंच गये, जहां कम ही लोग पहुंच पाते हैं।

श्रीमन् को उनकी योग्यता के लिए कर्नाटक विश्वविद्यालय, कानपुर विश्वविद्यालय और काशी विद्यापीठ ने सम्मानित किया।

श्रीमन् ने हिंदी और अंग्रेजी में, क़रीब ५० किताबें भी लिखीं जो बड़ी लोकप्रिय हुईं। □

कितने सीधे, कितने भोले

कुसुम अग्रवाल

□ □

तीन जनवरी की दोपहर को १२.०० बजे टेलीफोन की घंटी बजी। बेटी नीलम का दिल्ली से फोन था। बहुत ही घबराई आवाज में उसने कहा, "मां, श्रीमन् मामाजी खतम हो गये। जल्दी आओ।"

दुखभरी सूचना ने दिल को गहरा आघात पहुंचाया। १२ अक्तूबर ७६ में प्रिय जामाता 'रवि' को हवाई दुर्घटना में खोया था। आंसू भी नहीं सूखे थे कि यह दूसरा आघात लगा।

३२ वर्ष पहले की मधुर स्मृति ताजी हो आई, जब पूज्य श्रीमन् भैयाजी ने हमें अपनी बहन माना था और तब से बराबर उन्होंने भाई का स्नेह और प्यार दिया, जिसे पाकर हमें कितना संतोष मिला, यह लेखनी से बाहर है।

पूज्य भैयाजी राजदूत या राज्यपाल रहे, पर घरेलू जीवन में तो वे 'नारायण परिवार' के केवल एक सदस्य ही थे, जिन्होंने अपनी भूमिका बहुत ही सादगी और विनम्रता से निभाई। पूज्य पिताजी श्री लक्ष्मीनारायणजी की लंबी बीमारी के दौरान भैयाजी तथा भाभी मदालसा कितने ही दिनों इटावा आकर रहे और उनकी सेवा की। तभी भैयाजी ने गुजरात के राज्यपाल के पद से अवकाश प्राप्त किया था।

उनका खान-पान एकदम सादगीपूर्ण था। जिस दिन वे इटावा पहुंचे, सुबह मैं उनके पास आ गई और पूछा, "भैयाजी, आपके लिए नाश्ते में क्या भेजूं ?" मधुर मुस्कान के साथ बोले, "कुछ भी भेज दो। कोई विशेष बात नहीं है; बस एक कप गर्म दूध भी भेज देना।" मैं लौटने लगी तो आवाज लगाई, "कुसुम, देख यदि रात के दही के आलू और बासी पूरी हो तो थोड़े-थोड़े भेज देना।" फिर मुस्कराकर बोले, "मुझे इटावा का दही का आलू विशेष प्रिय है। यह स्वाद कहीं और नहीं आता।" रात्रि के खाने में प्रतिदिन दही का रसदार आलू अवश्य बनता था, जो उन्हें अत्यधिक प्रिय था।

भैयाजी तथा भाभीजी के वर्धा में 'मंगल मिलन' की वेला पर हम बहनें बहुत छोटी अवस्था की थीं। पूज्य बापू मौजूद थे। विवाहोपरांत मंडप से उठकर जब हमारे भैया बापू के पास चरण छूने पहुंचे तो बापू ने भैया के गाल पर एक चांटा जमा दिया। उनका गोरा गाल लाल हो गया। मैं बच्ची ठहरी। इसका रहस्य नहीं समझी। मुझे बहुत बुरा लगा कि बापू को इतने जोर का चांटा मारने की क्या जरूरत थी। मैंने अपनी पूज्य ताईजी (श्रीमन्जी की माताजी) से शिकायत की। वे बड़ी हंसी और हम बच्चों को प्यार ने समझाया, "बेटी, बापू का यही प्यार-भरा आशीर्वाद देने का तरीका है।" तब हमें समझ में आया। पूज्य पिताजी हमेशा हम बहनों को समझाया करते थे, "देखो बेटी, तुम लोग कभी मन में यह न लाना कि तुम्हारे भाई नहीं है। ये तुम्हारे ताऊजी के बच्चे हैं न। ये सभी तुम्हारे भाई हैं। ये जब मेरे पास आते हैं तो लगता है कि ये सब मेरे ही अपने बाल गोपाल हैं। मैं तुम्हारी मां से कहता, 'ये बच्चे मुझे साक्षात नारायण का स्वरूप ही नज़र आते हैं। इनके आराम का खयाल रक्खो। अच्छी-अच्छी चीजें बनवाकर खिलाओ।" पिताजी ने अपनी बीमारी में भी कई बार मुझसे उपरोक्त बातें दोहराई थीं और मुझे खुशी है कि हमारे भाई-लोगों ने पिताजी की कही बात को सत्य करके दिखाया है। आदर, प्यार, मदद सभी कुछ उनसे मिला है।

तभी तो बेटी नीलम के पूज्य ससुरजी ने पिछली बार मुझसे कहा था, "कुसुमजी, आपके इटावा के परिवार में जितना प्रेम देख रहा हूं, यह अद्भुत है। दूसरे स्थानों पर बहुत ही कम देखने को मिलता है, आपके भैया लोगों और भाभियों का आपके प्रति जो अपूर्व प्यार है, वह सराहनीय है। अपने भाइयों के लिए यह सुनकर मैंने बहुत ही गौरवान्वित अनुभव किया। बहन के लिए बहुत ही खुशी की बात है।

श्रीमन् भैयाजी से हमारा बहुत ही अधिक संपर्क रहा। वे वर्धा रहते थे और हम पिताजी के साथ नागपुर। भंडारा आदि में बराबर मिलना, साथ रहना होता था। कितने शांत थे वह। मैंने तो उन्हें कभी क्रोधपूर्ण मुद्रा में पाया ही नहीं। सौम्य अथवा मुस्कान-भरी मुद्रा में सदा देखा।

वे दिल्ली में बहुत रहे और मैं अलीगढ़। प्राय: भैया-भाभी बुला लेते थे और पास होने

की वजह से आसानी से जब-तब उनके पास पहुंच भी जाती थी। वड़े ताऊजी के साथ प्रातः भैया और भाभी तथा वच्चे सत्संग में वैठते थे। उसमें भाग लेने में वहुत ही आनन्द आता था।

अभी १५-१६ जनवरी को मैं लखनऊ मां के पास थी। १६ नवंवर को वह श्रीमन् भैयाजी के पास से दिल्ली से लखनऊ कीर्तिवहन के पास गईं। वहां स्टेशन से घर जाने में गिर गईं और उनके घुटने की हड्डी टूट गई। उन्हीं को देखने गई थीं। कह रही थीं, "चलते समय मदालसा और श्रीमन् ने मुझसे तिलक करवाया। उसकी मधुर मुस्कान नहीं भूलती। मुझे क्या मालूम था कि यह मेरी आखिरी मुलाकात है।"

भैयाजी का सीधापन और भोलापन याद कर रही थीं। कह रही थीं, "श्रीमन् भैयाजी वड़े हो गये थे, फिर भी उनका भोलापन मौजूद था। दीवाली पर मदालसा ने मुझसे खादी की धोती मंगवाई कि श्रीमन् नई धोती-कुर्ता पहनते हैं। स्नान करने के पश्चात् वे नई धोती-कुर्ता पहनकर निकले, "देखो मदालसा, तुम मेरे लिए नए कपड़े रखकर आई थीं न। मैंने पहन लिये हैं।" प्रभु में उनकी गहरी आस्था, निष्ठा थी। पिताजी को "प्रभुजी तुम चन्दन हम पानी, जामी अंग-अंग वास समानी", कितनी तन्मयता से सुनाया करते थे। पिताजी यह भजन प्रतिदिन प्रार्थना पूर्ण होने पर भैयाजी से सुनते थे,"वेटे श्रीमन्, यह भजन और सुना दो। तुम्हारे मुंह से ही सुनना मुझे अच्छा लगता है।" और भैयाजी वड़ी तत्परता और लगन से सुनाते।

अवकी रक्षावंधन से कुछ दिन पूर्व भाभीजी का दिल्ली से फोन आया था, "तुम्हारे भैया का मन है कि राखी पर तुम आकर राखी वांधो।" मैं गयी और करीब एक हफ्ते उनके साथ रही। प्रिय भरत, वहू मधूलिका और बच्चे भी आये थे। वच्चों को वर्षों से देखा नहीं था और 'अनन्य' को तो पहली वार ही देखना था। वे लोग फिर वापस दुवई जाने वाले थे। अतः राखी से कुछ पहले ही जाना पड़ा। भैयाजी ने आग्रह किया, "रक्षाबंधन तक रुक जा। राखी वांधकर ही जाना।" इतना रुकना मुश्किल मालूम पड़ा तो भैयाजी वोले, "अच्छा घर भी तो देखना ही चाहिए। वहां वच्चे अकेले पड़ जायेंगे। जल्दी जाना है तो जा, पर राखी वांधकर ही जाना। पहले ही बंधवा लेंगे। और भैया, भाभी, भरत, रजत आदि सभी को मैंने राखी वांधी। ओफ! उस समय नहीं मालूम था कि प्यारे भैया के यह आखिरी राखी वांध रही हूं!

४ तारीख को उनके अंतिम दर्शन हुए। एकदम शांत मुद्रा थी। लगा, जैसे भारत मां का लाल सो गया है।

हमें भैयाजी से कुछ सवक लेना है, उनसे सीखना है, उनके वताए हुए मार्ग का अनुसरण करना है। □

मैं जंगल में तपस्या करने जाऊंगा

पद्मा अग्रवाल

□ □

हमारे भाईसाहब पूज्य श्रीमन्नारायणजी सदा से ही बड़े शांत और मितभाषी रहे थे। इलाहाबाद युनिवर्सिटी में पढ़ते थे, तभी से उन्होंने पद्य-रचना आरंभ कर दी थी। मुझे याद है कि जब वह इलाहाबाद से छुट्टियों में मैनपुरी आते थे तो वहां के बंगले के बाहर के बड़े कमरे में ठहरा करते थे। दोपहर को खाना खाने के बाद एकांत में बैठकर कागज पर कविताओं की पंक्तियां लिखते रहते थे। मैं अक्सर उनके पास पहुंच जाया करती थी और पूछने लगती थी कि "भाई-साहब, आप यहां अकेले बैठे-बैठे क्या लिखते रहते हैं।" वह मुस्कराकर कहते थे, "देखो, मैं ये कविताएं लिखता हूं।" मैं उनको थोड़ा पढ़कर रख देती थी और भाईसाहब फिर से लिखने लग जाते थे। बाद में मैंने देखा 'सरस्वती' मासिक पत्रिका में उनकी पहली कविता छपी थी। मैं पढ़कर बहुत खुश हुई और घर में माताजी वगैरा सबको उसे दिखाया। भाईसाहब ने तो केवल अपनी मधुर मुस्कान से ही अपनी प्रसन्नता प्रकट की। अंत समय भी उनके मुंह पर वही मधुर मुस्कान थी।

जब भाईसाहब मैनपुरी छुट्टियों में आया करते थे तो हमारी माताजी पूछा करती थीं कि "श्रीमन्, तुम्हारे लिए खाने में क्या बनाएं? जिस चीज का मन हो बता दो, वही बना देंगे।" भाईसाहब कभी किसी चीज की फरमाइश नहीं करते थे। कहते थे, "जो कुछ बनेगा, वही खा लेंगे।"जो कुछ बनता, खा लेते और फिर बाहर अपने कमरे में जाकर लिखने-पढ़ने में लग जाते थे।

मां सुनाती थीं, एक बार जब भाईसाहब बहुत छोटे थे, तब उन्होंने कहा था, "मां, मैं जंगल में तपस्या करने जाऊंगा, जैसे प्रह्लाद गये थे, और मुझे एक पोटली में खाने के लिए बासी पूरी और सूखा आम का आचार बांध देना।" अम्माजी यह सुन कर हंस पड़ीं। बोलीं, "बेटा जंगल में बासी पूरी और सूखा आम का अचार खत्म हो जायगा, फिर वहां और कहां से आयेगा?" अम्माजी कहती थीं कि उनकी बात से वह बहुत सोच में पड़ गये थे। बचपन में उनको बासी पूरी और सूखे आम का अचार बहुत प्रिय था। अम्माजी उनको बचपन में भक्त प्रह्लाद की कहानी सुनाया करती थीं। उसी को सुनकर उनके मन में जंगल में जाकर तपस्या करने की बात आई थी।

माताजी कहा करती थीं कि "श्रीमन् तो किसी जन्म का साधु-संन्यासी है और इस जन्म में भी वह ऐसे ही है। ऐसा बेटा आसानी से कहां मिलता है, जैसा हमें मिला है। पूरा कर्मयोगी है श्रीमन्। इसको किसी चीज से लगाव नहीं, किसी चीज का शौक नहीं, खाली काम—काम सारा दिन।"

भाईसाहब पिताजी, माताजी और सब बड़ों का आदर तथा छोटों से स्नेह करते थे। अंतिम दिनों में जब हमारे पिताजी इटावा में बीमार थे तो भाईसाहब ने रात-दिन एक करके बड़ी लगन से उनकी सेवा की थी। जरा-सी भी पिताजी की आहट पाकर भाईसाहब खाना खाते-खाते छोड़कर उठ जाते थे, और पिताजी की देखभाल में लग जाते थे।

मैं अपने पांच भाइयों की अकेली बहन हूं। श्रीमन् भाईसाहब का मुझ पर बहुत स्नेह था। जब भी उनके पास जाती थी, वह मुझे साथ रखते थे और बड़े खुश होकर सबको बताते थे, "यह हमारी बहन है, अकेली बहन है पांच भाइयों की।"

भाईसाहब को भैंस से हमेशा से नफरत थी। गाय को पसंद करते थे। हमारे घर में पिताजी ने बच्चों के दूध के वास्ते कई गायें पाली हुई थीं। एक भैंस भी थी। एक बार हम सब भाई-बहन बाहर घर के बगीचे में खेल रहे थे तो भैंस चिल्लाने लगी। श्रीमन् भाईसाहब कहने लगे, "देखो, कैसी भद्दी आवाज में ऊपर मुंह उठाकर चिल्लाती है। हमें बड़ी बुरी लगती है, देखने में काली-काली। गाय कैसी अच्छी है, सफेद रंग की सीधी-सादी।"

वैसे तो वह निर्लिप्त थे। अक्सर प्रार्थना में गाया करते थे, "राम से मोहे कोई मिला दे", "प्रभुजी, तुम चंदन हम पानी।"

उनकी वाणी 'प्रभुजी' तक पहुंच गई। उन्होंने उन्हें बुला लिया और अपने में मिला लिया। □

पिता जी का पारिवारिक रूप

अमला रजतकुमार

□ □

पर्वत की गोद में स्थित छोटे-से पंचमढ़ी में हम लोग श्री श्रीमां आनंदमयी की मातृ-छाया में दुनिया की रीति-नीति व्यवहार सब भूलकर निश्चिंत होकर मातृ-सत्संग के रसास्वाद की चरमसीमा का अनुभव कर रहे थे। हमें क्या पता था कि दूसरे ही दिन हमारे पारिवारिक वट-वृक्ष की शीतल छाया से हम लोगों को सदा के लिए वंचित होना है। और व्यवहार जगत में दीर्घ-काल तक बिना सहारे, बिना अवलंबन, आधाररहित इधर-उधर भटकते रहना है? मां की वह अक्षय मातृ-छाया मूक रूप में यह तो रंजित नहीं कर रही थी कि पारमार्थिक अवलंबन ही सच्चा सहारा है—व्यवहार जगत में नैमित्तिक संघर्ष आते हैं—लीला जगत में अपना कर्मक्षय होते, अपने पथ पर कहीं और चले जाते हैं !

परंतु यह अनुभवरहित ज्ञान कहां तक टिक पाता है?...नए वर्ष के एक सुस्त अतिशीतल प्रभात में पूज्य भास्करानंदजी ने कुछ छिपाते, कुछ भययुक्त भाव मुद्रा में मुझसे पूछा, अमला, घर से कुछ खबर आयी है क्या?" मैंने कहा, "हां परसों रात को दिल्ली अम्मा-पिताजी से फोन पर बात हुई है। सब कुशल हैं।"

मेरे इतने आत्म-विश्वासयुक्त भावका खंडन न करते हुए वे इतना ही बोल पाये, "लाईट-निंग कौल करो। रेडियो पर अभी सुना है कि पिताजी के अस्वस्थ होने के कारण उनको ग्वालि-यर उतारा गया है।

फोन लगाया श्रीमां को तुरंत उठाया।...मां ने कहा, "खवर वहुत वुरा है—तुम लोग जल्दी दिल्ली अम्मा के पास पहुंचने की कोशिश करो।"

अन्त्येष्टि के लिए श्रीमां से हार पाते ही मैं विचलित होकर रोने लगी।...यंत्रवत सब कार्य हो गये। हमारा यंत्री हमें चलाता था, वाहरी परिस्थिति अनुकूल करता जाता था—विना वुक किये पंचमढ़ी जैसे छोटे गांवड़े में टैक्सी मिल गई, भोपाल का विमान १५-२० मिनट रोका गया, इत्यादि। खवर इतनी अचानक, आकस्मिक और करुण थी कि विना श्रीमां के अवलंवन के यह सब होना सर्वथा असंभव था।

दिल्ली पहुंचकर जो-जो करना था, सव कुछ यंत्रवत् हो गया। कोई कराता जाता था, हम लोग करते जाते थे। सोचने का अवकाश ही मानो न था। महद् दुःख में छोटी-छोटी वातें कैसे समा जाती हैं; वही अनुभव रहा! परंतु आज जव उन श्रंखलाओं को जोड़ने की कोशिश करती हूं तव मन एकदम विश्रंखलित होकर, अमावस्या की घोर तिमिर रात्रि में जैसे तारक-दीप चंद्रमा के तेज को याद करके प्रज्वलित होते रहते हैं,वैसे ही पूज्य पिताजी की प्रेमभरी, ऊष्माभरी तेजोमय मूर्ति के अभाव में पिछले छः वर्ष के अनेक प्रसंग उनको ही याद करके अंधकारयुक्त मन्वाकाश में आकाश दीप की तरह टिमटिमाते कभी रुलाते हैं, कभी हंसाते हैं कभी कुछ सिखाते हैं और प्रेरणा देते हैं। परंतु सभी चित्ताकाश की पार्श्वभूमिका में एक ही विचार प्रधान है कि इतनी जल्दी हमलोग ऐसी निर्भय पितृछाया से वंचित क्यों हो गये? परंतु आद्या शक्ति जगद्-जननी के खेल स्वरूप इस लीला जगत में 'क्यों' प्रश्न का स्थान कहीं भी है क्या?

माता-पिता के साथ मित्रवत व्यवहार करने की अभ्यस्त, वड़ों से भी हंसी, मजाक तथा समानता से वार्तालाप करने की आदत से रूढ़ मैं जव नई-नई नारायण परिवार में आई तव पूज्य पिताजी तथा अन्यान्य के इतने मितभाषी, संकोची व्यवहार से मुझे एक विचित्र ही वातावरण का अनुभव आता था। पिताजी की वाहरी अलिप्तता में अंदर वहते उनके स्नेहपूर्ण स्रोत की धारा इतनी गहरी थी कि कोई भी परिस्थिति उस गहरी स्नेहधारा का गांभीर्य दूर नहीं कर पाती थी। परंतु पास रहते-रहते जैसे समुद्र के किनारे के जल-तरंग के छींटे उड़ ही जाते हैं, वैसे उनके नजदीक रहकर मैंने भी वह मधुर स्नेह देखा है और थोड़ी मात्रा में उसका अनुभव भी किया है। कानपुर में जव मेरे पति पर घातक आक्रमण हुआ तो पहली खवर मैंने ही पिताजी को फोन पर दी थी। छोटे वालक की तरह वे प्रश्न कर रहे थे, इनकी तवीयत के वारे में और जैसे हमने परस्पर अपनी भूमिका वदल दी हो, ऐसे गंभीरता से जवाव दे रही थी मैं। और शायद उसी से वह रेल की मुसाफरी के चौवीस घण्टे शांतिपूर्ण ढंग से निकाल पाये—अलवत्ता प्रायः विना खाये-पीये और मिलने की तीव्र उत्सुकता से। कानपुर आकर तुरंत दादीजी से वोले, चाची जी, अमला से वात करने के वाद ही लगा कि अव रजत का मुंह देख पाऊंगा।" जितने समय ये कानपुर—अस्पताल में रहे, उतने पूरे समय पिताजी रात को इनके पास ही रहे और उसी समय मैंने इनको माता का, पिता का और मित्र का प्यार देते देखा है। फीडिंग कप से हारलिक्स पिलाना,वार-वार विछाने के तकिए ठीक करना, तापमान लेना, नर्स की रिपोर्ट को देखना और कुछ काम न रहा तो अपनी जाकेट की दोनों जेवों में (अंगूठा वाहर रखे) हाथ डालकर, इनको देखते रहना।

आदर्श पिता की तरह इनकी छुट्टी, सेवा, मामला इत्यादि सरकारी पूछताछ, चर्चा करना,

एक मित्र की तरह इनके बिस्तरे में बैठकर उबली हुई मूंगफली छीलते जाना, इनको खिलाते जाना।

इनके और पिताजी के स्वभाव में मैंने हमेशा ही बहुत साम्य पाया है और इन दोनों की दूरी में भी एक प्रकार की नजदीकी का अनुभव मुझे हमेशा ही आया है। परंतु इतनी नजदीक का पिता-पुत्र का ऐसा संपर्क दर्शन मुझे इतना मधुर लगता था कि मैं बाहर के कमरे की खिड़की से ही उसे देखकर प्रसन्नता का अनुभव करती थी।

हम लोग करीब दो-ढाई साल दिल्ली में रहे। संयोगानुसार पिताजी का भी दिल्ली में आना जाना काफी रहा। घर न मिलने के कारण हम लोग करीब एक-डेढ़ साल पिताजी के ही फ्लैट में रहे, इसलिए मेरा संपर्क उनके साथ काफी आने लगा था। दो समय साथ में खाना, साथ में बाहर आना-जाना, कभी-कभी पिताजी पर दबाव डालकर नाटक या सिनेमा में ले जाना, रामायण की नृत्य-नाटिका में ले जाना, वुडलैण्ड्स में दक्षिण भारतीय खाना खाने जाना, विश्व रूप[1] के साथ उनका खेलना, साथ में उत्सव मनाना...ऐसे अनेक विविध प्रसंगों में पिताजी का सामीप्य मुझे प्राप्त हुआ है। इन सभी प्रसंगों में पिताजी के अनेक गुणों का दर्शन स्वाभाविक रूप से ही हो जाता था। पिताजी के हर कार्य में प्रचुर मात्रा में स्वाभाविकता थी। इतने व्यस्त रहने पर भी उनको कभी व्यग्र नहीं देखा। इतनी व्यस्तता होने पर भी उनके काम कभी अनियमित रूप से नहीं होते थे।

उनके बोलने, हंसने, आने-जाने, सभी कार्यों में एक निहित संयम रहता था। उसके लिए उनको कभी कोशिश ही नहीं करनी पड़ती थी। देखकर लगता था कि पिताजी की यह सब देन अनेक पूर्व जन्मों की साधना तथा संचित पुण्य के फलस्वरूप ही है। कभी-कभी मेरे मन में यह भी आता था कि समाज सेवा का सार्वजनिक पथ न लेकर अगर पिताजी पारमार्थिक ईश्वरानुसंधान का मार्ग लेते तो मैं उनसे जो अभी पाया हैं, उससे कई गुना ज्यादा पाने की कोशिश करती और जितनी अभी नजदीकी महसूस करती हूं, उससे कई गुनी ज्यादा नजदीकी महसूस करती।

इसी संदर्भ में एक और बात याद आती है। हम लोगों के यहां चार दिन के अखंड रामायण का गीत-पारायण था। आगरा के कुछ लोग इसके लिए विशेष रूप से आने वाले थे। पिताजी का दूसरा कार्यक्रम पहले से ही बन गया था। कार्यक्रम इत्यादि के ज्यादा इधर-उधर करने में पिताजी का लचीलापन हमेशा ही कम रहा। न वह किसी से अपनी रुचियों के लिए आग्रह रखते थे, न दूसरे के आग्रह से अपना विचार या कार्यक्रम बदलते थे। रेल की गति की तरह उन का अपना कार्य अविरत चलदा ही रहता था। हम लोगों का बड़ा ही मन था कि हमारे इस छोटे से अनुष्ठान में पिताजी उपस्थित रहें। इन्होंने अपना स्वभाव छोड़कर पिताजी से आग्रह किया और पिताजी ने अपना स्वभाव छोड़कर अपना कार्यक्रम बदल भी दिया। पिताजी करीब-करीब पूरे समय रामायण में बैठते थे, पढ़ते थे। हम लोगों के साथ जमीन पर बैठकर पंगत में खाना खाते थे। घर के बुजुर्ग की तरह सबकी खातिर करते थे। व्यवस्था देखते थे, दादाजी की तरह विश्वरूप के साथ खेलते थे, इत्यादि। और मुझे अगर मेरे सत्य मनोभाव लिखने की कोई स्वतंत्रता दे तो मैं लिखूंगी कि पिताजी वही का स्वरूप मुझे सबसे अधिक आह्लाद लगा है।

१. रजतकुमार और अमला का पुत्र

पिताजी ने बहुत बड़े-बड़े काम किये हैं—देश भले ही उनकी याद करे, परंतु परिवार की सबसे छोटी कुलवधू के नाते पिताजी की रसमय स्मृतिरूप ये छोटी-छोटी कणिकाएं ही मेरे लिए तो पर्याप्त हैं। □

कोमल पर कठोर

मधुर बजाज

□□

श्रीमन् फूफाजी कोमल थे, लेकिन उनकी कोमलता कुछ ऐसी विचित्र थी कि यदि कोई लापरवाही करता था या काम में अयोग्यता दिखाता था तो वह इतने कठोर भी हो जाते थे कि उस व्यक्ति को छठी का दूध याद आ जाता था। मैंने उन्हें कभी अपना मानसिक सन्तुलन खोते नहीं देखा। जब वह बेहद व्यस्त होते थे, तब भी शांत रहते थे, और ऐसी छाप डालते थे, मानो आपके लिए उनके पास समय-ही-समय है।

उनकी सादगी, चाहे वह भाषा की हो या खान-पान की अथवा पोशाक की, कमाल की थी। उनमें बहुत ही लचीलापन था, हालांकि सिद्धांत के मामले में वह चट्टान से भी अधिक दृढ़ होते थे।

वह पूर्णतया गांधीवादी थे। उनमें शिक्षाविद्, तत्ववेत्ता, अर्थशास्त्री, कवि और लेखक का संगम था। जब कभी मैं कमल के बारे में सोचता हूं, जो कीचड़ के बीच होते हुए भी उससे ऊपर रहता है, तो मेरी आंखों के सामने स्वतः ही उनका चित्र आ जाता है।

उनकी स्मृति मुझे प्रेरणा देती है कि मुझको अपना जीवन और भी सादा तथा निर्मल बनाना चाहिए। □

फूफाजी की विशेषताएं

शेखर बजाज

□□

श्रीमन् फूफाजी के बारे में वैसे तो मुझे कई बातें याद आती हैं, लेकिन उनमें से उनके व्यवस्थित जीवन और कार्य में तन्मयता की वृत्ति का मुझपर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। वह अनेक सार्वजनिक कार्यों में व्यस्त रहते थे, परन्तु यह कभी नहीं लगा कि वह एक कार्य में दूसरे कार्य की

वजह से जल्दबाजी कर रहे हैं, अथवा किसी का काम केवल करने के लिए कर रहे हैं। वह प्रत्येक कार्य में पूरी तरह खो जाते थे तथा सदैव शांत और एकाग्रचित्त रहते थे।

मदालसा बुआजी की अपनी अलग रुचि और कार्यक्रम थे। उनमें फूफाजी पूरा रस लेते थे। और उनकी बात बड़ी शांति से सुनते थे और अपने सुझाव देते थे। कई बार हम लोग जो पास बैठे रहते थे, वे बुआजी के अत्यधिक उत्साह से थक जाते थे, परन्तु मैंने फूफाजी को अपना धैर्य खोते हुए कभी नहीं देखा।

प्रार्थना में उनका बहुत अधिक विश्वास था। चाहे नेपाल के राजदूतावास में हों अथवा अहमदाबाद के राजभवन में, उनका नित्य प्रार्थना का कार्यक्रम चालू रहा।

मैं जब लगभग बारह साल का था, मदालसा बुआजी ने मुझे फूफाजी लिखित 'फाउन्टेन आफ लाइफ' पुस्तक पढ़ने को दी। बुआजी ने इसे काव्य रूप देकर 'जीवन निर्झर' के नाम से बाद में प्रकाशित किया। यह पुस्तक फूफाजी ने कालेज में पढ़ते समय लिखी थी। इस पुस्तक के द्वारा मुझे फूफाजी की रचनात्मक क्षमता का ज्ञान हुआ। उसके बाद उनकी कई पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिला, परन्तु मुझे उनकी उस रचना ने सबसे अधिक प्रभावित किया।

उनकी स्वच्छता ने भी मुझपर बहुत असर डाला। खादी के कपड़ों में अनायास ही सल-वटें पड़ जाती हैं। फिर भी उन्हें कभी भी देखते थे तो वे सदैव चुस्त सफेद कपड़ों में ही दिखाई देते थे।

मैंने फूफाजी के संपर्क में आकर जो बातें देखीं, समझीं, उनका प्रभाव मेरे जीवन में सदैव रहेगा। □

त्रिकोण

किरण बजाज

□ □

'गांधीवाद' की चर्चा बहुत पढ़ने-सुनने में आई है। बड़े-बड़े सबक और भाषणों द्वारा तथाकथित गांधीवादियों ने तथाकथित नाम कमाये हैं। किंतु सही माने में बहुत थोड़े लोग गांधीवाद को अपने जीवन में उतार सके हैं। इनबहुत थोड़े लोगोंमें श्रीमन् फूफाजी का नाम लेने में मुझे जरा भी हिचक न होगी।

पिछले कई वर्षों से फूफाजी वर्धा में ही अधिक रहे और अपने काम के सिलसिले में बंबई आना-जाना होता रहा। वे जब भी बंबई आये, मुझे उनके सान्निध्य में रहने का सौभाग्य मिलता रहा। वे परिवार के इतने निकट थे कि मैं उन्हें अतिथि तो कह ही नहीं सकती। बंबई में खास-कर दोपहर के खाने के समय में ही फूफाजी के साथ बैठकर खाना खाया करती थी। फूफाजी बहुत थोड़े शब्दों में घर और स्वास्थ्य आदि के बारे में सब हाल पूछ लिया करते थे। खाने में

किसी प्रकार की नुक्ताचीनी या किसी भी प्रकार कीआलोचना करते मैंने उन्हें कभी नहीं पाया। इतनी व्यस्तता रहने पर भी खाने के समय उनके चेहरे पर कोई तनाव या जल्दबाजी नहीं दिखाई देती थी, वल्कि एक हल्की-सी मुस्कराहट का आभास जरूर होता था। उनकी यह शान्त और स्निग्ध मुद्रा तथा मृदुभाव मुझे बहुत प्रभावित करता रहा। उनके व्यवहार की सादगी और पवित्रता का भास अनायास ही मुझे मिलता रहा। फूफाजी से मैं कभी मुखर न हो सकी, किंतु उनके ज्ञान की गरिमा उनके मूक शब्दों में भली भांति मिल सकी है। साथ ही उनके अजस्र स्नेह की पात्र भी रही हूं, ऐसा भी अनुभव कर हृदय में प्रसन्नता हुई है।

आजकल अपने ज्ञान,व्यवहार बुद्धि और नियमों को दूसरे पर लादने का शौक या फैशन-सा चला हुआ है। गांधीवाद को लेकर यह फैशन और भी चल पड़ा था। फूफाजी इस मामले में विलकुल अपवाद-स्वरूप थे। उन्होंने कभी भी हम वच्चों पर वुद्धि-वार्धक्य या ज्ञान का ठप्पा लगाने का अनायास भी प्रयत्न नहीं किया। वैसे तो गांधीवाद की वहुत बड़ी परिभाषा होगी, किंतु मेरी दृष्टि में 'सादगी', 'सच्चाई' और 'नम्रता' ये ही गांधीवाद की परिभाषा है, और उसे जीवन में प्रतिक्षण अमल करने वालों में फूफाजी का जीवन परिभाषा के तीन विंदुओं को छूता हुआ त्रिकोण पूरा करता है। □

उनका वात्सल्य

मधुलिका भरतनारायण

□□

मैं वाराणसी में थी। १८ फरवरी १९६६ को मेरे माता-पिता,बहनें, दादी सब 'महाशिवरात्रि' के लिए नेपाल गये और 'राजदूतावास' में अम्मा-पिताजी के पास ही ठहरे। बाद में मेरे पास बुलावा आया और मैं भी नेपाल पहुंच गयी। उसी दिन नेपाल का 'राष्ट्रीय दिवस' था, 'महाशिवरात्रि' थी। शाम को ६ बजे समारोह था। नृत्य आदि। हम सब तैयार होकर निकले। मैं अम्मा-पिताजी के साथ कार में थी। बारिश की वजह से सड़कों पर पानी जमा हो गया था। ड्राइवर ने कार की रफ्तार थोड़ी तेज कर रखी थी, जिससे पैदल चलने वालों पर छींटे पड़ रहे थे।" पिताजी ने गंभीर आवाज में ड्राइवर से कहा, "कार धीरे चलाओ। लोगों पर छींटे पड़ रहे हैं।"

बात सामान्य-सी थी, लेकिन मैंने अनुभव किया कि पिताजी छोटी-छोटी चीजों में कितने सजग थे। उस समय तक मेरी सगाई भी नहीं हुई थी। बातचीत चल रही थी। एक साल के बाद मेरी शादी हुई। सीधे नेपाल आई, रोज सुबह पिताजी को प्रणाम करती थी। उस समय सब नाश्ते की मेज पर बैठे होते थे। एक दिन प्रणाम करते समय मेरा सिर मेज से टकरा गया। उसके बाद रोज प्रणाम करने जाती तो अपनी कुर्सी पहले से ही पीछे सरका लेते।

जुलाई में मैं फिर नेपाल वापस गई। उस समय हिमानी होने वाली थी। रोज सुबह-शाम

तबीयत के बारे में पूछते थे। शाम को साथ में घूमने जाते थे। कार से करीब २०-२५ मील दूर निकल जाते। चीन के रास्ते पर, जो उस समय बन रहा था या फिर भारत के रास्ते पर बहुत ही सुन्दर प्राकृतिक दृश्य थे। कहीं भी कार रुकवा देते, वहां घूमते और वापस आ जाते।

एक बार राजदूतावास के स्टाफ के साथ पिकनिक पर गये। बहुत ऊंची पहाड़ी चुनी गई थी, जिसका रास्ता बड़ा खराब था। जीप से काफी ऊपर जाने के बाद पैदल चढ़कर जाना था। जब पिताजी ने यह देखा तो बहुत चिंतित हो उठे। मेरे लिये एक छड़ी मंगवाई और कपड़े का जूता पहनवाया। बार-बार कहते रहे कि धीरे-धीरे संभलकर चढ़ो। इतना उन्हें हमारा ध्यान रहता था।

हम लोग बंबई रहने चले गये। बंबई से जब कभी अहमदाबाद जाते, पिताजी से ही नाश्ते में 'खांडवां' बनाने के लिए कह देते। वह जानते थे कि मुझे खांडवां बहुत पसंद है।

मैं भी पिताजी के लिए कुछ-न-कुछ बनाया करती थी। घर के लोगों के हाथ का बनाया हुआ खाना उन्हें बहुत पसन्द आता था। अगर गरम-गरम और आलू की चीजें होतीं तो बड़े ही शौक से खाते थे। नमकीन चीजों का बहुत शौक था। साथ ही साथ थोड़ी मिठाई भी हो तो खुश हो जाते थे।

कभी-कभी हिमानी टब में नहाती तो पिताजी उसके साथ खेलने लग जाते। जब वह बड़ी होने लगी और थोड़ा बोलने लगी तो उसको खूब कविताएं सुनाते और सिखाते। कहानियां भी खूब शौक से सुनाते। अनन्य को भी उन्होंने खूब प्यार दिया।

बंबई से हम लोग दुबई चले गये। मेरी आखरी मुलाकात पंद्रह दिन पहले जब उनका शिक्षा-सम्मेलन चल रहा था, उस समय हुई। कहने लगे इस बार जुलाई में हम सब काश्मीर चलकर रहेंगे। उनकी वह इच्छा उनके साथ ही चली गई। □

उनकी धर्म-निष्ठा

सुरेन्द्र नारायण

□□

हम लोग पांच भाई थे। श्रीमन् भाई चौथे, मैं पांचवां। उम्र में कई साल का अन्तर होते हुए भी उनका और मेरा बहुत साथ रहा। वह बचपन से ही काफी गंभीर थे। स्कूल के खेलों का उन्हें शौक नहीं था। खेल-कूद में पीछे ही रहे। लेकिन शुरू से ही लिखने का शौक था। बचपन में श्री जे० कृष्णमूर्ति का उनके ऊपर बहुत प्रभाव पड़ा और नवें तथा दसवें दर्जे में पढ़ते हुए ही उन्होंने अंग्रेजी में कविताएं लिखना शुरू कर दिया था।

हम लोग मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) में एक मकान में रहते थे, जिसमें बहुत बड़ा बाग था। उसी में हम सब भाइयों ने थोड़ी-थोड़ी जगह ले रखी थी, जिसमें हम सब अलग-अलग अपने हाथों

से फूल-फल उगाया करते थे। एक दिन हम लोग एक फुटवॉल लाये और उसमें ठोकर लगाने लगे। जब श्रीमन् भाईसाहब की ठोकर लगाने की वारी आई तो मैंने उनसे कहा, "आप वाग के मेरे वोये हुए फूलों के हिस्से में खड़े हैं। अगर ठोकर ठीक न लगी तो मेरे फूल खराव हो जायेंगे। इसलिए थोड़ी दूर हटकर ठोकर लगाइए।" वह वोले, "फूल खराव नहीं होंगे, क्योंकि गेंद ऊपर और दूर जावेगी।" मैंने कहा, "अगर ऊपर और दूर न गई तो?" उन्होंने उत्तर दिया, "अगर हमारी ठोकर से तुम्हारे फूल खराब हो जायें तो तुम मेरे पांच चपत लगाना।"

उन्होंने ठोकर मारी। पर अच्छे खिलाड़ी न होने की वजह से उनकी मारी हुई ठोकर से गेंद ऊपर और दूर न जाकर मेरे फूलों के पौधों पर गिरी, जिससे कुछ फूलों का नुकसान हो गया। उम्र में काफी बड़े होते हुए भी उन्होंने फौरन अपना मुंह मेरे सामने कर दिया और कहा, "तुम चपत लगाओ।" यह था उनका चरित्र।

भाईसाहव जब कांग्रेस के महामंत्री और योजना-आयोग के सदस्य थे तब मुझे उनके साथ रहने और उन्हें नजदीक से देखने का मौका मिला। उस समय मैं भी दिल्ली में ही नियुक्त था। मैंने देखा, काम करने की उनमें असीम शक्ति थी। दिन-भर काम तो चलता ही था, रात को भी कभी-कभी टेलीफोन वरावर आते रहते थे। फिर भी वह हमेशा शांत और मृदुल स्वभाव के रहते। पंडित नेहरू के लिए उनके मन में अगाध श्रद्धा थी। कहते थे, इतने व्यस्त होते हुए भी हमारी जितनी भी फाइलें उनके पास शाम तक जाती हैं, वे सब रात को निवटा देते हैं और वे सुवह मेरे पास पहुंच जाती हैं। काफी फाइलों में पंडितजी के अपने हाथ के लिखे हुए नोट भी रहते हैं। वह कहते थे कि हम सबको, विशेषकर सचिवालय के अधिकारियों को—पंडितजी से सवक सीख कर काम फुर्ती से निपटाना चाहिए। राजनीति में रहते हुए भी भाईसाहव बहुत धार्मिक थे और कहा करते थे कि गांधीजी की राजनीति सत्य और शुद्ध साधनों पर आधारित है। हम सबको भी उसका अनुसरण करना चाहिए।

बहुत अधिक व्यस्त रहते हुए भी सबेरे आधा घंटा वह प्रार्थना में व्यतीत करते थे। घर के अन्य सदस्य भी सम्मिलित होते थे। प्रार्थना में उपनिषद के कुछ चुने हुए श्लोक और वारी-वारी से अनेक धार्मिक ग्रंथ पढ़े जाते थे। वह कहते थे कि कुछ लोग समझते हैं कि नेहरूजी को धर्म में श्रद्धा नहीं है। यह गलत है। हां, पंडितजी की धर्म की दृष्टि बहुत ऊंची है। वह रूढ़िवाद और संकीर्णता से परे हैं। इस संबंध में वह अपनी किताव 'सोशलिज्म इन इंडियन प्लानिंग' की भूमिका पर ध्यान दिलाते थे, जो कि पंडितजी ने २५ मई १९६४ को लिखी थी :

"भारत में हम सबके लिए आधुनिक तकनीकी प्रक्रियाओं से लाभ लेना और कृषि और उद्योग में उत्पादन को बढ़ाना महत्वपूर्ण है, लेकिन ऐसा करने में हमें इस आवश्यक ध्येय को सामने रखना नहीं भूलना चाहिए कि मुख्य वस्तु मनुष्य की गुणवत्ता और उसमें निहित धर्म का तत्व है।" □

स्थितप्रज्ञ कर्मयोगी

रजतकुमार नारायण

□□

२ जनवरी, १६७८ की रात के लगभग साढ़े ग्यारह बजे। स्थान पंचमढ़ी, जहां मैं, मेरी पत्नी और पुत्र पूज्य श्री मां आनंदमयी के साथ तीन-चार दिन के लिए आये हुए थे। एकाएक मुझे घुटन-सी महसूस हुई। भयंकर सर्दी के कारण कमरे में एक बिजली का हीटर जला रखा था। सोचा, शायद इसकी वजह से होगा। खिड़कियां खोलीं। किंतु फिर भी घुटन गई नहीं। मैंने अपनी पत्नी को उठाकर पूछा कि क्या उसे भी घुटन लग रही है। उन्होंने कहा, नहीं। एक अजीब बेचैनी से मन घिर गया। किसी प्रकार धीरे-धीरे सो गया। बाद में पता चला कि ठीक उसी समय पूज्य पिताजी अपनी पार्थिव देह त्यागने की तैयारी कर रहे थे। जिसने सुना, कहा, वे विदा लेने आए थे। हो भी सकता है; क्योंकि पिताजी के शांत, निर्लिप्त स्वभाव में वत्सलता की अन्तर्धारा-रूपिणी सरस्वती के सहित एक अद्भुत त्रिवेणी थी। उन्होंने वात्सल्य भाव कभी प्रदर्शित नहीं किया। वे स्वभाव से ही अत्यन्त 'संयत' थे। उनका जीवनक्रम भी इतना व्यस्त रहा कि उन्हें अपने पुत्रों के साथ समय बिताने का अवसर ही नहीं मिला। किंतु कभी-कभी उनके अंतर्निहित स्नेह की झलक मिल जाती थी और वे अवसर इतने विरल होते कि उनकी स्मृति सदा के लिए मानस-पटल पर अंकित हो जाती।

कई वर्ष पूर्व मैं स्कूल का छात्र था। जाड़े की सुबह थी। शायद मुझे उठने में देर हो गई थी और दैनिक प्रार्थना का समय हो रहा था। सिर पर हल्ले-हल्के हाथ फिराकर कोई मुझे जगा रहा था। आंखें खोलीं तो देखा कि पिताजी खड़े हैं। अधिकतर उनका वात्सल्य उनके पत्रों में अभिव्यक्त होता, विशेषकर जन्म दिन आदि जैसे विशिष्ट अवसरों पर।

कई वर्ष पूर्व घर में किसी बौद्धिक चर्चा के दौरान प्रश्न उठा कि गृहस्थाश्रम में अनासक्ति का स्वरूप क्या है। उस समय जे० कृष्णमूर्ति की परिभाषा बताते हुए पिताजी ने कहा था, "स्नेहयुक्त अनासक्ति।" वह बात तुरन्त हम सबके मन में बैठ गई थी। शायद इसलिए कि हमारे बीच में उसका एक जीता-जागता उदाहरण था, और वह चीज हमारे लिए बहुत नयी नहीं थी।

पिताजी ने हम लोगों को कभी व्यक्त रूप से सदाचार इत्यादि के बारे में उपदेश या नसीहत नहीं दी। ऐसा करना उनके स्वभाव में ही नहीं था। किन्तु उनका जीवन और व्यक्तित्व इस प्रकार का था कि उसका प्रभाव शब्दों से कहीं अधिक गहरा होता था।

शांतता, सौम्यता, व्यवस्थितता, सादगी—ये सभी चीजें हम लोगों ने अपने बाल्यकाल से ही उनमें देखीं। और ये उनमें इतने सहज भाव से स्थित थीं कि कभी हमने उसके बारे में सोचा ही नहीं, क्योंकि वे उनके स्वभाव का अविभाज्य अंग थीं। उन्होंने कभी कोई बात हम पर लादी नहीं, न हमारे बचपन में और न बड़े होने पर; क्योंकि जो वे हमसे कहना चाहते थे, वह उनके स्वयं के जीवन में चरितार्थ हो चुका था। उदाहरणार्थ खादी पहनने और ग्रामोद्योगी वस्तुओं का

प्रयोग करने के लिए उन्हें हम लोगों को कहना नहीं पड़ा; क्योंकि हमने अपने माता-पिता को खादी के सिवाय और किसी वस्तु का इस्तेमाल करते कभी देखा ही नहीं। इसके साथ-साथ वे नियमित रूप से सूत भी कातते थे।

वड़े-छोटे का भेद उनके मन में नहीं था। जिस आत्मीयता से वे किसी विशिष्ट व्यक्ति से बात करते, वही आत्मीयता सर्वसाधारण के प्रति उनके आंतरिक, सहज सद्भाव और उनकी सेवा करने के लिए कृतसंकल्पता का द्योतक थी।

उनमें जितना वैचारिक गांभीर्य था, उतनी ही व्यावहारिक, विशेषकर, प्रशासनिक कुशलता भी थी। यह उनके सेतु-निर्माता बनने में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई, क्योंकि इससे उन्हें प्रशासन से दबना नहीं पड़ा, अपितु वे अपने वांछित लक्ष्यों की ओर प्रशासनिक तंत्र को प्रयुक्त कर सके और उनकी शक्ति का पूरा उपयोग कर सके।

वे अपने पुत्रों को बहुत समय नहीं दे पाते थे, क्योंकि घर पर भी वे दफ्तर का कार्य ले आया करते थे और काफी देर तक करते रहते थे। उनका कार्यक्षेत्र इतना विस्तृत था और वे सदैव इतनी संस्थाओं और इतने विविध कार्यों से संबद्ध रहे कि दफ्तर के सीमित समय में अपना कार्य पूरा करना अशक्य था। किंतु उनके अन्य कार्यों और दफ्तर के काम में कभी कोई विरोध नहीं था, वरन् वे एक-दूसरे के पूरक होते थे। सब कुछ एक ही उद्देश्य की ओर उन्मुख था। एक ही भावना से प्रेरित था, क्योंकि उनका किसी भी कार्य में अपना निजी स्वार्थ था ही नहीं।

इस दृष्टि से उन्हें वास्तव में एक साक्षात स्थितप्रज्ञ कर्मयोगी कहा जाय तो मेरे विचार में कोई अतिशयोक्ति न होगी। अपनी अंतिम सांस तक वे कार्यनिरत रहे। बीसियों कल्याणकारी संस्थाओंके लिए रात-दिन एक किये रहते। किंतु बिलकुल अनासक्तभाव से। कभी किसी पद का मोह नहीं किया। जो कार्य सहज रूप से सामने आया, उसे पूरी निष्ठा से किया और जिस पद या कार्य से एक बार मुक्त हुए, उसके विषय में कभी चिन्ता या चिन्तन नहीं किया। सदा उपस्थित वर्तमान में पूर्ण रूप से संलग्न रहे। अपने मनोरंजन अथवा आराम के लिए सांस्कृतिक कार्यकमों इत्यादि या घूमने-फिरने के लिए जाने की उनकी न तो प्रवृत्ति थी और न उनके पास समय था। फिर भी वे नीरस कदापि नहीं थे। वे खूब विनोदप्रिय थे और अच्छा मजाक सुनने को हमेशा उत्सुक रहा करते। जहां तक आराम का प्रश्न है, शायद अपने रोज के काम को ठीक से करने में ही उन्हें आराम और संतोष मिलता था।

वे नियमित व्यायाम आदि द्वारा अपने शरीर को स्वस्थ रखने में विश्वास करते थे। किंतु उन्हें देहासक्ति नहीं थी। कहते हैं, उन्होंने अंतिम दिनों में अपने पूर्व निर्धारित व्यस्त कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए दवाइयां लेकर अपने स्वास्थ्य को बिगाड़ा और अकाल निधन को प्राप्त हुए। किन्तु मुझे लगता है कि यह भी उनकी "चरैवेति,-चरैवेति", सतत कर्त्तव्य कर्म करते रहने की भावना का द्योतक है।

सतत कर्मयोग में प्रवृत्त रहते हुए भी पिताजी की मनोभूमिका वस्तुतः निवृत्तिपरक थी। यदि वे संसार में कुछ और वर्ष रहते तो निश्चय ही वे रचनात्मक जगत—विशेषकर शिक्षण के क्षेत्र में और अधिक योगदान देते। किन्तु यह भी संभव है कि जब वे समझते कि उनका जीवन-कार्य पूरा हो गया है तो वे लोकजगत से अपने को हटाकर स्वाध्याय, ध्यान और चिंतन में लग जाते। □

वह कर्मयोगी थे

भरत नारायण

□□

अपने पिताजी को 'दादू' के छोटे और मीठे नाम से संवोधित करना हमें पसंद था। पं० जवाहरलाल जी अपने पिता पं० मोतीलालजी को दादू कहते थे। यह संबोधन पिताजी को अच्छा लगा था।

दादू की पहली धुंधली-सी याद सेवाग्राम आश्रम में पूज्य वापूजी के साथ गांधीकुटी के पास घूमने की है। मैं शायद दादू की गोद में था और वे वापूजी से वातचीत कर रहे थे। मैं ढाई-तीन साल का रहा होऊंगा। उन्हीं दिनों मैं दादू के साथ जीवन कुटीर से उन्हें कामर्स कालेज छोड़ने पैदल जाया करता था। रास्ते में वे मुझे ज्यादातर संस्कृत के शुभाषित या पंचतंत्र की कहानियां सुनाया करते थे।

१९५२ में वह पार्लियामेंट के सदस्य वनकर दिल्ली गये तो मुझे वनारस के थियोसाफिकल स्कूल के होस्टल में रहना पड़ा। हिन्दी से अंग्रेजी माध्यम के वदलने से मैं परीक्षा में फेल हो गया। दिल्ली आया तो दादू से यह वात मुझसे कही नहीं जा रही थी। रात में खाने के वाद वह वोले, "तुम्हारा परीक्षा-फल आया है। परीक्षा तुम ठीक से नहीं कर सके, शायद अंग्रेजी की वजह से। इसमें दुःख की कोई बात नहीं है। इस साल मेहनत करके अपनी कमजोरी दूर कर लो।"

दादू पर बचपन से श्री जे० कृष्णमूर्ति का प्रभाव रहा। फिर घर में थियोसाफी के वातावरण से वे वचपन से ही शरीर और आत्मा के भेद को पहचान गये थे। अध्यात्म में उनकी गहरी रुचि थी। १२ वर्ष की उम्र में आध्यात्मिक विषयों पर लिखी उनकी पुस्तकें इसका प्रमाण हैं। वचपन में उन्होंने जो कुछ लिखा उसी पर उम्र भर अमल किया। वे क्रोध, लोभ और मोह से दूर थे। उन्होंने एक पाई भी अधर्म से नहीं कमाई। वे पाई-पाई का हिसाव रखते थे। कभी फिजूलखर्ची नहीं की, लेकिन कभी भी हमें और घर में रुपये की कमी महसूस नहीं होने दी। उनका रहन-सहन सादा था।

दादू पक्के शाकाहारी थे। नेपाल में राजदूत की हैसियत से भी राजदूतावास में न कभी शराव आई, न सामिष भोजन ही मेहमानों को दिया गया। पर शाकाहारी भोजन के लिए वढ़िया-से-वढ़िया रसोइये और साग-सब्जियां दूर-दूर से मंगाई जाती रहीं। मेहमान उस भोजन को बड़े स्वाद से खाते थे।

दादू साध्य और साधन पर बहुत जोर देते रहे। वुरे साधनों से अच्छे साध्य की सिद्धि हो ही नहीं सकती, इस पर उनका पक्का विश्वास था। दूसरे, ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है, पर हमेशा जोर दिया।

जब दादू गुजरात के राज्यपाल थे, मैं बम्बई में काम करता था। कम्पनी के काम से अहमदाबाद प्राय: आना-जाना रहता। मेरे व्यापारिक संबंधों को यह पता नहीं लगा कि राज्यपाल से मेरा कोई संबंध भी है।

दादू की पूंजी उनकी किताबें और फाइलें रहीं। उनकी भौतिक सम्पत्ति में तीन चीजें

थीं, ट्रांजिस्टर रेडियो, जो मामाजी ने दिया था, जिस पर वे खबरें सुना करते थे; एलार्म की हाथ-घड़ी और एक पेन।

दादू कर्मयोगी रहे। हमेशा काम में जुटे रहे। पूरी ईमानदारी के साथ लिखने का उन्हें बचपन से शौक रहा। जब वे स्कूल में थे, किताबें और लेख सीधा टाइप करते थे, दिमाग बहुत साफ और सुलझा था। बाद में सीधा डिक्टेशन दिया करते थे। इतना काम करके भी हमेशा प्रसन्न रहते पर काम का उन पर कभी बोझ नहीं दिखाई दिया। □

प्रेरक पहलुओं का पुंज

अखिलचंद्र पंड्या

□ □

भय तथा शंकाभरे वे आपातकालीन दिन। इधर था बाबा का मौन। हां, एक शब्द भारत के चारों कोनों में सर्वत्र गूंज रहा था—"अनुशासन पर्व।" मनमाना अर्थ निकाल कर तत्कालीन सरकार ने अपने उस कदम को संत के आशीर्वाद से सही ठहराने का भगीरथ प्रयत्न किया।

२५ दिसंबर, १९७५ को बाबा का मौन वर्ष समाप्त हुआ। ग्राम स्वराज्य सम्मेलन के निमित्त धाम नदी के प्रस्तर आंगन में देश भर के लोगों की भीड़ जमा हुई। बाबा का मौन खुला। बाबा बोले, "सरकार का शासन होता है, अनुशासन आचार्यों का होता है।" 'अनुशासन' शब्द के पौराणिक संदर्भ का जिक्र करते हुए बाबा ने आगे कहा, "महाभारत में अनुशासन पर्व आता है। अनुशासन भीतर से खुद का होता है। अनुशासन की दुहरी धार है पहले वह खुद को काटती है, फिर दूसरों को ...।"

पूरे देश ने बाबा का यह मोनोत्तर प्रवचन सुना। कुछ ने गुना। कुछ ने अपना सिर धुना। मगर एक व्यक्ति था, जिसने इसमें मौजूदा विकट स्थिति का तरुणोपाय, एक संकेत, एक आधार पाया, और तब से वह स्वयं उस आधार की खोज के लिए बेचैन हो उठा।

संकेत का तंतु हाथ में लेकर वह पहुंचा स्वैच्छिक आजन्म कारावास में स्थित बाबा के पास पवनार। कहा, "बाबा! अपनी बात की व्याख्या कीजिए। आचार्य माने कौन? अनुशासन माने क्या?"

विस्तार में पाया, "आचार्य के तीन विशेषण—जो निर्भय, निर्वैर, निष्पक्ष हो। ऐसे साथी मिलकर देश, दुनिया की परिस्थिति के बारे में एकमत से जो राय प्रकट करें, और उसे शासन तथा जनता सभी मानें वह हुआ अनुशासन।"

"क्या आपकी ओर से ऐसे आचार्यों का एक सम्मेलन यहीं आश्रम में बुलावें?"

बाबा ने स्वीकृति दे दी।

तीन दिन का सम्मेलन हुआ।

समारोप-भाषण में बाबा ने संकेत दिया, "व्यापक पैमाने पर आचार्यों का एक सम्मेलन किया जाय, जिसमें भारत के प्रत्येक जिले से ऐसा एक-एक प्रतिनिधि बुलाया जाय।" निवेदन की सिफारिशें क्या थीं, मानो सुन्न वातावरण रूपी जल में एक कंकड़ी, जिसने पूरे नीरव जल को तरंगित कर दिया। सिफारिशों को कार्यान्वित करने की दिशा में बाबा का प्रतिनिधि बनकर उस शख्श ने दिल्ली के दरवाजे खटखटाये। पर कोई परिणाम नहीं निकला।

वह शख्स थे श्रीमन्जी।

इस बीच काफी पानी बह चुका था। राजनैतिक पटल पर आचार्यों का एक समांतर सम्मेलन भोपाल में सत्ता के संकेत से बुलाया गया, जिसमें आपात स्थिति की बड़ी प्रशंसा की गई। पवनार सम्मेलन में जिन्होंने भाग लिया था, उनके ऊपर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दबाव भी आते रहे। इस परिस्थिति का जायजा श्रीमन्जी को तब मिला जब उन्होंने आचार्यों का बृहद सम्मेलन बुलाने के लिए कमर कस ली।

सम्मेलन की व्यवस्था में लगे हुए सब साथियों के सामने अपने दिल की व्यथा सुनाते हुए वे बोले, "...आपात काल का आतंक इतना है कि शायद हमें निष्पक्ष तथा निर्वैर व्यक्ति तो मिल भी जाएं, लेकिन निर्भय आचार्य नहीं मिले। भय के कारण बृहद आचार्य सम्मेलन में प्रथम तो लोग आना नहीं चाहेंगे और यदि आ भी गये तो आपात स्थिति के बारे में अपनी निर्भीक राय व्यक्त करने में वे साहस न दिखाएं, बल्कि संभव है विपरीत राय भी जाहिर करें। अच्छा है कि बृहद् सम्मेलन का विचार यहीं छोड़ा जाय।" और वह अध्याय यहीं पर अधूरा रहा।

कुछ समय बीता। भारत की सांस्कृतिक धरोहर, अपनी आध्यात्मिक भूमिका, देश का अहम सवाल, आपातस्थिति की चुनौती, सत्याग्रह की अबाध्यता, माता रुक्मिणी के प्रति ऋण-अदायगी की सगुण भावना, तथा नागरी सभ्यता की चकाचौंध को कृषि, गो-रक्ष्य वाणिज्यम की ग्रामीण संस्कृति की दिशा में मोड़ने के पुरुषार्थ के रूप में बाबा ने पूरे भारत में गोहत्याबंदी निर्धारित मुद्दत में कानूनन घोषित करने के सिलसिले में देश की जनता तथा सरकार का आवाहन किया। वह दिन था २९ मई, १९७६ का। "समय की मर्यादा में यदि यह घोषणा नहीं हुई तो बाबा ११ सितम्बर १९७६ से अपने ८४वें जन्म-दिवस से आमरण अनशन करेगा।" घोषणा का पहला ऐलान हुआ।

"गोहत्याबंदी के पीछे बाबा के तीन तर्क हैं" बाबा ने कहा, "नम्बर १ गाय भारतीय संस्कृति का प्रतीक है। बापू कहते थे कि भारतीय समाजवाद में गाय भी शुमार है। नम्बर २ हमारे संविधान के निर्देशक सिद्धांतों में हिंदु, मुस्लिम, सिख, ईसाई सभी ने एक राय से उसे मान्य रखा है। नम्बर ३ कांग्रेस (तत्कालीन) का वह चुनाव-चिन्ह है (गाय बछड़ा)।"

वर्धा-स्थित जीवन कुटीर में एक नई हलचल शुरू हुई। गो सेवा संघ का एक सम्मेलन बजाजवाड़ी के आंगन में आयोजित हुआ। एक विस्तृत कार्यक्रम शासन के लिए, जनता के लिए, सेवकों के लिए आंका गया, जनता के स्तर पर गो ग्रास, गोसदन, गोदुग्ध का व्यवहार आदि कार्यक्रम, शासन के स्तर पर विभिन्न प्रदेश सरकारों के मुख्यमंत्रियों से संपर्क तथा आवश्यकतानुसार प्रतीकात्मक अनशन सत्याग्रह आदि।

श्रीमन्जी और बाबा की मुलाकात सतत होती रही। उस समय श्रीमन्जी अक्सर कहा करते थे, "निर्भय बनो, अपनी राय जाहिर करने से मत डरो।" वह संत और सरकार के बीच

एक सक्षम माध्यम के रूप में वे प्रवृत्त हुए।

वर्धा पवनार से दिल्ली, मद्रास आदि के शासकीय फोन खनखना उठे। तमिलनाडु के तत्कालीन गर्वनर श्री मोहनलाल सुखाड़िया कतिपय प्रदेश सरकारों से एतद्-विषयक संपर्क करके शुभ समाचार सहित वर्धा के पटांगन में पहुंचे तब नारायण-दम्पति ने एक राहत की सांस ली कि बाबा का आमरण अनशन टूट गया। समय से बंगाल और केरल को छोड़कर शेष सबको सुबुद्धि सूझी।

मदालसा बहन की दूरदर्शिता ने सुखाड़िया जी की इस यात्रा को पावन और स्थायी बनाया, गो-ग्रास के समारोह द्वारा। कितना सुहावना दृश्य था वह। गांधी ज्ञान मंदिर का पटांगन प्रवेश द्वार के रास्ते पर खींचा है एक शामियाना। सामने है एक लंबा-चौड़ा मैदान। मैदान में हर उम्र की गीर नस्ल की गायें, बछड़े-बछिया चौकड़ी भर रहे हैं। मुख्य अतिथि सुखाड़िया की दाहिनी ओर श्रीमन्जी, बाईं ओर गोभक्त माता जानकीदेवी, मदालसाजी और अन्य संभ्रांत सज्जन।

माइक पर गीत गूंज रहा था :

"विश्व की जननी विभव विस्तारिणी गोमातरम्
शक्ति संतति सौख्यपद दुःखहारिणी गोमातरम्।"

बाबा ने ठीक ही कहा था कि मेरे लिए श्रीमन्जी एक विश्वसनीय आधार थे।

किसी भी कार्यक्रम के तार्किक अंत तक जाने का श्रीमन्जी का स्वभाव था।

नशाबंदी के प्रश्न पर 'आमरण अनशन' की घोषणा करते हुए श्री गोकुलभाई भट्ट ने राजस्थान को नशाबंदी मोर्चे पर राष्ट्रभर में अग्रग्रामी बना दिया था। वे ७५ पार कर चुके थे। बाबा ने गोकुलभाई को संकेत दिया कि अब आपको निवृत्ति का अधिकार मिल गया है। राजस्थान में शराबबंदी के काम की जिम्मेदारी अब श्रीमन्जी उठायेंगे। और श्रीमन्जी ने अपना यह दायित्व माना। यह दायित्व कोरी भावना वश नहीं, बल्कि स्पष्ट वैचारिक आधार तथा तथ्यों पर स्थित था। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि "विकास और शराब दोनों एक साथ नहीं चल सकते। इधर 'गरीबी हटाओ' का नारा और उधर शराब की लहाणी सरकार करे, यह चल नहीं सकता।

कार्यकर्त्ता स्तर पर, शासन के स्तर पर तथा जनता के स्तर पर श्रीमन्जी सचेष्ट हुए। सम्मेलन, संवाद और सक्रिय कदम के रूप में वे इस प्रश्न पर सन्नद्ध हुए। कुछ अर्से से वर्धा जिले को बाबा ने 'गांधी जिला' नामकरण किया। उनका गूढ़ संकेत श्रीमन्जी अपनी तरह से हम सब कार्यकर्त्ताओं को समझाते थे। भारत में कोई एक जिला लेकर यदि बापू की दिशा का समग्र कार्य किया जाय तो उसका असर सबदूर पड़ेगा। वह जिला कौन-सा हो सकता है ?उत्तर मिला, "वर्धा जिला।"

"बापू के अंतिम दस साल इसी जिले में बीते। काका, किशोरलाल भाई, महादेवभाई जाजूजी जमनालालजी आदि की पुण्य स्मृतियां इसी से जुड़ी हैं। रचनात्मक संस्थाओं का एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाल-सा बिछा हुआ है। बाबा भी स्थायी रूप से यहीं हैं। जिला भी परिमाण में छोटा है और निवृत्तिकाल का मेरा निवास भी तो यहीं है। शराबबंदी का कार्य भी यहीं से शुरू करना है। यह प्रवाह-प्राप्त कर्म है और यह विचार उन्हें भाया।" यह थी श्रीमन्जी की भावना।

श्रीमन्जी ने तत्कालीन महाराष्ट्र सरकार को अल्टीमेटम दिया कि १ अप्रैल १९७५तक के निर्धारित समय में वर्धा ज़िले में कानूनन शराबबंदी घोषित न हुई तो ६ अप्रैल १९७५ से मुझे सत्याग्रह करना पड़ेगा।

सत्याग्रह की नौबत न आई। आज वर्धा जिले में कानूनन शराबबंदी लागू है। जनता के स्तर पर इस दिशा में अभी बहुत काम करना शेष है। जिले के स्तर से उठाकर शराबबंदी आंदोलन को श्रीमन्जी विदर्भ के आठों जिले के स्तर तक अपनी लगन, पराक्रम और पुरुषार्थ से ले गये। □

बाबा स्तब्ध रह गये[1]

बाल विजय

□□

पिछले महीने की ३ तारीख को ही श्रीमन्जी बाबा से मिलकर गये थे। विगत दो-ढाई वर्षों में बाबा के बारे में जो उलटी-सीधी गलतफहमियां फैलाई गयी थीं, उनका निराकरण हो,वे दूर हों और बाबा की वास्तविक भूमिका लोगों को बताई जाये, श्रीमन्जी इधर कुछ दिनों से इसे लेकर व्यग्र थे। इसीलिए 'मैत्री' में प्रकाशित वक्तव्य की प्रति लेने के लिए ही वे यहां आये थे। और आज वे दिल्ली से वापस लौटकर यहां आयेंगे, हम लोग ऐसी उम्मीद लगाये थे। किन्तु सच है कि नियति का खेल चमत्कार कर देनेवाला होता है।

हमारा फोन बिगड़ गया था, इसलिए आज तड़के ५.३० बजे रामभाऊ प्रेस से यह समाचार लेकर आये। विश्वास ही नहीं होता था। और विश्वास हो सके, ऐसा कोई कारण भी कहां था। उस समय बाबा प्रार्थना के बाद तख्त पर जाकर लेट चुके थे। फिर जब उठे और ७.१५ बजे फारिग होकर आये तब बाबा को खबर दी। क्षण-भर वे स्तब्ध रह गये। बार-बार पर्ची पढ़ते थे। यह अनपेक्षित बात थी। काफी गंभीर हो गये, लगे। रोज की तरह देव-दर्शन के लिए गये। किंतु रोज का हास्य-विनोद या किसी से बोलना-चालना कुछ नहीं हुआ। चुपचाप भीतर विस्तर पर आकर बैठ गये। आपके पास क्या संदेशा भेजा जाय, यह पूछने पर बोले, "कहो 'पूरी शान्ति रखना है'।" आपको फोन लगाया। मैं जोर से बोल नहीं सकता, इसलिए गौतमभाई के द्वारा संदेशा देने को कहा। आप खुद फोन पर आयीं और जब यह सुना कि धीरज रखे हो, तो बड़ी राहत मिली।

थोड़ी देर बाद बाबा ने गीताई में से श्लोक २७-२८ खोलकर दिखाये।

जन्म तो निश्चयें मृत्यु मरतां जन्म निश्चये।
म्हण्नि न टले त्याचा, व्यर्थ शोक कर नको ।।

1. श्रीमती मदालसा नारायण के नाम पत्र

भूतांचे मूल अव्यक्तीं, मध्य तो व्यक्त आसतो।
पुन्हा शेवट अव्यक्तीं, त्यामधे शोक काय सा ।।

ऐसे प्रसंग आने पर गीताई माता ही संबंधितों को यथार्थ सांत्वना देती है।

फिर ८.३० वजे माताजी (जानकी देवीजी) आयीं। वावा ने ही उन्हें समाचार दिया। वोले, "श्रीमन्‌जी 'क्यू' तोड़कर चले गये।" वहुत देर तक उन्हें भरोसा ही नहीं हुआ। सुनकर सुन्न हो गयीं। बुढ़ापे में यह दूसरा आघात उन्हें लगा। माताजी की इच्छानुसार हम सवने वावा की कुटी में गीता के तीसरे अध्याय का पाठ किया। उसी रात माताजी की नींद खुल गयी थी और उन्होंने, कहते हैं, यह पूछा था, "श्रीमन्‌जी, मदालसा कहां हैं ?" इसे मानसिक अनुसंधि की एक विचित्र ही घटना कहना चाहिए। 'विष्णु सहस्रनाम' के पाठ के वाद माताजी चली गयीं।

मदुताई ! आपसे अनेक वर्षों से हार्दिकता होते हुए भी श्रीमन्‌जी का मुझसे संबंध एकदम अभी-अभी आया। वे वावा की पद-यात्रा के दौरान कई वार आते थे, किंतु उनसे मेरी कभी बात-चीत नहीं हुई। मुझे सदा संकोच वना रहता था। परन्तु जब श्रीमन्‌जी राजदूत थे, तव आप लोग साथ-साथ वावा से मिलने रक्सौल आये थे। उस बार के कौटुंविक मिलन ने मेरा सारा संकोच दूर कर दिया। वाहर से गंभीर दीखनेवाले व्यक्तित्व में भी आत्मीयता, प्रेम है, उसका अनुभव तभी हुआ। मन पर तव की एक अमिट छाप आज भी वनी है।

फिर वर्धा आ जाने के वाद और भी निकट संवंध वने। श्रीमन्‌जी की अपेक्षा मैं उम्र से और वैसे भी कितना छोटा हूं। परन्तु उन्होंने कभी इसका आभास नहीं होने दिया। किसी विशेष प्रसंग में या व्यावहारिक प्रश्न उठने पर वावा खुद कहते, "श्रीमन्‌जी को आने दो तव तय करेंगे।" या कहते, "श्रीमन्‌जी से कहो, उनसे पूछो।" बावा की रोज-रोज वृद्धिगत होती चली जानेवाली अन्तर्मुख अवस्था में कई स्थूल व्यावहारिक मामलों में श्रीमन्‌जी का मुझे वड़ा सहारा रहता था। और वे भी एकदम निःसंकोच ढंग से विचार-विनिमय करते थे। उनका बड़प्पन मुग्ध कर देता था।

श्रीमन्‌जी की बाबा के प्रति श्रद्धा और निष्ठा विशिष्ट ही थी। वह शब्दों में कैसे व्यक्त हो सकती है। सद्‌गुरु का मानसिक सान्निध्य और भगवान की कृपा, यही सबका सम्बल है। □

कहां देख पाऊं

मदालसा नारायण

□□

मैं क्या लिखूं, कैसे लिखूं ?

मन में अनंत स्मृतियां उभरने लग जाती हैं। याद आ रही है :

१० जुलाई १९३७ की। वजाजवाड़ी वर्धा के निवास-स्थान से मैं सेवाग्राम बापूजी के पास पहुंची। दोपहर का समय था। 'आदि-निवास' में बापूजी अकेले ही टहल रहे थे। मैंने प्रणाम

किया तो बोले, "आज कैसे आई ? क्या अपनी शादी में मुझे बुलाने आई है ?"

मैंने कहा, "आप पितागत हैं। मैं आपको बुला सकती हूं ? मैं तो सिर्फ यह पूछने आई हूं कि मेरा कन्यादान कौन करेगा ?"

वह बोले, "क्यों, तुम्हारे माता-पिता हैं न, वे करेंगे ?"

मैंने कहा, "वे हमारे पास कहां हैं ? उन्होंने तो अपना 'जीवनदान' आपको कर दिया है। उन्हें अब मेरा 'कन्यादान' करने का हक कहां रहा ?"

मेरी यह बात सुनकर बापूजी क्षण भर के लिए जरा गंभीर हो गये। फिर बड़े जोर से मेरी पीठ ठोक कर बोले, "हां, भई हां ! मुझे तो आना ही पड़ेगा और तुम्हारी बा का भी तुम पर बहुत स्नेह है। वह भी साथ आवेंगी। पर उनको तुम मिलकर आग्रह करके जाना। और अपने पिता को बोल देना कि मैं विवाह में अपने आप पैदल नहीं आऊंगा। समय पर मान-सम्मान के साथ निमंत्रण भेजेंगे तब आऊंगा।"

तदनुसार ११ जुलाई को सुबह सूर्योदय के समय सर्वोदय की भावना वाले बा-बापूजी गांधी चौक के मंडप में आ विराजे। उनकी छत्रछाया में विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। वर-वधू ने उनको प्रणाम किया। अपने हाथसूत की कुंकुम चर्चित मालाएं बापूजी ने हमें पहना कर गहरे आशीर्वाद दिये और कहा, "इन्हें संभाल कर रखना।"

वे आज भी घर में सुरक्षित रक्खी हैं; पर उनमें के अखंड सुख-सौभाग्य-भरे शुभाशीर्वाद को मैं संजोकर नहीं रख पाई !

उसी अजरामर आत्मरूप में उन्हें कहां खोजूं, कहां देख पाऊं ?

विवाह के पूर्व जैसे मैं बापूजी के पास पहुंची, वैसे जानकी मां कुलगुरु बाबा विनोबाजी के पास पवनार जा पहुंची और बोलीं, "कल आपकी बेटी की शादी है। आपको आशीर्वाद देने आना है।"

बाबा ने कहा, "शादी के बाद वे दोनों यहीं आ जावेंगे।"

तब मां ने भी स्वतंत्र रूप से वही कहा, जो मैंने बापूजी से कहा था, 'आपकी बेटी का कन्यादान कैसे होगा ? हम तो उसे आपको सौंप चुके हैं।'

अब बाबा क्या कहते ! दूसरे दिन सुबह वे भी मण्डप में उपस्थित हुए !

इस तरह पितृगृह से गुरुगृह और गुरुगृह से श्वसुरगृह में मैं पहुंची।

पूज्य पिता, पितामह, अम्माजी और श्वसुरजी सभी अब परमेश्वर के राजदरबार में प्रतिष्ठित हो गये हैं। वहीं चलती ट्रेन में से इनको भी उन्होंने अपने पास बुला लिया।

तब से कुलगुरु प्रेमात्मन् बाबा का ही सहारा मुझे मिल रहा है। अब तो यही मनोभावना है कि तीनों कुल के परंपरागत संस्कार और शुभाशीर्वाद के सहारे अपने से आगे की वंशिकाएं संस्कार-संपन्न और समुन्नत होती रहें। □

चरैवेति चरैवेति

चरैवेति-चरैवेति

संक्षिप्त जीवन-परिचय

सब अच्छा कहें जिसे

ग़ालिब ने मन की व्यथा में एक जगह प्रश्न किया है, "ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे ?" प्रश्न की जड़ में कवि का यह अहसास काम कर रहा होगा कि उसे बुरा कहने वाले पड़े हुए हैं, और इस हालत में संतोष की कोई बात अगर है तो यह कि अच्छे-से-अच्छे व्यक्ति को बुरा कहने वाले लोग मिल जाते हैं। श्रीमन्नारायण को बुरा कहने वाले लोग मुझे नहीं मिले इसलिए अगर मुझसे पूछा जाय, "ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे," तो मैं लगभग निःसंकोच होकर कह सकता हूं कि हां, एक व्यक्ति ऐसा हमारे बीच में था। यह हमारा दुर्भाग्य है कि उसे असमय ही हमारे बीच से उठा लिया गया और अब हम इस प्रश्न का उत्तर एकाएक वर्तमान काल की क्रिया का उपयोग करके नहीं दे सकते। बापू ने उनके बारे में कहा था, "श्रीमन् जी उन लोगों में से हैं, जिन्होंने पदों और प्रतिष्ठाओं और यश से भरे जीवन को ठुकराकर देश-सेवा का विकल्प चुना। विद्वत्ता और नम्रता का उनमें अद्‌भुत समन्वय है। ऐसा नर-रत्न विरला होता है।" पूज्य विनोबा ने उनके जाने की बात सुनकर कहा, "गीता के बारहवें अध्याय में भक्त के लक्षणों का वर्णन है। उनमें अधिकांश श्रीमन्जी पर लागू होते हैं।...उनमें भक्त के गुण विद्यमान थे।" गीता ने भक्त के जो लक्षण गिनाये हैं, उनका समाहार करते हुए कहा गया है :

तुल्य निन्दास्तुति मौनी संतुष्ये येनकेनचित्।
अनिकेतः स्थिरमति भक्तिमान मैं प्रियो नरः ।।

श्रीमन्जी निन्दा और स्तुति को समबुद्धि से ग्रहण कर पाते थे; मनन उनका स्वभावथा; हर हालत में प्रसन्न रहते थे, किसी स्थान विशेष से उन्हें मोह नहीं था और अचंचल व्यवहार, उनकी अचंचल वृत्ति को प्रकट करता रहता था। तभी आनन्दमयी माता ने कहा, "वे गये काम करते-करते।...वे ईश्वर के सेवक थे। ईश्वर ने चरणों में सेवा के लिए बुला लिया।" हमारे जमाने में बड़े-बड़े लोग हुए। गांधीजी और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनमें अग्रगण्य हैं। गुरदयाल मल्लिक को इन दोनों महापुरुषों के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और उन्होंने इन दोनों के गुणों को देखा-समझा था। उन्होंने भी एक बार श्रीमन्जी के बारे में बातों-बातों में कहा, "आचार्य श्रीमन्नारायण के जीवनादर्श थे गुरुदेव और गांधीजी। गांधीजी का जीवन-मंत्र था 'सत्यं, शिवम्, सुंदरम्।' गुरुदेव का जीवन-मंत्र था, 'सुदरम्, शिवम्, सत्यम्।' दोनों का मिलाप हुआ (यहां) शिवम्

चरैवेति-चरैवेति

संक्षिप्त जीवन-परिचय

सब अच्छा कहें जिसे

ग़ालिब ने मन की व्यथा में एक जगह प्रश्न किया है, "ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे ?" प्रश्न की जड़ में कवि का यह अहसास काम कर रहा होगा कि उसे बुरा कहने वाले पड़े हुए हैं, और इस हालत में संतोष की कोई बात अगर है तो यह कि अच्छे-से-अच्छे व्यक्ति को बुरा कहने वाले लोग मिल जाते हैं। श्रीमन्नारायण को बुरा कहने वाले लोग मुझे नहीं मिले इसलिए अगर मुझसे पूछा जाय, "ऐसा भी कोई है कि सब अच्छा कहें जिसे," तो मैं लगभग निःसंकोच होकर कह सकता हूं कि हां, एक व्यक्ति ऐसा हमारे बीच में था। यह हमारा दुर्भाग्य है कि उसे असमय ही हमारे बीच से उठा लिया गया और अब हम इस प्रश्न का उत्तर एकाएक वर्तमान काल की क्रिया का उपयोग करके नहीं दे सकते। बापू ने उनके बारे में कहा था, "श्रीमन् जी उन लोगों में से हैं, जिन्होंने पदों और प्रतिष्ठाओं और यश से भरे जीवन को ठुकराकर देश-सेवा का विकल्प चुना। विद्वत्ता और नम्रता का उनमें अद्भुत समन्वय है। ऐसा नर-रत्न विरला होता है।" पूज्य विनोबा ने उनके जाने की बात सुनकर कहा, "गीता के बारहवें अध्याय में भक्त के लक्षणों का वर्णन है। उनमें अधिकांश श्रीमन्जी पर लागू होते हैं।...उनमें भक्त के गुण विद्यमान थे।" गीता ने भक्त के जो लक्षण गिनाये हैं, उनका समाहार करते हुए कहा गया है :

तुल्य निन्दास्तुति मौनी संतुष्ये येनकेनचित् ।
अनिकेत:स्थिरमति भक्तिमान मैं प्रियो नरः ।।

श्रीमन्जी निन्दा और स्तुति को समबुद्धि से ग्रहण कर पाते थे; मनन उनका स्वभाव था; हर हालत में प्रसन्न रहते थे, किसी स्थान विशेष से उन्हें मोह नहीं था और अचंचल व्यवहार, उनकी अचंचल वृत्ति को प्रकट करता रहता था। तभी आनन्दमयी माता ने कहा, "वे गये काम करते-करते।...वे ईश्वर के सेवक थे। ईश्वर ने चरणों में सेवा के लिए बुला लिया।" हमारे जमाने में बड़े-बड़े लोग हुए। गांधीजी और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर उनमें अग्रगण्य हैं। गुरदयाल मल्लिक को इन दोनों महापुरुषों के सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और उन्होंने इन दोनों के गुणों को देखा-समझा था। उन्होंने भी एक बार श्रीमन्जी के बारे में बातों-बातों में कहा, "आचार्य श्रीमन्नारायण के जीवनादर्श थे गुरुदेव और गांधीजी। गांधीजी का जीवन-मंत्र था 'सत्यं, शिवम्, सुंदरम्।' गुरुदेव का जीवन-मंत्र था, 'सुदरम्, शिवम्, सत्यम्।' दोनों का मिलाप हुआ (यहां) शिवम्

के तीर्थ पर।'' महादेवी ताई उनके व्यक्तित्व को 'विदेह व्यक्तित्व' कहा करती थीं।

देश के बड़े-से-बड़े लोगों का जिन्हें स्नेह ही नहीं, आदर तक मिला, उन श्रीमन्जी के जीवन की खूबियों को आसानी से सामने रखने की महत्वाकांक्षा तो की ही नहीं जा सकती, इस लिए उनके बारे में, 'थोड़े में ही जानिहहिं सयाने' की आशा रखकर यहां एक विनम्र-सा विवरण प्रस्तुत है।

वंश-परिचय

श्री श्रीमन्नारायण का जन्म एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। कोई तीन सौ बरस पहले उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के जहानाबाद से लाला किशनचंद इटावा आकर बस गये और वहां अपना परम्परागत कारोबार चलाने लगे। कई पीढ़ियों के बाद इनके वंशज राधाकृष्ण ने अपनी व्यापार कुशलता और सौमनस्य से पर्याप्त धन और यश अर्जित किया। राधाकृष्णजी के पुत्रों में जीसुखराय कार्यकुशल होने के साथ-साथ साहित्य में भी रुचि रखते थे। फारसी भाषा के तो वे विद्वान ही थे। इलाहाबाद के लाला पीरूमल ने इनकी संभावनाओं को समझकर इन्हें साथ ले लिया और फैले हुए अपने बीमा के धंधे को अधिक सुचारु बनाने की दृष्टि से उन्हें पटना भेजा। अपनी ईमानदारी और सादगी से उन्होंने सबके दिल जीत लिये। किंतु उनके निधन के बाद' उनके पुत्र लाला बंशीधर को अपनी भूमि ने पुकारा। और वे पटना छोड़कर फिर इटावा आकर परिवार के व्यापार को देखने लगे।

स्वतंत्रता-संग्राम अर्थात् १८५७ के समय परिवार के कुछ लोग पटना में और कुछ इटावा में थे। उन दिनों आवागमन के साधन नहीं थे, महीनों एक-दूसरे के समाचार नहीं मिलते थे। उस समय इटावा जिले के कलेक्टर वही प्रसिद्ध श्री ए० ओ० ह्यूम थे, जिन्होंने बाद में अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना की थी। उन्होंने पहले तो जिले में शांति और सुरक्षा स्थापित करने का प्रयत्न किया किन्तु इसमें असफल होने के बाद वे शहर छोड़कर चले गये। श्रीमन्जी के पूर्वज लाला बंसीधर ने श्री ह्यूम को जमुनापार करके,आगरा जाते हुए देखा था। इस जबरदस्त उथल-पुथल के बाद लालाजी ने पटना का अपना कारोबार बन्द कर दिया और सारा परिवार इटावा में केंद्रित हो गया।

श्रीमन्जी के पिता बाबू धर्मनारायण, लाला बंशीधर के ज्येष्ठ पुत्र थे। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा इटावा में और कालेज की शिक्षा आगरा में प्राप्त की और मैनपुरी में वकालत करने लगे।

जन्म और शिक्षा

श्रीमन्जी का जन्म १३ जुलाई १९१२ को इटावा के पैतृक निवास में हुआ था। जन्म से दो वर्ष बाद तक वे इटावा में रहे और फिर पिता के पास मैनपुरी। मैनपुरी में उनकी शिक्षा-दीक्षा चलती रहती। उन्होंने साधारण शालेय शिक्षा के अतिरिक्त अपने पिता से अप्रत्यक्ष में धर्म के निश्चित संस्कार प्राप्त किये। पिता श्री धर्मनारायण जी, श्रीमती एनी बेसेन्ट के विचारों से प्रभावित थे, इसलिए श्रीमन्जी को माता से गीता, रामायण, भागवत आदि का ज्ञान और पिता से दार्शनिक विचारों का अधिक गहरा तथा विस्तृत परिचय प्राप्त हुआ। बाबू धर्मनारा-

यणजी उदार व्यक्ति थे। व सब धर्मों को आदर को दृष्टि से देखते थे। तीर्थयात्राओं में उनकी विशेष रुचि थी, इसलिए बचपन से ही श्रीमन्‌जी को भारत-दर्शन का संयोग प्राप्त होता रहा। उत्तर में काशी, वाराणसी, मथुरा और दक्षिण में रामेश्वर। त्रिचनापल्ली, मदुरई आदि स्थानों में देव-दर्शन करते हुए उनके मन पर जो संस्कार पड़े, वे अमिट सावित हुए।

श्रीमन्‌जी के पिताजी को राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं थी। वे देश की स्थिति को तटस्थ दृष्टि से देख सकते थे और इसीलिए राजनैतिक दलों के लोग उनका सम्मान करते थे। बाद में जब श्रीमती एनी बेसेन्ट ने 'होम रूल लीग' की १९१६ में स्थापना की तो उनके प्रति अपनी प्रतिवद्धता से प्रेरित होकर वे 'होम रूल लीग' के सदस्य बन गये। एक बार इसी सिलसिले में जब लखनऊ में कांगेस का अधिवेशन हुआ तो वे उसमें शामिल हुए। यों तो उन्होंने बाद में कलकत्ता और दिल्ली कांग्रेस अधिवेशनों में भी भाग लिया। किन्तु वे राजनैतिक क्षेत्र में कभी सक्रिय नहीं हुए। वकालत के सिवा उनकी गतिविधियां समाज सुधार के क्षेत्र में अधिक व्यापक होती चली गयीं। पं० हृदयनाथ कुंजरू थियासोफिकल सोसाइटी से संवद्ध थे। बाबू धर्मनारायणजी से उनका संबंध आता रहता था; इसलिए श्रीमन्‌जी से भी उन्हें स्नेह हो गया और वे अपने सामाजिक कामों में उन्हें दिलचस्पी लेने के लिए कहने लगे।

माता राधादेवी फिरोजाबाद की थीं। उन्हें हिंदी भाषा का साधारण ज्ञान था, और इसी ज्ञान के बल पर वे धार्मिक पुस्तकों का अनुशीलन करती रहती थीं। वे महिला समाज में सुधार-भावना से आती-जाती थीं और शिक्षण में भी दिलचस्पी लेती थीं। जीवन तो पूरे कुटुम्ब का ही सादगी से भरा हुआ था। अच्छा जमाना था। बहुत थोड़े में काम चल जाता था। आवश्यकता की सब वस्तुएं सस्ती थीं। संतोषी वृत्ति के परिवार ने ऊंचे रहन-सहन की महत्त्वाकांक्षा कभी नहीं जानी और वकालत करते हुए भी अत्यन्त प्रामाणिक रहे। उन्होंने कभी कोई झूठा मुकदमा लिया ही नहीं। वे नैतिक, धार्मिक, और आध्यात्मिक बातों की ओर से पूरी तरह जागरूक थे। व्यावहारिक क्षेत्र में भी उन्होंने इन्हीं गुणों के कारण पूरी सफलता पायी। वे हमेशा कहा करते थे कि जिसे साफ-सुथरा जीवन बिताना है उसे रहन-सहन में सादगी बरतनी चाहिए। आमदनी अधिक होने पर भी निरर्थक खर्च नहीं करना चाहिए। भविष्य की आपत्तियों का सरलता से मुकाबला करने के लिए हर हालत में कुछ न कुछ बचत करनी चाहिए। वे कभी मित्रों को कर्ज देने के पक्ष में नहीं थे। उनका कहना था कि आर्थिक मदद भले ही कर दी जाये, मित्र को ऋण नहीं देना चाहिए। इससे संबंध बिगड़ जाते हैं। यही राय उनकी कुटुम्बियों को ऋण देने के बारे में भी थी। जरूरतमंद कुटुम्बियों को पास रखने के बजाय वे उनके स्थान पर ही मदद पहुंचा देना ठीक समझते थे। पड़ोसियों के प्रति उनका व्यवहार बड़ा ही सद्‌भावपूर्ण था। इन सब बातों ने श्रीमन्‌जी को जीवन-यापन का पदार्थ पाठ दिया।

श्रीमन्‌जी एक सुसंस्कृत, मध्यम वर्ग के परिवार के सदस्य थे। वे आश्चर्यजनक रूप से एक विशिष्ट कहे जा सकने योग्य व्यक्ति के रूप में विकसित हुए। पांच भाई और एक बहन। जिन्होंने इन्हें साथ-साथ और अलग-अलग देखा है, वे समझ सकते हैं कि आत्मीयता और सौमनस्य के उदाहरण कैसे होते हैं!

अन्य प्रारंभिक प्रभाव

श्रीमन्जी मैनपुरी के जिस स्कूल में पढ़े, वह एक ईसाई स्कूल था। पिता तो सर्वधर्म-समन्वय के हामी थे ही, मातामही जैन परिवार की थीं, अर्थात् विभिन्न धर्मों के प्रति दिलचस्पी और खुला मन उनके लिए स्वाभाविक था। श्रीमन्जी के मन में ईसाई धर्म के प्रति एक प्रकार की सहज कोमलता देखकर उस स्कूल के प्रधान पादरी मिचेल का यहां तक विश्वास हो चला था कि हम इस लड़के को आगे-पीछे ईसाई बना सकेंगे। ईसा के प्रति गांधीजी की श्रद्धा को देखकर इंग्लैंड के कुछ ईसाई मित्रों में भी ऐसी महत्त्वाकांक्षा जागी थी। वे जानते थे कि सारे धर्मों के प्रति आदर दृष्टि रखने वाला व्यक्ति अपने धर्म की खूबियों को भी भली भांति जानता है। उसी पाठशाला के प्रधानाचार्य गांगुली नाम के एक बंगाली सज्जन थे। होने को वे भी ईसाई थे, किंतु उनकी प्रवृत्ति ऐसी नहीं थी। इसलिए विद्यार्थी उनके प्रति श्रद्धा का भाव रखते थे। श्रीमन् जी ने महात्मा गांधी का नाम सबसे पहले अपने एक अन्य शिक्षक पं० दरबारी लाल से सुना। वे स्वयं खादी पहनते थे। उन्होंने श्रीमन्जी को गांधीजी की जीवनी के विषय में पर्याप्त जानकारी दी। इसके अतिरिक्त श्रीमन्जी पर जे० कृष्णमूर्ति और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का प्रभाव भी पड़ने लगा था। जे० कृष्णमूर्ति की पुस्तक 'एट द फीट आफ द मास्टर' ने उनके मन पर गहरा असर डाला था।

१९१८ में श्रीमन्जी ने हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त की और उच्च शिक्षा के लिए आगरा कालेज में भरती हुए। १९२९ में गांधीजी आगरा कालेज आये थे। तब श्रीमन्जी ने उन्हें पहली बार देखा। माता कस्तूरबा को माला पहनाने का काम भी उन्हें सौंपा गया था। वे सद्-भाग्य की इस घड़ी को अपने जीवन में सदा संजोकर रखे रहे।

आगरा कालेज में देश के महान पुरुषों का आगमन होता रहता था। रवींद्रनाथ ठाकुर, पं० जवाहरलाल नेहरू, साधु टी० एल० वासवानी जैसे महापुरुष श्रीमन्जी के कालेज में रहते हुए वहां पर आये। इन सबके महिमामय व्यक्तित्व का श्रीमन्जी के किशोर-सुकोमल मन पर श्रेय-स्कर तथा गहरा प्रभाव पड़ा। बाहर से आने वाले महानुभावों के अतिरिक्त दर्शन विभाग के प्राचार्य श्री रानडे, अंग्रेजी के श्री देव और अर्थशास्त्र के श्री रुद्र से भी श्रीमन्जी के विचार बहुत प्रभावित हुए। श्री रानडे ने उन्हें डा० राधाकृष्णन से भी मिलाया, जिन्होंने बाद में उनकी अंग्रेजी कविता पुस्तक 'द फाउन्टेन आफ लाइफ' की भूमिका लिखकर उन्हें प्रोत्साहित किया। श्रीमन्जी ने अपनी स्नातकोत्तर उपाधि अंग्रेजी साहित्य में प्राप्त की और वे साथ में वकालत पढ़ते रहे। इस अवधि में उन्होंने फिर नेहरूजी और गांधीजी के सिवा सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू, मौलाना आजाद तथा पुरुषोत्तमदास टंडन को देखा। इसी जमाने में गांधी जी ने अपना नमक सत्याग्रह शुरू किया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में देश-प्रेम की उद्दाम लहर उठी और विश्व-विद्यालय के फाटक पर धरना आदि शुरू हो गया। विश्वविद्यालय बन्द कर दिया गया। श्रीमन् जी ने इस अवधि में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय का उत्तम उपयोग करके अनेक महत्वपूर्ण लेखकों से ग्रंथों का पारायण किया। इस तरह कालेज-जीवन की अवधि श्रीमन्जी के लिए कई प्रकार से प्रभावी और उपयोगी बनी।

शिक्षा के लिए लंदन में

श्रीमन्‌जी अच्छे विद्यार्थी थे। उन्होंने अपनी एम० ए० की परीक्षा बहुत अच्छी तरह उत्तीर्ण की। पिताजी ने स्वाभाविक रूप से चाहा कि वे आई० सी०एस० की परीक्षा के लिए लंदन जाकर अध्ययन करें। फरवरी १९३५ में वे लंदन गये। कुछ दिनों भारत सरकार की ओर से भारतीय विद्यार्थियों के छात्रावास में रहने के बाद वे एक अंग्रेज परिवार के साथ रहने लगे। परिवार शाकाहारी था और सुसंस्कृत तो था ही। इस प्रकार श्रीमन्‌जी को विदेश में रहते हुए भी पारिवारिकता की अनुभूति होती रही।

श्रीमन्‌जी इंग्लैंड के निवासियों के व्यवहार ईमानदारी और अन्य गुणों से बहुत प्रभावित हुए। अपने देशवासियों के व्यवहार और मातृभाषा की उपेक्षा से उन्हें कई बार दुख भी होता था। सारे भारतीय विद्यार्थी आपस में भी अंग्रेजी में बातचीत करते थे। वे इसमें एक प्रकार के गौरव तक का अनुभव करते थे। श्रीमन्‌जी जिस परिवार के साथ रहते थे, उसके सदस्यों ने एक दिन उत्सुकतापूर्ण स्वर में कहा कि हम लोगों ने न कभी आपकी भाषा सुनी है और न आपकी लिपि देखी है! क्या आप हमें अपनी भाषा से परिचित करायेंगे? श्रीमन्‌जी मन-ही-मन लज्जित हुए और उन्होंने उस परिवार में हिन्दी सिखाने के अतिरिक्त भारत में सब जगह लिख भेजा कि उन्हें लिखे सारे पत्र हिंदी में रहें तथा पता हिंदी और देवनागरी दोनों लिपि में हो। श्रीमन्‌जी ने जीवन-भर हिंदी जानने वाले साथियों से हिंदी में पत्र-व्यवहार किया और उनसे भी इसी प्रकार आशा रखी।

उन्होंने देखा कि इंग्लैंड के विद्यार्थियों का रहन-सहन बहुत सादा है। उनके बीच शान-शौकत से रहने वाला विद्यार्थी विद्या का ठीक पात्र नहीं माना जाता था। इसके विपरीत भारतीय विद्यार्थी शान-शौकत से रहते थे। श्रीमन्‌जी तो सादगी से रहने के आदी थे। इन्होंने विदेश में भी अपने रहन-सहन में कोई परिवर्तन नहीं किया। शाकाहार और सब तरह निर्व्यसनी होने के कारण, वे वहां के छात्र-समुदाय में प्रेम की दृष्टि से देखे जाते थे।

इंग्लैंड में रहते हुए उन्होंने किंग जार्ज पंचम का रजत-जयन्ती उत्सव देखा और अखबारों में यह पढ़कर बहुत चकित हुए कि उस सारे उत्सव-आयोजन के दरमियान सारे देश में कहीं किसी बगीचे से एक फूल भी नहीं तोड़ा गया था। उन्हें भारत में फूलों की बरबादी का ध्यान आया। बाद में वे सदा उत्सवों में फूलों के हार की जगह सूतांजलियां अर्पित करने को बढ़ावा देते रहे।

अपने लंदन निवास की अवधि में वह वहां के प्रमुख व्यक्तियों से मिलते-जुलते रहते और प्राचीन लेखकों के स्मारक आदि देखने भी जाते थे। वे मुख्य रूप से तत्कालीन अंग्रेजी के साहित्यिकों और कवियों से मिले, जिनमें प्रो० एबर जॉन ड्रिंकवाटर, विलफ्रेड विलसन और स्टीफेन स्पेन्डर मुख्य थे। १९३५ के अंत में श्रीमन्‌जी परीक्षा में असफल होकर देश वापस लौटे। उनका आई० सी० एस० की परीक्षा में असफल होना देश के लिए वरदान सिद्ध हुआ। पास होकर वे बहुत करते तो एक अच्छे सरकारी प्रशासक होकर रह जाते, किंतु अनुत्तीर्ण होकर उन्होंने जिन तीर्थों को अवतीर्ण किया और अपनी इस तीर्थयात्रा में देश की जो अमूल्य सेवा की, वह निस्संदेह कहीं अधिक कल्याणकारी हुई।

जैसे ही वह भारत लौटे, उन्हें मालूम हुआ कि निकट भविष्य में लखनऊ में कांग्रेस का अधिवेशन होने जा रहा है। एक वर्ष का विदेश-निवास उन्हें देश के प्रति बहुत ही जागरूक कर गया था। इसलिए उन्होंने संकल्प किया कि वह अधिवेशन में उपस्थित रहकर देश के वर्तमान और भविष्य को समझने और यदि संभव हुआ तो उसमें अपना अंशदान करने की कोशिश करेंगे।

भारत में नये जीवन की शुरूआत

लखनऊ कांग्रेस के अवसर पर श्रीमन्‌जी की सेठ जमनालाल बजाज से भेंट हुई। जमनालालजी को बातों के दौरान यह मालूम होने पर कि वे आई० सी० एस० में फेल हो कर अभी देश लौटे हैं, तो उन्होंने छूटते ही कहा कि यह अच्छा हुआ। अब तुम देश के कुछ काम आओगे। उन्होंने श्रीमन्‌जी से आग्रह किया कि वे लखनऊ से उनके साथ वर्धा चलें। श्रीमन्‌जी तब यह भी नहीं जानते थे कि वर्धा कहां और क्या है। जमनालाल जी ने उन्हें बताया, "यह स्थान नागपुर से ५० मील की दूरी पर है। इन दिनों गांधीजी वहीं निवास करते हैं। मैं चाहता हूं कि तुम उन से मिलो-जुलो। संकोची, विनयशील श्रीमन्‌जी ने उत्तर दिया, "मैं संसार के इस महापुरुष से मिलकर उनके कीमती समय को बरबाद नहीं करना चाहता। किंतु जमनालाल जी ने एक न सुनी। फिर यह जानने पर कि श्रीमन्‌जी को साहित्य और शिक्षा में दिलचस्पी है, उन्होंने कहा, "अभी अप्रैल में नागपुर में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन होने जा रहा है। वहां तुम्हारी उपस्थिति अच्छी रहेगी।" श्रीमन्‌जी को प्रस्ताव रुचिकर लगा और वे अप्रैल के पहले हफ्ते में नागपुर पहुंचे। सम्मेलन में उपस्थित बड़े साहित्यिकों से मिलकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उस अवसर पर जो कवि सम्मेलन हुआ, उसमें उन्होंने एक कविता पढ़ी, जिसे लोगों ने बहुत पसन्द किया। पं०माखनलाल चतुर्वेदी नये साहित्यकारों को प्रोत्साहन देते रहते थे। उन्हें श्रीमन्‌जी की कविता सुनकर आशा बंधी और उन्होंने कहा कि तुम सदा ऐसी ही सीधी और सरल भाषा में कविता लिखते रहो।

सम्मेलन की समाप्ति पर वापस लौटते समय श्रीमन्‌जी को लगा कि जमनालालजी से मिले बिना नहीं लौटना चाहिए। जब वे जमनालालजी से विदा लेने गये तो उन्होंने कहा कि अभी नागपुर से वर्धा एक बस जा रही है। उसमें उनके साथ चलें। और कुछ दिनों वर्धा रुककर देखें। श्रीमन्‌जी जमनालालजी के स्नेहपूर्ण आग्रह को टाल नहीं सके। बस पहले पनवार में रुकी, जहां आचार्य विनोबा भावे रहते थे। उस समय वहां खादी कार्यकर्त्ताओं का वार्षिक अधिवेशन हो रहा था। इसमें उन्होंने विनोबाजी का भाषण सुना। पहली बार उन्होंने खादी के आर्थिक और सामाजिक पहलुओं पर ऐसे गहरे विचार सुने और वे उस दिशा में सोचने के लिए बाध्य भी हुए।

शाम को वर्धा पहुंचने पर श्रीमन्‌जी बजाजवाड़ी के अतिथिगृह में ठहराये गये। रात को सामूहिक भोजन के समय वर्धा की विभिन्न रचनात्मक संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं से श्रीमन्‌जी की भेंट करायी गई। दूसरे दिन सुबह जमनालालजी उन्हें मगनवाड़ी ले गये। वहां उन दिनों गांधीजी का निवास था। असल में यह जगह जमनालालजी का लम्बा-चौड़ा बगीचा था, जिसे उन्होंने अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ को दे दिया था। प्रो० जे० सी० कुमारप्पा संघ के मंत्री

थे और वे वहां कुछ साथियों के साथ गांव की दृष्टि से क्या कुछ तकनीकी सुधार किये जा सकते हैं, इसकी खोज कर रहे थे।

अबतक श्रीमन्जी ने गांधीजी को दो-चार बार दूर-दूर से देखा था। उन्हें उनके पास जाते हुए थोड़ी घवराहट हो रही थी। वे सोच रहे थे कि गांधीजी एक गंभीर पुरुष होंगे और मुझ जैसे लड़के से मिलने में उन्हें क्या दिलचस्पी होगी। जव श्रीमन्जी वहां पहुंचे तो गांधीजी की मालिश हो रही थी। उन्होंने गांधीजी के पांव छुए। गांधीजी ने स्नेह से उनकी तरफ़ देखा और दो-चार प्रारंभिक प्रश्नों के वाद कहा; "क्या तुम मेरे लिए काम करना पनन्द नहीं करोगे?" श्रीमन्जी ने अस्फुट-सी आवाज में कहा, "वापूजी, जो वनेगा, सो करूंगा।"

कुछ दिनों के बाद गांधीजी की सलाह के मुताबिक जमनालालजी ने सुझाया कि श्रीमन्जी को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का काम देखने पर राज़ी कर लिया जाय। समिति का प्रधान कार्यालय वर्धा में ही था; इसकी स्थापना हिन्दी साहित्य सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन में लिये निर्णय के अनुसार की गयी थी। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा तो १९१८ से गांधीजी के मार्ग-दर्शन में देश के दक्षिणी हिस्से में राष्ट्रभाषा का प्रचार कर रही थी। अब तय हुआ था कि यह नई संस्था, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति देश के पूर्वी और पश्चिमी हिस्सों में, जिनमें आसाम, वंगाल उड़ीसा, गुजरात और महाराष्ट्र भी शामिल थे, राष्ट्रभाषा का प्रचार करेगी। दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के मंत्री श्री मोटूरि सत्यनारायण इस समिति के सचिव नियुक्त हुए और श्रीमन्जी उसके संयुक्त सचिव की तरह काम करने लगे। कोई एक वरस के वाद श्री सत्य-नारायण मद्रास वापस लौट गये और वर्धा समिति का सारा काम श्रीमन्जी देखने लगे। समिति के अध्यक्ष डा० राजेन्द्रप्रसाद और उपाध्यक्ष काकासाहेव कालेलकर थे। श्रीमन्जी ने काकासाहेव के साथ देश के पूर्वी और पश्चिमी अंचलों का विस्तृत दौरा किया और उन अंचलों में राष्ट्रभाषा की नींव मजवूत की।

श्रीजमनालाल बजाज वर्धा में मारवाड़ी-विद्यालय नाम की एक संस्था चला रहे थे और चाहते थे कि उसे गांधीजी के शिक्षण-आदर्शों के अनुरूप ढाला जाये। जमनालालजी के आमंत्रण पर श्रीआर्यनायकम् और उनकी पत्नी आशादेवी आयी हुई थीं। दोनों ही कुछ वर्षों से गुरुदेव के शांति-निकेतन में काम कर रहे थे। उन्होंने गांधीजी के मार्ग-दर्शन में वर्धा और सेवाग्राम शिक्षा-प्रवृत्ति के संचालन में उत्साह दिखाया। तब श्रीमन्जी से जमनालालजी की अध्यक्षता में चलने वाले 'शिक्षा मंडल' के मंत्री के रूप में काम करने का आग्रह किया गया। यह संस्था वर्धा में १९१२ से काम कर रही थी। आर्यनायकम् ने विद्यालय का प्रधान होना स्वीकार किया। १९३६ के उत्तरार्द्ध में गांधीजी के उत्पादकश्रम के द्वारा शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाकर किस तरह फैलाया जा सकता है और उससे समाज में किस तरह अभिनव क्रांति लायी जा सकती है, इस विषय पर 'हरिजन' में अनेक लेख लिखे। लगभग उसी समय १९३७ के प्रारंभ में देश से विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस को शासन की बागडोर संभालने का अवसर मिला और गांधीजी ने आग्रह किया कि कांग्रेस सरकारें सुचारु ढंग से उनके द्वारा सुझाये गये सिद्धांतों का अनुसरण करके शिक्षा में बुनियादी परिवर्तन का श्रीगणेश करें। यही शिक्षा-प्रचार बाद में नयी तालीम या बुनियादी तालीम के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसी वर्ष वर्धा में 'शिक्षा मंडल' की रजतजयंती मनाना तय हुआ। श्रीमन्जी ने सोचा कि इस अवसर पर राष्ट्रीय पैमाने पर एक शिक्षा-सम्मेलन बुलाया जाय और उसमें

शिक्षा-संबंधी गांधीजी के विचारों को प्रसारित किया जाय तो सम्मेलन सहज ही उपयोगी सिद्ध हो जायेगा। गांधीजी ने इस विचार को पसंद किया।

उन दिनों गांधीजी के मन में शहर छोड़कर गांव में बसने की बात घूम रही थी। वर्धा के पास ही कोई चार मील की दूरी पर सेगांव नाम का एक गांव था। जमनालालजी ने सुझाया कि वहां एक छोटा-सा आश्रम बनाकर रहना आसान होगा, क्योंकि वहां की अधिकांश ज़मीन जमनालालजी की थी। गर्मी के दिन थे, इसलिए कहा गया कि अभी आश्रम की कुटिया डाले देते हैं और बापू गर्मी बीत जाने के बाद वहां जायें। किंतु गांधीजी ने इसे विचारणीय नहीं माना और ३० अप्रैल को, जब सख्त गर्मी पड़ रही थी, वे सेगांव चले गये। जल्दी-जल्दी बांस की एक झोंपड़ी डाली गयी। वे उसी में जाकर टिक गये। अब इसे 'आदि निवास' कहते हैं। कई महीनों तक इस कुटिया में एक कोने में गांधीजी और दूसरे कोने में कस्तूरबा और तीसरे कोने में महादेव देसाई और चौथे में एक विशिष्ट अतिथि रहने लगा। बाद में खान अब्दुल गफ्फार खां आये, वे भी उसी झोंपड़ी में कई दिनों तक रहे। बाद में बा के लिए अलग कुटिया बनी और गांधीजी उस कुटिया में चले गए, जो मीराबहन के लिए बनी थी। बाद में यही कुटिया बापूजी के लिए ठीक हो गयी। १९४६ में नवाखाली तक जाने तक गांधीजी ज्यादातर उसी कुटिया में रहे और जब वे उसे छोड़कर नवाखाली गये तो फिर नियति ने उन्हें वहां लौटने का अवसर ही नहीं दिया।

श्रीमन्जी से भी कहा गया कि वे गांधीजी के साथ जाकर रहें, किंतु निश्चित यह हुआ कि सेवाग्राम हफ्ते में दो बार आयेंगे और गांधीजी के मार्ग-दर्शन में जो जरूरी होगा, सो किया करेंगे। अबतक सेगांव का नाम 'सेवाग्राम' हो गया था। सेगांव नाम का एक दूसरा गांव भी महाराष्ट्र में था। इस कारण पत्र प्रायः गड़बड़ हो जाया करते थे। डाक-विभाग ने यह नया नाम प्रस्तावित किया जो सबको पसंद आया।

खाक छानना सीखो

श्रीमन्जी जब सेवाग्राम जाकर गांधीजी से मिले तो उन्होंने पूछा, "चरखा चलाना जानते हो?" श्रीमन्जी ने अपना अज्ञान जाहिर किया तो बापू हंसे और बोले कि "तुम्हारी सारी जिंदगी निकम्मी बीती। हिंदुस्तान के हर पढ़े-लिखे व्यक्ति को चरखे का विज्ञान आना चाहिए, क्योंकि वह हमारे गांव की अर्थ-व्यवस्था का आधार है। आज की पढ़ाई तो खाक छानना है।" इतना कहकर गांधीजी रुक जाते, यह संभव नहीं था। उन्होंने आश्रम के श्रीमुन्नालाल शाह को बुलाया और कहा कि "इनको पाखाना सफाई की दृष्टि से खाक छानना सिखाओ।" फिर श्रीमन्जी से कहा कि "अब तुम सच्ची खाक छानना सीखो।" कई महीनों तक श्रीमन्जी सफाई के काम के लिए मिट्टी छानते रहे। धीरे-धीरे वे इस काम में निपुण हो गये। अब उनकी छानी गयी मिट्टी से मल अच्छी तरह से ढांका जा सकता था!

सेवाग्राम और वर्धा के बीच में पक्की सड़क नहीं थी। गांधीजी चाहते भी नहीं थे कि पक्की सड़क बने, मगर किया क्या जाय! दुनिया-भर के बड़े-बड़े आदमी उनसे मिलने सेवाग्राम पहुंचते थे और पक्की सड़क के बिना उन्हें बड़ी परेशानी होती थी और बरसात में तो आवागमन असंभव-सा हो जाता था। इसीलिए जिला-सरकार ने वहां पक्की सड़क बनवा दी और फिर आश्रम के बाहर और आसपास छोटी-बड़ी इमारतें भी खड़ी हो गयीं। नई तालीम का सेवाग्राम

में केंद्र खुल गया था। उसके लिए शिक्षकों और अन्य कार्यकर्ताओं के निवास की आवश्यकता पड़ी। अखिल भारतीय चरखा संघ का कार्यालय भी सेवाग्राम आ गया। तब खादी विद्यालय और छात्रावास की इमारतें बनानी पड़ीं। डॉ० सुशीला नैयर को एक अस्पताल बनाने की इजाजत भी गांधीजी ने दे दी। यह अब महाविद्यालय हो गया है। प्राकृतिक चिकित्सालय भी प्रारंभ किया गया। इस तरह सेवाग्राम ऊजड़ ग्राम न रहकर, एक खासी बस्ती में बदल गया।

श्रीमन्‌जी ने गांधीजी के साथ सेवाग्राम में काम करते हुए गांधीजी की बारीकबीनी, तफ़सील में जाने की आदत, छोटे-से-छोटे व्यक्ति के कष्ट की ओर जागरूकता, हरिजनों की अवस्था सुधारने की व्याकुलता, सेवा के लिए प्रतिक्षण तत्परता, आश्रमवासियों की त्रुटियों को देख-समझकर उनके प्रति सहिष्णुता और प्रेम, सफाई पर जोर, मितव्ययिता आदि को बड़े ध्यान से देखा और अपने जीवन में भी इन सब गुणों को उतारने का प्रयत्न किया। भारत अन्न और वस्त्र के मामले में किस तरह स्वावलंबी हो, इसकी चिंता ने ही उन्हें नयी तालीम की ओर मोड़ा था। वे मानते थे कि यदि देश का हर बच्चा उत्पादक श्रम के माध्यम से लिखना-पढ़ना सीखे और हर लिखा-पढ़ा आदमी उत्पादक श्रम करे, तो देश की कायापलट हो सकती है। श्रीमन्‌जी गांधीजी की इस दृष्टि के संबंध में एक घटना सुनाया करते थे। हर शाम गांधीजी जब घूमकर लौटते थे तो कस्तूरबा गुनगुने पानी से भरी बाल्टी में उनके पांव डलवाकर धोती थीं। पांव धोने के बाद बचा हुआ पानी उस थाले में डाल दिया जाता था, जिसमें बा ने कुछ गुलाब के पौधे लगा रखे थे। एक दिन बापू खिले हुए फूलों को देखकर बोले, "क्यों श्रीमन् आश्रम में फूलों की गुंजाइश कहां है? हमें तो इनकी जगह गेहूं, साक-सब्जी वगैरह बोने चाहिए।" उसी के बाद उन्होंने दूसरे दिन गुलाब के पौधों को उखड़वा दिया और वहां गेंहूं बो दिये गये। बा को इससे दुःख हुआ। किंतु कथनी और करनी के भेद को शून्य बना देने वाले गांधीजी के सामने और कोई विकल्प था ही नहीं।

अब तक श्रीमन्‌जी को वर्धा में रहते हुए लगभग डेढ़ वर्ष हो गया था। जमनालालजी ने अपनी दूसरी कन्या मदालसा का विवाह उनसे करने के बारे में गांधीजी और विनोबाजी से सलाह ली और ११ जुलाई, १९३७ को श्रीमन्‌जी का विवाह सम्पन्न हो गया। इस विवाह का बड़ा मधुर विवरण मदालसाबहन की माताजी ने 'मेरी जीवन यात्रा' नामक पुस्तक में इस प्रकार दिया है :

"मदालसा विनोबाजी के पास गोपुरी नालवाड़ी में रहती थी। उस समय वह सफेद कपड़ों में रहती थी और बाल भी कटे हुए थे। जब श्रीमन्‌जी से पूछा गया तब उन्होंने मदालसा के इस वेश को देखकर कहा था कि 'क्या यह इसी वेश में रहेगी?' जमनालालजी ने हंसते हुए कहा कि 'शादी के बाद तो वह ढंग से ही रहेगी।'

" इस तरह श्रीमन्‌जी की मौन-स्वीकृति मिलने पर जमनालालजी मदालसा को लेकर मैनपुरी श्रीमन्‌जी का घर दिखाने गये। वहां पर श्रीमन्‌जी की मां, पिताजी तथा परिवार के लोगों के प्रेम, अतिथि-सत्कार आदि से मदालसा बहुत खुश हो गयी। श्रीमन्‌जी की मां वहां के महिला-मण्डल की अध्यक्षा थीं। कविता से वहां इनका स्वागत किया गया। वे सब मदालसा की मन-भाती बातें थीं। यहां से जमनालालजी मदालसा और श्रीमन्‌जी को साथ लेकर कलकत्ता कमलनयन के विवाह पर पहुंचे। वहीं पर जमनालालजी ने कमलनयन के फेरे होते ही मदालसा

की सगाई का टीका कर दिया और सगाई के दस दिन बाद ही व्याह कर दिया। उस समय बंगले पर कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक चल रही थी। देश के बड़े-बड़े मेहमान घर पर ही थे। इस तरह के मौके से अनायास लाभ उठाना जमनालालजी का स्वभाव था।

"सुबह गांधी-चौक में सात बजे विवाह करना था। गांधी-चौक में ही हम रहते थे। तीन पीढ़ी में लड़की का व्याह घर पर करने का यह पहला मौका था।

"सुबह दही और तेल लगाकर मैंने मदालसा को नहलाया और मण्डप में ले गई। उस समय उसकी यह हालत थी, मानो सूली पर चढ़ाई जा रही हो। उसका लाल चेहरा जैसे फटा जा रहा था। फेरों के बाद उसने वापूजी को और वा को प्रणाम किया। मदालसा ने अपने ससुर को प्रणाम करके जैसे ही सास को प्रणाम किया, उन्होंने मदालसा को छाती से लगा लिया। इससे मदालसा को मानो आत्मीयता मिल गई। इस समय मदालसा के पिताजी ने मदालसा के चेहरे और आंखों के भावों को पढ़कर कहा कि इसकी मां तो इसके लिए सास समान है और आज इसने मां पाई है। मदालसा की ससुराल के लोग बड़े ही संस्कारी और भले स्वभाव के मिले। उसके जैसी भावना-प्रधान लड़की को तो उनके घर के प्रेम और सौजन्यभरे वातावरण ने मोह लिया। मदालसा के लिए जो चिंता रहती थी, वह दूर हो गई। श्री लक्ष्मीनारायण मंदिर के दर्शन कर जब वर-वधू मण्डप में आए तव वापू ने सदा की तरह उपदेश करते हुए कहा, 'तुमको इस लड़की के अनुकूल बनकर ही चलना है, इसके विचारों पर कोई भी जवरदस्ती नहीं होनी चाहिए।'

"विवाह के समय अचानक तार आया कि श्री शारदादेवी विड़ला, व्यंकटलाल पित्ती के साथ आ रही हैं। इस खबर से जमनालालजी का खुश होना स्वाभाविक ही था, पर उनको अचरज भी हुआ। विवाह में ज्यादा लोग वुलाना या ठाठ से व्याह करना वे समाज-हित की दृष्टि से ठीक नहीं समझते थे। इसलिए अपने निकटस्थ मित्रों तथा आत्मीय जनों को भी आमंत्रण देने में सकुचाते थे। आशीर्वाद की पत्रिका भेजते थे। पर मेहमानों का आना अच्छा ही लगता था। फिर बिड़लाजी का वहुत सम्बन्ध था, अतः शारदादेवी के आने से हमको बहुत खुशी हुई।

"शारदादेवी ने आते ही मुझसे पूछा कि मदालसा के लिए कुछ साड़ियां तैयार की हैं? वे जानती थीं कि ऐसे मामलों में मैं कितनी अव्यावहारिक हूं। मैंने कह दिया कि खादी-भंडार तो घर में ही है। जो चाहे सो ले लेगी। शारदावहन ने उलाहना दिया, 'जानकी बहन, तुम मां हो, कल लड़की ससुराल जायगी तो चार साड़ी तो अच्छी तैयार करवानी थीं।' मैं निरुत्तर हो गई। पर तुरन्त याद आया कि कलकत्ता स्टेशन पर सावित्री की मां की पेटी में खादी की कुछ साड़ियां हैं। मैंने कहा कि सावित्री से साड़ियां निकलवा ली जायं। उनमें से दो दादीजी को दे दी गईं, एक ननद, एक-एक भाभी और बड़ी दादी को। शेष दो, मदालसा की पेटी में रख दी गईं।"

अक्तूबर १९३७ को श्रीमन्जी ने अखिल भारतीय शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया, उसमें डॉ० राधाकृष्णन् और डॉ० जाकिर हुसैन जैसे बड़े-बड़े लोग आने वाले थे। दुर्भाग्य से सम्मेलन के लगभग दो हफ्ते पहले श्रीमन्जी वीमार हो गये। गांधीजी उनसे मिलने वजाजवाड़ी आये और बोले, "मैं तो यह मानता था कि तुम उन आदमियों में से नहीं हो, जो बीमार पड़ जाते हैं। मैंने इसीलिए सम्मेलन की अध्यक्षता स्वीकार की थी। भला मैं इतना बड़ा बोझ कैसे उठा सकता हूं।" महादेव देसाई और किशोरलालजी मशरूवाला ने सुझाया कि श्रीमन्जी की बीमारी को देखते हुए सम्मेलन की तिथियां आगे सरका दी जायें। गांधीजी ने इस पर जमनालालजी से

सलाह ली। जमनालालजी ने श्री आर्यनायकम् और श्रीमती आशादेवी की मदद से सम्मेलन को उन्हीं तिथियों में रखना उचित माना। उस सम्मेलन में सभी प्रांतों के शिक्षामंत्रियों के अतिरिक्त आचार्य विनोवा, काकासाहेव कालेलकर, किशोरलालभाई, के० टी शाह, अविनाशलिंगम् चेट्टियार, जे० सी कुमारप्पा, श्री कृष्णदास जाजू और महादेव देसाई जैसे लोगों ने शामिल होकर उसे ऐतिहासिक महत्व की वस्तु बना दिया। गांधीजी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में श्रीमन्जी के उत्साह और शिक्षण-संवंधी पैनी दृष्टि तथा लगन का उल्लेख किया और कहा कि यह सम्मेलन उन्हीं के उत्साह के फलस्वरूप बुलाया गया है। आप सब लोगों को मिलकर इस नयी शिक्षण योजना को संवारना है। मेरी आशा है कि शिक्षा की यह पद्धति भारत जैसे गरीव देश के लिए किसी-न-किसी दिन मेरी सबसे वड़ी देन मानी जायगी।

गांधीजी ने वुनियादी तालीम के जो सिद्धांत लोगों के सामने रक्खे थे, उनका सवसे घोर विरोध डॉ० ज़ाकिर हुसैन ने किया। सम्मेलन में प्रमुख रूप से आमंत्रितों में उनका नाम श्रीमन्जी ने ही सुझाया था। श्रीमन्जी यह देखकर थोड़े परेशान हुए, किंतु वाद में गांधीजी ने पूरे विश्वास, दृढ़ता और नम्रता के साथ डॉ० जाकिर हुसैन की वातों का उत्तर दिया। डॉ० साहव मुतमईन हो गये, यहां तक कि उन्होंने नयी तालीम का पाठ्यक्रम वनाने वाली उपसमिति का अध्यक्ष वनना स्वीकार किया और बाद में अपने अनेक साथियों को इस काम में लगाया।

सम्मेलन की फल-श्रुति से गांधीजी वहुत आश्वस्त हुए। जाकिरहुसैन समिति की रिपोर्ट के वाद नयी तालीम का पाठ्यक्रम उत्तर प्रदेश, बिहार, बंवई और मद्रास की प्राथमिक पाठशाला में थोड़े बहुत परिवर्तनों के वाद शामिल किया और मध्य-प्रदेश के मुख्यमंत्री श्री रविशंकर शुक्ल ने तो 'विद्यामंदिर योजना' के अन्तर्गत पाठशालाओं में खेती आदि के प्रयोग के लिए जमीन की व्यवस्था भी की तथा एक प्रशिक्षण विद्यालय खोला। इसी तरह उत्तरप्रदेश में डॉ० संपूर्णानन्द ने शिक्षा में नई तालीम के तत्वों को व्यापक रूप से शामिल किया। अलबत्ता उन्होंने कताई और बुनाई की जगह कुछ दूसरे उद्योगों को रखा। शायद इस सिलसिले में सबसे अच्छा काम विहार में डॉ० श्रीकृष्ण ने किया। मद्रास में भी पूरी लगन के साथ इस काम को हाथ में लिया गया और गैर सरकारी संस्थाओं ने भी इस ओर उत्साह दिखाया।

किन्तु फिर दूसरा महायुद्ध छिड़ गया। अंग्रेज़ सरकार ने भारत के इसमें शामिल होने के बारे ने कांग्रेस के मंत्रिमंडलों से सलाह तक नहीं ली, इसलिए १६३६ में उस ने सत्ता-त्याग कर दिया। इससे नई तालीम के नवजात शिशु को धक्का लगा। श्रीमन्जी अवश्य ही इस पौधे को अपने मन में पाले रहे और जीवन में जब कभी अवसर मिला, उन्होंने नई तालीम के प्रचार और प्रसार में अपनी पूरी शक्ति लगायी।

कांग्रेस द्वारा सत्ता की बागडोर छोड़ देने के बाद भी सेवाग्राम की नई तालीम के प्रयोग चलते रहे। 'भारत छोड़ो' आंदोलन के समय लगभग सभी राजनेता और रचनात्मक कार्यकर्ताओं को जेल में वन्द कर दिया गया। इसलिए १६४७ में आजादी मिलने तक इस दिशा में कोई कहने लायक काम नहीं हो पाया। तथापि श्रीमन्जी एकदम चुप भी नहीं बैठे। शिक्षा के माध्यम के बारे में गांधीजी मातृभाषा पर जोर देते रहे थे। १६४२ में श्रीमन्जी ने 'शिक्षा का माध्यम' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी। पुस्तक की भूमिका में गांधीजी ने लिखा :

"आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल की यह किताब सामयिक है और इससे लोगों के मन

का यह भय कि मातृभाषा में उच्च-से-उच्च शिक्षा नहीं दी जा सकती, दूर हो सकता है। मुझे यह देखकर बड़ा दुख होता है कि लोग इतनी मोटी बातों को भी नहीं समझना चाहते; इसे लेकर बड़ी बहस करनी पड़ती है। आचार्य अग्रवाल ने अंग्रेजी भाषा का गहरे-से-गहरा अध्ययन किया है। उनका अंग्रेजी ज्ञान उन्हें मातृभाषा की आवश्यकता के आड़े नहीं आ पाया। मुझे आशा है कि जब तक मातृभाषा अपना स्थान ग्रहण नहीं कर लेती, श्रीमन्नारायण चैन से नहीं बैठेंगे।"

गांधीजी श्रीमन्‌जी के प्रति जो भावना रखते थे, उसे श्रीमन्‌जी ने कभी भुलाया नहीं। वे जीवन के अन्तिम क्षण तक शिक्षा में नई तालीम के तत्व और मातृभाषा को दाखिल करने के लिए अविश्रांत रूप से कार्य करते रहे।

१९४२ में गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' आंदोलन छेड़ा। श्रीमन्‌जी इस आंदोलन में ९ सितंबर, १९४२ में गिरफ्तार कर लिये गये। पहले उन्हें वर्धा के जेल में रखा गया। जेल जाने का उनका यह पहला अनुभव था। वर्धा से वे अमरावती भेजे गये। आचार्य काकासाहेब कालेलकर भी अमरावती जेल में थे। गीता वास्तव में अहिंसा की शिक्षा देती है या नहीं, इसे लेकर श्रीमन्‌जी के मन में पर्याप्त संदेह था। वे मानते थे कि गांधीजी ने गीता के दर्शन को अहिंसा की दिशा में विकसित करके उसी में से सत्याग्रह का सिद्धांत निकाला है। काकासाहेब ने श्रीमन्‌जी के संदेहों का बड़ी खूबी से निराकरण किया। काकासाहेब और श्रीमन्‌जी का साथ ज्यादा दिनों नहीं रह सका। उन्हें बुलढाणा भेज दिया गया। श्रीमन्‌जी बुलढाणा जेल में १४ महीने रहे। वहां उन्हें श्रीकृष्णदासजी जाजू और राधाकृष्ण बजाज के साथ एक ही कमरे में रहने का अवसर मिला। अन्य सभी लोगों की तरह जेल-जीवन श्रीमन्‌जी के लिए भी चिंतन, मनन और अध्ययन का अपूर्व अवसर बना। उन्होंने वहां गीता, रामायण, ज्ञानेश्वरी, आदि के विशेष अध्ययन के साथ लगभग दो सौ गुन्डी सूत काता। कपड़े धोना, भोजन बनाना, प्रार्थना करना आदि तो दिनचर्या में थे ही।

प्रारंभ में अनेक दिनों तक राजनैतिक बंदियों को कुटुम्बीजनों से भी नहीं मिलने दिया जाता था। बाद में इस तरह की इजाजत मिली। पत्रों पर सेंसर था, अखबार आने नहीं दिये जाते थे। ऐसी अवस्था में भी सुरक्षाबंदी प्रसन्न रहते थे।

समय बीतता गया और जेल में बंद अनेक लोगों को ऐसा लगने लगा कि अब शायद ही कभी दीवारों के बाहर आना हो सके। गांधीजी ने ९ फरवरी, १९४३ में तीन हफ्ते का अनशन किया; क्योंकि उन्होंने 'करो या मरो' का जो नारा दिया था, कई आंदोलनकारियों ने उसका आशय ठीक से नहीं समझा। उन्होंने माना कि इस आंदोलन में हिंसा तक की जा सकती है। छुट-पुट हिंसा की घटनाओं को दमन का उत्तम अवसर मानकर सरकार ने जो अत्याचार किये, उससे दुखी होकर गांधीजी ने आग़ा ख़ां महल में बंद रहते हुए यह अनशन किया था। इसके पहले वे वहां अपने सचिव महादेवभाई देसाई को गिरफ्तारी के एक हफ्ते बाद ही खो चुके थे। स्वभावतः उनका मन दुःखी था और शरीर कमज़ोर। किंतु जब सरकार ने बार-बार दमन को उचित ठहराते हुए हिंसा की जिम्मेदारी कांग्रेस के अगस्त-प्रस्ताव पर डाली तो गांधीजी ने अनशन किया। जेल में बंद तमाम लोगों ने भी सांकेतिक अनशन किया। गांधीजी शरीर की दुर्बलता के बावजूद इस अग्नि-परीक्षा में से सही-सलामत निकल आये।

लगभग उन्हीं दिनों १९४३ के मध्य में कुछ वड़े-वड़े उद्योगपतियों ने 'वाम्बे-प्लान' के नाम से देश के आर्थिक भविष्य की एक योजना प्रस्तुत की। उसमें अंग्रेज उद्योगपतियों का सहारा लेकर देश की औद्योगिक उन्नति के प्रयास का भाव प्रधान था। श्रीमन्जी को योजना का यह मसविदा वहुत कष्टकर लगा। उन्होंने गांधीजी के विचारों को आधार वनाकर आर्थिक योजना का एक मसविदा तैयार करना तय किया। जेलरने संदर्भ पुस्तकें वाहर से मंगाने की इजाजत दे दी। श्रीमन्जी किताबें पढ़ने और गांधीवादी योजना प्रस्तुत करने की सामग्री जुटाने में लग गये। उन्होंने लिखा है कि मैंने इससे पहले किसी भी विषय के अध्ययन में इतना परिश्रम नहीं किया था।

श्रीमन्जी बुलढाणा जेल से १९४३ के अंत में जवलपुर भेज दिये गये थे। वहां वे केवल तीन महीने रहे और एकाएक मार्च १९४४ में छोड़ दिये गये। गांधीजी के उक्त अनशन के कोई वर्ष-भर वाद २२ फरवरी को माता कस्तूरवाजी, जो जेल में गांधीजी के साथ थीं, का देहावसान हो गया, इस घटना का गांधीजी के मन पर बड़ा गहरा असर पड़ा। पहले महादेवभाई देसाई गये और अव वा चली गईं। वापू अपने को एकदम अकेला और असहाय महसूस करने लगे। १९४४ के अप्रैल महीने में वे स्वयं गंभीर रूप से वीमार पड़े। स्वास्थ्य की हालत बहुत चिंतनीय हो जाने के कारण ६ मई को वे अपने साथ वंद सहयोगियों समेत छोड़ दिये गये और स्वास्थ्य-लाभ के विचार से पंचगनी चले गये। श्रीमन्जी वहां जाकर बापू से मिले।

दिसम्बर १९४४ में वापू ने कर्म-संन्यास की घोषणा की। उन्होंने अपने सारे काम छोड़ दिये। तव श्रीमन्जी ने उनसे प्रार्थना की कि कर्म-संन्यास के दिनों में मदालसाबहन और उनके पास आकर रहें। बापू ने श्रीमन्जी की यह प्रार्थना स्वीकार कर ली, किन्तु शर्त लगाई कि उनके कारण श्रीमन्जी अपना कोई काम नहीं रोकेंगे।

कर्म-संन्यास के दिनों में गांधीजी अपना अधिकांश समय पढ़ने-लिखने में लगा देते थे। उस काल में लोगों से मिलना-जुलना बंद था। गांधीजी उन दिनों श्रीमन्जी के पारिवारिक संबंधों से बहुत घनिष्ट हुए और वहुत दिनों के वाद एक प्रकार के पारिवारिक आनंद का अनुभव हुआ। उन्हें श्रीमन्जी का जीवन-कुटीर इतना पसंद आया कि १९४५ की फरवरी में उन्होंने यहां आकर रहने की इच्छा प्रकट की। उसी समय अखिल भारतीय हिंदुस्तानी प्रचार सभा का सम्मेलन हुआ, जिसमें डॉ० ताराचन्द्र, पं० सुन्दरलाल आदि आये। श्रीमन्जी उस समिति के सचिव थे। उन दिनों वे अपनी घड़ी दस मिनट आगे रखते थे, जिससे किसी कार्यक्रम में देरी से न पहुंचें। एक वार तो वे एक कार्यक्रम में पांच मिनट पहले पहुंच गये।

गांधीजी के जेल से छूटने के लगभग एक वरस वाद मई १९४५ में दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया और उसी के वाद कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्यों को जून के मध्य तक छोड़ दिया गया। फिर परस्पर वात का दौर चला, किंतु नतीजा कुछ न निकला। गांधीजी इसके लिए शिमला गये और फिर शांतिनिकेतन तथा मिदनापुर। इसी दौरे में उन्होंने मिदनापुर के तूफान पीड़ित लोगों को देखा और उन्हें सान्त्वना दी। वर्धा लौट आने के वाद भारत के वायसराय के निजी सचिव जार्ज एवल से लगाकर क्रिप्स मिशन तक समझौते के सभी प्रयत्न असफल रहे। इसमें सबसे बड़ा अड़ंगा मुस्लिम लीग और जिन्नासाहव की तरफ से था। वे पाकिस्तान के लिए अड़े थे, जिसे न ब्रिटिश सरकार स्वीकार कर रही थी, न कांग्रेस। गांधीजी तो यहां तक कहते थे कि देश का बंटवारा मेरी लाश पर होगा।

परिस्थिति दिनों-दिन बिगड़ती चली गयी। कलकत्ते में भयानक वारदातें हुईं और नवाखाली की घटनाओं ने तो गांधीजी को एकदम हिला दिया। वे २८ अक्तूबर को बंगाल के लिए रवाना हुए और रास्ते में सतीशचंद्र दासगुप्त के आश्रम खादी प्रतिष्ठान में ठहरे। यहां श्रीमन्जी गांधीजी के साथ कुछ दिनों तक रहे और उन्होंने देश-विभाजन पर अनेक प्रश्न बापू से किये, जिसके उत्तर उन्होंने बोलकर लिखवाये।

श्रीमन्जी ने पूछा, "पिछले वर्ष १६ मई को ब्रिटिश केबीनेट मिशन ने पाकिस्तान देने की बात पूरी तरह नामंजूर कर दी थी। ऐसा उन्होंने जिन्ना साहब की हठ के कारण तय किया था। किंतु अब देश के लोग भी पंजाब और बंगाल के बंटवारे की बात कर रहे हैं और सांप्रदायिक दंगों के बाद ऐसा मानते हैं कि देश का विभाजन अनिवार्य है। क्या आप इसे पराजित मनोवृत्ति का नमूना नहीं मानते?" गांधीजी ने कहा कि "देश के बंटवारे की मांग हिंदुओं की निराशा में से उत्पन्न हुई है, इसमें कोई संदेह नहीं है। अगर मन में कायरता नहीं आई होती तो पाकिस्तान के बंटवारे का प्रश्न ही नहीं उठता था। मेरी राय में ये दोनों ही चीजें बिलकुल ग़लत हैं।" श्रीमन्जी ने गांधीजी से यह भी पूछा, "आपकी राय में अंग्रेज भारत से अपना बोरिया-बिस्तर समेटने के लिए तैयार क्यों हो रहे हैं?" गांधीजी ने उत्तर दिया, "एक कारण तो मैं जानता हूं और वह है हमारी अहिंसक शक्ति।"

उन दिनों गांधीजी रोज प्रार्थना सभा में देश के विभाजन के विरोध में प्रवचन करते थे और प्रार्थना-सभा में जो धुन गायी जाती थी, वह थी:—

रघुपति राघव राजाराम, पतितपावन सीताराम।
ईश्वर अल्लाह तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान॥

दूसरी पंक्ति उन्हीं दिनों धुन में जोड़ी गयी। सारे देश में इसका बड़ा असर हुआ, किंतु काल की गति विचित्र है। ६ नवम्बर को गांधीजी नवाखाली के लिए रवाना हो गये। उन्होंने वहां की भंयकर स्थिति को संभालने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी। ४ महीने वहां काम करने के बाद बिहार में हिंदू-मुस्लिम दंगा हुआ। ऐसा अत्याचार नवाखाली में हिंदुओं पर हुआ था। ऐसा अत्याचार बिहार में मुसलमानों पर हुआ था। परिस्थिति की अनिवार्यता नवाखाली से खींचकर उन्हें बिहार ले गयी। इस बीच जिन्नासाहब ने पाकिस्तान की अपनी मांग को और भी जोर से रखना प्रारम्भ कर दिया। इंग्लैंड के प्रधानमंत्री एटली ने २० फरवरी को घोषणा कर दी कि अंग्रेज सरकार भारत से हट जायेगी और जो हिस्से देश की केन्द्रीय सरकार से संबंध नहीं रखना चाहें, वे वहां की प्रदेश-सरकारों के तहत मान लिया जायें। इससे स्पष्ट हो गया कि अंग्रेज हटने के पहले भारत के विभाजन के लिए तैयार हो गये थे।

इस घोषणा के बाद दिल्ली में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक बुलाई गयी। आचार्य कृपालानी उन दिनों अध्यक्ष थे। उन्होंने गांधीजी को भी कार्यसमिति में आने का आमंत्रण भेजा। किंतु गांधीजी बिहार का काम छोड़कर आने के लिए तैयार नहीं थे।

देश का बंटवारा

पंजाब के सांप्रदायिक दंगों की तीव्रता को देखते हुए कार्यसमिति ने पंजाब के बंटवारे का प्रस्ताव किया। गांधीजी को यह बात पसंद नहीं आयी; क्योंकि वे जानते थे कि एक जगह

बंटवारा स्वीकार करना, देश के बंटवारे का कारण वन जायेगा।

मार्च के अंत में नये वायसराय लार्ड माउन्टवेटन ने गांधीजी और जिन्ना से बातचीत की। गांधीजी वंटवारे के विलकुल खिलाफ थे। उन्होंने कहा कि आप अखण्ड भारत की सत्ता, जिन्ना साहब को भले ही सौंप दें, मैं देश का विभाजन स्वीकार नहीं करना चाहता। किंतु यह स्पष्ट होता जा रहा था कि विभाजन अनिवार्य है। इंग्लैंड सरकार की अनुमति से लार्ड माउन्ट वेटन ने जून में घोषणा कर दी कि भारत हिंदू आवादी-प्रधान और मुस्लिम आवादी प्रधान, दो भागों में विभाजित किया जायेगा। इसपर फिर कार्य-समिति की वैठक बुलाई गयी। तब गांधीजी ने भी सलाह दी कि विभाजन स्वीकार कर लिया जाय।

श्रीमन्जी उन दिनों विहार में अपने बड़े भाईसाहव के पास थे। वे खवर सुन कर भागते हुए गांधीजी के पासआये और उन्होंने वापू से आग्रह किया कि वे किसी-न-किसी प्रकार से विभाजन रोकें। उन्होंने 'हरिजन' में छपने के लिए एक लेख भी दिया, जिसमें पाकिस्तान स्वीकार करने का जोरदार शव्दों में विरोध किया था। उन्होंने उस लेख में कार्यसमिति केपंजाब कोबांटने के प्रस्ताव का भी विरोध किया था। वापू ने 'हरिजन' में वह लेख छपने तो दे दिया किन्तु कहा कि तुम्हारे तर्क तो ठीक हैं; किन्तु अव हम कर भी क्या सकते हैं! जो परिस्थिति बन गयी है, उसमें अगर कार्यसमिति से वंटवारा अमान्य करने को कहूं तो देश में अराजकता फैल जायगी। इसके वावजूद श्रीमन्जी अपनी वात पर जोर देते रहे। थोड़े दिनों वाद अखिल भारतीय कांग्रेस समिति, की नई दिल्ली में जो वैठक हुई, उसमें बोलते हुए सरदार पटेल ने कहा कि मैंदेश के विभाजन के विरोध में था। किन्तु अव हिन्दुओं और मुसलमानों में पारस्परिक कटुता इतनी वढ़ गयी है कि हम उस दुर्दिन का स्वागत करने पर विवश हैं। जवाहरलालजी ने भी लगभग इसी तरह की विवशता जाहिर की। श्री टण्डनजी ने अवश्य वंटवारे का विरोध किया। जयप्रकाशजी और लोहियाजी तटस्थ रहे। अंत में गांधीजी ने गहरा शोक प्रकट करते हुए सलाह दी कि समिति के प्रस्ताव को देखते हुए देश को अराजकता से बचाने के लिए विभाजन मान लेना चाहिए। वादशाह खान इस निर्णय से वहुत दुखी हुए। उन्होंने शाम को प्रार्थना सभा के पास एक पेड़ के नीचे खड़े रहकर श्रीमन्जी से कहा, "तुम सब तो अब आजाद हो जाओगे और स्वराज का मजा भी लोगे, मगर मेरी सारी जिन्दगी पाकिस्तानी कैदखानों में कटेगी।"

गांधीजी ने यह देखकर भी कि देश के नेताओं ने इस मामले में उनका साथ छोड़ दिया था, जरूरी समझा कि वे सांप्रदायिक दंगों को शांत करने के काम में लगे रहें। वे दिल्ली से ७ अगस्त को नवाखाली के लिए जाते हुए रास्ते में कलकत्ता रुके। बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री सुहरावर्दी के आग्रह पर उन्होंने कलकत्ते में सांप्रदायिक सद्भावना पैदा करने के लिए ठहरना मंजूर कर लिया। स्वतंत्रता दिवस, १५ अगस्त आने तक भारत में और खासकर कलकत्ते में, आपसी वैमनस्य दूर हो गया। गांधीजी ने उस दिन उपवास और मौन रखा। आल इंडिया रेडियो को भी मौन तोड़ कर किसी प्रकार का संदेश देना स्वीकार नहीं किया। २४घंटे का उपवास और मौन से उत्पन्न करिश्मा इतिहास में अभूतपूर्व कहा जायेगा। फिर भी दुःख की बात है कि भाईचारे की यह भावना अधिक दिनों तक नहीं टिकी और ३१ अगस्त को जब गांधीजी नवाखाली जाने वाले थे, अनेक लोग रोष में भरकर गांधीजी के पास पहुंचे और उन्होंने उनके निवास पर

उत्पात किया। गांधीजी ने अपना नवाखाली जाना मुल्तवी कर दिया और फिर १ सितम्बर से आमरण अनशन की घोषणा की। इस घोषणा ने जादू का-सा असर किया और ७ सितम्बर को यह स्पष्ट हो गया कि हिंदुओं और मुसलमानों ने विभाजित भारत के भारतीय हिस्से में पूरे मन के साथ प्रेम से रहना स्वीकार कर लिया है। तब उन्होंने अपना उपवास छोड़ा। ५५ हजार सैनिक जो काम देश के पश्चिमी हिस्सों में नहीं कर पाये थे, उसे अकेले गांधीजी ने पूर्वी हिस्से में कर दिखाया। गांधीजी इसके बाद लौटे। दिल्ली की हालत बहुत खराब थी। सरदार पटेल और जवाहरलालजी बहुत परेशान थे। गांधीजी को भी रोज क्रोधित भीड़ का सामना करना पड़ता था। चारों तरफ से गुस्से से भरे पत्र तो आते ही रहते थे। गांधीजी फिर अपने शांति के काम में लग गये।

रोष का वातावरण

९ जनवरी, १९४८ को श्रीमन्जी बापू के पास गए। उन्होंने देखा कि अनेक शरणार्थी गांधीजी को घेरकर चिल्ला रहे हैं, "बहावलपुर के हिंदुओं को बचाइये, वहां के मुसलमानों के जुल्म को रोकिए।" इन शरणार्थियों में अनेक अपने परिवार के लोगों को खो चुके थे। वे दुख और क्रोध से पागल हो गये थे। प्रार्थना करने के बाद श्रीमन्जी ने गांधीजी से कहा कि मुझे वर्धा की संस्थाओं के बारे में कुछ बात करनी है तो उन्होंने थकी और चिंतित आवाज में कहा, "आज नहीं कल"। दूसरे दिन प्रार्थना सभा में बहुत कम लोग आये। कुछ शरणार्थी चिल्लाते रहे। गांधीजी की शांति रखने की अपील के जवाब में उन्हें गुस्से से भरे शब्द मिले। प्रार्थना की समाप्ति के बाद श्रीमन्जी ने गांधीजी से वर्धा की संस्थाओं की समस्याओं पर बातचीत की। गांधीजी काम और चिंता से बिलकुल टूटे हुए थे। हंसने-बोलने के उनके स्वभाव ने मानो उनका साथ छोड़ दिया था। 'हिंदुस्तानी-प्रचार' के बारे में बोलते हुए उन्होंने कहा, "जहां तक मेरा संबंध है, विभाजन से हमारे इस काम में कोई अन्तर नहीं पड़ता। नागरी और उर्दू दोनों लिपियों में हिंदुस्तानी भाषा का प्रचार करना चाहिए। देश राजनैतिक और भौगोलिक दृष्टि से बंट गया है; किन्तु मैं अपने मन में इसके सांस्कृतिक बंटवारे की कल्पना स्वीकार नहीं कर सकता।" उन्होंने यह भी कहा कि "मैं पाकिस्तान भी जाना चाहता हूं; लेकिन अभी तो दिल्ली जल रही है। ऐसी हालत में इसे कैसे छोड़ूं।" जब श्रीमन्जी ने उनसे पूछा कि आपने कांग्रेस से कार्यसमिति के निर्णय को स्वीकार कर लेने के लिए क्यों कहा, तो गांधीजी बोले, "परिस्थिति सामने थी। कांग्रेस कार्यसमिति एक प्रकार से राष्ट्र का मंत्रिमंडल है। जिस तरह किसी मंत्रिमंडल के प्रस्ताव को उसका दल स्वीकार करता है, उसी तरह कार्यसमिति की इस बात को भी स्वीकार किये बिना चारा नहीं था।" उन्होंने आगे कहा, "श्रीमन् तुम नहीं जानते, मेरे मन की क्या हालत है? एक-एक पल मुश्किल से कट रहा है।" इतना कहकर वे चुप हो गये और कमरे में वे दोनों एक-दूसरे से बिना कुछ कहे टहलते रहे। थोड़ी देर के बाद जवाहरलालजी कमरे में आये। वे रोज ७ बजे शाम को आ जाते थे। श्रीमन्जी बापू और उन्हें अकेला छोड़कर चले गये। श्रीमन्जी गांधीजी से पिछले १२ वर्षों में बहुत घनिष्ट हो चुके थे। गांधीजी की निराशा और उदासी का उनके मन पर ऐसा असर पड़ा कि वे शाम की बातें सोचते हुए रात भर ठीक से सो नहीं सके।

बापू शहीद हुए

दिल्ली की स्थिति विगड़ती ही चली गयी। बंटवारे की शर्तों में, पचपन करोड रुपया भारत पाकिस्तान को देगा, यह भी एक शर्त थी। किन्तु कश्मीर में युद्ध छिड़ जाने के कारण, वह रकम रोक ली गयी थी। गांधीजी इस मामले को लेकर दुखी थे। उन्होंने चाहा कि वह रुपया पाकिस्तान को दे दिया जाये। लेकिन जव भारत सरकार इस पर राजी नहीं हुई तो गांधीजी ने १३ दिन के उपवास की घोषणा कर दो। गांधीजी का शरीर वैसे भी वहुत कमजोर हो चुका था। ५ दिनों में ही अर्थात् ८ जनवरी तक वे एकदम कमजोर हो गये। भारत सरकार, हिंदू, मुसलमान और सभी नेताओं ने गांधीजी से उपवास छोड़ने का आग्रह किया। साथ ही भारत सरकार ने पाकिस्तान को पैसा देना भी मंजूर किया। इसपर गांधीजी ने उपवास छोड़ दिया; किन्तु आम लोगों के मन पर असर यह पड़ा कि गांधीजी का उपवास मुसलमानों के पक्ष में गया। २० जनवरी को प्रार्थना सभा में वम फैंका गया। उस दिन गांधीजी वच गये। १० दिन वाद अर्थात् ३० जनवरी को विलकुल निकट से उन पर गोली चलाई गयी, गोली लगते ही वे धरती पर गिर पड़े और अन्तिम शव्द जो मुंह से निकले, वे थे—'हे राम !'

सर्वोदय समाज

कार्यक्रम के अनुसार गांधीजी २ फरवरी, १९४८ को रचनात्मक कार्यों को तेजी से चलाने के लिए एक योजना पर विचार करने के लिए सेवाग्राम लौटने वाले थे। जिस दिन उनकी हत्या की गयी, उसी दिन उन्होंने योजना को अन्तिम रूप दिया था। गांधीजी ने सुझाव दिया था कि चूंकि अब कांग्रेस आज़ादी प्राप्त करने के अपने उद्देश्य में सफल हो चुकी है, इसलिए उसे अपने आपको विसर्जित कर देना चाहिए और 'लोक सेवक संघ' के नाम से रचनात्मक कामों को करने वाले दल के रूप में पुनः संगठित होना चाहिए। गांधीजी ने यह सुझाव ३० जनवरी को सुबह प्रकाशन के लिए दे दिया था, किंतु यह प्रकाशित हुआ, उनके निधन के दो दिनों वाद। गांधीजी की इस अंतिम इच्छा को कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया। देश के अनेक लोगों की तरह श्रीमन्जी की भी यह मान्यता थी कि कांग्रेस गांधीजी के इस सुझाव को मानकर और राजनैतिक क्षेत्र से हटकर रचनात्मक कामों को करते हुए वहुत बड़ी शक्ति बन सकती है। अगर यह हो सकता तो देश को पिछले वर्षों में जो दिन देखने पड़े, वे नहीं देखने पड़ते।

गांधीजी के देहावसान के २ महीने बाद मार्च १९४८ में देश के वड़े-वड़े राजनैतिक और रचनात्मक कार्यकर्ताओं का सेवाग्राम में महत्वपूर्ण सम्मेलन हुआ। डा० राजेन्द्रप्रसाद ने इसकी अध्यक्षता की। जवाहरलालजी, मौलाना आजाद, आचार्य कृपालानी, जयप्रकाशजी तो उसमें शामिल हुए ही, विनोबा जी ने जो प्रायः सार्वजनिक सभाओं आदि से दूर रहते थे, इसमें अपना पूरा समय दिया। उनके मार्ग-दर्शन ने इस सम्मेलन को बहुत महत्वपूर्ण बना दिया। जवाहरलाल जी ने कहा, "हम विनोबा जैसा कहेंगे, सदा वैसा ही करने के लिए तैयार रहेंगे। वे हम लोगों का मार्ग-दर्शन करें।" सम्मेलन में दो दिनों के वाद 'सर्वोदय समाज' के नाम से एक ऐसे विदेह संगठन की कल्पना स्वीकृत हुई, जो सारी दुनिया में सत्य और अहिंसा के सिद्धांतों को आधार मानकर, अपनाकर साधन और साध्य की एकता को स्वीकार करके भाईचारे की मानसिकता

का विकास करेगा। यह भी तय हुआ कि 'सर्वोदय समाज' में जो लोग अपने को 'लोक सेवक' की तरह दर्ज करायें वे साल में एक वार मिलें और अपने अनुभवों के आधार पर गांधीजी के स्वप्न को साकार करने की दिशाएं तय करें। 'समाज' में कोई बाकायदा प्रस्ताव आदि पास करने की बात नहीं थी। वारह व्यक्तियों की एक कार्यकारिणी बनायी गयी। श्रीमन्जी उनमें से एक थे। उन्हें सर्वोदय समाज की ओर से विदेशों में संबंध स्थापित करने और गांधी-विचार को फैलाने का काम सौंपा गया।

सेवाग्राम के इस सम्मेलन में श्रीमन्जी ने देश में फैल रही हिंसक प्रवृत्तियों का मुकावला करने के लिए 'शान्ति सेवा दल' वनाने का सुझाव दिया। पं० जवाहरलाल नेहरू और विनोबा जी दोनों ने ही इस सुझाव को पसंद किया और सम्मेलन की समाप्ति के थोड़े ही दिनों वाद श्रीमन्जी ने वर्धा में शांति-सेना की पहली टुकड़ी स्थापित की।

गांधी-विचार के ध्यान से विदेश-भ्रमण

श्रीमन्जी ने 'सर्वोदय समाज' के विचार के वारे में विदेश स्थित कुछ मित्रों से संबंध स्थापित किया। उन्हें ऐसा लगा कि अमरीका और इंग्लैंड आदि अन्य देशों में लोग इसकी स्थापना में मदद देने के लिए उत्सुक हैं। जापान में तो कुछ काम पहले से चल ही रहा था, इसलिए श्रीमन्जी ने मदालसाबहन के साथ इस विचार के प्रचार के लिए विदेश-भ्रमण का निश्चय किया।

१७ अप्रैल, १९४९ को विदेश-भ्रमण के लिए रवाना होने के पहले श्रीमन्जी और मदालसा-वहन ने राजाजी, नेहरूजी, राजेन्द्रबाबू और सरदार पटेल के आशीर्वाद प्राप्त किये। इन सभी ने थोड़े-वहुत सुझाव भी दिये। राजाजी ने मदालसाबहन से कहा, "तुम अमरीका और यूरोप में भाषण दोगी?" मदालसाबहन ने जवाव दिया, "मैं तो सिर्फ हिन्दी जानती हूं।" राजाजी ने हंस कर कहा, "आखिर पति किस काम के हैं! श्रीमन्जी तुम्हारे भाषणों को अनुवाद करके लोगों को अभिप्राय समझा दिया करेंगे।"

सब से पहले श्रीमन्जी और मदालसाबहन चीन पहुंचे। चीन की राजनैतिक स्थिति अभी तक अस्थिर थी। चीन में भारत के राजदूत के०एम० पनिक्कर भारत से ही इन लोगों के साथ हो गये थे। चीन में श्रीमन्जी ने कुछ स्थानों पर 'सर्वोदय समाज' का विचार लोगों के सामने रखा। चीन की आर्थिक स्थिति जबरदस्त उथल-पुथल में से गुजर रही थी। उसे संभालने के विचार से वहां ग्रामोद्योगों के बारे में सोचा जा रहा था। तेरह तकुओं का एक चर्खा भी वन गया था। इससे श्रीमन्जी को अपने काम के वारे में आशा वंधी। किन्तु तभी भारतीय दूतावास से समाचार आया कि शंघाई में साम्यवादी फौजें घुस गयी हैं। आप लोगों को तत्काल चीन छोड़ देना चाहिए। श्रीमन्जी चीन से जापान रवाना हो गये। वे तीन दिनों की इस बहुत ही संक्षिप्त अवधि में उस देश के वारे में कुछ ठीक से जान नहीं पाये। जापान भी उन्हें अमरीका होकर जाना पड़ा, क्योंकि लोगों को भारत सरकार के नियमानुसार जापान में केवल व्यापार के ध्यान से जाने की अनुमति मिल सकती थी। श्रीमन्जी बड़ी मुश्किल से टोकियो के हवाई अड्डे पर पहुंचे। इस बीच मदालसाबहन की तबीयत वहुत खराब हो गयी थी, इसलिए उन्होंने प्रार्थना की कि हमें यहां रुक जाने दिया जाये। अधिकारीगण तैयार हो गये, और बाद में उन्हें रुकने की ही नहीं, जापान घूमने की भी आज्ञा मिल गयी।

श्रीमन्‌जी ने देखा कि जापान की आर्थिक स्थिति भी वहुत खराव है। दूसरे महायुद्ध के कारण सारे उद्योग-धंधे और कारखाने नष्ट हो गये थे। वेकारी भयंकर रूप से फैली हुई थी। जापानी शासन-तंत्र के पास पुनर्निर्माण के लिए साधन मुहैया नहीं थे, किन्तु देशभक्त जापान-निवासी ग्राम-उद्योगों को वढ़ाकर देश को फिर से खड़ा कर देने पर तुले हुए थे।

खेती के सिवा जापान का किसान उन दिनों अपने अवकाश का समय बांस की टोकरियां और चटाइयां, रेशमी कपड़े, मिट्टी के वर्तन और खिलौने आदि बनाने में लगाता था। भारत के चर्खों से वेहतर किस्म के चर्खे भी वहां चल रहे थे, खेती और घरेलू कामों के लिए छोटे-छोटे यंत्र भी वनाये जा रहे थे, जिनसे उत्पादन वढ़े और ज्यादा-से-ज्यादा लोगों को काम भी मिल सके। श्रीमन्‌जी ने इस किस्म के औजारों की भी एक सूची तैयार की। खाद्य की हद तक आत्म-निर्भर होने की कोशिश में, सघन खेती के द्वारा वहां, अक्षरक्षः एक-एक इंच ज़मीन का उपयोग किया जा रहा था। चीन और आस-पास के देशों से, युद्ध के दौरान लाखों शरणार्थी वहां भाग कर आए थे। उपलव्ध प्राकृतिक साधनों और आबादी के श्रम का श्रीमन्‌जी ने वहां जो उपयोग देखा, उसे देखकर वे चकित हो गए। वहां प्रति एकड़ भारत से तिगुना उत्पादन किया जा रहा था और सो भी केवल शरीर श्रम के वल पर—न वैल, न घोड़े, न ट्रैक्टर। साम्यवाद को रोकने के ख्याल से विस्तृत भूमिसुधार भी किये गये थे। इस सबका जापान की आर्थिक स्थिति पर बहुत जल्दी वहुत अच्छा प्रभाव पड़ा।

अमरीकी फौज अभी तक जापान में पड़ी थी। वहां के निवासियों की समझ में नहीं आ रहा था कि उनसे कव और कैसे छुटकारा मिलेगा। श्रीमन्‌जी को वहां नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के कुछ सहयोगी भी मिले। देश के भविष्य के विषय में वे निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह पा रहे थे। संस्कृति की इस अवनति की घड़ी में वहां के कुछ लोगों का ख्याल था कि बुद्ध और गांधी के विचार उनके आशा-स्थान हैं। रेवरेंड रिरि नाकायामा नाम के एक धार्मिक पुरुष ने वहां 'गांधी-सोसायटी' नाम की संस्था स्थापित करके शांति और सद्‌भावना का कार्य उठा रखा था। उन्होंने श्रीमन्‌जी को वताया कि हजारों लोग महायुद्ध की क्रूरता के बाद सदा अहिंसक रहने का शपथ-पत्र भर चुके हैं।

अमरीका में

जापान से श्रीमन्‌जी सेन फ्रांसिसको गए। वहां उन्होंने अनेक विश्वविद्यालयों में भाषण दिये और फिर अमरीका के प्रसिद्ध स्थानों में घूमे। न्यूयार्क की गंदगी और दूषित पर्यावरण को देखकर उन्हें बड़ी निराशा हुई; किन्तु साथ ही उन्होंने देखा कि वहां के लोगों के मन में गांधी-विचार के प्रति वहुत उत्सुकता है। श्रीमन्‌जी वहां लुई फिशर से भी मिले, जो उन दिनों गांधीजी की जीवनी लिख रहे थे।

वाशिंगटन में सफाई आदि की दृष्टि से श्रीमन्‌जी को न्यूयार्क से विपरीत अनुभव आया। वे वहा का 'लिंकन स्मृति भवन' देखकर बहुत प्रभावित हुए। एक दीवार पर खुदे हुए ये शब्द उनके मन पर अंकित हो गए :

"जो जबंदस्त काम पड़ा है और जिसे हमारे पूर्वज हम से आशा रखकर हमें सौंप गये हैं, हमारा काम है कि हम उसे दुगने उत्साह से पूरा करें। हमारे पूर्वजों ने जिस उद्देश्य के लिए

अपने प्राण दिये, हम उसे पूरा करेंगे। हम उनके बलिदान को व्यर्थ नहीं जाने देंगे। हमारा यह राष्ट्र उस नयी स्वतंत्रता को साकार करेगा, जिसमें जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता का राज्य चिरस्थायी होकर फिर कभी ओझल नहीं होगा।"

श्रीमन्जी और मदालसाबहन ने फिलाडेलफिया और बोस्टन की यात्रा भी की। बोस्टन में प्रो० शूमपीटर से उनकी मुलाकात हुई, जो हावर्ड विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग के अध्यक्ष थे। उन्होंने गांधीजी की विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के प्रति बहुत दिलचस्पी बताई और माना कि संसार में शांति और सुख फैलाने का इससे अच्छा दूसरा तरीका नहीं है।

बोस्टन में श्रीमन्जी ने इमर्सन का घर भी देखा। घर शहर से हटकर अभी तक काफी अच्छी हालत में सुरक्षित था। इमर्सन के लेखन का गांधीजी के मन पर बहुत प्रभाव था, इसलिए स्वाभाविक था कि श्रीमन्जी को उनका स्थान देखने की उत्सुकता होती। वहां उन्होंने थॉरो के हाथ की बनी हुई कुछ चीजें भी देखीं जो इमर्सन ने थॉरो के लिए बनाई थीं। बाद में श्रीमन्जी ने थॉरो की, एक झील के किनारे बनी कुटिया भी देखी। यह याद दिलाने की जरूरत नहीं है कि गांधीजी के सत्याग्रह की पद्धति के विकास में थॉरो के सिद्धान्तों का बड़ा हाथ रहा था।

श्रीमन्जी ने देखा कि अमरीका एक परिश्रमी देश है। शरीर-श्रम करते हुए वहां के लोग किसी प्रकार के छोटेपन का अनुभव नहीं करते; बड़े-से-बड़े विद्वान अपना काम अपने हाथ से करते हैं; हर घर में जरूरत के औजार होते हैं और घरेलू नौकरों का तो लगभग वहां अभाव ही है। काम करते हुए पढ़ने का वहां आम चलन है। पढ़ाई की फीस बहुत ज्यादा है। अगर बच्चे स्वयं मेहनत न करें तो माता-पिता उस खर्च को उठा नहीं सकते। सम्पन्न परिवार के बच्चे भी मेहनत-मजदूरी के काम करते हैं और इस प्रकार पैसा कमाकर पढ़ते हैं। होटलों में बर्तन धोना, खेतों-बगीचों में काम करना, खाली वक्त में बच्चों की देख-रेख करना या उन्हें पढ़ाना आदि वहां आमतौर से विद्यार्थियों में रूढ़ हैं। ग्रीष्मावकाश में वे मामूली मजदूरों के साथ काम करते हुए दिखाई पड़ते हैं।

यह सब होते हुए भी वहां रंग-भेद की भावना तीव्र है और अगरचे वहां के संविधान में भेद-भाव की गंजाइश नहीं है, फिर भी वहां नीग्रो लोगों पर आज तक जबर्दस्त अत्याचार होते हैं। क्रुद्ध भीड़ के आगे कानून की कुछ नहीं चलती। यह अमरीका के सब गुणों पर पानी फेर देने वाली बात है।

गांधीजी का नाम वहां सभी लोग जानते हैं, इतना ही नहीं, उनका नाम लेते हुए गौरव का अनुभव करते हैं। प्रायः लोग श्रीमन्जी से पूछते थे कि इतने भले आदमी को मारने वाला पागल आदमी कौन था? वहां के अनेक लोग श्रीमन्जी से बार-बार कहते थे कि आपकी अपनी एक संस्कृति है—ऐसी संस्कृति, जिससे हम लोग भी बहुत कुछ सीख सकते हैं। मेहरबानी करके आप लोग हम लोगों की नकल न करें और अपने बड़े आदमियों के बताए हुए मार्ग को सोच-समझ कर, विज्ञान का सहारा लेकर, इस प्रकार फैलायें कि हम सब लोगों को उससे मदद मिले। वहां के प्रो० बोरसोदी विकेन्द्रीकृत रहन-सहन और शिक्षण-पद्धति के सिद्धांतों का अध्ययन कर रहे थे। उन्होंने श्रीमन्जी से गांधीजी के सिद्धांतों के बारे में सुनकर बहुत खुशी जाहिर की और स्वयं उन्होंने क्या किया है, इसे विस्तार से समझाया। श्रीमन्जी ने प्रिंसटन विश्वविद्यालय में

जाकर प्रो० अलबर्ट आईन्स्टीन से भेंट करने का अवसर भी प्राप्त कर लिया। श्री आईन्स्टीन ने देर तक महात्मा गांधी के वारे में वात की और उन सव परिस्थितियों को समझना चाहा, जिन में महात्मा गांधी की हत्या हुई थी। सव कुछ सुन चुकने के वाद उन्होंने कहा, "गांधी एक अद्‌भुत व्यक्ति थे। उन्होंने इस वात की कभी परवा ही नहीं की कि लोग उनकी सच्ची वातें सुनकर खुश होंगे या निराश। उन्होंने क्रोध के वातावरण से घिरे रह कर भी पुलिस का संरक्षण लेने से इंकार कर दिया। इसे ही गनीमत मानिए कि वे वहुत पहले नहीं मार डाले गए। दुनिया के जवर्दस्त महान पुरुषों के साथ ऐसा ही व्यवहार होता है। किंतु मैं कहना चाहता हूं कि गांधीजी की हत्या उनके विचारों की सवसे वड़ी जीत थी।" उन्होंने यह भी कहा, "आने वाले समाज का नक्शा विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था के आधार पर वनेगा। केन्द्रीकृत सरकार के साथ अत्याचार जुड़ा हुआ है। वड़े-वड़े नगर हर दृष्टि से भयानक हैं। मुझे लगता है कि छोटे-छोटे समाजों में आत्म-निर्भर होकर रहना आसान है। समता भी इसी रास्ते से आ सकती है। मैं समाज में समता का स्वप्न देखता रहता हूं।"

श्रीमन्‌जी और मदालसा के साथ उस दिन गांधीजी के पुत्र मणिलालजी भी थे, इसलिए वात-चीत लम्वी चलती रही। मदालसावहन ने श्री आईन्स्टीन को गांधीजी का एक एलवम भेंट किया। वे उस भेंट को पाकर वहुत प्रसन्न हुए। मदालसावहन ने पूछा, "भारतीय स्त्री का आज क्या कर्तव्य है?" उन्होंने कहा, "उन्हें सवसे ज्यादा ध्यान इस वात का रखना है कि ज्यादा बच्चे न हों।" युद्धादि के वारे में भी वहुत-सी वातें हुईं। अन्त में प्रो० आईन्स्टीन ने ईसा की सलीव पर टंगी हुई एक संगमरमर की मूर्ति की ओर इशारा किया और कहा कि मैं तो अपनी सारी प्रेरणा इस मूर्ति से लेता रहता हूं। आदमी और आदमी के वीच मधुर संवंधों से वड़ी चीज दुनिया में दूसरी नहीं हो सकती। अमरीका के अन्य वड़े आदमियों में श्रीमन्‌जी ने पलंवक, प्रो० किलपैट्रिक और प्रो० डुई से भी भेंट की। जव उन्होंने प्रो० डुई से कुछ संदेश देने को कहा तो उन्होंने कहा कि, "मैं भारत को क्या संदेश दे सकता हूं?" वाद में उन्होंने दो पंक्तियां लिख कर दीं कि "हम नये देश, भारत जैसे प्राचीन देश, के इतिहास और उसकी संस्कृति से कुछ सीखने की आशा करते हैं। हमें उम्मीद है कि भारत हमारी इस अभिलाषा को पूरी करने में मदद पहुंचायेगा।"

श्रीमन्‌जी अमरीका के वाद इंग्लैंड गये। पन्द्रह साल के वाद फिर लन्दन पहुंचने पर उन्होंने देखा कि शान-शौकत में वहां कोई कहने लायक इजाफा नहीं हुआ है; वल्कि दूसरे महा-युद्ध के कारण तमाम शहर खंडहर होकर रह गया है। वे वहां पन्द्रह दिन रहे और केवल वहां की शिक्षा-पद्धति को वारीकी से समझने के विचार से आक्सफोर्ड, कैम्ब्रिज और वरमिंघम विश्व-विद्यालयों में घूमे। यहां के ये विश्वविद्यालय अमरीका के विश्वविद्यालयों से वहुत छोटे थे; किन्तु यहां अध्ययन की गहराई वहां से वहुत अधिक थी।

लन्दन में

श्रीमन्‌जी लन्दन में महात्मा गांधी के प्रशंसक पैथिक लारेन्स से भी मिले। वे काफी वूढ़े हो चुके थे, किन्तु तब भी भारतवर्ष की घटनाओं पर वरावर निगाह रखते थे। इसके सिवा वहां गांधीजी के पुराने साथी हैनरी पोलक, म्युरियल लेस्टर की वहन कु० डोरिस लेस्टर और अगाथा

हैरिसन से भी उन्होंने मुलाकात की। इन सबकी मदद से उन्होंने 'सर्वोदय समाज' के विचार को कई स्थानों पर लोगों के सामने रखा। श्रीमन्जी को यह देखकर दुःख हुआ कि ज्यादातर अंग्रेजों को भारत के बारे में बहुत कम बातें मालूम थीं और अनेक लोग तो तब तक भी गांधीजी की याद 'ब्रिटिश समाज को कष्ट देने वाले एक आदमी' के रूप में करते थे।

श्रीमन्जी लंदन में प्रो० हैरल्ड लास्की से मिलने के लिए बहुत उत्सुक थे। मीराबहन (मिस सलेड) ने श्री लॉस्की को चाय पर आमंत्रित करके श्रीमन्जी को उनसे मिलाया। जब उन्हें मालूम हुआ कि श्रीमन्जी एक महाविद्यालय के प्राचार्य हैं तो उन्होंने कहा, "अब भारत के विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए विदेशों में भेजना बंद करके, उन्हें कोरे साहित्य, राजनीति, अर्थ-शास्त्र आदि की शिक्षा न देकर ठीक तकनीकी शिक्षा दी जानी चाहिए। यांत्रिकी, चिकित्सा जैसे अनेक विषय सीख कर भारत की युवा-शक्ति को देश के निर्माण में जुटना है। उन्हें अब निगाह देश की सेवा पर रखना है, अपने लिए सुख-सुविधाएं जुटाने पर नहीं। जो सुख-सुविधाओं के पीछे भागता है, सुख उससे दूर भागता है और जो अपने को सेवा में खपा देता है, उस पर आनन्द की वर्षा होती है।" उन्होंने गांधीजी की विकेन्द्रीकृत अर्थ-व्यवस्था वाले विचार के साथ अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा कि किसी भी प्रकार का केन्द्रीकरण आखिरकार व्यक्ति को गौण बना कर व्यवस्था, व्यवस्थापकों और यंत्रों को प्रधान बना देता है। कुछ उद्योग सरकार के हाथ में रहें, यह जरूरी है, जिससे व्यापार-वृद्धि लोगों का शोषण न कर पाये। उन्होंने गांधीजी के ज्यादातर विचारों से सहमति प्रकट करने के साथ यह भी कहा, "परिवार-नियोजन के बारे में उनके विचारों पर चलना कठिन है। भारत में किसी भी प्रकार से हो, आबादी का बढ़ना रोका जाना चाहिए। जब तक समाज में सब लोग भोजन और वस्त्र के अभाव से छुटकारा नहीं पा जाते, जो आबादी के न बढ़ने पर भी निर्भर है, कोई योजना सफल नहीं हो सकती।" उन्होंने इस विषय पर भारत के प्रधान मंत्री पं० नेहरू को बाद में एक पत्र भी लिख कर भेजा था।

बेलजियम और फ्रांस में

इंग्लैंड के बाद श्रीमन्जी ने बेलजियम का दौरा किया। यह देश लगभग एक हजार वर्ष से पश्चिमी यूरोप का युद्ध-क्षेत्र बनता आया है। इसलिए यहां के लोग इस बात के लिए बहुत चिंतित हैं कि दुनिया में अहिंसा का विचार फैले और हमें तीसरे महायुद्ध का मुंह न देखना पड़े।

फ्रांस में श्रीमन्जी वहां के अनेक प्रसिद्ध पुरुषों से मिले। उन्हें यह देखकर बहुत खुशी हुई कि फ्रेंच भाषा में गांधीजी की अनेक कृतियों के अनुवाद प्राप्त हैं। उन्होंने उन फ्रेंच अनुवादों को वर्धा के 'गांधी ज्ञान मंदिर' के विचार से खरीदा भी। श्रीमन्जी ने वहां गांधीजी के शिक्षण विषयक विचारों पर कुछ स्थानों पर बातचीत की और अपने विचारों को यूनेस्को द्वारा मांगे जाने पर उसे संक्षेप में एक निबंध लिख कर दिया।

विश्व-शिक्षक-सम्मेलन

तभी स्विट्जरलैंड के बर्नी नाम के स्थान में शिक्षकों का विश्व-सम्मेलन हुआ। उसमें संसार के २२ देशों के प्रतिनिधि आये थे। श्रीमन्जी ने भारत के प्रतिनिधि के रूप में भाग लिया। उन्होंने अपने भाषण में इस बात पर जोर दिया कि शिक्षकों को अधिकारों के बजाय,

अपने कर्तव्यों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। यदि शिक्षक अपने कर्तव्यों की ओर जागरूक रहें तो वे आने वाली पीढ़ियों का इस ढंग से निर्माण कर सकते हैं कि किसी भी देश की सरकार को अनुचित काम करने का साहस ही न हो। उन्हें एक प्रकार का नैतिक प्रभाव उत्पन्न करना चाहिए। कदाचित् यही विचार आगे जाकर विनोबाजी से विचार-विमर्श के बाद 'आचार्य कुल' के रूप में विकसित हुआ। श्रीमन्‌जी ने आपातकाल में विनोबाजी के मार्ग-दर्शन में आचार्य-कुल के मार्फत देश में एक प्रकार की निर्भय मनोवृत्ति का निर्माण किया। वे इसीलिए तत्कालीन सत्ता के निकट बहुत अप्रिय हो गये थे।

स्विट्ज़रलैंड में

श्रीमन्‌जी स्विट्ज़रलैंड में तीन हफ्ते तक रहे। उन्होंने वहां सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और राजनैतिक पद्धतियों का अध्ययन करके यह देखा कि वह छोटा-सा देश उन विचारों के अनुकूल चल रहा है, जिनके लिए गांधीजी जिये और मरे थे। वहां के लोग शांतिप्रिय और परिश्रमी हैं। वे किसी भी देश का शोषण नहीं करना चाहते। बड़े-बड़े कारखाने उनके यहां हैं ही नहीं। वे सुबह जल्दी उठकर शाम तक काम में लगे रहते हैं, और नौ बजे तक सारा देश विश्राम-कक्ष में चला जाता है। नौ बजे के बाद वहां मोटरगाड़ियों को भी भोंपू बजाते हुए भागते फिरने की इजाजत नहीं है, जिससे कि काम से थके हुए लोगों को आराम मिल सके। वहां की राज्य पद्धति एक तरह से 'ग्राम-स्वराज' पद्धति है। लोग नीचे से चुन कर ऊपर तक भेजे जाते हैं। मंत्रीगण संसद के सदस्य नहीं होते; बल्कि संसद द्वारा वेतन पाकर काम करते हैं। वे सब अपने-अपने विषयों के विशेषज्ञ होते हैं और यदि उनसे कोई बड़ा अपराध न बन पड़ा हो तो अपना काम करते चले जाते हैं। स्विट्ज़रलैंड की प्रजातांत्रिक पद्धति संसार में सबसे अधिक विकेन्द्रीकृत पद्धति है। इसलिए संसार में वहां सबसे अधिक व्यक्तिगत स्वतंत्रता देखी जाती है। इसी तरह उत्पादन के विकेंद्रीकृत होने के कारण वहां वायु-प्रदूषण भी बिलकुल नहीं है। भाषा और धर्म-भेद के बावजूद वहां सब लोग मिल-जुल कर रहते हैं। वहां की मुख्य भाषाएं चार हैं, किंतु न भाषा के कारण कोई झगड़ा होता है और न धर्म-संप्रदायों के कारण। वहां स्त्रियों को मतदान का अधिकार नहीं है। श्रीमन्‌जी ने जब एक बहन से इस विषय में राय जाननी चाही तो उसने कहा कि हमें इसकी कोई जरूरत महसूस नहीं होती। हर बहसतलब बात पर हमारे यहां 'रिफरेंडम' का चलन है। हम लोग परस्पर बातें तो करते ही रहते हैं और अक्सर किसी एक राय पर पहुंच जाते हैं। उस हालत में घर के सभी व्यक्तियों को वोट डालने जाने की जरूरत ही नहीं रहती। काम का नुकसान बच जाता है। हम अपने घर के दूसरे सदस्यों के द्वारा अपनी राय जाहिर कर देते हैं।

जर्मनी और रोम में

युद्ध के कारण जर्मनी का हाल तो बहुत खराब था। फिर भी लोगों के मन में निराशा नहीं थी। वे मानते थे कि यदि अमरीका साम्यवाद को समाप्त करना चाहता है और हमें अपने ढंग से काम करने का मौका देता है तो हम अपने देश को बहुत जल्दी पहले से भी अधिक समृद्ध कर लेंगे। जर्मनी से श्रीमन्‌जी और मदालसाबहन रोम गये। वहां उन्होंने रोम के प्राचीन भव्य स्थानों को देखा। वे पोप से भी मुलाकात कर सके। पोप को गांधीजी के विचारों से उन्होंने सहमत पाया।

मदालसाबहन ने पोप को गांधीजी की संगमर्मर की एक मूर्ति और गीता की एक प्रति भेंट की। पोप ने विदा देते समय कहा कि हम सब भगवान से यह प्रार्थना करते हैं कि इस विशाल संसार में लोग महात्मा गांधी के न्याय और शांति के विचारों को समझें, क्योंकि इन गुणों के विना मानवता का उद्धार नहीं हो सकता। फिर श्रीमन्जी एथेंन्स गये और वहां उस स्थान को देखना चाहा, जहां सुकरात को बंद करके रखा गया था। बड़ी मुश्किल से उस स्थान का पता चला। प्लेटो और अरस्तू के स्थानों का कोई ठीक पता नहीं मिल सका। यह आश्चर्य की वात है कि वह देश संसार-प्रसिद्ध अपने महापुरुषों से इतना वेखवर है।

तुर्की और पाकिस्तान में

तुर्किस्तान में श्रीमन्जी हालिदा वानुम अदीव से मिले, जो वर्षों पहले भारत आयी थीं। वे अपने देश में लौट कर गांधीजी के विचारों को फैला रही थीं। श्रीमन्जी ने उन्हें 'सर्वोदय-समाज' संवंधी साहित्य दिया। वे इससे वहुत प्रसन्न हुईं।

इतने देशों का भ्रमण करने से श्रीमन्जी के स्वास्थ्य पर कुछ असर पड़ा। वे सीरिया, इजराइल, ईराक आदि होते हुए पाकिस्तान गये। पाकिस्तान में उन्हें यह देख कर वड़ा दुःख हुआ कि वहां के मुसलमान तव भी भारत के प्रति सहानुभूति और प्रेम की भावना से अछूते थे। उन्होंने देखा कि पाकिस्तान के सिवा सारी दुनिया में लोग पारस्परिक प्रेम के भूखे हैं और सभी भारत की ओर नैतिक तथा आध्यात्मिक मार्गदर्शन की आशा से देखते हैं।

दिल्ली लौट कर वे फिर देश के नेताओं से मिले और सेवाग्राम पहुंच कर कुछ देर वापू कुटीर में प्रार्थना के भाव से वैठे।

विश्व शांति परिषद में

जनवरी १९५० में शांति निकेतन और सेवाग्राम में विश्व शांति परिषद के अधिवेशन हुए। उनमें विभिन्न देशों से गांधीजी के विचार और गुरुदेव के आदर्शों से प्रभावित व्यक्तियों ने भाग लिया, जिनमें होरेस अलेक्जेंडर, जे० जे० मस्ते तथा रेवरेण्ड नाकायामा के नाम उल्लेखनीय हैं। इन अधिवेशनों में 'सर्वोदय-समाज' के विषय में विचार-विमर्श हुआ और श्रीमन्जी ने वहां 'शांति-सेवा' संवंधी अपना विचार सामने रखा। उसे परिषद् का पूरा-पूरा समर्थन मिला।

विश्व शांति परिषद के सेवाग्राम अधिवेशन का उद्घाटन विनोवाजी ने किया था। उन्होंने अपने भाषण में कहा कि मुझे अणुवम से उतना खतरा नहीं मालूम होता है जितना प्रचलित शस्त्रों से होता है। उन्होंने वाद में अपने विचार को समझाते हुए कहा कि एटमवम अपनी शक्ति के कारण विरोधी पक्षों में सुवुद्धि जगाकर शांति का कारण वन सकता है। परिषद् का समापन पं० जवाहरलाल के भाषण से हुआ, जिसमें उन्होंने इस बात पर खुशी जाहिर की कि सेवाग्राम में सारे संसार से लोग, गांधीजी के विचारों के अनुसार शांति और स्नेह की खोज करने के लिए इकट्ठे हुए।

विदेश भ्रमण के वाद श्रीमन्जी लगभग एक वर्ष तक वर्धा में ही रहे। उन्होंने सेकसरिया कालेज के अध्यापकों की सहायता से अर्थशास्त्र-संवंधी अनेक विषयों पर कुछ पुस्तकों का प्रकाशन करवाया और हिंदी में 'अर्थ संदेश' नाम की एक पत्रिका भी निकाली। मातृभाषा द्वारा उच्च

शिक्षा देने की दिशा में, उनके इस कदम का योगदान माना जाता है।

भूदान-गंगा का उद्गम

१९५१ के प्रारंभ में विनोवाजी ने तय किया कि वे हैदरावाद के शिवराम पल्ली नामक स्थान में होने वाले सर्वोदय सम्मेलन में शामिल होंगे। किंतु वहां तक पहुंचने के लिए किसी वाहन का उपयोग नहीं करेंगे। लगभग एक हजार मील की यह दूरी उन्होंने पैदल चलकर पार करने का संकल्प किया। इस पदयात्रा में मदालसा वहन पूरे समय विनोवाजी के दल के साथ रहीं। श्रीमन्जी भी वीच-वीच में पदयात्रा में शामिल हो जाते थे। सर्वोदय-सम्मेलन की समाप्ति के वाद विनोवाजी तेलंगाना के अंचल में पहुंचे। वहां साम्यवादी दल ने हिंसा और वल प्रयोग से जमीन छीनना शुरू कर दिया था। सारे अंचल में असुरक्षा की भावना फैली हुई थी। १८ अप्रैल, १९५१ को विनोवा वहां के नलगुन्डा जिले के पोचमपल्ली गांव में पहुंचे। वहां के कुछ भूमिहीन हरिजनों ने विनोवा से जमीन दिलाने को कहा। वहां के एक सम्पन्न किसान रामचन्द्र रेड्डी ने विनोवा के कहने पर १०० एकड़ भूमि दान दे दी। इस तरह भूदान आंदोलन प्रारंभ हो गया। विनोवा ने तेलंगाना में घूमकर कोई १२००० एकड़ जमीन इकट्ठी की और उसे भूमिहीन हरिजनों में वितरित किया गया।

तेलंगाना से विनोवा अपने आश्रम में लौट आये, किंतु कोई दो महीने वाद पं० जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें आमंत्रित किया कि वे दिल्ली आकर पहली पंचवर्षीय योजना आयोग के सदस्यों का मार्गदर्शन करें। विनोवा ने आमंत्रण स्वीकार कर लिया। किंतु शर्त लगायी कि वे वर्धा से दिल्ली तक पैदल ही आयेंगे। इस पदयात्रा में भी श्रीमन्जी और मदालसा वहन कई स्थानों पर विनोवाजी के साथ रहे। २ अक्टूबर, १९५१ को मध्यप्रदेश के सागर नगर में सर्वोदय कार्यकर्ताओं की एक सभा हुई। विनोवा को वहां भी भूदान में काफी जमीन मिली। दिल्ली जाते-जाते तक इस तरह दान में जमीन मिलती चली गई और यह स्पष्ट हो गया कि विना हिंसा के प्रेम से जमीन प्राप्त करके उसके वितरण के द्वारा भूमि समस्या को हल किया जा सकता है।

श्रीमन्जी संसद में

१९५२ में आम चुनावों की तैयारियां प्रारम्भ हो गयीं। श्रीमन्जी को वर्धा से संसद के उम्मीदवार की तरह नामांकन पत्र भरने को कहा गया। श्रीमन्जी तव तक कांग्रेस के साधारण सदस्य भी नहीं वने थे, किंतु सवका आग्रह देखकर वे कांग्रेस के सदस्य वने और उन्होंने निश्चित तिथि पर नामांकन पत्र भर दिया। उनके मुकावले में जनसंघ, प्रजा सोशलिस्ट पार्टी और महाराष्ट्र किसान-मजदूर दल की ओर से तीन और उम्मीदवार थे। श्रीमन्जी चाहते थे कि चुनाव-प्रचार में एक-दूसरे पर कीचड़ न उछाली जाय; वल्कि सव अपने-अपने दल के भावी कार्यक्रम के आधार पर चुनाव लड़ें। इसलिए उन्होंने सभी विरोधी उम्मीदवारों को अपने घर पर आमंत्रित किया। वे सव इस वात पर राजी हो गये कि प्रचार अधिक से अधिक सद्भावना के साथ किया जायेगा। महाराष्ट्र किसान-मजदूर दल के उम्मीदवार ने अपनी सभाओं में यह कहना शुरू किया कि श्रीमन्जी महाराष्ट्र के रहने वाले नहीं हैं। इसलिए उन्हें वोट नहीं दिया

जाना चाहिए। श्रीमन्जी को यह जानकर दुख हुआ और उन्होंने उस उम्मीदवार से रू-ब-रू बातचीत की। उसने स्वीकार किया कि त्रुटि हो गयी है, अब ऐसा नहीं होगा।

श्रीमन्जी ने अपने स्वभाव के अनुसार बड़ी लगन और तत्परता से चुनाव-प्रचार किया। वे जबरदस्त बहुमत से जीते। विरोधी किसी भी उम्मीदवार की जमानत नहीं बच सकी। श्रीमन्-जी को मतों का जो प्रतिशत मिला, वह देश में प्राप्त सबसे अधिक प्रतिशत था।

१९५२ को मई में संसद का सत्र प्रारंभ हुआ। श्रीमन्जी ने शपथ हिन्दी में ली। लोगों ने उनके इस कदम का जबरदस्त करतल ध्वनि से स्वागत किया। पहले ही दिन श्रीमन्जी को राष्ट्र-पति को धन्यवाद देने से संबंधित प्रस्ताव के समर्थन का अवसर भी मिला। उन्होंने समर्थन करते हुए छोटा-सा भाषण भी दिया, जो सराहा गया। उसके बाद तो वे संसद की दैनंदिन कार्यवाही में उत्साह से भाग लेने लगे।

श्रीमन्जी आर्थिक और शैक्षणिक विषयों में अधिक दिलचस्पी लेते थे। वे सदा अपने चुनाव-क्षेत्र के मतदाताओं से पत्रों द्वारा संबंध भी बनाये रखकर यह जानते रहते थे कि उनके मतदाता उनसे संसद में किन बातों को पेश कराना चाहते हैं। ऐसा न तब कोई सदस्य करता था और न आज करता है।

कांग्रेस संसदीय दल ने इस उद्देश्य से कुछ स्थायी समितियों का गठन किया था कि सदस्यगण अपनी-अपनी रुचि की समितियों में शामिल होकर अपनी राय जाहिर किया करें। श्रीमन् जी ने योजना से संबंधित स्थायी समिति में भाग लेना शुरू कर दिया और जल्दी ही उनकी दिलचस्पी और तत्परता को देखकर उन्हें उसका संयोजक बना दिया गया। श्रीमन्जी इस समिति की नियमित रूप से साप्ताहिक बैठकें रखते और विभिन्न विभागों के मंत्रियों को आमंत्रित करते रहते थे। वे योजना आयोग के सदस्यों को भी कभी-कभी उपस्थित होकर मार्गदर्शन देने की प्रार्थना करते थे। इस से स्थायी समिति में आने वाले सदस्यों की संख्या बढ़ती ही चली गई और जो कमरा इन बैठकों के लिए निश्चित हुआ था, वह छोटा पड़ने लगा।

श्रीमन्जी ने गांधीजी के प्रति जागरूक संसद सदस्यों का एक अनौपचारिक संगठन भी खड़ा किया इसके कारण संसद में होने वाली चर्चा के समय गांधीजी की दृष्टि को पेश करने में बहुत मदद मिलने लगी।

कांग्रेस महासमिति के मंत्री

जुलाई १९५२ में अर्थात् संसद सदस्य होने के तीन महीने बाद ही श्रीमन्जी अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के एक महामंत्री नियुक्त कर दिये गए थे। महामंत्री का काम संभालते हुए, संसद की कार्यवाही में पहले की तरह हिस्सा लेना कठिन हो गया; किन्तु श्रीमन्जी यथा-संभव दोनों जिम्मेदारियों को खूबी से निभाते रहे। श्रीमन्जी ने संसद सदस्य की हैसियत से भूदान-आंदोलन का समर्थन करने वाले सदस्यों का एक अधिवेशन बुलाया और डा० राधाकृष्णन् ने, जो उस समय उप राष्ट्रपति थे तथा प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू ने उसमें भाग लिया। विरोधी पक्ष के भी अनेक सदस्यों ने अधिवेशन में शामिल होकर भूदान-आंदोलन के मूल सिद्धांतों के प्रति अपनी सहमति प्रकट की। इस सम्मेलन के बाद के पत्रों में भूदान-आंदोलन की पर्याप्त चर्चा हुई और विदेश के पत्रों का ध्यान भी उस ओर गया।

पंडितजी संपत्ति-कर लगाने के बारे में गंभीरता से विचार कर रहे थे, श्रीमन्जी भी चाहते थे कि यह प्रश्न जल्दी ही कांग्रेस संसदीय दल के सामने पेश कर दिया जाये। बाद में वह विधेयक के रूप में पेश होकर कानून बने। कांग्रेस के ही कुछ लोग इसके विरोध में थे। श्रीमन्जी ने सर्वोदय समूह के सदस्यों से इस विषय पर विचार-विमर्श किया और तय हुआ कि दल की बैठक में वे सब बोलें। पर्याप्त लोगों के इस प्रकार बोलने से दल की बैठक में विरोधी विचार वाले सदस्य चुप रह गये और निर्णय किया गया कि चालू सत्र में ही यह विचार एक विधेयक के रूप में पेश कर दिया जाये।

पंडित जवाहरलाल नेहरू श्रीमन्जी की काम करने की पद्धति से अब तक काफी प्रभावित हो चुके थे। बिना कटु हुए दृढ़ता के साथ श्रीमन्जी अपने विचारों को पेश करते थे। आगे-पीछे लोगों पर इसका बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। श्री लालबहादुर शास्त्री को पंडित जी ने जब रेलमंत्री बनाया तो कांग्रेस कार्य समिति में एक स्थान खाली हुआ। पंडितजी ने श्रीमन्जी से कार्यसमिति का सदस्य होने का आग्रह किया और कहा कि वे कांग्रेस के महामंत्री का कार्य भी करते रहें। यह निस्संदेह श्रीमन्जी के प्रति भरोसे का जबरदस्त इजहार था।

इसके बाद श्रीमन्जी की पंडितजी से मुलाकातें अपेक्षाकृत अधिक होनी शुरू हो गयीं। कांग्रेस के अनेक भीतरी मामलों पर उन्हें पंडितजी की इच्छा से जुटना पड़ा। कई प्रदेशों में कई बार मुख्यमंत्री बदलना जरूरी हो जाता था। इसे बिना पक्षपात के किस तरह किया जाय। इस की कोई पद्धति निकालने का यह काम श्रीमन्जी को सौंपा गया। श्रीमन्जी ने राजस्थान, बिहार और आंध्र के मुख्यमंत्रित्व के झगड़ों को बड़ी खूबी से निबटाया।

श्रीमन्जी ने अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में आने के बाद कई नई गतिविधियां भी प्रारम्भ कीं, जिनमें युवा और महिला विभाग का संगठन प्रमुख है। 'वीमन ऑन मार्च' और 'इकॉनामिक रिव्यू' नाम की दो पत्रिकाएं भी निकाली जाने लगीं। धीरे-धीरे के पत्रिकाएं बहुत लोकप्रिय हो गयीं। 'इकॉनामिक रिव्यू' तो ७००० तक छपने लगी। इसके अधिकांश ग्राहक विश्वविद्यालय, महाविद्यालय और विद्यार्थी थे।

रचनात्मक विभाग के नाम से एक विभाग प्रारंभ किया गया। उसके माध्यम से भूदान आंदोलन और विभिन्न रचनात्मक कार्यक्रमों में दिलचस्पी बढ़ायी जाने लगी। महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू और आचार्य विनोबा से संबद्ध साहित्य की यथासंभव संपूर्ण सूचियां तैयार की गयीं, जिनका बाद में देश और विदेश में बहुत अच्छा उपयोग हुआ।

तबतक श्रीमती इंदिरा गांधी राजनैतिक हलचलों में दिलचस्पी नहीं लेती थीं। श्रीमन्जी ने पंडितजी से सलाह लेकर उन्हें युवा और महिला विभागों में दिलचस्पी लेने को कहा। पहले तो वे इस बात पर राजी नहीं हुई। किन्तु बाद में उन्होंने इन विभागों का काम देखना स्वीकार कर लिया। वे बाद में कांग्रेस की कार्य समिति की सदस्या और १९५८ में कांग्रेस की अध्यक्षा चुन ली गयीं।

श्रीमन्जी ने कांग्रेस जनों में अनुशासन की भावना लाने के लिए भी जी-तोड़ मेहनत की। वे धीरे-धीरे छोटे-बड़े उपायों द्वारा दल को अधिक अच्छे ढंग से संगठित करने में सफल हुए।

श्रीमन्जी के सामने उन दिनों नित नई उलझनें पैदा होती थीं। किंतु वे पंडितजी की सद्भावना के सहारे उन सबका यथासंभव अच्छे-से-अच्छा हल पेश कर पाते थे। १९५५ में

मैसूर में श्री निजलिंगप्पा के मुख्यमंत्रित्व का प्रश्न, आंध्र में संजीव रेड्डी और गोपाल रेड्डी के पारस्परिक झगड़े, पांडिचेरी में श्री वोवर्ट के प्रति दल का असंतोष, केरल में साम्यवादी मंत्रिमण्डल की मनमानी, आसाम में श्री विष्णुराम मेहृदी, और श्री वी० वी० चालिहा की प्रतिस्पर्धा, पंजाब में सरदार प्रतापसिंह कैरों और श्री भीमसेन सच्चर के मतभेद, राजस्थान में श्री जयनारायण व्यास के मुख्यमंत्रित्व में मंत्रिमंडल गठन की दिक्कतें, दिल्ली प्रदेश में श्री ब्रह्मप्रकाश और श्रीमती सुशीला नैय्यर की अनवन, उत्तरप्रदेश में गोविंदवल्लभ पंत और श्री रफी अहमद किदवई के गुटों के वीच रस्साकशी, मद्रास में राजाजी और 'श्री कामराज़ के मसले, आदि कितने ही प्रश्न श्रीमन्जी ने खूवी से निवटाये।

१९५३ के कांग्रेस के हैदरावाद अधिवेशन से लगाकर १९५५ के आवड़ी अधिवेशन तक श्रीमन्जी ने भूदान आंदोलन के प्रति कांग्रेस सरकार को अधिकाधिक अभिमुख किया। १९५५ की मई में विनोवा ने वरहामपुर (उड़ीसा) की अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन के समय उपस्थित रहना स्वीकार कर लिया। वे विशेष निमंत्रण पर कांग्रेस की कार्यकारिणी की बैठक में भी शामिल हुए। सभी कांग्रेसजनों ने विनोवा की दृष्टि के अनुसार भूमि संवंधी मूल-सुधारों पर अमल करने पर सहमति प्रकट की। रचनात्मक कार्यक्रमों के लिए कांग्रेस कार्य समिति ने एक विशेष उपसमिति भी वनाई। श्रीमन्जी इसके संयोजक नियुक्त हुए। पंडितजी ने इसमें विशेष दिलचस्पी के साथ श्री गुलजारी लाल नन्दा, खण्डूभाई देसाई, डा० कैलाशनाथ काटजू आदि के साथ काकासाहेव कालेलकर, आर्यनायकम् जी, और गोकुल भाई भट्ट को शामिल होने पर राजी किया। अखिल भारतीय कांग्रेस समिति में इन लोगों के आने से गांधी विचार को वड़ा वल मिला। रचनात्मक विभाग में एक किसान विभाग भी शामिल किया गया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने प्रांतीय समितियों से भी ऐसे विभाग संगठित करने को कहा। हर प्रांत में भूमि-सुधारों को तेजी से लागू करने की कोशिश की गई। कांग्रेस के लोग इस दिशा में किस तरह वढ़ सकते हैं, इसे समझाने की दृष्टि से 'लैंड-रिफार्म्स इन इंडिया' किताव भी प्रकाशित की गयी।

महासमिति में अन्य काम

श्रीमन्जी की अध्यक्षता में योजना-आयोग ने नशावन्दी लागू करने के विचार से एक समिति का गठन किया। १९५५ में इस समिति के द्वारा नशावन्दी के सिलसिले में जांच करके एक रिपोर्ट प्रकाशित की गई और उसकी सिफारिशें पंचवर्षीय योजना में शामिल की गईं। इस समिति ने इतना अच्छा काम किया कि मद्रास में राजाजी ने भी, आमंत्रित किये जाने पर इसके सामने अपनी गवाही दी। जव भारतीय सेना के तीनों अंगों के प्रधान नशावन्दी के पक्ष में वोले और उन्होंने कहा कि देशव्यापी मद्य-निषेध लागू होने पर हम उसमें पूरा सहयोग देंगे तो समिति के सभी सदस्य रोमांचित हो उठे।

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने श्रीमन्जी के सुझाव पर ग्राम-पंचायत समिति की स्थापना की और पंचायतों के वारे में एक परिपूर्ण-सी किताब भी प्रकाशित की गई। फिर एक उपसमिति बनाई गई और श्रीमन्जी को उसका मंत्री नियुक्त किया गया। अखिल भारतीय योजना समिति और योजना-आयोग की दो या तीन बैठकें श्रीमन्जी ने बुलवाईं। उनसे कांग्रेस कार्यकारिणी समिति को विचार-विनिमय में बड़ी मदद मिली।

देश में समाजवादी पद्धति को रूढ़ करने के विषय में श्रीमन्‌जी ने कई बार संविधान के कुछ अंशों में सुझाव की वात उठाई तथा श्रीमन्‌जी को संयोजक वनाकर पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक उपसमिति की स्थापना की। इस समिति ने मई १९५४ में कार्य समिति को अपनी रिपोर्ट दी। अनेक महत्त्वपूर्ण सुझावों में से एक यह था कि आर्टिकल २२६ में संशोधन किया जाय। उसमें उच्च न्यायालयों को "अन्य अनेक वातों पर" स्थगन आदेश निकालने के जो अधिकार दिये गए हैं, उनमें थोड़ा परिवर्तन किया जाय; क्योंकि उनके कारण कई भ्रष्ट और अकुशल अफसरों के खिलाफ कदम उठाना मुश्किल हो जाता था। फिर भी नेताओं ने, संसद में इस संशोधन को पेश करने का हियाव नहीं दिखाया।

श्रीमन्‌जी के सुझाव पर पं० नेहरू ने कुछ स्कूल और कालेजों में मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने के स्पष्ट मसविदे तैयार किये। अखिल भारतीय सार्वजनिक सेवाओं की परीक्षाओं में हिन्दी और राजकीय भाषाओं को दाखिल करने के बारे में भी कदम उठाए गए। हरिजनों और आदिवासियों की आर्थिक तथा सामाजिक दशा को सुधारने के वारे में भी प्रांतीय कांग्रेस समितियों को श्रीमन्‌जी लिखते ही रहते थे। श्रीमन्‌जी यह भी चाहते थे कि प्रांतीय समितियां शिक्षक की दशा को समझकर उसे सुधारने के उपाय सुझायें, क्योंकि आखिरकार वे ही युवा-पीढ़ी को ढालने के लिए जिम्मेदार हैं।

श्रीमन्‌जी चाहते थे कि कांग्रेस की महिला संसद-सदस्याएं और मंत्रियों की पत्नियां स्त्री-समाज की प्रगति में अधिक दिलचस्पी लें। वे इसकी कोशिश करते रहते थे। एक बार उन्होंने सवको निमंत्रण-पत्र भेजकर विचार-विमर्श के लिए बुलाया। जब सभा चल रही थी तो सरदार स्वर्णसिंह और लालवहादुर शास्त्री भी वहां पहुंच गए। जव उन्होंने देखा कि वहां केवल महिलाएं-ही-महिलाएं हैं तो वे समझ गए कि निमंत्रण-पत्र उनके लिए नहीं, उनकी पत्नियों के लिए था। वे चुपचाप उठकर जाने लगे।। श्रीमन्‌जी ने मुस्कराते हुए उनसे अनुरोध किया कि वे वैठें और मार्गदर्शन करें।

कांग्रेस और अखिल भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस के संबंधों को नियमित बनाने के लिए श्रीमन्‌जी ने काफी प्रयत्न किया। मतभेद के विषयों को हल करने के लिए संगठन तैयार किये गए। श्री ढेवरभाई और श्रीमन्‌जी ने मिलकर गांवों की प्रगति के लिए योजनाएं तैयार कीं। १९५५ के सितम्वर में दूसरी पंचवर्षीय योजना के मसविदे पर इस दृष्टि से विचार करने के लिए भी एक अनौपचारिक वैठक वुलाई गई। श्री गुलजारीलाल नंदा आदि ने योजना के विभिन्न पहलुओं पर विचारपूर्ण लेख प्रस्तुत किये और फिर अगस्त १९५७ में इसी विचार से अखिल भारतीय कांग्रेस की वैठक वुलाई गई। इस बैठक में दिये गए सुझावों को योजना-कमीशन ने अपने अंतिम विवरण में शामिल किया और उसे सरकार और संसद के सामने पेश किया गया। श्रीमन्‌जी ने विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस दल को मजवूत करने के प्रयत्न भी किये। पंजाव के २६ अकाली विधायक उनके प्रयत्नों से कांग्रेस में आए। श्रीमन्‌जी ने इस वात पर भी जोर दिया कि अकाली दल को राजनैतिक हलचलों के वजाय शुद्ध, सामाजिक और सांस्कृतिक संगठन बन जाना चाहिए। मास्टर तारासिंह इस सुझाव पर बड़े नाराज हुए और उन्होंने पं० नेहरू से इस वात की शिकायत भी की। श्रीमन्‌जी ने कांग्रेस की कानूनी परिस्थिति को समझाया और तदनुसार

अकाली दल के संविधान में सुधार किया गया। श्रीमन्‌जी के ही आग्रह से सुचेता कृपालानी और राजमाता ग्वालियर कांग्रेस में शामिल हुईं। इससे दल की शक्ति बढ़ी।

एक दिलचस्प घटना

छुआछूत के मामले में श्रीमन्‌जी इतने जागृत थे, इसका एक उदाहरण यहां देना असंगत नहीं होगा। १६५६ में पं० मदनमोहन मालवीय के पुत्र पं० गोविंद मालवीय श्रीमन्‌जी के निवास पर बोरिया-बिस्तरा समेत पहुंच गए। उन्होंने जिद की कि जब तक कांग्रेस उन्हें राज्यसभा का सदस्य घोषित नहीं करती वे उनके घर में ही डटे रहकर सत्याग्रह करेंगे। श्रीमन्‌जी ने नम्रतापूर्वक कहा, "लोग आपके बारे में यह कहते हैं कि आप छुआछूत मानते हैं और हरिजनों के साथ बैठकर खाते-पीते नहीं हैं। यह कांग्रेस के उद्देश्यों के विरुद्ध जाता है।" श्रीगोविंद मालवीय ने कहा कि मैं ऐसा किसी भेद-भाव के कारण नहीं करता, बल्कि व्यक्तिगत स्वच्छता के अंतर्गत करता हूं। श्रीमन्‌जी ने यह बात बाबू जगजीवनराम को जाकर बताई, जो उन दिनों कांग्रेस की अनुशासन समिति के अध्यक्ष थे। उन्होंने तत्काल कहा, "मालवीयजी को आज शाम मेरे साथ भोजन करने का निमंत्रण दे दीजिए। आप भी उनके साथ आइए।" जब श्रीमन्‌जी ने श्री गोविन्द मालवीय को बाबू जगजीवनराम की ओर से भोजन करने का आमंत्रण दिया तो उन्होंने चकित होकर श्रीमन्‌जी की ओर देखा और चुप रह गए। मालवीयजी कब वहां से अपना सामान उठाकर चले गये, श्रीमन्‌जी जान तक नहीं पाये।

प्रांतों का पुनर्गठन

१६५६ में प्रांतों के पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट का प्रकाशन होते ही चारों तरफ से समस्याओं और सुझावों का तांता बंध गया। श्री ढेबरभाई तथा श्रीमन्‌जी पं० पन्त के घर जब इस पर विचार-विनिमय कर रहे थे, तभी सूचना मिली कि प्रांतों के पुनर्गठन की रिपोर्ट पर पंडितजी आकाशवाणी से बोल रहे हैं। रेडियो लगाया। वे कह रहे थे, "आयोग की रिपोर्ट बहुत सोच-समझकर पेश की गयी है। आमतौर पर मैं इसका समर्थन करता हूं, मगर कुछ मामले ऐसे हैं, जो मेरी भी समझ में नहीं आए हैं—जैसे मध्यप्रदेश की लम्बाई-चौड़ाई।" पंडितजी के इस भाषण का असर यह हुआ कि चारों तरफ से रिपोर्ट पर विरोधी प्रांतीय विचार आने लगे। महाराष्ट्र ने कहा कि इस प्रांत को द्विभाषी बनाये रखकर अन्याय किया गया है। कुछ लोगों ने विदर्भ की मांग की, तो मास्टर तारासिंह ने पंजाबी सूबे की आवाज लगायी। महाराष्ट्र और मैसूर की सीमाओं का झगड़ा शुरू हो गया। पंजाब कार्यसमिति को निश्चित सिफारिशें पेश करने के लिए एक उप-समिति संगठित करनी पड़ी। इस उपसमिति में कांग्रेस के अध्यक्ष ढेबरभाई के अलावा नेहरूजी, पं० पन्त और कांग्रेस के मंत्री थे। काम का सारा बोझ श्रीमन्‌जी और ढेबरभाई पर पड़ा। हफ्तों वे दोनों सुबह से लेकर रात तक लोगों की बहस सुनते और टिप्पणियां लेते। अगर नेहरूजी ने अपना भाषण लिखकर दिया होता और कहा होता कि प्रांतीय पुनर्गठन समिति की रिपोर्ट एक निर्णय है तो यह परेशानी न उठानी पड़ती।

बम्बई द्विभाषीय प्रांत बना रहे, इसलिए नेहरूजी ने चाहा कि बिहार और बंगाल को भी मिला दिया जाय। उन्होंने बंगाल के तत्कालीन मुख्यमंत्री विधानचन्द्र राय को इसके लिए राजी

भी कर लिया। किंतु वे इस पर टिके नहीं रह सके। आखिरकार १९६० में वंबई और गुजरात ऐसे दो अलग-अलग प्रांत बनाने पड़े। पंजाबी सूबे के मामले को सरदार हुकुमसिंह की सहायता से एक हद तक हल किया गया। तैलंगाना का सवाल पांच वर्ष के लिए टालना तय किया गया। मध्यप्रदेश ने अलबत्ता इस मामले में बहुत समझदारी से काम लिया। मध्य-भारत, महाकौशल, छत्तीसगढ़ और विन्ध्य-प्रदेश के नेताओं ने नये मध्यप्रदेश की राजधानी के रूप में भोपाल को स्वीकार कर लिया। अन्य हिस्सों को संतोष देने वाले कुछ निर्णय भी लिये गये। राज्यों के पुनर्गठन का मामला बहुत तकलीफदेह सिद्ध हुआ।

इस अवधि में श्रीमन्जी की माताजी का देहावसान हो गया। उन दिनों मदालसाबहन की जसीडीह में प्राकृतिक चिकित्सा चल रही थी। श्रीमन्जी की माताजी, बहू की देखभाल कर रही थीं। एकाएक खुद उन्हीं की तबीयत बिगड़ गयी। श्रीमन्जी समाचार पाते ही जसीडीह के लिए रवाना हुए। किंतु माता राधादेवी इसी बीच में चल बसीं। वे कृष्ण-भक्त थीं। उनका देह कृष्णाष्टमी के दिन छूटा। इसे एक संयोग ही न मानकर, साधना का फल भी माना जा सकता है। उस समय उनकी उम्र ७५ वर्ष की हो चुकी थी।

योजना आयोग के सदस्य

१३ जुलाई, १९५८ को श्रीमन्जी को कांग्रेस के महामंत्री पद से छुटकारा मिल गया १५ जुलाई, १९५८ से वे योजना-आयोग के सदस्य बन गए। महामंत्रित्व काल के विषय में प्रस्ताव करते हुए कांग्रेस कार्यसमिति ने कहा, "कांग्रेस के महामंत्री श्री श्रीमन्नारायण अपना यह पद छोड़कर योजना-आयोग के सदस्य का काम संभालने जा रहे हैं। उन्होंने १९५२ से इस जिम्मेदारी को कुशलता के साथ निभाया है। कार्यसमिति उनकी उन सेवाओं के लिए, जो उन्होंने संगठन को अर्पित कीं, कृतज्ञता का अनुभव करती है और 'इकॉनॉमिक रिव्यू' जैसे उत्तम पत्र को निकालते रहने के लिए उन्हें धन्यवाद देती है।"

योजना-आयोग में चले जाने के बाद भी अनेक मुख्यमंत्री आदि उन्हें कांग्रेस का महामंत्री मानकर फ़ोन करते रहे। जब उन्हें मालूम हुआ कि श्रीमन्जी अब महामंत्री नहीं हैं, तो उन्होंने एक प्रकार की हानि का अनुभव किया।

योजना-आयोग की सदस्यता संभालते ही श्रीमन्जी को पं० जवाहरलाल ने बुलवाया और आयोग के विषय में कुछ तफसील की बातें समझाईं। उन्होंने आयोग के उपाध्यक्ष श्रीकृष्णमाचारी की तारीफ की और अन्य सदस्यों के बारे में भी जानकारी दी। चूंकि आयोग से श्री के० सी० नियोगी ने इस्तीफा दे दिया था और वे उद्योग और परिवहन विभाग के सदस्य थे। इसलिए श्रीमन्जी की नियुक्ति उन्हीं के स्थान पर मानी गयी थी। श्रीकृष्णमाचारी ने उन्हें कृषि और समाज-कल्याण आदि का काम देखने की सलाह दी।

श्रीमन्जी का श्री टी० टी० कृष्णमाचारी से पहले से काफी सम्बन्ध था, इसलिए श्रीमन्जी को उनके साथ काम करने में कोई असुविधा नहीं हुई। तब तीसरी पंचवर्षीय योजना का मसविदा तैयार हो रहा था। योजना-आयोग को राष्ट्रीय जीवन में अभूतपूर्व स्थान प्राप्त हो चुका था। पंडितजी की अध्यक्षता और उसमें दिलचस्पी के कारण उसका स्थान अनौपचारिक रूप से मंत्रिमंडल जैसा ही बन गया था। सभी प्रांतों के मुख्यमंत्री आयोग की बैठकों में आते थे और उसके

सदस्यों से पूरी विनम्रता के साथ वातचीत करते थे। केंद्रीय वित्तमंत्री आयोग के पदेन सदस्य थे और पं० पन्त तथा लालवहादुर शास्त्री उसकी वैठकों में विशेष रूप से आमंत्रित किए जाते थे।

प्रारंभ में योजना-आयोग का दफ्तर राष्ट्रपति-भवन में था। वाद में उसका कार्यालय उद्योग-भवन में चला गया और छः महीनों के भीतर ही योजना-भवन का निर्माण हो गया।

आयोग का काम ठीक दस वजे शुरू हो जाता था। हर सदस्य कम-से-कम आधा घंटा उपाध्यक्ष से मिलकर वातचीत करता था। कहने को इसे कृष्णमाचारी 'गप-शप' कहते थे, किंतु इसमें वहुत उपयोगी वातचीत होती थी। श्रीकृष्णमाचारी कांग्रेस कार्यसमिति की विशेष वैठकों में भी शामिल होते थे, खासकर जव तीसरी पंचवर्षीय योजना पर वहस होने वाली हो। चूंकि योजना-आयोग के सदस्य को किसी राजनैतिक दल से संवंध नहीं रखना चाहिए। इसलिए श्रीमन्जी को कांग्रेस की सदस्यता से त्याग-पत्र देना पड़ा। योजना-आयोग का सदस्य होते ही श्रीमन्जी तीसरी योजना के प्रारूप को शक्ल देने के ध्यान से उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के लिए ३० मई से ५ जून १६६४ तक उटकमंड में होने वाली वैठक की तैयारी में लग गये।

योजना-आयोग के सिलसिले में श्रीमन्जी ने रात-दिन काम करके ३ अगस्त, १६६१ को तीसरी पंचवर्षीय योजना की अंतिम रिपोर्ट पेश की। पं० जवाहरलाल नेहरू ने पंचवर्षीय योजनाओं को "नवभारत के निर्माण में जवर्दस्त कदम" माना था। वे मानते थे, "हमारी योजनाओं का पहला और अंतिम उद्देश्य मनुष्य के व्यक्तित्व को विकसित करना है; क्योंकि आखिरकार हर भौतिक उन्नति का काम केवल रहन-सहन के स्तर को उठाना नहीं है, वल्कि आदमी के सोचने-समझने की शक्ति को बढ़ाकर उसे प्रेम से आपस में रहना सिखाना है। इसके लिए कठिन परिश्रम और दूर-दृष्टि से काम लेना होगा।" तीसरी योजना में गांधीवादी दृष्टिकोण को वरावर सामने रखा गया था। जिसमें साधन और साध्य की एकता को निगाह में रखकर चलने की वात भी थी। समाज के सवसे कमजोर तवके को राहत देकर उसे ऊपर उठाना, खासकर इस वड़े देश में, वहुत कठिन चीज है; इसलिए ऐसे उपायों पर जोर दिया गया था, जो दूर-दराज गांवों में भी काम में लाये जा सकते हों। सिंचाई की छोटी योजनाओं, कम्पोस्ट खाद, प्राकृतिक चिकित्सा का सामान्य ज्ञान, गो-पालन, भू-दान और श्रमदान के आधार पर जमीनों का वंटवारा और सहकारी खेती की जगह खेती में सहकारी उपायों की तरह कल्पित किये गये थे। खादी और ग्रामोद्योगों को भी इसमें महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। नवम्बर १६५३ में श्रीमन्जी ने योजना-आयोग की ओर से अखिल भारतीय ग्रामदान परिषद आयोजित की। इसकी अध्यक्षता स्वयं श्रीमन्जी ने की थी और परिषद में सर्वोदय के वड़े-से-वड़े नेता शामिल हुए थे। जयप्रकाशजी भी उनमें से एक थे। सम्मेलन की समाप्ति के वाद प्रांतीय और केंद्रीय शासन तथा रचनात्मक कार्यकर्ताओं की मदद के विचार से 'हैंड-वुक ऑन ग्रामदान' नामक एक पुस्तिका भी श्रीमन्जी ने प्रकाशित की। इसी प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में भी वुनियादी तालीम पर जोर दिया गया। परिवार-नियोजन के महत्व को देखते हुए लोगों में तत्संवंधी ज्ञान के प्रसार की वात भी की गई। किंतु केंद्र के मंत्रालयों और प्रांतों में काम का पारस्परिक तालमेल न होने के कारण योजना पर ठीक अमल नहीं हो पाया।

मार्च, १६६२ में श्रीमन्जी अफ्रीका-एशिया ग्राम सुधार सम्मेलन में भाग लेने अरव-गणराज्य गए। वहां एशिया और अफ्रीका के लगभग २० देशों के प्रतिनिधि आए हुए थे। वहां

श्रीमन्जी ने भारत की पंचवर्षीय योजनाओं के बारे में लोगों को जानकारी दी और अरब-गण-राज्य की सिंचाई योजनाओं और अन्य बड़े-बड़े उद्योग कारखानों को देखा। प्रेसिडेंट नासर के प्रयत्नों से तब तक करीब ७५ हजार एकड़ मरुभूमि खेती के योग्य बनाकर, वहां पर लोग बसाये जा चुके थे। श्रीमन्जी ने उन्हें भारत के परिवार-नियोजन के प्रयत्नों के बारे में बताया तो उन्होंने कहा कि मैं हजारों एकड़ जमीन हर साल खेती के लायक बनाता हूं, मगर आबादी इस गति से बढ़ रही है कि अकल काम नहीं करती। वहां परिवार-नियोजन के विषय में धार्मिक कट्टरता ऐसी रूढ़ थी कि प्रेसिडेंट नासिर की भी, जो एक डिक्टेटर ही थे, उस दिशा में कोई कदम उठाने की हिम्मत न पड़ती थी।

इस सम्मेलन से लौटकर श्रीमन्जी ने खेती और सिंचाई से संबंधित अरब देशों के अनुभवों के आधार पर यहां भी कुछ प्रयत्न किये। इसी बीच योजना-आयोग के उपाध्यक्ष के रूप में श्री अशोक मेहता आये। श्री कृष्णमाचारी के रिटायर होने के बाद आरजी तौर पर उनकी जगह श्रीगुलजारीलाल नंदा काम कर रहे थे। श्री अशोक मेहता के आने के बाद आयोग का काम बहुत ढीला हो गया। यों १९६३ के अंत में चौथी योजना का काम शुरू होकर उसका मसविदा अक्तूबर १९६४ में प्रकाशित हो गया था।

श्रीमन्जी और योजना-आयोग के तमाम परिश्रम के बावजूद योजना के उद्देश्य न तब पूरे हो पाए, न अब हो पा रहे हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू देश की प्रगति के लिए योजनाओं को बहुत महत्वपूर्ण मानते थे। किंतु एक तो प्रजातंत्रीय देशों में इस तरह की योजनाओं को कभी लागू नहीं किया गया था। दूसरे, विभिन्न मंत्रालयों के बीच में परस्पर ताल-मेल नहीं था। नौकरशाही अपने ढंग से काम करती थी। इसलिए उद्देश्य ज्यादातर कागज पर रह जाते थे। इनसे योजना बनाने वालों की इच्छा के अनुरूप गांवों को कभी राहत नहीं मिल पायी। सर-कारी और गैर-सरकारी उद्योग-धंधे देश के 'आखिरी व्यक्ति' को निगाह में रखकर कभी नहीं चले। राष्ट्रीय-कृत उद्योगों में एक प्रकार की लापरवाही और निजी उद्योग-धंधों में अधिक-से-अधिक लाभ उठाने की प्रवृत्ति समय के साथ बढ़ती चली गई।

पंडितजी के जाने के बाद श्री लालबहादुर शास्त्री प्रधानमंत्री चुने गये। प्रधानमंत्री होने के नाते वे योजना-आयोग के अध्यक्ष भी हुए। उन्होंने चौथी योजना के मसविदे में कुछ परिवर्तन सुझाये, ताकि योजना आम आदमी के अधिक योग्य बन सके। उन्होंने आयोग के हर सदस्य को अलग-अलग अपने निवास पर बुला कर बातचीत भी की। श्रीमन्जी भी उनसे मिले और उन्होंने प्रधानमंत्री को कृषि, समाज-कल्याण, भूमि-सुधार और सहकारिता के विषय में अपने विचारों से अवगत किया। उस समय श्री लालबहादुर शास्त्री ने आचार्य विनोबा भावे से मिलने की अपनी इच्छा प्रकट की और चाहा कि श्रीमन्जी उस समय साथ रहें। तब विनोबाजी पदयात्रा पर थे। १६ जून को शास्त्रीजी नागपुर पहुंचे और वहां से वर्धा के पास उनसे जामनी नामक एक गांव में, जहां उस दिन विनोबाजी रुके थे, मिलने पहुंचे। शास्त्रीजी ने विभिन्न विषयों पर विनोबाजी से बातचीत की। चौथी पंचवर्षीय योजना तो उनमें शामिल थी ही।

नेपाल के राजदूत

तीन महीने के बाद श्रीमन्जी के पास शास्त्रीजी की ओर से सूचना आई कि आकर

मिलें। श्रीमन्जी समझे कि चौथी योजना के वारे में ही कोई वात होगी; किन्तु शास्त्रीजी ने उनसे कहा कि हमारी उत्तरी सीमाओं पर चीनी आक्रमण के वाद सुरक्षा की दृष्टि से नेपाल का महत्व बहुत वढ़ गया है। उस राज्य से हमारे सम्वन्ध वहुत अच्छे रहने चाहिए, इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम वहां राजदूत के रूप में जाओ। श्रीमन्जी इस प्रस्ताव के लिए तैयार नहीं थे। उन्हें लगा कि न वे राजनीति समझते हैं और न उन्हें नेपाल के वारे में कुछ मालूम है। शास्त्रीजी ने उनका यह तर्क अमान्य कर दिया और कहा कि तुम वहां जाने पर सब कुछ समझ लोगे और सव कुछ ठीक करोगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

श्रीमन्जी ने तव योजना-आयोग के काम पूरे करने और वर्धा में जाकर विनोवाजी की सलाह लेने के ख्याल से थोड़ा समय मांगा। शास्त्रीजी एकदम तैयार हो गये और उन्होंने विनोवा जी के नाम इस आशय का एक पत्र लिखा कि पिछले कुछ दिनों से नेपाल में हमारा कोई राजदूत नहीं है। वहुत सोच-समझकर हम श्रीमन्जी को वहां भेजना चाहते हैं। मगर वे इसे स्वीकार करने के पहले आपकी सलाह और आशीर्वाद जरूरी मानते हैं। उसी रात श्रीमन्जी वर्धा के लिए रवाना हो गये। वे विनोवाजी के ७९वें जन्म दिन पर वहां पहुंचे। श्रीमन्जी ने उन्हें पत्र दिया जिसे उन्होंने बिना पढ़े तकिये के नीचे रख लिया और कहा, "इसे पढ़कर वातचीत वाद में करेंगे।" यह इसलिए कि जन्म-दिन के सिलसिले में उस समय काफी भीड़-भाड़ थी।

वाद में विनोवाजी ने श्रीमन्जी से कहा कि प्रस्ताव तो अच्छा जान पड़ता है। श्रीमन्जी ने वताया कि उन्होंने योजना-आयोग की ओर से वर्धा जिले में ग्रामदान से सम्वन्धित कुछ कार्य करने का विचार किया था। विनोवाजी ने कहा, "सो ठीक है, किन्तु तुम प्रधानमंत्री की वात स्वीकार कर लो। उसके वाद विनोवाजी ने प्रधानमंत्री के नाम एक पत्र भी लिखा और सूचित किया कि प्रस्ताव वहुत अच्छा है और मैंने श्रीमन्जी को उसे स्वीकार करने के लिए कह दिया है।

दो महीने आयोग के तथा दूसरे काम निपटाने में लग गये। श्रीमन्जी को दिल्ली से नेपाल जाने के उपलक्ष्य में जगह-जगह विदाई-समारोहों में जाना पड़ा। एक समारोह में प्रधानमंत्री शास्त्रीजी ने कहा, "कोई देश छोटा या वड़ा नहीं होता। सव स्वतन्त्र और खुदमुख्त्यार हैं। हमें सवके साथ बरावरी का व्यवहार करना चाहिए। मुझे इस वात की खुशी है कि श्रीमन्जी ने और मदालसावहन ने नेपाल जाना स्वीकार कर लिया है। उन्हें वहां सामान्य राज-नेताओं के ढंग से व्यवहार करने की जरूरत नहीं है। वे जिस तरह के सरल और सीधे व्यवहार के आदी हैं, वहां भी उसी तरह काम करें। मुझे पूरी उम्मीद है कि इसका फल अच्छा होगा।"

२० नवम्बर को श्रीमन्जी मदालसावहन के साथ काठमांडू चले गये। भारत कई वर्षों से नेपाल को आर्थिक सहायता पहुंचाने के रूप में वहां कई योजनाएं चला रहा था, आश्चर्य की वात श्रीमन्जी को यह लगी कि योजना-आयोग को इनके वारे में कोई जानकारी ही नहीं थी। विदेश-मंत्रालय, योजना-आयोग के सलाह-मशवरे लिए विना सारा काम चलाता रहता था।

पांच दिन वाद श्रीमन्जी ने अपने नये पद की शपथ ली। उन्होंने अपने भाषण की प्रति महाराजाधिराज महेन्द्र को और महाराजाधिराज ने अपने भाषण की प्रति श्रीमन्जी को सौंप दी। श्रीमन्जी का भाषण हिन्दी में और महाराजा का भाषण नेपाली में था।

श्रीमन्जी ने थोड़े ही दिनों में नेपाल के भूगोल, इतिहास और संस्कृति को अच्छी तरह से समझ लिया। चीन और रूस भी नेपाल को आर्थिक मदद देकर अपना प्रभाव जमाने में लगे

जनक स्व० धर्मनारायण

स्व· राधादेवी : जननी
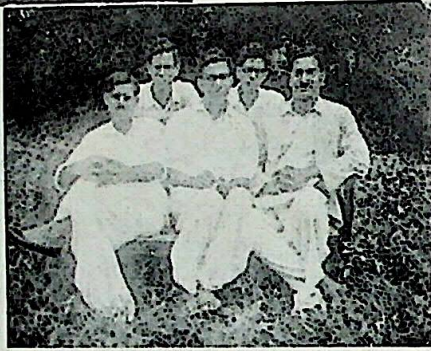
पांचों सहोदर

संस्कार-निष्ठ परिवार
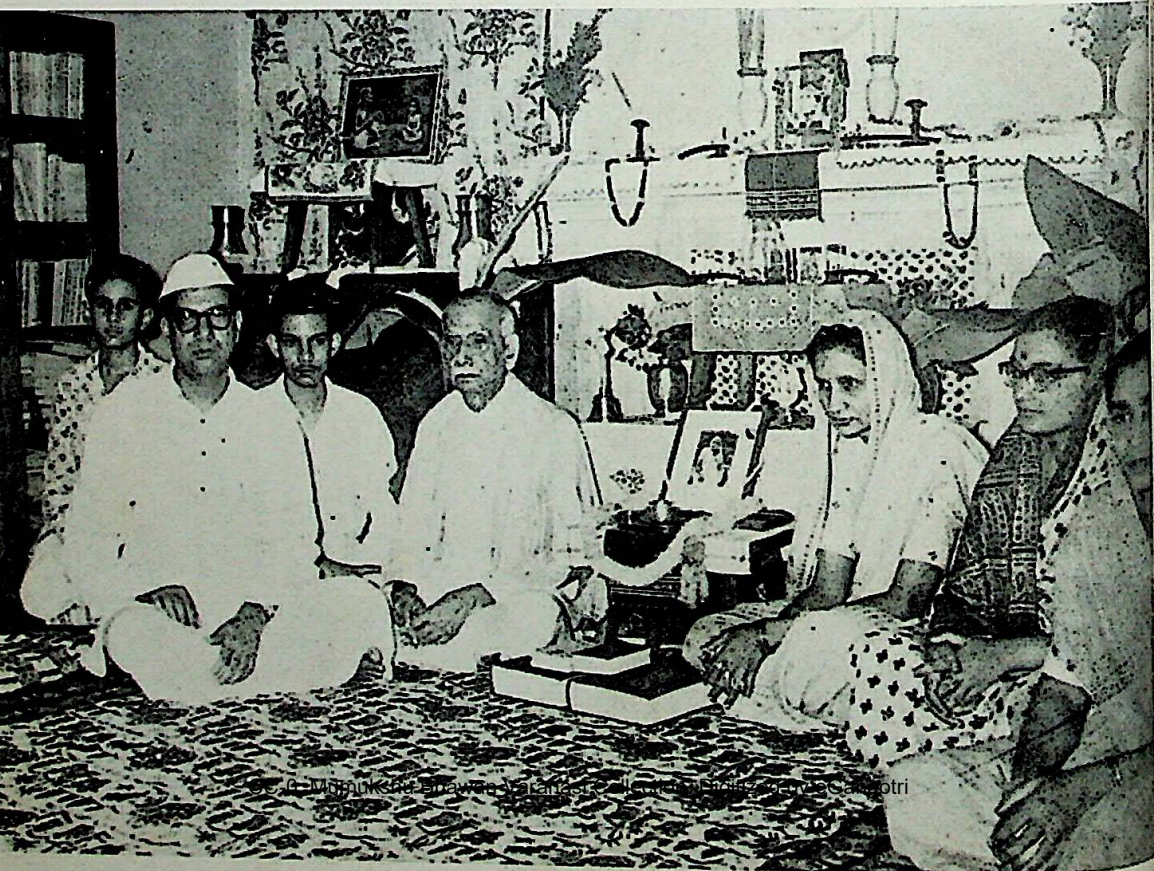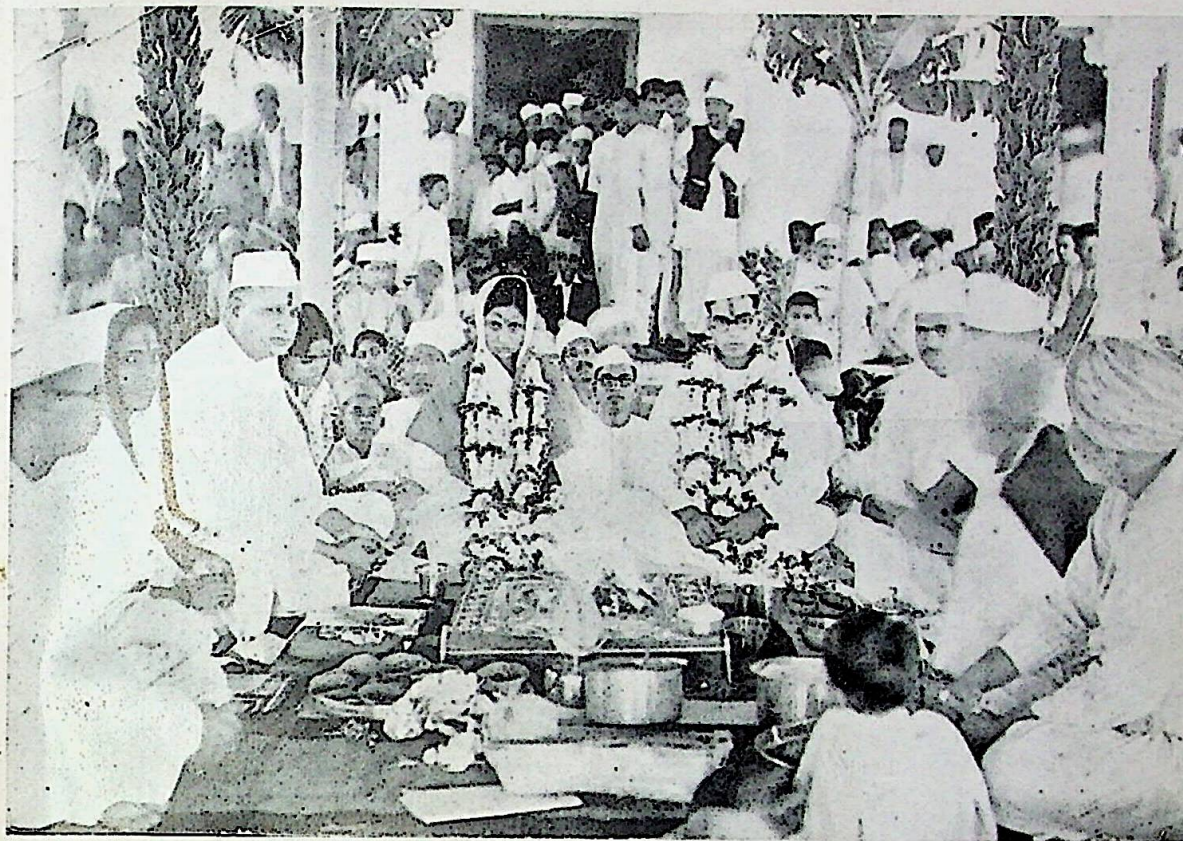
अटूट बंधन
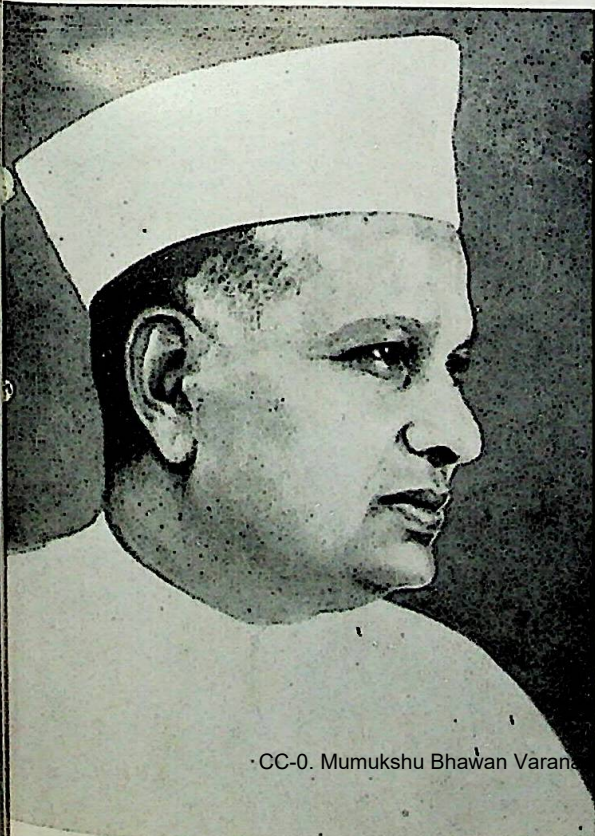
सेवा-परायण दम्पति

भरा-पूरा घर
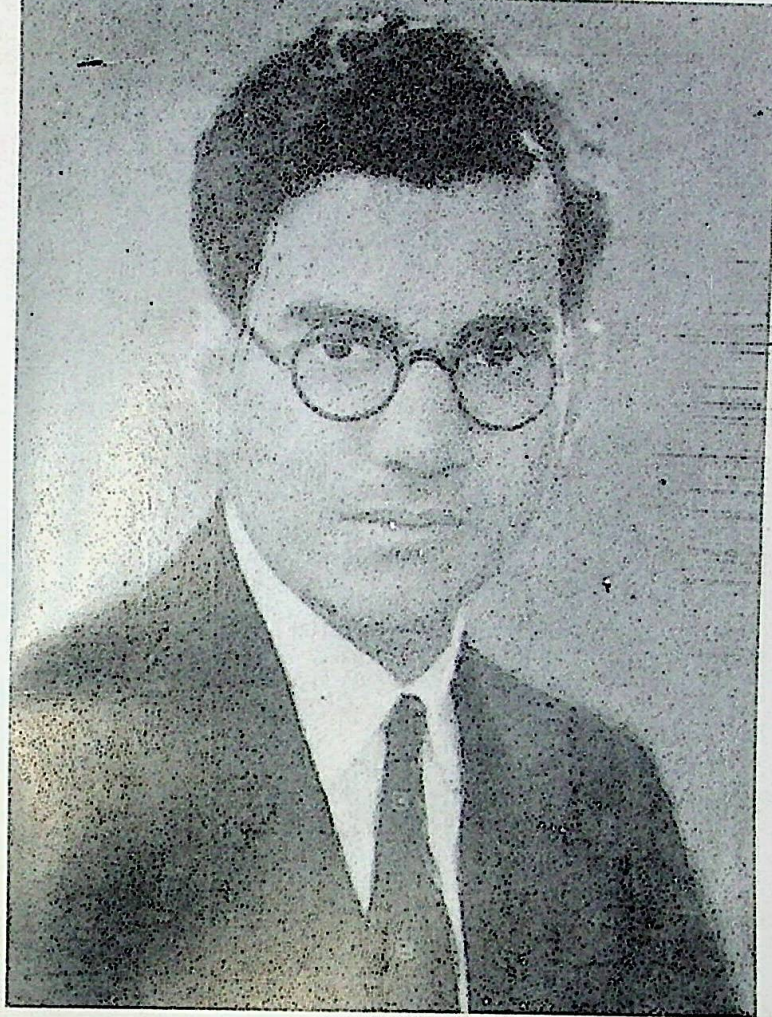
छात्र

शिक्षाविद् डा० अमरनाथ झ
के साथ प्रयाग
विश्वविद्यालय
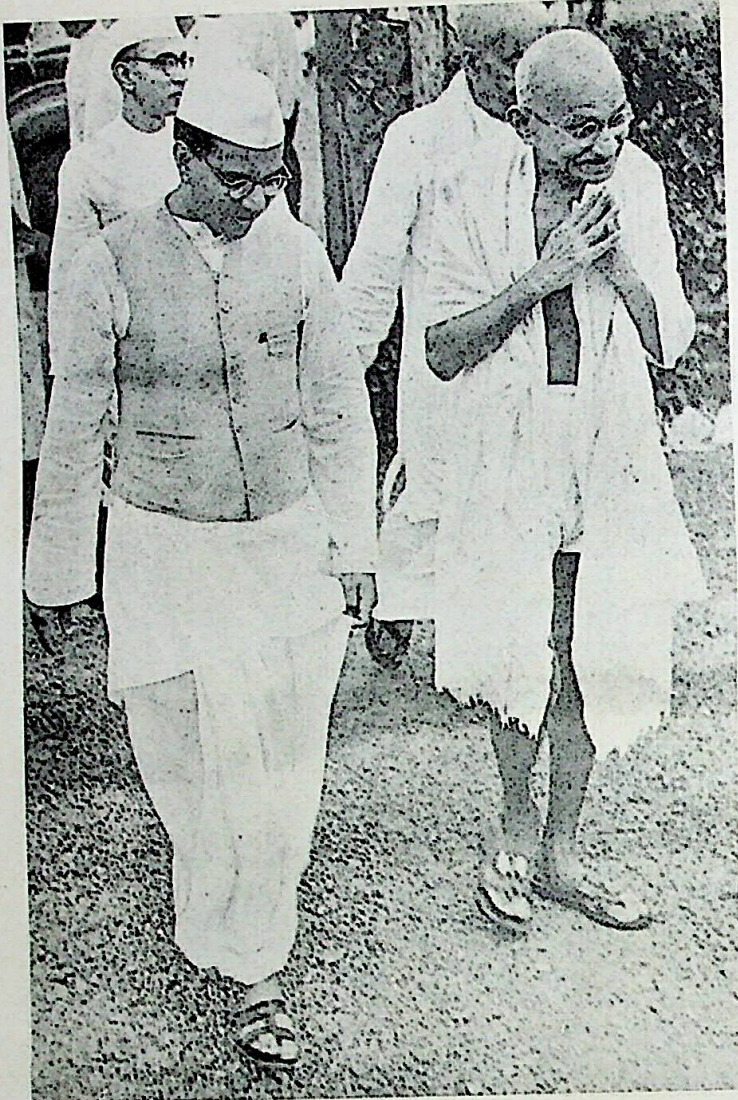
जिनके पद-चिह्नों पर जीवन-भर चले

कुलगुरु
विनोबाजी
के साथ
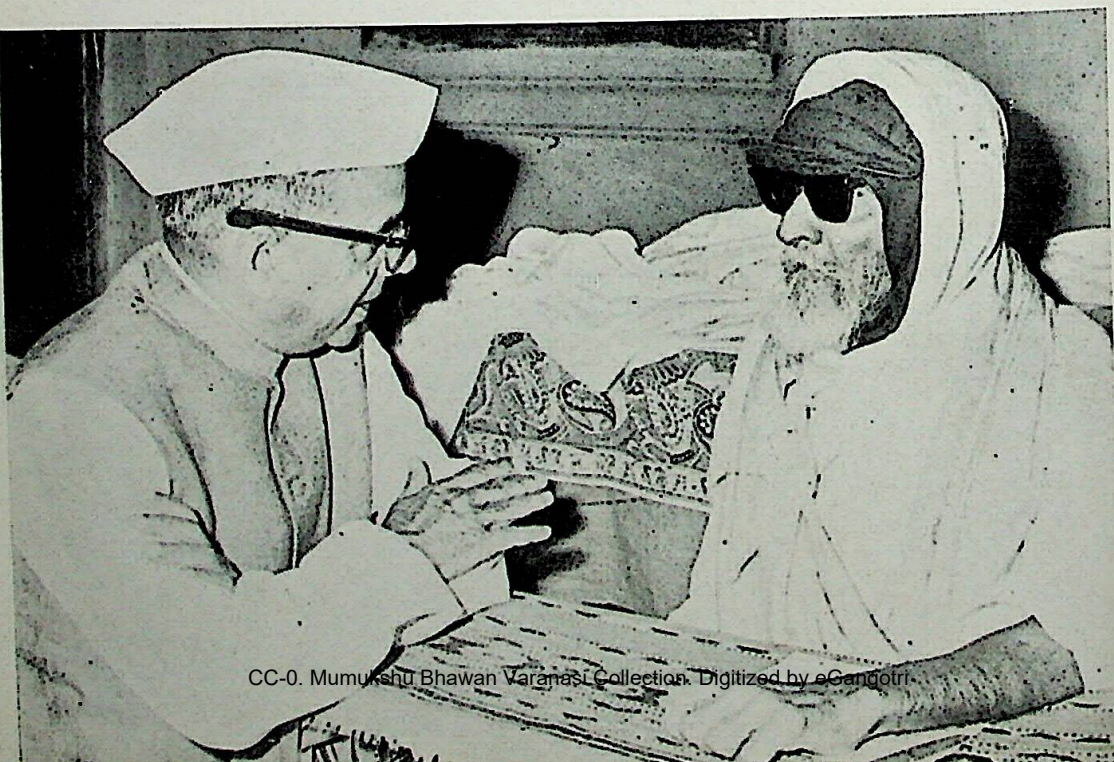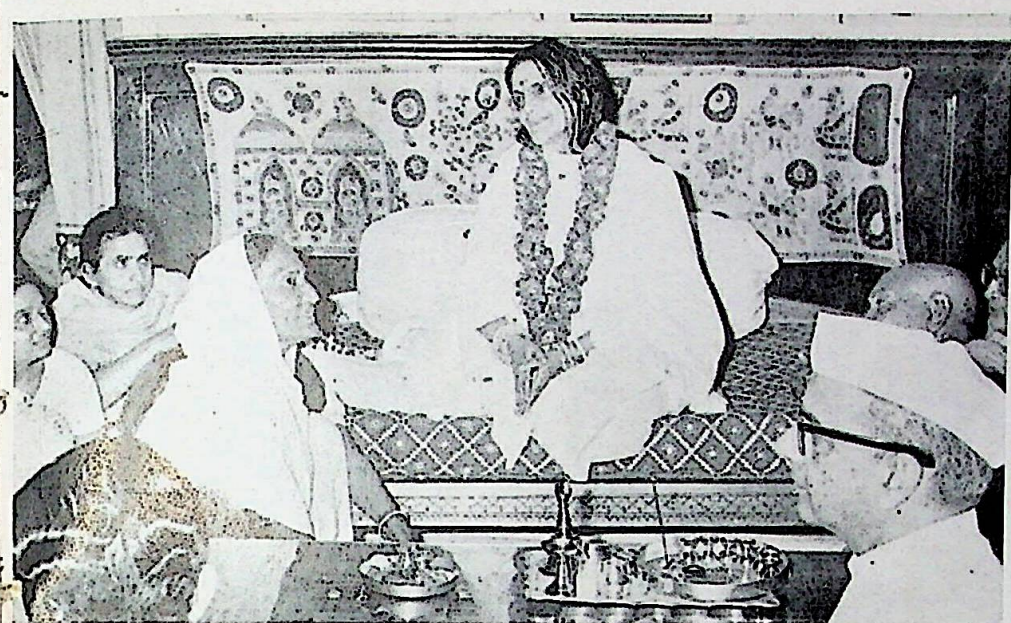
माता
आनंदमयी क
आध्यात्मिक
छाया में

आचार्य काकासाहेब कालेलकर को
सम्मानित करते हुए

स्वामी गंगेश्वरानंदजी के
सान्निध्य में

श्री रविशंकर महाराज : स्वागत

सरहदी गांधी के साथ

रतीय गणतंत्र के राष्ट्रपतियों के स्नेह-भाजन

श्री राजेन्द्रबाबू के साथ
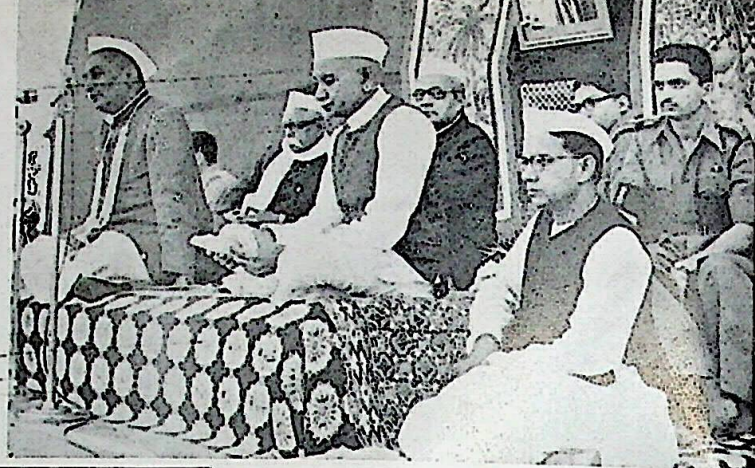
डा. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के साथ

डा. जाकिर हुसेन के साथ
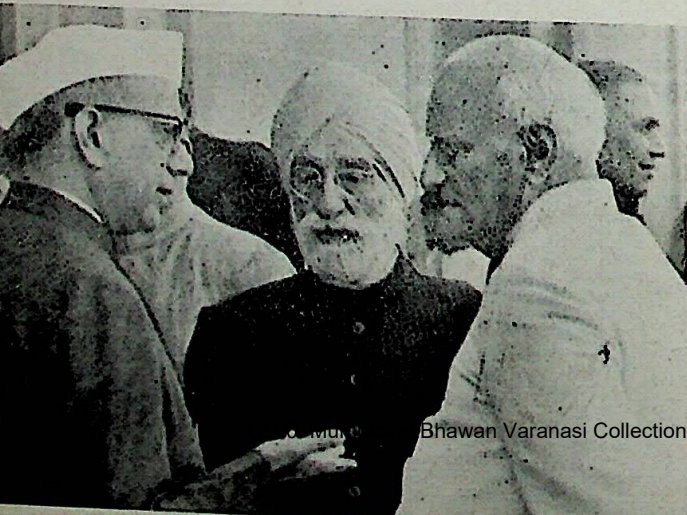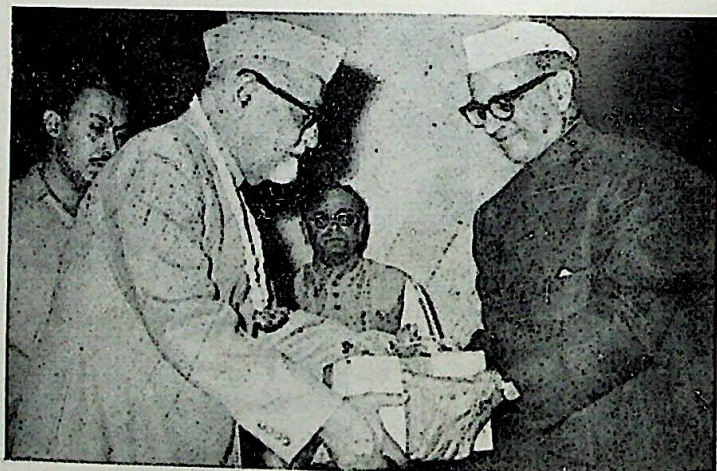
श्री वी. वी. गिरि के साथ

भारत के प्रधानमंत्रियों के सान्निध्य में

पं० जवाहरलाल नेहरू के साथ

श्री लालबहादुर शास्त्री के साथ

श्रीमती इन्दिरा गांधी के साथ
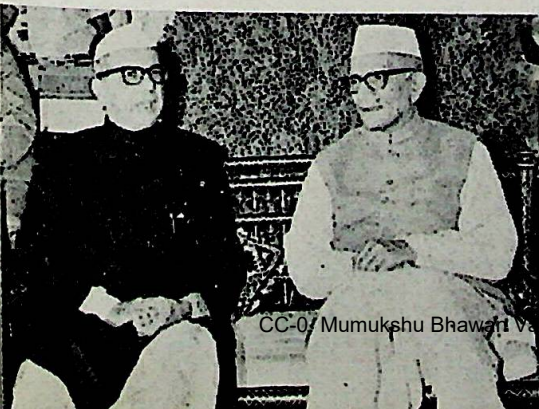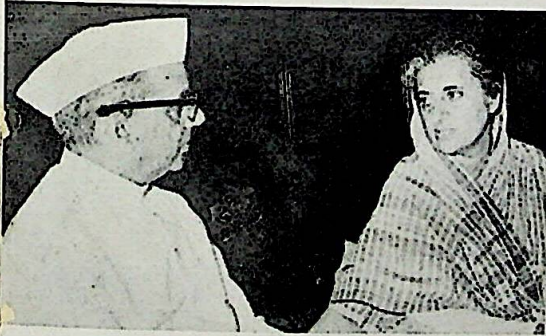
श्री मोरारजी देसाई के साथ

राज्यपालों के सम्मेलन में
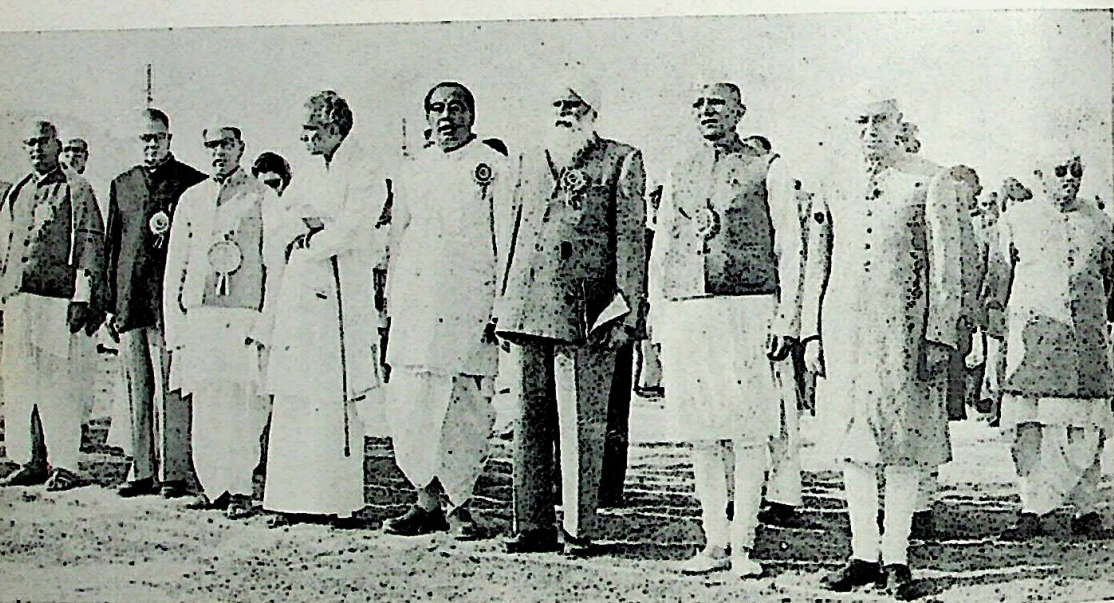
कांग्रेस के झंडारोहण के
अवसर पर

योजना-आयोग की संगोष्ठी में

किसानों के बीच
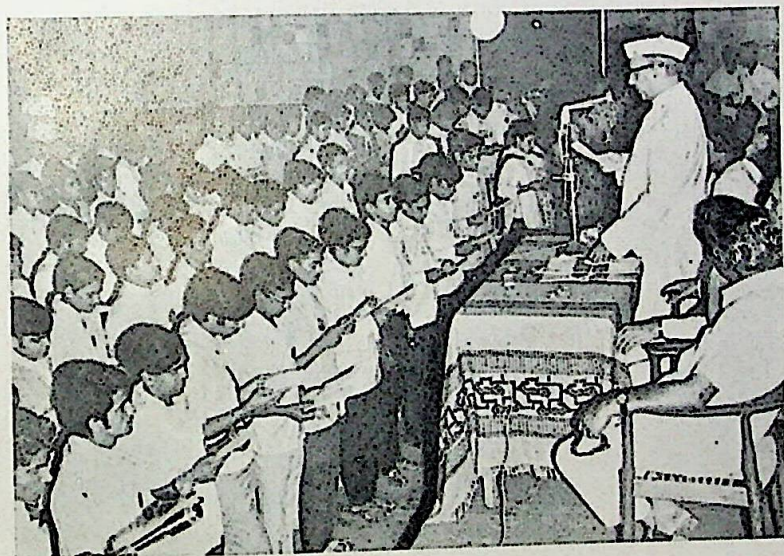
छात्रों को देश-प्रेम की शपथ दिलवाते हुए : तरुणोदय के उत्सव में

अंतिम उपक्रम
राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन

विविध कार्यों तथा मनोभावों में
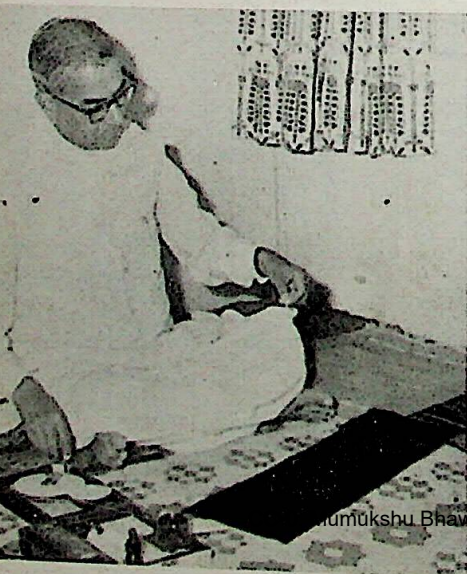
एक में अनेक

वक्ता, यात्री,
परिवार-वत्सल,
चिंतक तथा धर्म-परायण

प्रेरणा के स्रोत

अध्यात्म

राजनीति
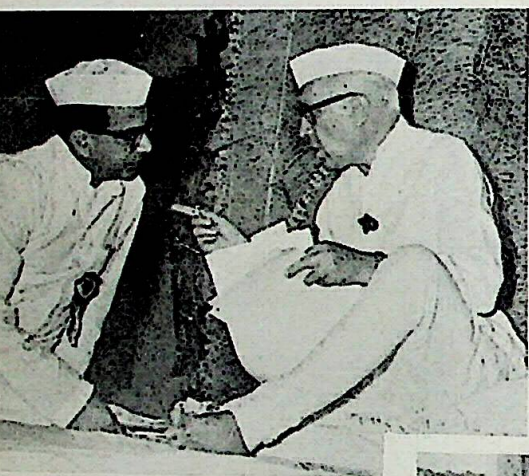
रचनात्मक

संयोजना
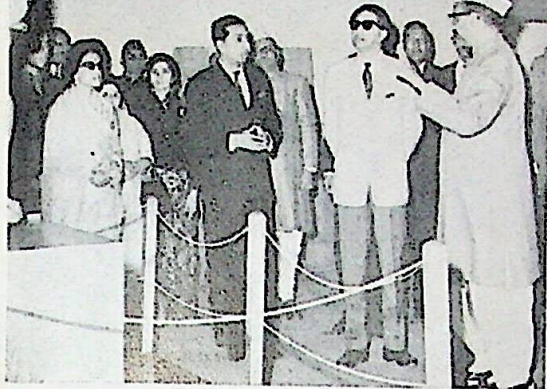
- नेपाल-नरेश के साथ
- विख्यात विज्ञानवेत्ता आईन्स्टीन के साथ
- पीसा में
- इंग्लैण्ड में
- जापान में
- वेटीकन नगरी में
- जर्मनी में

नमस्कार

हुए थे, किन्तु नेपाल के निवासी स्वभाव से आत्माभिमानी हैं, वे सबसे भाई-चारा चाहते हैं, किसी के दवाव में आकर कुछ नहीं करना चाहते। इसलिए धीरे-धीरे भारतीय नये राजदूत के सरल और निश्च्छल व्यवहार ने उन्हें भारत के प्रति पहले से अधिक स्नेहपूर्ण बना दिया।

नेपाल में भी पंचवर्षीय योजनाएं चल रही थीं। जैसा कि सब जानते हैं १९४७ में भारत के स्वतन्त्र होने के वाद भारत ने महाराजाधिराज त्रिभुवन को वहां के राणाओं के प्रभाव से मुक्त किया था और इसके वाद नेपाल में एक तरह से प्रजातंत्र की स्थापना हो गयी थी। १९५५ में पिता की मृत्यु के वाद महाराजाधिराज महेन्द्र गद्दी पर बैठे। उन्होंने विधिवत चुनी गयी, प्रजातंत्रीय 'कोईराला सरकार' को वर्खास्त कर दिया। १९६२ में नये संविधान का निर्माण हुआ, जो अबतक नेपाल में लागू है। इस संविधान के अनुसार सारी सत्ता राजा के हाथ में आ गई। 'पंचायत राज' के नाम से एकराज्य-पद्धति की स्थापना हुई। नेपाल के राजा सलाह के विचार से छोटी राज-सभा नामजद करते हैं। उसके द्वारा जो निर्णय लिये जाते हैं, वे ज्यादातर राजा की मर्जी के होते हैं। राज-सभा की कार्यवाही अखबारों में नहीं छपती। जो वात प्रजा को वताई जानी जरूरी मालूम होती है, उसे सरकारी तौर पर वताया जाता है। वहां कोई राजनैतिक दल नहीं वनाया जा सकता, राजा यथासंभव उदार-नीति वरतते हैं, और प्रजा को राहत पहुंचाने के कामों में दिलचस्पी लेते हैं।

श्रीमन्‌जी ने नेपाल में रहते हुए भारत-नेपाल-सम्बन्ध सुधारने की दिशा में काफी काम किया। नेपाल की तराई-इलाके में चीन की मदद से सौ मील लंवा रास्ता वन रहा था। यह भारत की सुरक्षा के लिए एक वहुत वड़ा खतरा हो सकता था। प्रधानमंत्री श्री शास्त्री इसे लेकर वहुत चिंतित थे। श्रीमन्‌जी ने महाराजाधिराज से इस विषय पर वातचीत की तो उन्होंने कहा कि पहले हमने भारत से इसके वारे में वातचीत की थी, किन्तु भारत ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। चीन ने दिलचस्पी दिखाई और इसीलिए ऐसा हुआ है। श्रीमन्‌जी ने कहा कि मुझे पिछली परिस्थितियों के वारे में मालूम नहीं है। फिर भी मेरी प्रार्थना है कि अगर चीन हमारी उत्तरी सीमाओं पर आता-जाता रहा तो यह हमारे लिए वड़े खतरे का कारण वन जाएगा, कृपया इस पर विचार करें। महाराजा ने इस बात की स्वीकृति दे दी कि दस वर्ष में पूर्व-पश्चिम राजपथ का अधिकांश छः सौ मील लम्वा मार्ग भारत वनाये। उन्होंने चीन को राज्य के बीच में कोई दूसरी सड़क बनाने का विचार सुझाया। इस वात का आश्वासन भी दिया गया कि तराई-क्षेत्र में नेपाल की ओर से अब किसी और को कोई योजना नहीं सौंपी जाएगी।

१९६५ में महाराजा महेन्द्र ने भारत आने की स्वीकृति भी दे दी। यह उस समय एक वड़ी वात मानी गयी। श्रीमन्‌जी सामान्य राजदूतों की तरह राजदूतावास में शरावपार्टियों आदि का प्रवन्ध कभी नहीं करते थे। शुरू में कुछ लोग इसे वहुत विचित्र मानते थे, किन्तु वाद में नये राजदूत के इस नये रवैये से सभी ने सहमति प्रकट करना शुरू कर दिया।

भारत ने श्रीमन्‌जी के रहते हुए वहुत थोड़े समय में अनेक योजनाओं को हाथ में लिया, जिनमें विहार की सीमा पर रक्सौल से नेपाल को जोड़ने वाला तिहत्तर मील का त्रिभुवन-राजपथ, गोरखपुर के पास उत्तर-प्रदेश की सीमा को जोड़ने वाला सिद्धार्थ-राजमार्ग तथा पूर्व-पश्चिम राजपथ, जो अव 'महेन्द्र राजपथ' कहलाता है, और जिसकी लम्बाई चार सौ मील है, शामिल हैं।

सर्वेक्षणों के बाद खनिजों के निकालने, पशुओं के चिकित्सालय खोलने और फलों आदि

के बगीचे लगाने की भी योजनाएं प्रारंभ की गईं। एक औद्योगिक केंद्र पाटन में खोला गया और ग्रामद्योगों का सिलसिला भी प्रारंभ किया गया। भारत ने वहां की शिक्षा में भी दिलचस्पी ली। उसने नये विश्वविद्यालय कीर्तिपुर में अनेक इमारतों का निर्माण कराया। विजली और सिंचाई की हद तक त्रिशूली, कोशी और गंडक वांधों की योजना विशेष उल्लेखनीय हैं।

श्रीमन्‌जी ने इन सब योजनाओं को स्वयं घूम-घूमकर देखा। उन्हें यह समझकर वहुत दुःख हुआ कि उनसे सम्वन्धित भारतीय अधिकारी अपने वेतन के अतिरिक्त अन्य देशों की सरकारों से 'काम आगे न वढ़ने पाए', इसके वदले में खासी रिश्वत भी पाते हैं। इस तरह ठीक काम के अभाव में भारत और नेपाल के सम्बन्ध सुधरने की वजाय विगड़ जाते हैं। उन्होंने उस तरीके को बड़ी चतुराई के साथ समाप्त किया। हर योजना के समाप्त होने का समय निश्चित कर दिया गया और अधिकारियों को सावधान किया गया कि अगर ऐसा न हुआ तो उनका नुकसान हो सकता है। फलस्वरूप सारे काम तेजी से होने लगे। अनेक काम तो निश्चित तिथियों के पहले ही समाप्त हो गये। महाराजाधिराज ने योजनाओं के सम्पन्न होने पर वहुत खुशी जाहिर की तथा स्वयं अनेक योजनाओं का उद्‌घाटन किया। पश्चिम-कोसी नहर योजना वहुत दिनों से खटाई में पड़ी थी, इसे लेकर महाराजाधिराज के मन में कुछ संदेह थे। उन्हें श्रीमन्‌जी ने दूर किया और १९६५ में भारत के प्रधानमन्त्री लाल वहादुर शास्त्री ने इस योजना का शिलान्यास किया।

श्रीमन्‌जी के कार्यकाल में प्रधानमंत्री श्री शास्त्री जी और वाद की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी भी वहां गयीं। संसद सदस्यों का एक प्रतिनिधि-मंडल भी नेपाल बुलवाया गया था। प्रतिनिधि मंडल नेपाल की राष्ट्रीय पंचायत के सदस्यों से मिला। वाद में एक ऐसा ही प्रतिनिधि मंडल नेपाल की ओर से भारत भेजा गया। कवि, कलाकार, लेखक, विचारक और दार्शनिकों आदि के मंडल वरावर भारत से नेपाल जाते रहे। शृंगेरी मठ के जगद्‌गुरू शंकराचार्य को भी भारतीय दूतावास ने आमंत्रित किया। उनका स्वागत स्वयं महाराज और महारानी ने किया। वाद में श्रीमन्‌जी ने इस वात का प्रयत्न भी किया कि विनोबाजी नेपाल जाएं। नेपाल के महाराजाधिराज ने विनोवाजी को पत्र भी लिखा। श्रीमन्‌जी स्वयं पत्र लेकर विनोवाजी के पास गये। विनोवाजी ने महाराजाधिराज को अपने हाथ से लिखकर उसका उत्तर दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि भगवान चाहेगा तो मैं कभी नेपाल आऊंगा। महाराजा महेन्द्र ने इसे एक अमूल्य वस्तु की तरह संभाल कर रख लिया। अवश्य ही विनोवा जी कभी नेपाल नहीं जा पाये।

एक और वड़ा उलझा हुआ मामला श्रीमन्‌जी ने सुलझाया। हजारों की तादाद में नेपाल के तराई क्षेत्र में भारतवंशी वरसों पहले से जाकर रह रहे थे, किंतु उन्हें नेपाल की नागरिकता नहीं दी जा रही थी। इन भारतवंशी नेपालियों को डर था कि आगे-पीछे उन्हें नेपाल छोड़ने के लिए वाध्य न किया जाय। श्रीमन्‌जी ने इस मामले पर भी महाराजा से बातचीत की। महाराजा ने परिस्थितियों की गंभीरता को समझा और उन सब लोगों को नेपाल की नागरिकता मिल गई इतना ही नहीं, तराई के अतिरिक्त जहां-जहां भारतीय एक अरसे से वसे हुए थे, उन सब जगहों में उन्हें नेपाल का नागरिक मान लिया गया।

श्रीमन्‌जी ने नेपाल में यह भी देखा कि वहां के समाचार-पत्र साधारण रूप से हिंदुस्तान के विरोध में लिखते हैं। श्रीमन्‌जी ने समाचार-पत्रों के संपादकों को आमन्त्रित किया। वात समझ

में यह आई कि भारत के 'कोआपरेशन मिशन' की ओर से पहले उन्हें विज्ञापन प्राप्त होते थे, अब वे बन्द हो गये हैं। श्रीमन्जी ने समझाया कि इतनी छोटी-सी बात को लेकर दो मित्र देशों के सम्बन्ध बिगाड़ने का प्रयत्न नहीं होना चाहिए। हम आपकी शिकायत दूर करेंगे। परिणाम जैसा होना चाहिये, वैसा निकला। पहले एकाध पत्र भारत के पक्ष में लिखता था। १९६७ तक केवल एक पत्र विरोध में लिखने वाला रह गया, क्योंकि उसे चीन की ओर से काफी पैसा दिया जाता था।

१९६२ में चीन के भारत पर हमले के कारण और उसमें भारत द्वारा प्रदर्शित कमजोरी के कारण नेपाल-निवासियों का रुख कुछ ऐसा बन गया था कि चीन को खुश रखना चाहिए, क्योंकि शक्ति चीन के पास है, भारत के पास नहीं। इसके बाद जब १९६५ में पाकिस्तान ने भारत पर हमला किया। भारत ने उसका मुंहतोड़ जवाब दिया तो नेपाल की नजर में भारत की स्थिति थोड़ी ऊंची हुई। धीरे-धीरे परिस्थिति में सुधार होने लगा।

नेपाल का पाकिस्तान की तरफ जो रुख था, वह कुछ दुख देने वाला जरूर था। वह भारत और पाकिस्तान की तुलना में पाकिस्तान को तरजीह देता था। भारत के विरोध में पाकिस्तान का प्रचार भी बड़े जोरों से चलता था। चीन भी पाकिस्तान की तरफ झुका हुआ था, इस लिए नेपाल का भारत के पक्ष में कुछ कहना जरा कठिन काम था, तो भी १९६५ के अंत में महाराजा ने भारत का आमन्त्रण स्वीकार करके भारत का दौरा किया। सारे तीर्थ दर्शन किए, जिनमें उत्तर के तीर्थ स्थानों से लेकर कन्याकुमारी तक के तीर्थ शामिल हैं। इसी बीच उन्होंने हमारे देश के आणुविक संस्थान और अन्य बड़े-बड़े कारखानों को देखा। वे सेवाग्राम भी गए। इस सबका उनके मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

श्रीमन्जी ने नेपाल से अधिक घनिष्ट होने के विचार से अपने बड़े बेटे भरतनारायण की शादी भी जनवरी, १९६७ में काठमांडू से की। उस विवाह में स्वयं महाराजा शामिल हुए। श्रीमन्जी के छोटे लड़के रजतनारायण उन दिनों दिल्ली में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे, वे भी छुट्टियों में वहां जाते थे। वहां उनके अनेक मित्र हो गये थे। श्रीमन्जी ने सदा इस बात का ध्यान रखा कि भारत और नेपाल की दोस्ती का विचार केवल आर्थिक और राजनैतिक कारणों को लेकर नहीं चलना चाहिए, हमारी मित्रता के सांस्कृतिक कारण मौजूद हैं। इन्हें याद रखना चाहिए और इनके बल पर उसे घनिष्ट बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

श्रीमन्जी को भारतीय राजदूत के रूप में नेपाल में बहुत सावधानी और सतर्कता से अपना काम करना पड़ता था। कई बार बिना किसी कारण के समाचार-पत्रों में भेद-भाव तीव्र करने वाली खबरें छप जाती थीं। श्रीमन्जी ऐसी अवस्था में उसका खंडन भारतीय दूतावास के सूचना-विभाग से नहीं करवाते थे, बल्कि नेपाल सरकार के राष्ट्रीय प्रेस विभाग से खंडन करवाते थे, जिससे लोगों को भरोसा हो जाय कि गलती समाचार-पत्रों की है, भारतीयों की नहीं। नेपाल की सच्ची शिकायतों पर श्रीमन्जी तत्परता से कदम उठाते थे। धीरे-धीरे नेपाल के लोगों और सरकार को यह विश्वास हो गया कि श्रीमन्जी का मंशा दोनों देशों की भलाई ही है।

श्रीमन्जी नेपाल में दो वर्ष के लिए राजदूत होकर गये थे। उनके कार्यकाल की अवधि समाप्त होने तक प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री का ताशकंद में देहावसान हो गया। उसके बाद श्रीमती इंदिरा गांधी भारत की प्रधानमंत्री बनीं। वे १९६६ में नेपाल गईं।

गुजरात के राज्यपाल

चौथे आम चुनाव के बाद श्री मोरारजी देसाई भारत के उपप्रधान मंत्री हुए। १९६७ के अक्तूबर में वे काठमांडू गये। उन्होंने बातचीत के दौरान बताया कि श्रीमन्जी का गुजरात के राज्यपाल की तरह जाना तय हो गया है। श्रीमन्जी ने कहा कि मुझसे तो इसके विषय में पूछा ही नहीं गया, तो श्री मोरारजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, "यह बड़े ताज्जुब की बात है। मगर अब कागजों पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हो गए हैं। इन्कार मत कर देना। गुजरात में बहुत-सी गांधीवादी संस्थाएं हैं। गुजरात विद्यापीठ है, नवजीवन ट्रस्ट है, बहुत से विश्वविद्यालय हैं, जिनका राज्यपाल होने के कारण आपको कुलपति रहना पड़ेगा और इस तरह गांधी-विचार के अनुसार शिक्षण-पद्धति को मोड़ देने का एक अवसर मिलेगा।"

श्री मोरारजी के दिल्ली पहुंचने के एक हफ्ते बाद गृहसचिव का पत्र आया, जिसमें उन्होंने श्रीमन्जी से क्षमा मांगी थी कि हम समय से आपकी राय नहीं ले पाये, इसका हमें दुःख है, किन्तु हमें आशा है कि आप इस पद को स्वीकार कर लेंगे।

उस समय महाराजाधिराज महेन्द्र यूरोप के दौरे पर गये हुए थे। श्रीमन्जी ने उनके लौट कर आने तक नेपाल छोड़ना उचित नहीं समझा। महाराज के आ जाने के बाद श्रीमन्जी नेपाल से गुजरात के लिए रवाना हुए। वे १८ दिसम्बर, १९६७ को नयी दिल्ली रुकते हुए २५ दिसम्बर तक अहमदाबाद पहुंच गये। मदालसाबहन उन दिनों विनोबाजी के साथ भूदान आन्दोलन के सिलसिले में बिहार में थीं। वे वहां बाद में पहुंचीं।

राज्यपाल पद की शपथ लेने के बाद श्रीमन्जी सबसे पहले साबरमती आश्रम गए और वहां आश्रम-प्रार्थना में भाग लिया। वहां उनकी मुलाकात रविशंकर महाराज और आश्रम के पुराने अन्तेवासी मामा फड़के से हुई। श्रीमन्जी और मदालसाबहन ने गुजरात के रचनात्मक कार्यकर्ताओं से मिल-बैठने का कार्यक्रम बनाया। अखिल भारतीय आदिवासी सम्मेलन का उद्घाटन करने के बाद श्रीमन्जी और मदालसाबहन ने गुजरात बुनियादी शिक्षा-सम्मेलन में भाग लिया। वे यह देखकर बहुत खुश हुए कि रविशंकर महाराज, जुगतराम दवे और दिलखुश दीवान जी काफी बड़ी संख्या में बुनियादी और उत्तर-बुनियादी पाठशालाओं का संचालन कर रहे हैं। उन्होंने खादी ग्रामोद्योग केन्द्र, सौराष्ट्र रचनात्मक समिति और नारायणदास गांधी द्वारा चलाई जाने वाली राष्ट्रीयशाला को भी देखा। साबरमती आश्रम में कृष्णदास गांधी बिना किसी प्रकार का विज्ञापन किये, खादी का ठोस काम चला रहे थे। गोंडल की श्रमभारती में अम्बर चरखे के नये प्रकार की सहायता से तीन रुपये से पांच रुपये तक की मजदूरी मिलना आसान हो गया था। भावनगर की गांधी-स्मृति संस्था में ५०० खादी कार्यकर्ता काम करते थे और वहां वर्ष में लगभग १२ लाख रुपये की मजदूरी बांटी जाती थी। श्रीमन्जी ने अनेक हरिजन छात्रावासों और आश्रम शालाओं का निरीक्षण भी किया। उन्हें यह देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि गुजरात में अभी तक ठीक गांधी-परम्परा के अनुसार काम हो रहा है।

वे गुजरात विद्यापीठ में भी गए, जिसे गांधीजी ने १९२० में शुरू किया था और जहां काकासाहेब कालेलकर, आचार्य कृपालानी, विनोबाजी, किशोरलाल मशरूवाला, महादेव देसाई, जे० सी० कुमारप्पा, आचार्य गिडवानी और प्रो० मलकानी जैसे लोग काम कर चुके थे। कुछ

वरसों पहले श्रीमन्जी को भी गुजरात विद्यापीठ की सेवा का एक अवसर हाथ लगा था। १९६२ में केन्द्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में वे योजना-आयोग के सदस्य की हैसियत से विशेष रूप से आमन्त्रित किये गए थे। विषय-सूची में काशी-विद्यापीठ को विश्वविद्यालय की मान्यता दी जाय, यह एक विषय था। इस विषय के सामने आने पर श्रीमन्जी ने हिचकते हुए पूछा कि यही वात गुजरात विद्यापीठ के वारे में क्यों नहीं सोची जा रही है। शिक्षामंत्री डॉ० श्रीमाली ने कहा कि उस संस्था की ओर से हमारे पास इस आशय की मांग का कोई कागज नहीं आया है। श्रीमन्जी ने पूछा कि क्या गुजरात विद्यापीठ के लिए औपचारिक प्रार्थनापत्र भेजना आवश्यक है? पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा, "मेरे ख्याल से नहीं।" इसके वाद श्रीमन्जी ने गुजरात विद्यापीठ के वारे में आवश्यक जानकारी का संग्रह करके उसे विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के पास भेज दिया और गुजरात विद्यापीठ को विश्वविद्यालय के रूप में भारत सरकार ने मान्य कर लिया। गुजरात जाकर श्रीमन्जी ने नवजीवन ट्रस्ट के लिए महात्मा गांधी की रचनाओं, लेखों और भाषणों का छः भागों में संकलन किया, जो गांधी शताव्दी वर्ष में प्रकाशित हुआ। यह सारा साहित्य दो खण्डों में प्रकाशित हुआ है। इन खण्डों की एक लाख प्रतियां देखते-ही-देखते विक गईं।

साल-भर के भीतर श्रीमन्जी ने मदालसावहन के साथ गांधीजी के जीवन और कार्यों से संवंधित सभी स्थानों की तीर्थयात्रा की। वह गांधी शताव्दी वर्ष का प्रारम्भ था। सवसे पहले श्रीमन्जी राजकोट और पोरवन्दर गए। राजकोट में उन्होंने गांधीजी का वह पैतृक निवास-स्थान देखा, जो अव संग्रहालय वना दिया गया है। फिर उन्होंने अल्फ्रेड हाईस्कूल देखा, जिसमें गांधीजी ने शिक्षा ग्रहण की थी। वहां गांधीजी की स्मृति को ताजा करने वाली कई चीजें संग्रहीत हैं।

पोरवन्दर में कीर्तिमन्दिर है। इस वड़ी इमारत में कोई रचनात्मक काम नहीं होता, जो गांधीजी की स्मृति के विचार से अच्छी वात नहीं है। इसके वाद श्रीमन्जी वारडोली आश्रम गए, जिसकी स्थापना सरदार पटेल ने की थी। इस आश्रम में खादी ग्रामोद्योग, वुनियादी तालीम आदि गांधीजी की अनेक प्रवृत्तियां वहुत सुचारु रूप से चल रही हैं। इसी सूरत जिले में वेड़छी आश्रम और गांधी विद्यापीठ, गांधीजी के पुराने सहयोगी जुगतरामभाई की देख रेख में चल रहे हैं। इन दोनों आश्रमों में वुनियादी तालीम का उत्तम-से-उत्तम रूप देखा जा सकता है। यहीं से १४ मील की दूरी पर १३ आश्रम हैं, जिसे ४०-४५ वर्ष पहले मिठू-वहन पेटिट ने स्थापित किया था। १९७० में वहां कस्तूरवा की रजत जयन्ती मनाई गई थी और श्रीमन्जी ने उस समारोह की अध्यक्षता की थी।

रचनात्मक स्थानों की यात्रा के वाद श्रीमन्जी और मदालसावहन ने धार्मिक स्थानों की यात्रा की। उन्होंने द्वारकाजी, सोमनाथ, पालीताना, जूनागढ़, उड़ीसा के कोणार्क सूर्य मन्दिर की तरह मुधेरा का सूर्य मन्दिर और नल-सरोवर आदि स्थान देखे। श्रीमन्जी गुजरात के निवासियों की संस्कृति से वहुत प्रभावित हुए। गुजरात भारत के उस हिस्से में है, जहां व्यापार के लिए समुद्री किनारा होने के कारण सारी दुनिया से लोग आते रहे हैं। विशाल मानव-जाति से मिलते रहने के कारण गुजरात के लोगों में इस प्रकार की उदारता आ गई है और वे अपने व्यवहार में वहुत कुशल और मीठे हो गये हैं। वहां का कपड़ा-उद्योग और हाथ की वनी हुई चीजें ज़री का काम और पटौला की वुनाई तथा भरौंच, कैंवे में पत्थर पर किया हुआ काम सारी

दुनिया में प्रसिद्ध हैं। अपेक्षाकृत इस प्रकार की रचनात्मक नयी संस्थाएं जिनमें शिक्षण संस्थाएं प्रधान हैं, बहुत अच्छा काम कर रही हैं। बड़ौदा विश्वविद्यालय, गुजरात विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर का सरदार पटेल विश्वविद्यालय, गुजरात विद्यापीठ, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, दक्षिण गुजरात विश्वविद्यालय और जामनगर के आयुर्वेद विश्वविद्यालय के सिवाय उत्तरी भारत में कृषि विश्वविद्यालय की स्थापना हो गई है। ध्यान देने की बात है कि सभी विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम गुजराती और हिंदी है।

गांधी शताब्दी वर्ष में गुजरात में हिंदू-मुस्लिम दंगे हो गए। इससे गुजरात की प्रतिष्ठा को बड़ा धक्का लगा क्योंकि गुजरात गांधीजी की जन्मभूमि और कर्मभूमि रही है। वहां साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलना निःसंदेह लज्जा की बात थी। किन्तु सौभाग्य से भारत सरकार के निमन्त्रण पर खान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ां, उसी वर्ष भारत में आये और १९६९ के अक्तूबर में गुजरात विद्यापीठ के दीक्षान्त भाषण के लिए उन्हें आमंत्रित किया गया। बादशाहखां ने दीक्षान्त भाषण के बाद १२ दिन श्रीमन्‌जी के साथ राजभवन में बिताये। वे अहमदनगर में उन सभी जगहों पर पैदल घूमे, जहां सांप्रदायिक दंगे हुए थे। उन्होंने हिंदू और मुसलमान दोनों से कहा, "बरसों पहले साबरमती आश्रम में गांधीजी ने जिस कौमी एकता और आज़ादी की शमा जलाई थी। उसका उजाला सारे देश में फैला और देश में स्वराज्य आया। अब उन्हीं के प्रान्त में आपसी झगड़ों को देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।" उन्होंने यह भी कहा, "आज़ादी के पहले मुसलमानों को ठीक नेता नहीं मिला। खान बहादुरों और नवाबों ने उनकी अगुवाई की। उन लोगों ने मुसलमानों के बीच झगड़े-फसाद के बीज बोये, जिससे हिंदुस्तान दो टुकड़ों में तकसीम हो गया। आज़ादी के बाद भी वह मुसलमान, मौलवियों और मौलानाओं के चंगुल में फंसा हुआ है। उनके बहकाने से बहक जाता है। यह साफ मन वाले हिंदू कार्यकर्ताओं का काम है कि वे मुसलमानों तक जायें और उन्हें सच्ची हालत बताकर अपने साथ लें और मिलजुल कर हिंदुस्तान की किस्मत को चमकायें।"

इसके बाद बादशाहखां ने साम्प्रदायिक ढंगों से त्रस्त सभी जगहों में घूमने का इरादा ज़ाहिर किया। श्रीमन्‌जी और मदालसा सब जगह उनके साथ गए। रास्ते में दोनों तरफ हिंदू और मुसलमान कतारों में 'बादशाहखां की जय' बोलते हुए खड़े मिलते थे। एक-दो जगह बादशाहखां ने कहा, "यह बड़े अफसोस की बात है कि हिंदुस्तान में आज़ादी के पहले जैसी गरीबी थी, मुझे आज भी यहां वैसी ही गरीबी दिखाई दे रही है। यूरोप में जर्मनी वगैरा देशों ने फिर से अपने को खड़ा कर लिया है, जबकि वे दूसरी बड़ी लड़ाई में बिलकुल तहस-नहस हो गए थे। इसका एक ही सबब है कि हममें कौमी इत्तिहाद नहीं है और हम अपने को अलग-अलग जातों और फिरकों में बंटा हुआ सोचते हैं। हमें चाहिए कि हम देश के बारे में सोचें, झगड़ों को भूलें और इस बड़े देश को सचमुच में बड़ा देश बनायें। हमें सियासी और मजहबी नेताओं की बातें नहीं सुननी चाहिएं, क्योंकि वे हमारे मनों में फिरकापरस्ती का जहर बोते रहते हैं।"

बादशाहखां के इस दौरे का गुजरात पर बड़ा अच्छा प्रभाव हुआ। खुद श्रीमन्‌जी, मदालसा और बाद में रविशंकर महाराज ने सांप्रदायिक दंगों से प्रभावित क्षेत्रों का पैदल दौरा किया और दोनों सम्प्रदायों के लोगों में भाईचारे की भावना पैदा करने की कोशिश की। श्रीमन्‌जी ने जगह-जगह पर कहा कि इस देश की सरकार धर्म, भाषा, जाति आदि का भेद माने बिना, सबके

साथ समान व्यवहार करना चाहती है। हम सब लोगों को भी इन सब भेदों को भूलकर देश के प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाहिए। उन्होंने जगह-जगह लोगों को याद दिलाई कि गांधीजी सर्वधर्म-समभाव पर जोर देते थे।

गांधी शताब्दी वर्ष में श्रीमन्जी ने गुजरात सरकार को गांधीजी के कार्यक्रमों के प्रति सजग किया। फलस्वरूप गुजरात नशाबन्दी मंडल में लगन से काम करने वाले कार्यकर्ता इकट्ठे हुए। श्रीमन्जी ने हरिजन और आदिवासियों की सेवा की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने आदिवासी क्षेत्रों का भी दौरा किया और वहां के निवासियों की दिक्कतों को समझा। गुजरात के ज्यादातर आदिवासी 'डांग' नाम के क्षेत्र में रहते हैं। वहां मुख्यमन्त्री की अध्यक्षता में आदिवासी कल्याण-कार्य चलता तो था किन्तु उन्हें न ढंग की जमीनें मिली थीं और न साहूकारों से छुटकारा। श्रीमन्जी ने इस परिस्थिति से निपटने के लिए इस जिले में एक स्वतंत्र कलैक्टर की नियुक्ति की और जंगल-कानूनों में भी संशोधन कराया, ताकि आदिवासियों को खेती, गृह-निर्माण आदि के काम में सुविधा से लकड़ी प्राप्त हो सके। कुछ शिक्षण-संस्थाएं भी खोली गईं। सरकारी और पंचायत की नौकरियों के ख्याल से प्रशिक्षण देने के लिए आश्रम-शालाएं भी चलाई जाने लगीं। साथ ही श्रीमन्जी ने यह भी देखा कि सरकारी नौकर और सरकारी तौर-तरीके कुछ इस तरह के हैं कि आगे-पीछे हर काम जहां-का-तहां रह जाता है।

गांधी शताब्दी वर्ष में मदालसाबहन ने तरुणोदय नाम से एक नया कार्यक्रम शुरू किया। स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न हुआ हर बालक तब तक २१ वर्ष का हो गया था। मदालसाबहन ने इस विचार को फैलाने की कोशिश की कि स्वराज्य के बाद जन्म लेने वाली यह पीढ़ी ही देश के भाग्य को बदलने वाली बनेगी। इसलिए इसे प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जगह-जगह अभिनन्दन किया जाना चाहिए, उसे गांधीजी के सपने के भारत को गढ़ने के पूरे मौके दिये जाने चाहिए। नगरपालिकाओं और निगमों तथा पंचायतों में ही नहीं, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी इस विचार को बहुत पसंद किया गया और जगह-जगह तरुणों ने नीचे लिखी हुई शपथ ली :

> "हम अन्तःकरण से प्रतिज्ञा करते हैं कि हम भारत और उसके संविधान के प्रति निष्ठावान रहेंगे।
>
> "हम अपने देश की एकता और आज़ादी की प्राणपण से रक्षा करेंगे और उसे मजबूत बनायेंगे।"
>
> "हम कभी हिंसा का सहारा नहीं लेंगे और अपने सभी उद्देश्यों को अहिंसक उपायों से प्राप्त करेंगे।"
>
> "धर्म, भाषा, प्रान्त अथवा कोई भी आर्थिक या राजनैतिक शिकायत और मतभेद को दूर करने के लिए हम शांतिपूर्ण और संवैधानिक उपायों का सहारा लेंगे।"

राज्य भर के हज़ारों विद्यार्थियों को स्वयं श्रीमन्जी ने यह शपथ दिलायी थी। शपथ ले चुकने के बाद मदालसाबहन हर तरुण के मस्तक पर टीका लगाती थीं और उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती थीं। हर बार अनुभव होता था कि अभिनन्दन के बाद ये तरुण एकभाव से किसी भावान्तर में प्रवेश कर गये हैं। उनके चमकते हुए चेहरे और मुस्कराती हुई आखें सभी उपस्थित लोगों का मर्म छू जाती थीं। सन् १९६९ में ७५ हज़ार तरुणों ने इस कार्यक्रम में

भाग लिया। १९७० में यह संख्या बढ़कर डेढ़ लाख हो गई। ये सारे-के-सारे तरुण केवल शपथ लेकर ही नहीं रह जाते थे, वे किसी-न-किसी शारीरिक श्रम के द्वारा अपनी-अपनी बस्तियों में कोई-न-कोई उपयोगी और कल्याणकारी काम हाथ में उठा लेते थे।

गुजरात के इस काम की संभावनाओं को देख-समझकर भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने तय किया कि १३ अगस्त 'तरुणोदय दिवस' की तरह मनाया जाय। सब जगह गुजरात के ढंग के समारोह करने की सूचनाएं भेजी गईं और आशा की गई कि आगे-पीछे इस आयोजन का देश के युवकों पर क्रांतिकारी प्रभाव पड़ेगा।

गांधी शताब्दी वर्ष में श्रीमन्जी के प्रयत्नों से प्रांतीय सरकार ने काम करने के अधिकार से सम्बन्धित एक विशिष्ट योजना लागू की, जिसमें लघु-सिंचाई, पेड़ लगाने, सड़क बनाने आदि का काम देकर लाख से ऊपर बेकार व्यक्तियों को रोज़ी दी गयी। निश्चित हुआ कि जो काम करने लायक व्यक्ति आकर काम मांगेगा, उसे स्थानीय पंचायतें और जिला अधिकारी उपयुक्त काम देंगे। श्रीमन्जी की मान्यता थी कि समाजवाद आवश्यकतानुसार अन्न, वस्त्र और आवास की ठीक सुविधा का दूसरा नाम है। जबतक इतना नहीं हो जाता तबतक समाजवाद एक शब्द ही बना रहेगा।

शिक्षित बेकारों के लिए भी गुजरात में सरकार ने अनेक योजनाएं शुरू कीं, जिनके बल पर तकनीकी शिक्षण पाये हुए तरुण बिना नौकरी के जीविका का उपार्जन कर सकते हैं। छोटे उद्योग शुरू करने के लिए ऋण देने की व्यवस्था की गई और तरह-तरह के ठेके लेने वाले लोगों से कहा गया कि जबतक वे उपाधि-प्राप्त इंजीनियरों को अपने यहां काम पर नहीं लेंगे, उन्हें सरकारी ठेके नहीं दिये जा सकेंगे। 'राज्य विद्युत मंडल' ने भी ऐसे ही आदेश जारी किये। तकनीकी शिक्षा के लिए मैट्रिक्यूलेशन और बी० ए० पास विद्यार्थियों को छोटी अवधि के पाठ्यक्रमों से लाभ पहुंचाने की कोशिश की गई। श्रीमन्जी की सिफारिश पर 'लोक-भारती के निदेशक मनुभाई पंचोली की अध्यक्षता में बुनियादी तालीम से सम्बन्धित एक उच्चस्तरीय समिति की स्थापना की गई। इस समिति को यह काम सौंपा गया है कि यह राज्य के बुनियादी और उत्तर-बुनियादी स्कूलों के काम की जांच करें और कुछ ही समय में बुनियादी शिक्षा के आधार पर चलाये जा सकने वाले कार्यक्रमों की योजना पेश करें। श्रीमन्जी ने यह भी सुझाया कि समिति उन सब विकास-कार्यक्रमों पर ध्यान दे, जो पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत काम के विकास की दृष्टि से गांवों और शहरों में लागू किये जाने वाले हों। श्रीमन्जी का विचार था कि यदि ऐसा हो सका तो इससे शिक्षा की पद्धति में बदलाव होने के साथ-साथ हमारी आर्थिक योजनाओं में शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के सहयोग से एक नई जान आ जायेगी। तब इस बात की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि बुनियादी शालाओं में अलग से खेत या छोटी-बड़ी कर्म शालाएं जोड़ी जायं। यदि आर्थिक विकास और शिक्षा के विस्तार को ठीक से अनुबन्धित किया जाये तो बिना अतिरिक्त खर्च के हम शिक्षा को उत्पादन से जोड़ सकेंगे।

चूंकि राज्यपाल अपने राज्य के विश्वविद्यालय का कुलपति भी होता है, इसलिए श्रीमन्जी ने बीच-बीच में विभिन्न विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों को राजभवन में आमन्त्रित कर उनके शिक्षा-सम्बन्धी विचार जानकर उन्हें गांधीजी के शिक्षण-विचारों को लागू करने के लिए भी प्रेरित किया। विद्यार्थियों में अनुशासन के प्रश्न से शिक्षित युवकों की बेकारी तक के प्रश्नों पर

चर्चा हुई। आजकल भी इस तरह के सम्मेलन किये जा रहे हैं।

श्रीमन्जी ने विश्वविद्यालय की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए दिल्ली में राज्यपाल-सम्मेलन के अवसर पर इस बात पर जोर दिया कि कुलपतियों को अपने अधिकारों का संयमित रूप से उपयोग करना चाहिए, जिससे विश्वविद्यालय के उपकुलपति अपनी संस्था का विकास निःसंकोच होकर कर सकें। इसी प्रकार प्रांत के मुख्यमंत्रियों को चाहिए कि वे राज्यपालों को कुलपति की तरह अगर कुछ सूझे, तो बता जरूर दें। किंतु उसी के अनुसार चलने की आशा न रखें, क्योंकि कुलपति को विश्वविद्यालय के विधान के अनुसार चलना चाहिए। श्रीमन्जी के इस विचार का विधि मन्त्रालय ने अनुमोदन किया और इसके कारण विश्वविद्यालयों में होने वाला राजनैतिक हस्तक्षेप बहुत हद तक कम हो गया।

सभी जानते हैं कि गुजरात की राजधानी अहमदाबाद उद्योग-धंधों का केंद्र है और वहां वायु-प्रदूषण, गंदगी और गंदगी बस्तियों की समस्या बढ़ती चली जा रही थी। गांधीनगर में प्रांत की दूसरी राजधानी बन गई थी और आशा की जाती थी कि वहां अपेक्षाकृत ये सब समस्याएं बहुत दिनों तक भयंकर रूप धारण नहीं कर सकेंगी। अहमदाबाद में तो इन समस्याओं ने चिंताजनक रूप धारण कर लिया था, इसलिए श्रीमन्जी ने राजभवन में राज्य के प्रतिनिधियों, अहमदाबाद नगर-निगम और शैक्षणिक संस्थाओं से लोगों को आमंत्रित करके इन समस्याओं की ओर इनका ध्यान आकर्षित किया। जाहिर है कि समस्याएं कठिन हैं, इसलिए प्रयत्न जिस हद तक चाहिए, सफल नहीं हुआ। इसी बीच चूंकि कोई भी राजनैतिक दल स्पष्ट बहुमत में नहीं था और राज्य सरकार डांवाडोल होती रहती थी, इसलिए गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। श्रीमन्जी ने पहले ही सभी महत्त्वपूर्ण दलों के सदस्यों को विश्वास में लेकर बातचीत करके उनसे लिखित सहमति प्राप्त कर ली थी कि संविधान के आर्टिकल ३५६ को लागू करना जरूरी हो गया है। राष्ट्रपति-शासन लागू होने के बाद श्रीमन्जी ने सर्व-सामान्य लोगों को भी इस बात की दशा में संतुष्ट कर दिया कि राष्ट्रपति-शासन लागू करने का मतलब प्रजातन्त्र की समाप्ति नहीं है, बल्कि उसका उतना ही मतलब है कि अब प्रजातन्त्र राज्य स्तर से केंद्र पर पहुंच गया है। उन्होंने गुजरात के सभी संसद-सदस्यों को विशेष-रूप से आमंत्रित किया और राज्य की समस्याओं से उन्हें अवगत कराते हुए विचार-विमर्श किया। वे जिला-परिषदों के अध्यक्षों से भी मिले और उनसे सहयोग की अपील की।

गुजरात में दस महीने तक राष्ट्रपति-शासन रहा। इस बीच श्रीमन्जी ने प्रशासन को सभी दृष्टियों से अधिक स्वच्छ और कार्यक्षम बनाया। उन्होंने जितने निर्णय लिये वे किसी दबाव या पक्षपात के कारण नहीं, उनकी अपनी योग्यता के आधार पर लिए। विकास की अनेक योजनाओं को उन्होंने तुरंत गति दी। विशेषतः सिंचाई और बिजली की योजनाओं को। किसी भी शिकायत को लेकर आने वाले प्रतिनिधि मंडल से मिलते समय वे संबंधित अफसरों को भी बुलवा लेते थे और दोनों तरफ की बात को सुनकर और तौलकर ऐसा निर्णय देते थे, जो दोनों दलों को मान्य होता था। उन्होंने हरिजनों और आदिवासियों की समस्याओं को भी इस छोटी अवधि में काफी हद तक हल किया। वे इस बात की कोशिश भी करते रहे कि राष्ट्रपति शासन की समाप्ति होकर फिर से गुजरात में चुनाव हों और सत्ता जन-प्रतिनिधियों को सौंपी जाये।

गांधी स्मारक निधि के अध्यक्ष

श्रीमन्‌जी गुजरात में चुनाव होने के वाद और नई सरकार वनने के वाद राज्यपाल पद से मुक्त होकर वापस वर्धा चले गये। इस वीच अनेक कारणों से रचनात्मक कार्यक्रमों में एक प्रकार की शिथिलता आ गई थी। विनोवाजी द्वारा प्रारम्भ किया हुआ भूदान आंदोलन भी अव उतना गतिशील नहीं था। वर्धा पहुंचते ही श्रीमन्‌जी ने स्वभाव के अनुसार इन सब कामों की ओर ध्यान देना प्रारंभ कर दिया और पूज्य विनोबा के मार्गदर्शन में विभिन्न रचनात्मक कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहन देते हुए मन्द पड़ी हुई गतिविधियों को पहले की तरह प्रवाहित करने की कोशिश में जुट गए। संयोग से 'गांधी स्मारक निधि' के तत्कालीन अध्यक्ष श्री दिवाकर जी ने कार्य की अधिकता और वढ़ती हुई उम्र की मर्यादा को समझकर और साथियों को समझाकर उस पद से इस्तीफा दे दिया। स्वाभाविक ही था कि निधि के न्यासियों की निगाह श्रीमन्‌जी की तरफ जाती। श्रीमन्‌जी निधि के न्यासियों में से एक तो थे ही। वें १६ नवम्बर, १६७३ को न्यासियों की वैठक में निधि के अध्यक्ष चुन लिए गए।

निधि का कार्यक्षेत्र विस्तृत है और सघन भी। देश के १७ राज्यों में उसकी प्रांतीय शाखायें हैं और इन शाखाओं के अतिरिक्त १४ ऐसी संस्थाएं हैं, जिन्हें निधि अनुदान देती है और वे निधि की विभिन्न गतिविधियों में हाथ वंटाती हैं। स्थान-स्थान पर कार्यकर्ताओं के शिविर, सम्मेलन, प्रशिक्षण-केन्द्र आदि चलाए जाते रहे हैं।

श्रीमन्‌जी ने अपने कार्यकाल में 'गांधी स्मारक निधि' को एक अत्यन्त जागरूक और कर्मठ संस्था का रूप दिया। सर्वाधिक उल्लेखनीय काम जो उन्होंने किया वह १६७३ का रचनात्मक संस्थाओं का सम्मेलन था। इस सम्मेलन का उद्देश्य संस्थाओं की क्रांतिकारी दृष्टि को पहलू वनाकर कार्यकर्ताओं में उत्साह का संचार करना था। सर्व-सेवा-संघ, गांधी शांति प्रतिष्ठान और गांधी स्मारक निधि के तत्त्वावधान में यह सम्मेलन सेवाग्राम में हुआ और तय किया गया कि आज देश में जो परिस्थिति है, रचनात्मक कार्यकर्ताओं को उसकी ओर जागृत किया जाय और वे प्रेम और अहिंसा के मार्ग पर चलकर लोगों की समस्याओं को हल करें।

'कार्यकर्ताओं के वौद्धिक विकास के विचार से 'संस्थाकुल' नामक एक मासिक पत्र हिंदी और अंग्रेजी में शुरू किया गया। इसमें गांधी-काम को जोड़ने और बढ़ाने वाली वातों की जानकारी दी जाती है।

'कार्यकर्ता-परिचय' भी हिंदी और अंग्रेजी में तैयार था, उसके आधार पर एक वड़ा परिचय-ग्रन्थ तैयार करने का काम शुरू हुआ। विभिन्न संस्थाओं की जानकारी इकट्ठा करने के लिए एक नए विभाग का निर्माण किया गया। यह विभाग साल-दो साल में जानकारी इकट्ठी करके देश के लोगों के सामने गांधी-विचार के जो काम हो रहे हैं, उनकी तस्वीर प्रस्तुत करेगा। १६७५-७६ तथा १६७७-७८ के वार्षिक कार्य-विवरण श्रीमन्‌जी ने तत्परता से तैयार करवाए और वह प्रकाशित भी हो गए। सर्वोदय-विचार की, प्रचार की दृष्टि से, एक परीक्षा समिति का गठन किया गया, जिसने गांधी-विचार सम्बन्धी किताबें तैयार करवाईं और जगह-जगह लोगों को प्रोत्साहित करके परीक्षाओं में बैठने की सुविधाएं दीं। परीक्षा-पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य सर्वोदय-विचार पुस्तकें भी प्रकाशित की गईं।

सरकार के विभिन्न विभागों से सम्बन्ध स्थापित करके नशाबन्दी, चम्बल घाटी में हुए डाकुओं के समर्पण के फलस्वरूप स्थापित 'खुली जेल' के काम, नागालैंड में शांति-स्थापना, राष्ट्रीय एकता और देवनागरी लिपि के प्रचार के विशेष प्रयत्न किए गए। देवनागरी लिपि के लिए तो आचार्य विनोबा भावे के मार्ग-दर्शन में 'नागरी लिपि परिषद' नामक एक नई संस्था की स्थापना की गई। इस संस्था की ओर से विभिन्न भाषाओं की शिक्षा नागरी लिपि के द्वारा हो सके, इसे ध्यान में रखते हुए देशी और विदेशी भाषाओं को सिखाने वाली पुस्तकें लिखवाई गईं, जिनमें 'भाषा-इण्डोनेशिया', 'सिंहल-स्वयं शिक्षक', 'आधुनिक फारसी', 'हिन्दी चीनी प्राइमर' और 'जापानी भाषा प्रवेश' मुख्य हैं। सभी पुस्तकें समर्थ व्यक्तियों द्वारा लिखवाई गई हैं और चारों ओर से इन्हें प्रशंसा प्राप्त हुई है। इस परिषद का पहला सम्मेलन २१-२२ फरवरी १९७६ को विनोबाजी के सान्निध्य में पवनार में हुआ। यह सम्मेलन कई दृष्टियों से उपयोगी सिद्ध हुआ। इसके कारण सारे देश का ध्यान इस ओर केन्द्रित हुआ कि विभिन्न क्षेत्रों में भाषायी और सांस्कृतिक एकता मजबूत करने की दृष्टि से नागरी का उपयोग सभी भारतीय और एशियाई भाषाओं के लिए वांछनीय है। इस लिपि के माध्यम से संस्कृत, मराठी और हिन्दी जानने वाले लोग तो अन्य भाषाओं को आसानी के साथ सीख सकते हैं। राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति और केंद्रीय सरकार के अनेक मन्त्रियों ने इस वात से सहमति प्रकट की कि नागरीलिपि को एक जोड़लिपि के रूप में अपनाया जाना चाहिए।

नागरी लिपि परिषद् की विभिन्न राज्यों में शाखाएं स्थापित करने के विचार से संयोजक नियुक्त किये गये। भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार ने आश्वासन दिया कि नागरी लिपि में क्षेत्रीय-भाषाओं की जो पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित होंगी, उन्हें केंद्रीय शासन से वित्तीय सहायता पहुंचाई जायगी। परिषद् ने अपने काम को चलाने के लिए दस लाख रुपये की निधि एकत्र करना भी तय किया है। नागरी लिपि परिषद् लिपि सुधार के विवादों में नहीं उलझती। उसने अपना ध्येय केवल भारत और एशिया की विभिन्न भाषाएं सीखने के लिए संस्कृत भाषा की मौजूदा लिपि अपनाई है और पूरी सद्भावना के साथ सांस्कृतिक एकता की भावना को विकसित करने की दृष्टि से काम कर रही है।

श्रीमन्‌जी की कार्य-अवधि में गोसेवा-सम्मेलन, स्वाध्याय-योजना, शराबबंदी और आचार्यकुल की गतिविधियों ने सारे देश का ध्यान इस बात की ओर केंद्रित किया कि यदि स्वयं-सेवी संस्थाएं चाहें तो वे दलगत राजनीति से ऊपर रहकर किसी भी कठिन परिस्थिति में देश को निराश होने से बचा सकती हैं। १९७५ की अपनी एक बैठक के प्रस्ताव में कहा गया था कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है, जिसमें किसी गांधी-संस्था को शासन की नीति-विशेष के खिलाफ खड़ा होना पड़े। तब ऐसी सूरत भी बन सकती है कि सत्ता से संघर्ष हो जाये और सत्याग्रह करने का अवसर उत्पन्न हो। इसमें संदेह नहीं कि रचनात्मक कार्य ही हमारा नित्यकार्य है, किन्तु सत्याग्रह और सविनय अवज्ञा हमारे नैमित्तिक कर्तव्य बने हुए हैं, इसलिए यदि इन नैमित्तिक कार्यों पर किसी संस्था के कार्यकर्ताओं की सहमति हो तो उसे हाथ में लिया जा सकता है। सर्व-सम्मति न होने की स्थिति में यह संस्था की ओर से नहीं किया जाना चाहिए। कार्यकर्ता अपनी व्यक्तिगत हैसियत में असहयोग या सत्याग्रह का मार्ग अपना सकते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन

श्रीमन्जी ने अपने कार्यकाल की अवधि में वर्ष के लगभग आधे दिन देश के कार्यकर्ताओं और संस्थाओं के बीच घूम-घूमकर रचनात्मक कार्यों के बीच लगाये और जिन दिनों में वे वर्धा में रहे, उन्होंने नित्य विनोबाजी से संपर्क रखकर उनसे मार्गदर्शन लिया और उनके विचारों से देश में फैले हुए सभी लोगों को अवगत रखा। जब देश आपात्काल की स्थिति से गुजर रहा था, तब नई तथा विपरीत परिस्थितियां और कठिन समस्याएं रचनात्मक संस्थाओं के सामने उपस्थित होती रहीं। श्रीमन्जी ने अध्यक्ष के नाते सभी महत्वपूर्ण प्रसंगों पर तत्कालीन प्रधानमंत्री से मिल-कर चर्चा करने के प्रयत्न किये और संविधान-संशोधन, गो-रक्षा और चुनाव तथा चुनाव घोषणा-पत्र आदि विषयों पर वक्तव्य जारी किये।

१९७७ में 'गांधी स्मारक निधि' ने अपने २७ वर्ष पूरे किये। इसी निमित्त से निधि के विस्तृत कार्य-विवरण को अंग्रेजी में 'इन मेमोरी आफ महात्मा गांधी' तथा हिन्दी में 'महात्मा गांधी की स्मृति में' नाम देकर पुस्तकाकार प्रकाशित किया गया। इन दोनों पुस्तकों में केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि, प्रादेशिक गांधी स्मारक निधियों और निधि से संबंधित इकाइयों द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में किये गये २७ वर्षों के रचनात्मक कार्य का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

श्रीमन्जी ने अपने कार्यकाल में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन किया। यह अखिल भारत नई तालीम समिति द्वारा आयोजित किया गया था, जिसके श्रीमन्जी अनेक संस्थाओं की तरह अध्यक्ष थे। यह शिक्षा-सम्मेलन १८, १९, २० दिसंबर १९७७ को नई दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इसका उद्‌घाटन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया तथा अध्यक्षता नई तालीम समिति के सभापति के नाते श्रीमन्जी ने की। सम्मेलन में राजस्थान के राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक के सिवा विभिन्न राज्यों के शिक्षामंत्रियों, विश्वविद्यालयों के कुलपतियों, शिक्षा-शास्त्रियों और बुनियादी शिक्षा-क्षेत्र में काम करने वाले शताधिक कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। केन्द्रीय शिक्षामंत्री डा० प्रतापचन्द्र ने समापन-भाषण दिया। सम्मेलन की विभिन्न बैठकों में योजना-आयोग के उपाध्यक्ष, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष, राष्ट्रीय शैक्षणिक अनु-संधान और प्रशिक्षण परिषद् के निदेशक, शिक्षामंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी तथा प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयीन शिक्षक-प्रतिनिधियों ने भी भाग लिया। श्रीमन्जी ने 'राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली : कुछ रचनात्मक सुझाव' नाम का एक विचार-पत्रक प्रतिनिधियों को दे रखा था। तीन दिन तक उस पर गहराई से विचार किया गया और एक सर्वसम्मत निवेदन जाहिर किया गया, जिसमें यह स्वीकार किया गया कि "अभी तक की भारतीय शिक्षा-प्रणाली राष्ट्र की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकी है और वह जन-साधारण की तात्कालिक आवश्यकताओं के लिए भी समयानुकूल सिद्ध नहीं हुई हैं। ४० वर्ष पूर्व महात्मा गांधी ने 'शारीरिक श्रम और उत्पादन कार्य पर केन्द्रित तथा बालक के आसपास के परिवेश से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध, बुनियादी शिक्षा की एक योजना देश के सामने रखी थी। इसका अभिप्राय 'जीवन के लिए शिक्षा' और इससे भी आगे 'जीवन द्वारा शिक्षा' देना था। बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों का, उनकी उत्पादक क्षमता और स्थानीय जमात से निकट सम्पर्क सहित उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास करना था। गांधीजी द्वारा परिकल्पित बुनियादी शिक्षा एक गतिशील पद्धति थी, जो निश्चित

ही वदलती हुई परिस्थितियों में प्रगति और विकास करने वाली है।"

वर्षों के प्रत्यक्ष अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि "भारत में पूर्व-प्राथमिक से विश्व-विद्यालय तक सभी स्तरों पर शिक्षा संवंधी मार्गदर्शन और स्वरूप-निर्धारण राष्ट्रपिता द्वारा प्रतिपादित वुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों के आधार पर ही होना चाहिए। संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि शिक्षा आर्थिक प्रगति और विकास से सम्वन्धित समाजोपयोगी उत्पादक कार्यकलापों द्वारा दी जानी चाहिए।"

श्रीमन्जी ने इस सम्मेलन को अधिक-से-अधिक सफल वनाने के लिए यों तो थोड़ा-वहुत काम वहुत पहले से शुरू कर दिया था, किन्तु सम्मेलन से तीन महीने पहले वे रात-दिन उसी में लगे रहे और अपने सभी सहयोगियों को भी उस काम में लगाया। अन्त में एक सप्ताह अर्थात् दिसम्वर के दूसरे सप्ताह से तो काम की थकावट उन्होंने महसूस की हो या न की हो, उनके आसपास के सभी लोग महसूस करने लगे थे और कभी-कभी इस ख्याल से कि वे और अधिक परिश्रम न करें, स्वयं आगे आकर उनसे काम मांगते थे।

श्रीमन्जी का स्वभाव अपनी शारीरिक या मानसिक किसी भी परेशानी को व्यक्त न होने देने का तो था ही। दुःख पारिवारिक हो, सामाजिक हो, चाहे राष्ट्रीय, वे उसे समवुद्धि से ग्रहण करते थे और विना किसी प्रकार की घवराहट के उसे हल करने के उपायों को ढूंढ़ लेते थे। १९७४ में श्रीमन्जी के छोटे पुत्र श्री रजत कुमार को सौंपा हुआ काम ईमानदारी के साथ करने के कारण कुछ स्वार्थी तत्वों ने छुरे मारकर हत्या करने की कोशिश की थी। वे तो उन्हें मरा हुआ मानकर छोड़ गये थे, किन्तु प्रभु की कृपा से उनके प्राण वच गये। कोई भी व्यक्ति इस समाचार से विचलित हो जाता, परन्तु श्रीमन्जी ने किसी प्रकार की उत्तेजना प्रदर्शित नहीं की। अलवत्ता, अपने कर्तव्य का तत्पर रहकर निर्वाह किया। रात-दिन परिश्रम करके उन्होंने मृत्यु के मुख में पड़े हुए अपने पुत्र को वचा लिया। वीमारी के पहले, वीमारी के वाद और वीमारी के दरम्यान श्रीमन्जी के व्यवहार में कहीं कोई अन्तर नहीं हुआ। उन्हें जानने वाले जानते हैं कि श्रीमन्जी अपने कर्तव्य के आगे हर चीज को छोटा गिनते थे।

राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन के अवसर पर उन्होंने अपने स्वास्थ्य की ओर इसी स्वभाव के कारण ध्यान नहीं दिया और सम्मेलन समाप्त होते-होते तक वे वहुत थक गये। खांसी और श्वास में कष्ट का अनुभव वे वर्षों से कर रहे थे। इसकी ठीक चिकित्सा भी चलती रहती थी, किंतु इसके कारण वह अपने किसी काम को रुकने नहीं देते थे। सम्मेलन के समाप्त हो जाने पर भी तत्संवंधी कितने ही काम पड़े हुए थे, जिन्हें वे दूसरों पर छोड़कर निश्चित नहीं हो सकते थे। वे उन सव कामों को सुचारु रूप से सम्पन्न करने के विचार से विश्राम टालते रहे।

जीवन का उपसंहार

२ जनवरी, १९७८ को वर्धा में श्रीकमलनयन वजाज की स्मृति में एक कार्यक्रम आयोजित किया गया। कार्यक्रम में श्रीमन्जी ने उपस्थित रहना स्वीकार किया था। वे जिस वात के लिए 'हां' कह देते थे, उसे पूरा कर डालना उनके स्वभाव की दूसरी खूवी थी। वे इसलिए अपने स्वास्थ्य की कमजोरी को अमान्य करके २ तारीख को दिल्ली से वर्धा के लिए रवाना हो गये। रेलगाड़ी में करीव ९ वजे रात को आगरा से उनकी तवीयत विगड़ना शुरू हुई, किंतु उन्होंने अपने

निजी सचिव को विस्तार से कुछ नहीं वताया, इतना ही कहा कि मुझे सांस लेने में कष्ट हो रहा है। उस समय जितनी चिकित्सा सम्भव थी, उतनी श्रीमन्जी को प्राप्त हो गयी, किन्तु जव तक गाड़ी ग्वालियर पहुंचे न पहुंचे, उनकी हालत सुधरने से परे हो गयी। गाड़ी में वर्धा कामर्स कालेज के प्राचार्य श्री हरिकृष्ण खरे भी थे। श्रीमन्जी चाहते तो उन्हें सूचित कर सकते थे और पर्याप्त भाग-दौड़ हो सकती थी, किन्तु श्रीमन्जी ऐसा क्यों कर करते ? वह उनके स्वभाव से मेल जो नहीं खाता था।

गाड़ी से उतारते-न उतारते श्रीमन्जी का शरीर छूट गया। इस समाचार को सुनकर सब स्तब्ध रह गये। मदालसावहन ने यह समाचार दिल्ली में सुना, उनके भीतर क्या कुछ गुजरा होगा, सो कौन जाने; किन्तु ऊपर से मदालसावहन ने जिस स्थिर-बुद्धि का परिचय दिया, वह जमनालालजी की बेटी और विनोवा की मानस-पुत्री के सर्वथा अनुरूप था। स्वयं तो किसी प्रकार का शोक प्रकट किया ही नहीं, जो शोक प्रकट करने के लिये आये, उन्हें भी धैर्य रखने के लिए कहा।

श्रीमन्नारायण गांधी-विचार और कार्यक्षेत्र के प्रमुख ज्योतिस्तम्भ थे। उनकी प्रखर बुद्धि और सौम्य स्वभाव के कारण हम सव अपनी सभी छोटी-वड़ी समस्याएं उनके सान्निध्य में आश्वस्त भाव से वैठकर सुलझा पाते थे। किसी भी कठिन क्षण में हमें उनका मार्गदर्शन इतना सुलभ रहता था कि हम बड़ी-से-वड़ी परेशानी को भी उनके कारण चिंतनीय नहीं गिनते थे। गांधी-विचार से ओत-प्रोत उनका जीवन गांधीजी के आदर्शों को लेकर वना था और जो भी उनके निकट सम्पर्क में आता था, वे उसे आदर्श जीवन की प्रेरणा से भर देते थे साधन और साध्य की एकता पर उनके जैसी दृढ़ निष्ठा कदाचित ही देखने में आती है। वे अपने आस-पास और दूर-दूर तक विश्वास का वातावरण निर्मित कर देते थे, इसलिए उन्होंने अपने प्रारम्भिक कार्य-क्षेत्र वर्धा से लेकर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं तक अपनी सेवा का विस्तार किया और विभिन्न उच्चतम पदों को विभूषित करके राजनैतिक तथा रचनात्मक सभी कार्यों में गांधी-विचारसूत्र को जिस कौशल के साथ अनुस्यूत किया, उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती। उनके आकस्मिक देहावसान से गांधी-विचार का एक प्रवुद्ध चिन्तक, सत्य का पोषक और नीति-निष्ठ उठ गया।

श्रीमन्नारायण निरन्तर कर्मरत् रहकर देश की जिन संस्थाओं को सहारा और मार्ग-दर्शन देते थे, उन सब संस्थाओं ने उनकी कार्य-पद्धति को एक सीमा तक साध लिया है और इसलिए वे इस महान दुःख के अवसर पर भी अनुभव करती हैं कि उनके द्वारा प्रारम्भ किये हुए और चलने वाले सभी कामों को उनकी निष्ठा और विचार के अनुरूप भविष्य में भी चलाया जा सकेगा, क्योंकि वे केवल काम करना ही नहीं जानते थे, काम करने वाले लोगों की निष्णात टोली भी तैयार करते रहते थे।

भवानी प्रसाद मिश्र

निबंध और लेख

१ / सह वीर्यं करवावहै

गांधी-परिवार में सह-भोजन के अवसर पर सामान्यतः 'सह नाववतु' का मंत्र उच्चरित किया जाता है। दरअसल उपनिषद् का यह शांति-निर्देश दिया गया है—अर्थात् गुरु-शिष्य दोनों एक साथ पुरुषार्थ करें। मेरी दृष्टि से यही 'बुनियादी शिक्षा' का मूल मंत्र है।

गांधीजी ने हमें बार-बार समझाया था कि सच्ची शिक्षा वही है जो बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करे और विभिन्न विषयों का व्यावहारिक ज्ञान उत्पादक और समाजोपयोगी क्रियाकलापों द्वारा दिया जाय। उत्पादक श्रम द्वारा तभी बौद्धिक विकास भी हो सकता है जब शिक्षक खेतों और उद्योग-शालाओं में विद्यार्थियों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर काम करें और श्रम के साथ उनके सामने ज्ञान की गंगा भी बहाते रहें। उत्पादक कार्य करते समय यह पता ही न लगे कि कौन शिक्षक है और कौन विद्यार्थी। जब गुरु और शिष्य मिलकर श्रम करेंगे और पारस्परिक द्वेष-भाव लेशमात्र न होगा, तभी विद्या तेजस्वी बनेगी। इसीलिए ऋषियों ने प्रार्थना की थी—"सह वीर्यं करवावहै। तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।"

आचार्य काकासाहेब कालेलकर ने एक बार हमें एक बड़ी करुणाजनक जानकारी दी। कई वर्ष पहले भारत शासन ने जापान सरकार से निवेदन किया कि चुने हुए भारतीय विद्यार्थियों को जापानी कृषि-शास्त्र का व्यावहारिक शिक्षण दिया जाय, ताकि वे यह समझ सकें कि हिन्दुस्तान के खेतों में भी किस प्रकार फी एकड़ उत्पादन तिगुना-चौगुना बढ़ाया जा सकता है। जापानी सरकार फौरन राजी हो गई और संघ लोकसेवा आयोग (यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन) द्वारा देश-भर से पहली श्रेणी में पहला स्थानप्राप्त कृषि-स्नातक चुनकर जापान भेज दिये गये। जापान के कृषि-डायरेक्टर ने उनका स्वागत किया और अपने छात्रालय में उन्हें समुचित स्थान दिया। दूसरे दिन तड़के वे छात्रालय गये, भारतीय विद्यार्थियों को जगाया और उन्हें अपने साथ काम करने के लिए फार्म पर ले गये। तीन-चार घंटे कसकर काम किया और कराया। काम करते-करते कृषि-संबंधी मूल्यवान ज्ञान भी देते रहे। तीसरे पहर भी इसी तरह खेतों में काम चलता रहा।

यह सिलसिला चार-पांच दिन तो चला। फिर एक दिन भारतीय विद्यार्थी डायरेक्टर से कहने लगे, "साहब, हमारा खयाल था कि हिन्दुस्तान के कृषि महाविद्यालयों की तरह जापान में

भी पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन कमरों में कराया जाता होगा और बीच-बीच में फार्म पर कुछ व्यावहारिक कार्य करना पड़ता होगा। लेकिन आप तो हमसे रोज मजदूरों की तरह ही काम कराते हैं। यही सिलसिला रहा तो हम सब बीमार पड़ जायेंगे।"

"लेकिन मैं भी तो आपके साथ मेहनत करता हूं और जानकारी भी देता रहता हूं।" डायरेक्टर ने उत्तर दिया।

"साहव, हम अपने कृषि-महाविद्यालयों के सर्वप्रथम विद्यार्थी हैं। लेकिन इस तरह मजदूरी करने की हमें आदत नहीं है।"

"जापान में तो इसी प्रकार खेती की शिक्षा दी जाती है।" डायरेक्टर ने दोहराया।

"फिर क्या किया जाय ?" विद्यार्थी पूछने लगे।

"मुझे भारत सरकार को लिखना होगा कि आपको वापस बुला लिया जाय। अफसोस है कि मैं आपको कृषि की शिक्षा नहीं दे सकूंगा।" डायरेक्टर ने दृढ़ शब्दों में उत्तर दिया।

और कुछ दिन वाद ये चुने हुए भारतीय कृषि-स्नातक जापान से वापस भेज दिये गये। हमारी शिक्षा-पद्धति के ऊपर इससे अधिक अन्य कोई लांछन हो सकता है ?

कई बार ऋषि विनोवा ने भी कहा है कि हमारे कृषि-कालेजों में ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिसके कारण विद्यार्थी गरमी और सरदी सहन करने लायक नहीं रहते—फिर वे खेती कैसे करेंगे ? सिर्फ नौकरी ही ढूंढ़ेंगे न ?

काफी साल पहले जब मैंने गांधी-विचारधारा को फैलाने के लिए विश्व-भ्रमण किया था तब जर्मनी जाने का मौका मिला। उस समय मैं वर्लिन के टेक्नीकल इंस्टीट्यूट में यह देखने गया कि वे 'प्रैक्टिकल ट्रेनिंग' किस प्रकार देते हैं और जर्मनी के इंजीनियर तो दुनिया-भर में बहुत मशहूर हैं, तो इसका क्या रहस्य है? जब मैंने अध्यक्ष से इस वारे में प्रश्न किया तो उसने पूछा, "प्रैक्टिकल ट्रेनिंग से आपका क्या मतलव है ?"

"आप विद्यार्थियों को किस तरह की व्यावहारिक ट्रेनिंग देते हैं जिसकी वजह से वे इतने मेहनती और कार्य-कुशल इंजीनियर वनते हैं ?" मैंने कहा।

"देखिये, हमारा वहुत कड़ा नियम है कि जिन छात्रों को अस्थाई प्रवेश दिया जाता है, उनसे छह महीने तक हम मामूली मजदूर जैसी सख्त मेहनत करवाते हैं। सरदी, गरमी और बर-सात में कठिन परिश्रम करते हुए जो विद्यार्थी बीमार नहीं पड़ते, उन्हें ही हम स्थायी प्रवेश देते हैं। जो यह शारीरिक कष्ट सहन नहीं कर सकते उनका अस्थाई प्रवेश रद्द कर दिया जाता है। वस यही हमारी व्यावहारिक शिक्षा है।"

यह सुनकर मैं तो दंग रह गया। जर्मन इंजीनियरों और टेक्नीशियनों की कार्य-कुशलता और श्रम-निष्ठा का यही राज है।

अपने विश्व-भ्रमण के दरमियान मैं न्यूयार्क में आधुनिक शिक्षा के पितामह प्रोफेसर जान ड्यूई से भी मिला था। जब मैंने उन्हें गांधीजी की 'वेसिक एजूकेशन' नामक पुस्तक भेंट की तो उन्होंने फौरन पन्ने खोलकर उसका सारांश पढ़ लिया और मेरी ओर देखकर बोले, "अब मेरी उम्र लग-भग ९० वर्ष की है। इसलिए अफसोस है, अब मैं इस योग्य नहीं हूं कि गांधीजी के बुनियादी

तालीम के विचारों को कार्यान्वित कर सकूं। लेकिन मैं देखता हूं कि गांधीजी की शिक्षा-पद्धति तो हमारी प्रणाली से कई कदम आगे है।"

"किस प्रकार?" मैंने पूछा।

"मैं तो अपने 'प्रोजेक्ट मैथड' द्वारा विद्यार्थियों को कुछ व्यावहारिक ज्ञान देने का प्रयत्न करता रहा हूं। किन्तु गांधीजी तो उत्पादक श्रम के जरिये जुदा-जुदा विषयों का ज्ञान भी देने की योजना बना रहे हैं। यह तो बड़ा क्रान्तिकारी विचार है। इसका पूरी तरह सफलतापूर्वक प्रयोग होना चाहिए।"

कई विदेशी शिक्षा-शास्त्रियों और अर्थशास्त्र के विद्वानों ने गांधीजी की 'नयी तालीम' योजना की मुक्त कंठ से सराहना की है। स्वीडन के मशहूर विचारक डॉ० गुनार मीरडाल ने अपने प्रख्यात ग्रंथ 'एशियन ड्रामा' में स्पष्ट राय जाहिर की है कि भारत जैसे विकासशील राष्ट्रों में 'बेसिक' शिक्षा द्वारा ही नई पीढ़ी को उपयोगी तालीम दी जा सकती है, जिससे उत्पादक श्रम के जरिये वहां की सर्वतोमुखी उन्नति हो सके। प्रो० ईवान ईलिच तो ऐसी 'डी-स्कूलिंग सोसाइटी' की कल्पना पेश कर रहे हैं, जिसमें वर्तमान ढंग के स्कूलों की जरूरत ही न रहे और खेतों और फैक्टरियों में काम करते हुए विद्यार्थियों को समाजोपयोगी शिक्षण प्राप्त होता रहे। यूनेस्को के अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा विकास कमीशन ने 'लर्निंग टु बी' नामक अपनी रिपोर्ट में इसी प्रकार की सिफारिशें की हैं। प्राथमिक और माध्यमिक दस वर्ष की शिक्षा का नाम 'बेसिक' ही दिया है, किन्तु भारत में हम इस शब्द से अभी झिझकते हैं। तंजानिया के राष्ट्रपति डॉ० नैरेरे ने अपने देश में गांधीजी के आदर्शों के अनुरूप ही शिक्षण-योजना चालू कर दी है और इस प्रयोग का प्रभाव अफ्रीका के दूसरे राष्ट्रों में भी फैल रहा है। इंग्लैंड के प्रोफेसर कासिल ने 'एजूकेशन फार सेल्फ-हेल्प' नामक पुस्तक में वर्धा शिक्षण-योजना की जोरदार लफ्जों में तारीफ की है। उन्होंने कहा है कि अब हमें खेती के शिक्षकों के स्थान पर किसान-शिक्षक ढूंढ़ने चाहिए जिन्हें कृषि का प्रत्यक्ष अनुभव है और जो नौजवानों के साथ मिलकर 'सह वीर्यं' के लिए तैयार हैं। कुरसी पर ैठकर भाषण देने वाले प्राध्यापकों की जरूरत नहीं है, वे पुराने और असंगत हो गये हैं।

कुछ समय पहले मैं केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि द्वारा आयोजित उत्तर भारत रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन में शामिल होने के लिए अल्मोड़ा जिले के कौसानी आश्रम की ओर जा रहा था। यहीं पूज्य बापूजी ने सन् १९२९ में कुछ दिन हिमालय के शान्त वातावरण में रहकर 'अनासक्ति-योग' की भूमिका लिखी थी। रास्ते में एक प्राकृतिक झरना आया, जहां हमने पानी पीने के लिए मोटर रोकी। उसी समय बारह वर्ष का एक तेजस्वी लड़का स्ट्राबेरी फलों की अपने हाथ की बनी कई छोटी-छोटी डलियां लेकर बेचने आया। मैंने उसके चेहरे से प्रभावित होकर दो डलियां खरीद लीं। प्रत्येक डलिया एक रुपये की थी।

"तुम दिन-भर में कितनी डलियां बेच लेते हो?" मैंने पूछा।

"आठ-दस!" उस नवयुवक ने उत्तर दिया।

"दिन-भर में कितनी कमाई हो जाती है?"

"करीब आठ रुपया।"

"तुम पढ़ भी रहे हो ?" मैंने पूछा।

"जी हां, सातवीं कक्षा में पढ़ता हूं, काम करके कमाता भी हूं और अपने बूढ़े मां-बाप की सेवा करता हूं।"

यह सुनकर मुझे बड़ी खुशी हुई। यही तो है 'नयी तालीम' की भावना ! परिश्रम, स्वावलम्बन और साथ ही शिक्षण भी। प्रसन्न होकर मैंने उस विद्यार्थी की दो डलियां और खरीद लीं। वह भी खुश हुआ। बाद में कौसानी की ओर जाते हुए मुझे यह सोचकर चिन्ता हुई कि पुराने ढंग की स्कूली पढ़ाई के कारण इस होनहार, पुरुषार्थी नवयुवक का तेज कहीं फीका न पड़ जाय ! हमारी वर्तमान शिक्षा का ढंग ही ऐसा विचित्र है कि वह परिश्रमी बालकों को 'बाबू' बनाकर निकम्मा कर देती है।

वाराणसी के समीप सेवापुरी आश्रम में अखिल भारत नयी तालीम समिति-सम्मेलन हुआ। उसका उद्‌घाटन भारत के उपराष्ट्रपति श्री बी० डी० जत्ती ने किया। सम्मेलन में देश के विभिन्न प्रदेशों से लगभग २,००० चुने हुए कार्यकर्ता शामिल हुए थे। अलग-अलग क्षेत्रों से बुनियादी और उत्तर-बुनियादी शालाओं के कार्य की रिपोर्ट दी गई। उत्तर प्रदेश में कौसानी के नजदीक बहनों के आश्रम का विवरण पेश करते हुए वहां की संचालिका ने बताया कि आश्रम के शिक्षक व विद्यार्थिनी मिलकर खेती और जंगल से लकड़ी काटने आदि का कार्य करते हैं। कोई बाहर का व्यक्ति उन्हें काम करते देखे तो यह पता नहीं चलता कि कौन शिक्षक है और कौन विद्यार्थिनी। उत्पादक कार्य के साथ छात्राओं को विविध विषयों का व्यावहारिक ज्ञान भी सहज ढंग से प्राप्त होता रहता है। आश्रम की विद्यार्थिनियां ज्यादातर पहाड़ी क्षेत्र की हैं; किन्तु उनके व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सराहनीय है।

यह रिपोर्ट सुनकर हमसभी को बहुत सन्तोष हुआ। 'सह वीर्यं करवावहै' का एक जीता-जागता उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत हुआ। बुनियादी तालीम का यही आदर्श अन्य संस्थाओं में भी कार्यान्वित हो सकेगा, ऐसी आशा करनी चाहिए। तभी हमारा शिक्षण तेजस्वी बन सकेगा और भारत का भविष्य भी उज्ज्वल होगा। □

२ / देता है वह देव

आचार्य विनोबा की मां रुक्मिणीदेवीजी बड़ी पुण्यात्मा तथा भक्तहृदय थीं। उन्होंने अपने बच्चों को शुरू से ही चरित्रवान बनाने का प्रयत्न किया। एक बार उनके प्रोत्साहन से विनोबा ने घर के पीछे एक पपीते का पौधा लगाया। वह धीरे-धीरे बढ़ा। कुछ समय बाद उसमें फल भी लगे; लेकिन मां ने हिदायत दी कि फल पूरी तरह पकने के बाद ही तोड़ना चाहिए।

जब एक फल अच्छी तरह पक गया तो विनोबा उसे तोड़कर आनन्द से उछलते हुए मां

को दिखाने के लिए लाए और खाने के लिए उसे काटने को चाकू मांगा। किन्तु रुक्मिणीदेवी एक विशिष्ट मां थीं। उन्होंने गम्भीरता से कहा, "बेटा, यह पेड़ का पहला फल है न? उसे तो पड़ोसी को दे देना चाहिए। जब दूसरा फल पके तब तुम भाइयों में बांटकर खाना।" विनोबा का धीरज टूट रहा था। उनकी आंखों में आंसू झलकने लगे। तब मां ने उन्हें गले लगाकर समझाया, "विन्या, जो देता है वह देव और जो रखता है वह राक्षस।"

अपनी मां का यह वाक्य विनोबा के कानों में हमेशा गूंजता रहा है। यही विचार 'भूदान गंगा' की गंगोत्री है। ग्रामदान का प्रवाह भी उसी मूल स्रोत से है। आज भी जब विनोबा अपनी मां का स्मरण करते हैं तो अश्रुधारा बहने लगती है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में एक मार्मिक कथा है। देवों, मनुष्यों और असुरों ने अपने पिता प्रजापति के सान्निध्य में रहकर ब्रह्मचर्य की अखण्ड साधना की। एक दिन देवों ने प्रजापति से कहा, "हमें आप कोई उपदेश दीजिए।" प्रजापति ने सन्देश के रूप में केवल 'द' अक्षर दिया। मनुष्यों और असुरों के पूछने पर भी 'द' अक्षर का ही संकेत किया गया।

"क्या तुम इसका आशय समझ गए?" प्रजापति ने पूछा।

"जी हां, आप कह रहे हैं 'दमन करो'।" देवों ने कहा।

"आपका उपदेश है, 'दान करो'।" मनुष्यों ने उत्तर दिया।

"जी, आपका आदेश है, 'दया करो'।" असुरों ने जवाब दिया।

"तुम ठीक समझे।" प्रजापति ने खुश होकर कहा। "देवत्व का कहीं अहंकार न बढ़ जाए, इसलिए देवों के हित में दमन आवश्यक है। मनुष्यत्व तभी सार्थक है, जब निरन्तर दान दिया जाय, और असुरों के विकास के लिए दया के सिवाय कोई दूसरा मार्ग नहीं है।"

ऋषि ने समझाया है कि यह प्रजापति हमारा 'हृदय' ही है। वह सिखाता है—इन्द्रिय-दमन, मुक्त-दान और दया-करुणा।

विनोबा भी प्राचीन भारतीय परम्परा के एक तेजस्वी ऋषि हैं। उनका अविरल सन्देश है—सत्य, प्रेम, करुणा।

संसार के सभी धर्मों में दान का महत्त्व बतलाया गया है और दुनिया में हजारों-लाखों लोग दान देते भी हैं। लेकिन इन दिनों दान देने की क्रिया बहुत स्थूल बन गई है। हमारे बुजुर्ग कहते थे कि दान दाहिने हाथ से इस प्रकार दिया जाये कि बायें हाथ को भी पता न चले। किन्तु आज तो बहुत तरह के दान एक प्रकार का व्यवसाय बन गये हैं। काफी धनी लोग आय-कर से बचने के लिए दान देते हैं। साथ ही प्रचार भी हो जाता है। संस्थाओं के ऊपर नाम लिख दिया जाता है। दान के साथ नाम की ये शर्तें बड़ी विचित्र बनती जा रही हैं। यदि किसी महाविद्यालय की इमारत पर दस लाख रुपये खर्च होने वाले हों तो एक लाख की ही रकम देकर दानी अपना या अपने रिश्तेदार का नाम देने की शर्त लगाते हैं। यह एक तरह से दस फीसदी का भाव हुआ।

दान की दुहाई देकर धर्म-गुरु भी खूब शोषण करते हैं। बहुत समय पहले यूरोप में पोप तो भारी रकमें लेकर स्वर्ग का प्रमाणपत्र देने का धन्धा करते थे। इसी प्रकार अन्य धर्मों के गुरु भी।

भारत में ऐसे मठाधीशों की कमी नहीं है, जो दान लेकर यजमानों को स्वर्ग तक पहुंचाने का जिम्मा उठा लेते हैं।

वाल्मीकि रामायण के अन्त में एक बड़ी विचित्र कथा लिखी गई है। अयोध्या लौटने के बाद भगवान् रामचन्द्र ने बहुत वर्षों तक राज्य किया। उनका नियम था कि रोज सुबह उनके दरबार में सभी को बिना रोक-टोक के आने दिया जाय। एक दिन सिर्फ एक कुत्ता दरवाजे के सामने भूंकता हुआ आया। उसके सिर पर घाव था और खून टपक रहा था।

"महाराज, क्या कुत्ते को अन्दर आने दूं?" दरबान ने पूछा।

"हां, आने दो।" भगवान राम ने उत्तर दिया। कुत्ते के सिर का घाव देकर राम ने उस का कारण पूछा।

वह कराहता हुआ बोला : "महाराजाधिराज, मैं तीन दिन से भूखा हूं। रास्ते में चुपचाप लेटा था। एक ब्राह्मण ने मुझसे हटने को कहा। मैं कमजोर था, इसलिए न उठा। इसलिए ब्राह्मण ने मेरे सिर पर लाठी मार दी और मुझे घायल कर दिया।"

"तुमने इस कुत्ते को क्यों मारा?" भगवान ने ब्राह्मण से पूछा।

"महाराज, मैं भी कई दिन से भूखा हूं। रास्ते में यह कुत्ता लेटा था। जब आवाज देने पर भी वह नहीं हटा तो मुझे क्रोध आ गया और मैंने सिर पर लकड़ी मार दी। ऐसा मुझे नहीं करना चाहिए था। गलती हुई।" ब्राह्मण बोला।

रामचन्द्र जी ने कुत्ते की ओर देखकर पूछा, "इस ब्राह्मण को अब क्या सजा दी जाए?"

"महाराजाधिराज, इसे मठाधीश बना दीजिए।" कुत्ते ने भगवान से कहा।

"यह सजा हुई?" भगवान ने कुत्ते से पूछा।

"जी हां, मैं पिछले जन्म में एक मठाधीश ही था," कुत्ते ने जवाब दिया, "अपने कुकर्मों की वजह से ही इस जन्म में मेरा यह हाल हुआ है!"

इस कथा को पढ़कर तो मैं दंग रह गया। कितना बोधप्रद प्रसंग है यह! काश सभी महन्त और मठाधीश इसे गौर से पढ़ लें।

दरअसल सच्चा दान एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, स्थूल और भौतिक नहीं। जो व्यक्ति सात्विक तथा त्यागमय जीवन बिताता है, जिसके हृदय में प्राणी-मात्र के लिए हमदर्दी है और जो सभी में प्रभु की मूर्ति के दर्शन करता है, वह असली अर्थ में दान देने योग्य है। इस प्रकार का दान दोनों को पवित्र करता है—दान देने वाले को भी और लेने वाले को भी। तुलसीकृत रामायण में 'राम-रथ' का वर्णन करते समय सन्तकवि लिखते हैं :

"ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥"

अर्थात्, ईश्वर का भजन ही चतुर सारथी है। वैराग्य ढाल है और सन्तोष तलवार। दान फरसा है, बुद्धि प्रचंड शक्ति है, श्रेष्ठ विज्ञान कठिन धनुष है।

"सखा धर्ममय अस रथ जाके।
जीतन कहं न कतहुं रिपु ताकें॥"

इस प्रकार का पवित्र दान देने के लिए मनुष्य में ऊंचे दरजे का विवेक चाहिए। विवेक के बिना हम इस संसार-सागर को पार नहीं करते; और प्रभु-कृपा के बिना यह विवेक उत्पन्न नहीं हो सकता!

कुछ दिन पहले हमें श्रद्धेय स्वामी शरणानन्दजी महाराज के दर्शन हुए। वे मेरे पिताजी के पुराने मित्र हैं। बड़ी आत्मीयता से बातें हुईं। वे मुक्तचिन्तक हैं, उनकी विचार-शैली बड़ी सरल किन्तु गहन है।

"महाराज! संक्षेप में आपका क्या उपदेश है?"

"जीओ, जागो, आनन्द में रहो।" उन्होंने मुस्कराकर कहा। और फिर शान्ति से समझाया, "जीते तो हम सभी हैं। लेकिन हमें जागते भी रहना चाहिए अर्थात् विवेक से काम लेते रहें। फिर विवेकयुक्त जीवन आनन्दमय होगा ही।"

दान के बड़प्पन का सम्बन्ध दिये गए धन की विपुलता से नहीं है। यदि कोई गरीब व्यक्ति सही मनोवृत्ति से एक पैसा भी दान देता है तो वह अमीरों के लाखों-करोड़ों के दान के बराबर समझा जाना चाहिए:

"ईश्वर भूरिदानेन यल्लभन्ते फलं किल।
दरिद्रस्तच्च काकिण्या प्राप्नुयादिति नः श्रुतिः॥"

अर्थात् धनवान बहुत-सा धन दान देने से जो फल प्राप्त करता है, वही फल दरिद्र आदमी एक कौड़ी देकर प्राप्त कर लेता है, ऐसा हमने सुना है।

बाइबिल में कहा गया है, उस अति गरीब और बूढ़ी स्त्री ने गिरजाघर में ईसा मसीह के सामने दान-पात्र में एक पैनी ही डाली थी। ईसा ने समुदाय से पूछा, "तुम जानते हो कि इस पात्र में सबसे बड़ा दान किसने दिया है?" सब लोग इधर-उधर देखने लगे। अमीरों ने आशा की कि ईसा उनकी ओर इशारा करेंगे; किन्तु उन्होंने थोड़ी देर रुककर कहा, "सबसे ज्यादा दान उस बूढ़ी औरत ने दिया है, जो चुपचाप कोने में बैठी है। उसके पास एक ही पैनी थी, जो उसने पात्र में बड़ी श्रद्धा से डाल दी है।"

ऋषि विनोबा ने दान और करुणा की प्रक्रिया का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। जिस प्रकार जल ऊंची जगह से नीचे की ओर प्रवाहित होता रहता है, उसी तरह करुणा और प्रेम को बहना चाहिए। दुनिया में अक्सर लोग अपने से अधिक सुखी और धनी व्यक्ति की ओर नजर डालते हैं और इसलिए दुखी बनते हैं। यदि वे ऊपर देखने के बजाय नीचे की ओर अपने से अधिक दुखी और गरीबों का खयाल करें तो उनके दिल से सहानुभूति तथा करुणा का झरना बह निकलेगा, सहज और निःस्वार्थ ढंग से। इस प्रकार के दान में कोई बनावट और कृत्रिमता न होगी; वह शुद्ध और पावन होकर संसार में खुशबू फैलाता रहेगा। विनोबाजी कहते हैं: "धन को धारण कर रखने पर वह निधन का कारण बन जाता है। इसलिए धन को 'द्रव्य' बनना

चाहिए। जब धन बहने लगता है तभी वह 'द्रव्य' बनता है। द्रव्य बनने पर धन्य बन जाता है।"

और अन्त में सच्चा दानी तो भगवान् ही है, जो भक्तजनों पर अपना प्रेम और आशीर्वाद अनायास बरसाता रहता है। कविवर तुलसीदास ने 'विनय-पत्रिका' में गाया है :

"एक दानि-सिरोमनि सांचो।
सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि, कोउ न देत बिन पाये,
कोसलपालु कृपालु कलपतरु, द्रवत सकृत सिर नाये।"

इसी प्रकार सन्त पुरुष भी गुणों के दानी होते हैं। दूसरों के दोषों के बजाय गुणों को ही देखते हैं और उनका विकास करते हैं। आसाम के सन्त माधवदास ने तीन प्रकार के मनुष्यों का वर्णन किया है। एक तो 'अधम' जो दूसरों के अवगुण ही निहारते हैं। दूसरे 'मध्यम' जो गुण और दोष दोनों को देखते हैं। तीसरे 'उत्तम', जो दूसरों के गुणों का भी विस्तार करते हैं। इस तीसरी श्रेणी के महापुरुष असली अर्थ में दानी हैं। उनके सत्संग से दुनिया में सद्‌गुणों की सुवास फैलती रहती है और मानव-जीवन सुखद और आनन्दमय बन जाता है। □

३ / मैं भरोसे अपने राम के

छुटपन में धार्मिक पुरुषों को हम 'साधु', 'स्वामी' और 'आचार्य' आदि नामों से पहचानते थे। कभी कोई बहुत बड़े संन्यासी आते, तो उनका 'श्री १०८' कहकर आदर-सम्मान किया जाता था। मुझे स्मरण है कि बाद में धीरे-धीरे इन प्रतिष्ठित धर्मगुरुओं को 'श्री १००८' की प्रतिष्ठा दी जाने लगी। किन्तु अब तो 'महर्षि' या 'जगद्‌गुरु' की उपाधियां भी पर्याप्त नहीं मानी जातीं। इन दिनों कई आचार्य 'भगवान्' बन गये हैं। भविष्य में शायद उन्हें 'परब्रह्म' की उपाधि से भी संतोष न मिले।

सच तो यह है कि विनोबा जी के अनुसार यह जमाना अब विज्ञान और अध्यात्म का है। धर्म और राजनीति के दिन लद चुके हैं। भारतीय परम्परा में मजहब का असली अर्थ तो बहुत ऊंचा है।

इसी दृष्टि से महाकवि तुलसीदास ने केवल 'राम' का ही भरोसा रखा। सिर्फ़ दो अक्षरों के बल पर उन्होंने अपने जीवन में परम शान्ति का अनुभव किया :

"और नहीं कछु काम के,
मैं भरोसे अपने राम के।
दोऊ अक्षर सब कुल तारे,
वारी जाऊं उस नाम पे।

तुलसीदास प्रभु राम दयाधन,
और देव सब दाम के।"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी 'राम नाम' का सहारा लिया और अपने सार्वजनिक जीवन की अत्यन्त कठिन घड़ियों में इसी नाम की शरण गये। अन्त में उनकी पावन स्मृति 'हे राम' में ही समा गई।

इन दिनों विनोवा अपने मौन-काल में 'राम-हरि' लिखकर ही अपने हस्ताक्षर करने लगे हैं। सूक्ष्म-चिन्तन के परिणाम-स्वरूप उन्होंने अपने व्यक्तित्व को शून्यवत् वनाकर 'राम' के हवाले कर दिया है।

यह 'राम' केवल दशरथ-नन्दन राम नहीं है, वह तो अखिल विश्व में समाया हुआ भगवान् है। अपने हस्तलिखित 'विष्णु सहस्रनाम' में विनोवा ने 'हविर्-हरिः' की व्याख्या इस प्रकार की है—"जो भक्त भगवान् को नित्य आहुति देते हैं, उनके सव पापों को भगवान् दूर करते हैं। इसलिए आहुति के तौर पर कुछ न कुछ सेवा समाज की करते रहना चाहिए। ईश्वरार्पण भाव से।" यही है ऋषि विनोवा की जीवन-दृष्टि का सार।

जव मैं नैपाल में भारत का राजदूत था, काठमांडू की सांस्कृतिक संस्था में कार्य करने वाली एक वहन वड़े ही मीठे स्वर में यह भजन अक्सर गाती थी :

"कलियों में राम मेरा, किरणों में राम है,
धरती गगन में मेरे प्रभुजी का धाम है।
कहां नहीं राम है ?"

और अन्त में :

"वही फूल-फूल में, वही पात-पात में,
रहता है राम मेरा प्रभुजी के पास में,
मेरा रोम-रोम जिसको करता प्रणाम है,
धरती गगन में मेरे प्रभुजी का धाम है।"

मुझे पता नहीं कि इस मर्मस्पर्शी काव्य का कौन रचयिता है। लेकिन इस गीत को सुनकर किसका हृदय स्पन्दित न होगा? इसमें वेदान्त-दर्शन का सत्य कितनी सरलता से झलकता है।

इसी 'राम' में भक्त-हृदय मीरा ने अपना 'रतन-धन' पा लिया :

"खरचै न खूटै, वाको चोर न लूटै, दिन-दिन वढ़त सवायो।"

"नहीं छोडूं रे वावा रामनाम,
मेरो और पढ़न सौ नहीं काम।"

और 'नानक' ने भी हमें यही सलाह दी :

"रे मन ! राम सों कर प्रीत,
श्रवण गोविन्द-गुण सुनो
अरु गाउ रसना गीत।"

मेरे पिताश्री एक प्रमुख 'थियोसोफिस्ट' थे, जिन्होंने करीब सभी मजहबों का गहरा अध्ययन किया

था। वे अक्सर हमसे कहा करते थे कि धर्मगुरु हमें केवल मार्ग दिखा सकते हैं, उस रास्ते पर चलना तो हमें ही पड़ेगा। मुमुक्षु-मार्ग पर चलने के लिए संयम, ध्यान और तपस्या की निरन्तर आवश्यकता होती है। किसी जादू या 'शार्ट कट' से काम नहीं चल सकता। उपनिषदों में इसे 'छुरे की धार' की उपमा दी गई है :

"क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्ग पथस् तत् कवयो वदन्ति।"

गीता में भगवान् कृष्ण ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि हम अपने ही मित्र हैं और अपने ही शत्रु हैं। "आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मेव रिपुरात्मनः।" जैन धर्म के तीर्थंकरों ने भी इसी बात पर बहुत जोर दिया है कि बाहरी युद्ध और संघर्ष के बजाय हमें स्वयं पर ही विजय प्राप्त करनी चाहिए।

'धम्मपद' में भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को इसी प्रकार के उपदेश दिये हैं। उनके प्रवचनों को सुनते समय अकसर शिष्यों का ध्यान विचलित हो जाता था। वे एकाग्र मन से उनके सद्विचारों का चिंतन-मनन न कर पाते थे। एक दिन भगवान् ने उन्हें समझाया :

"न पेसं विलोभानि न परेसं कताकतं।
अत्तनो व अवेकच्च कतानि अकतानि च॥"

अर्थात्, न तो दूसरों के विरोधी वचन पर ध्यान दो, न दूसरों के कृत्याकृत्यों को देखो, केवल अपने ही कृत्यों का अवलोकन करो।

किसी दूसरे अवसर पर भगवान् ने भिक्षुओं से कहा, "दूसरों को उपदेश देने वाले को पहले अपना दमन करना चाहिए। वस्तुतः अपना दमन और इंद्रिय-निग्रह करना ही कठिन है।"

महात्मा गांधी का भी यही सन्देश था। "दूसरों के दोष देखने के बजाय हम उनके गुणों को ग्रहण करें। अपने ही अवगुणों को देखें और उन्हें सुधार लें।"

मेरे छोटे चाचा जी प्रोफेसर बद्रीनारायण जी ने एक बार मुझे कबीर का एक दोहा सुनाया :

"देह धरन को दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी काटे ज्ञान से, मूरख भुगते रोय॥"

यहां ज्ञानी का अर्थ है आत्मज्ञान का साधक, जो अपनी आत्मा को परमात्मा राम के अंश के रूप में परखता है। तुलसीदास के शब्दों में :

"ईश्वर अंश जीव अविनाशी,
चेतन, अमल, सहज सुखराशी।"

जब हमें आत्म-साक्षात्कार की अनुभूति होने लगती है, तब हम दुनिया को सिया-राममय देखते हैं और परमानन्द का अनुभव करते हैं। फिर हमारी आत्मा ही हमारी इष्टदेव बन जाती है और 'दाम के देवों' की आवश्यकता नहीं रहती। इस संबंध में मशहूर शायर इकबाल ने कमाल की गजल लिखी है :

"अपने मन में डूब कर पा जा सुरागे जिंदगी।
तू अगर मेरा नहीं बनता, न बन, अपना तो बन॥" □

४ / गोवर्द्धन पर्वत की खोज

उत्तर प्रदेश शासन के वन-विभाग की ओर से आयोजित एक सम्मेलन में भाग लेने के लिए काफी वर्ष पहले मैं आगरा गया था। उस समय मैं योजना आयोग का सदस्य था। आगरा के पास जमुना नदी के किनारे भूमि-संरक्षण का जो कार्य वन-विभाग द्वारा किया गया है, उसका निरीक्षण करने का अवसर भी मुझे मिला। यह भी सुझाया गया कि मैं दिल्ली वापस आते समय मथुरा के पास गोवर्द्धन पर्वत पर जो वन लगाया गया है, उसे भी देखूं। लगभग पचास वर्ष पूर्व जब मैं आगरा कालेज का विद्यार्थी था, तब एक बार गोवर्द्धन पर्वत देखने गया था और उसकी धुंधली-सी स्मृति मन पर छाई हुई थी। इसलिए इस प्रस्ताव को मैंने सहर्ष स्वीकार किया और दूसरे दिन सुबह हम मथुरा से गोवर्द्धन पर्वत की ओर रवाना हुए। वन-विभाग के अधिकारी भी मेरे साथ थे। उन्होंने बड़ी दिलचस्पी के साथ मुझे बताया कि कुछ साल पहले गोवर्द्धन पर्वत बिल्कुल रूखा-सूखा था और उस पर कहीं भी हरियाली न थी। अब इस पहाड़ पर कई प्रकार के पेड़ लगाए गए हैं, जिनके कारण यह स्थान काफी हरा-भरा हो गया है। बहुत वर्षों बाद गोवर्द्धन पर्वत के पुनः दर्शन करके मुझे आनन्द और संतोष होना स्वाभाविक था।

वन-अधिकारी से पूछने पर पता लगा कि गोवर्द्धन पर्वत लगभग ७ मील लम्बा है और ३५० फुट चौड़ा।

"इस पर्वत का इतिहास क्या है ?" मैंने वन-विभाग के अधिकारियों से पूछा।

"कुछ लोगों का खयाल है कि यह पर्वत अरावली श्रेणी का एक हिस्सा है।" उन्होंने उत्तर दिया।

"क्या इसके आसपास और भी कई पहाड़ हैं ?"

"जी नहीं, इसके निकट और कोई पहाड़ नहीं है।"

फिर एक अधिकारी ने धीरे से कहा, "कुछ लोगों का यह भी खयाल है कि यह गोवर्द्धन पर्वत किसी जमाने में विशेष रूप से किसी राजा द्वारा बनवाया गया था।"

"किसलिए ?" मैंने पूछा।

उन्होंने उत्तर दिया, "मथुरा की ओर से इस तरफ जमीन काफी ढालू है। जिस वर्ष अधिक बारिश हो जाती है तब जमीन ढालू होने की वजह से पानी बहकर इस ओर आ जाता है। इस पहाड़ के दूसरी ओर जो गांव हैं वे तो इस पानी के बहाव से या बाढ़ से बच जाते हैं, लेकिन आसपास के दूसरे गांवों में बहुत नुकसान हो जाता है और फसलें नष्ट हो जाती हैं। आम तौर पर बाढ़ की वजह से चारे के लिए भी कोई घास नहीं होती। किन्तु इस पर्वत के कारण अब गायों के चरने की कुछ सुविधा होने लगी है।

बातचीत करते-करते यह भी पता लगा कि इस पर्वत की रचना में अधिकतर पत्थर के टुकड़े ही हैं और बीच-बीच में मिट्टी भरी हुई है। स्थानीय अधिकारी से मैंने जानना चाहा कि इस पर्वत के आसपास कुछ कुएं भी हैं या नहीं ? मालूम हुआ कि पर्वत के नजदीक कोई कुआं नहीं है। आठ-दस फुट नीचे खोदने पर काफी पत्थर निकलते हैं। कुछ वर्ष पहले एक ट्यूब-वेल

खोदने की कोशिश की गई थी, लेकिन वह भी विफल रही। वहां से कुछ दूर पर एक-दो कुएं हैं, जहां से लोग पीने आदि के लिए पानी लेते हैं।

इस तरह वहां लगभग आधा घंटा रुकने के वाद मैं मथुरा की ओर वापस चल पड़ा। रास्ते में मोटर से मैंने फिर गोवर्द्धन पर्वत की ओर ध्यान से देखा और काफी देर तक सोचता रहा कि कृष्ण भगवान् ने इस पर्वत को उंगली पर उठाया था, इसका क्या अर्थ हो सकता है ? सोचते-सोचते अचानक ध्यान में आया कि हो या न हो, यह कृष्ण द्वारा आयोजित श्रमदान का एक प्राचीन और मूर्तिमंत दृष्टांत है। हजारों वर्ष पहले इस क्षेत्र की जमीन ढालू होने की वजह से वार-वार वाढ़ आती रही होगी और प्रतिवर्ष कई गांवों में काफी वरवादी होती रही होगी। कृष्ण भगवान् तो एक कुशल कर्मयोगी थे। इसलिए उन्होंने इस समस्या का एक व्यावहारिक हल ढूंढ़ निकाला होगा और आसपास के गांवों की जनता को आह्वान दिया होगा कि श्रमदान द्वारा इस स्थान पर एक लम्वा वांध या पहाड़ खड़ा किया जाय जो वाढ़ को रोकने में समर्थ हो। उनकी उंगली के इशारे पर ही सैकड़ों-हजारों ग्रामवासियों ने इस योजना को पसन्द करके उसे क्रियान्वित करने में हाथ वंटाया होगा। प्रत्येक कुटुम्व ने उस क्षेत्र से कुछ पत्थर खोद-खोदकर इस पर्वत के निर्माण में सहायता दी होगी। इसलिए प्राचीन कथा मशहूर है कि कृष्ण भगवान् ने अपनी उंगली से गोवर्द्धन पर्वत उठाया और सभी वाल-गोपालों ने उसे उठाने में अपने-अपने हाथों का टेका दिया। इन्द्र के कोप का यही अर्थ हो सकता है कि अधिक वर्षा के कारण उस ओर वाढ़ आ जाती थी और उन ग्रामों को वरवाद करती थी। गोवर्द्धन पर्वत उठाने का यही अर्थ ध्यान में आया कि यह पहाड़ श्रमदान द्वारा जमीन पर उठाया गया, उसी तरह जैसे कारीगरों द्वारा एक दीवार उठाई जाती है।

यह भी ध्यान में आया कि इस पर्वत को 'गोवर्द्धन' का नाम इसलिए दिया गया होगा कि उससे वाढ़ की रोकथाम के अलावा उस पर गायों के चरने का अच्छा प्रवन्ध हो गया होगा और इस प्रकार गोवंश की वृद्धि हुई होगी। मेरे मन में यह स्पष्ट हो गया कि कृष्ण ने इस पर्वत को एक बहुउद्देशीय 'प्राजेक्ट' के रूप में ही वनाया होगा।

आजकल तो हम श्रमदान की चर्चा करते हैं और समझते हैं कि यह हमारी कोई नई ईजाद है। विहार में 'भारत सेवक समाज' द्वारा कोसी वांध का निर्माण हुआ। दिल्ली के पास भी यमुना नदी के किनारे इसी प्रकार का एक वांध वांधा गया है। देश-भर में श्रमदान द्वारा वहुत से छोटे-छोटे प्रोजेक्ट तैयार किये गए हैं। लेकिन हजारों वर्ष पहले कृष्ण ने श्रमदान द्वारा इस गोवर्द्धन पर्वत का निर्माण कराके कितनी सूझ-बूझ और दूरदर्शिता का कार्य किया, यह सोचकर मन में बहुत आनन्द एवं आश्चर्य हुआ। उनकी उंगली के इशारे पर बाल-गोपालों की सहायता से यह पर्वत इन्द्र के कोप का सामना करने के लिए किस प्रकार उठाया गया, इसके रहस्य की झलक भी अचानक मिल गई। भगवान् कृष्ण एक महान राजनीतिज्ञ तथा पराक्रमी योद्धा तो थे ही, किन्तु वे एक कुशल आर्थिक संयोजक भी थे, यह समझ में आने पर मन में बड़ा कौतूहल हुआ। □

५ / एक दीवार की करुण कथा

कुछ वर्ष पहले मैं गोरखपुर का आरोग्य-मंदिर देखने गया था। मुझे यह तो पता था कि गोरखपुर के आसपास भगवान् बुद्ध के जीवन-सम्बन्धी कई प्राचीन स्थान हैं, किन्तु मुझे यह जानकर खुशी हुई कि महात्मा कबीर की पुण्यभूमि भी गोरखपुर से करीब १५ मील दूर ही है। इस स्थान का नाम मगहर है, जो रेलवे का एक छोटा स्टेशन भी है। कबीर की समाधि स्टेशन से करीब आधे मील की दूरी पर है और वहां की सफेद इमारतें ट्रेन में आने-जाने वाले मुसाफिरों को साफ दीख पड़ती हैं। नजदीक ही मगहर गांव है, जहां बुनाई का काम पुराने जमाने से चला आ रहा है।

कबीर के व्यक्तित्व के लिए मेरे मन में छुटपन से आदर और प्रेम रहा है। उनकी कविता सरल किन्तु अत्यन्त मार्मिक है। वे एक पहुंचे हुए संत तो थे ही, किन्तु इस देश में हिन्दू और मुसलमानों में पारस्परिक प्रेम स्थापित करने के लिए उन्होंने अपनी शक्ति लगाई और दोनों को ही कठमुल्लापन से बचाने का यत्न किया :

"अल्ला ग़ैब सकल घट भीतर,
हिरदे लेहू बिचारी ।
हिन्दू-तुरक महं ऐकै,
कहे 'कबीर' पुकारी ।"

इसलिए मगहर में उनकी समाधि देखने की सहज इच्छा हो उठी और मैं एक दिन वहां जा पहुंचा। कहते हैं, जब कबीर का देहान्त हुआ तो हिन्दू और मुसलमान उनके शरीर के अन्तिम संस्कार के लिए आपस में झगड़ने लगे। मुसलमान उनके शरीर को दफनाना चाहते थे और हिन्दू उसे जलाना। अन्त में जब चादर उठाकर देखा गया तो सिर्फ दो फूल रह गये थे। एक फूल हिन्दुओं ने ले लिया, दूसरा मुसलमानों ने, और दोनों ने अपने-अपने धर्मानुसार समाधियां बना लीं। आज भी ये दोनों समाधियां—मंदिर और मस्जिद—बनी हुई हैं और दोनों में भजन-कीर्तन होते रहते हैं।

पहले मैं हिन्दुओं के मंदिर में गया। वहां दो कबीरपंथी आपस में कुछ चर्चा कर रहे थे। मालूम हुआ कि शाम को रोज थोड़े समय के लिए कबीरवाणी गायी जाती है। वर्ष में एक बार अगहन की पूरनमासी को बनारस के महंत श्री रामविलास दासजी मगहर पधारते हैं और उस दिन बड़ा उत्सव होता है, जिसे भंडारा कहते हैं। थोड़ी देर मंदिर में बैठकर फिर मैंने मुसलमानों की मस्जिद की ओर जाना चाहा।

"इधर तो रास्ता नहीं है, साहब !" उत्तर मिला।

"क्यों ?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"बीच में दीवार जो है।"

"यह दीवार कब से है ?"

"यह न पूछिये, बाबू ! यह तो बहुत अरसे से है।"

"क्या दीवार में एक छोटा दरवाजा भी नहीं, इधर-उधर जाने के लिए ?" मैंने पूछा।

"नहीं दरवाजा रखने से क्या फायदा ?" हमारा उधर जाना-आना ही नहीं है !"

यह सुनकर मुझे बहुत बुरा लगा। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही कबीरपंथी हैं। कबीर ने दोनों को एक करने का अथक प्रयत्न किया, फिर भी दोनों एक न हो सके ! दोनों के बीच में अंधी दीवार खड़ी है।

मंदिर के बाहर जाकर मैं फिर मस्जिद की ओर गया। अन्दर जाकर वहां के मुसलमान कबीरपंथी से बातचीत की। मालूम हुआ कि वहां भी वर्ष में एक बार बड़ा भंडारा होता है।

"भंडारे के समय आप सब—हिन्दू-मुसलमान—एक साथ खाते-पीते हैं न ?" मैंने सहज पूछा।

"नहीं साहब, हम लोग आटा, दाल, चावल, शक्कर मंदिर में भेज देते हैं और फिर वहां भोजन पकता है।"

"और क्या इसी प्रकार हिन्दू भाई आप लोगों के पास भोजन-सामग्री भेज देते हैं ?"

"नहीं, वहां से तो भोजन बना-बनाया आता है !"

"ऐसा क्यों ? हिन्दू भाई आपके यहां का बना भोजन क्यों नहीं खाते ? आप दोनों ही कबीरपंथी हैं न ?"

"जी हां, हम सब कबीरपंथी हैं। कोई भी मांस-मछली नहीं खाता, पर हिन्दू लोग हमारे हाथ का बना नहीं खाते। हम तो उनका बनाया खा लेते हैं।"

आखिर कबीर-पंथियों ने भी इस छुआछूत को कायम रखा। यह जानकर बहुत रंज हुआ। हिन्दू और मुसलमानों के बीच की छुआछूत की खाई ने ही अन्त में भारत के दो टुकड़े कर डाले, बीच में दीवार खड़ी हो गई। भाई-भाई में विद्वेष की ज्वाला भड़क उठी।

"यह दीवार क्या शुरू में ही थी ?" मैंने जानना चाहा।

"नहीं, पहले दीवार नहीं थी। लेकिन बार-बार हिन्दू-मुसलमानों में झगड़े होते रहे। फिर करीब अस्सी साल पहले एक अंग्रेज अफसर ने दोनों के बीच दीवार खड़ी कर दी।"

एक अंग्रेज अफसर ने मगहर के हिन्दू-मुसलमान कबीरपंथियों के बीच दीवार खड़ी कराई। और अस्सी वर्ष बाद एक अंग्रेज गवर्नर जनरल ने देश के हिन्दू और मुसलमान के बीच राजनैतिक दीवार खड़ी कर दी। देश के दो टुकड़े हो गए। बीच में एक दरवाजा भी नहीं दीखता है। कितना करुणाजनक इतिहास है यह ! पाकिस्तान की नींव के दर्शन मुझे अस्सी वर्ष पूर्व बनी मगहर की इस दीवार में हुए। कितने भयानक दर्शन थे वे ! □

६ / सर्वोदय

आजकल 'सर्वोदय' शब्द बहुत सुनाई पड़ता है। जिधर देखो उधर 'सर्वोदय संघ', 'सर्वोदय मंडल', 'सर्वोदय समाज' दिखाई पड़ते हैं और अब तो 'सर्वोदय घी', 'सर्वोदय क्लब', और शायद 'सर्वोदय मिठाई' भी चल पड़ी है।

लेकिन 'सर्वोदय' का मतलब क्या है? सर्व-उदय—सबका उदय, सबकी भलाई—ऐसा समाज, जिसमें बूढ़े-बच्चे, अमीर-गरीब, स्त्री-पुरुष, मालिक-मजदूर—सबकी ही भलाई हो।

यह 'सर्वोदय' शब्द आया कहां से?

जब गांधीजी दक्षिण अफ्रीका थे तब उन्होंने इंग्लैंड के मशहूर लेखक रस्किन की किताब पढ़ी जिसका नाम था, 'अन्टू दिस लास्ट'। गांधीजी को यह किताब बहुत पसन्द आयी। उन्होंने उसका गुजराती में स्वयं अनुवाद किया—और नाम दिया 'सर्वोदय'। इसका अनुवाद हिन्दी तथा दूसरी भाषाओं में भी हो गया।

प्रश्न हो सकता है कि रस्किन की किताब में, जिसका नाम गांधीजी ने 'सर्वोदय' रखा, क्या लिखा था?—यह किताब ईसाईधर्म की किताब बाइबिल की एक कहानी के आधार पर लिखी गई है। यह कहानी बड़ी दिलचस्प है।

एक जमींदार ने अपने बगीचे में काम करने के लिए एक दिन कुछ मजदूर रखे। सुबह जब वह बाजार गया तो उसने कई लोग मजदूरी की तलाश में खड़े देखे। उसने एक आदमी को चुना और उसको १ रुपये की मजदूरी ठहराकर बगीचे के काम पर लगा दिया। दोपहर में वह जब बाजार गया तो उसने फिर दो आदमी काम की तलाश में खड़े देखे। उसे दया आई और उनमें से एक मजदूर और काम पर ले लिया। जब वह शाम को बाजार गया तो देखा कि एक आदमी खड़ा था, जिसे सुबह से मजदूरी मिली ही नहीं थी। उसे रहम आया और उसे भी बगीचे के काम में लगा दिया। एक घंटे बाद ही अंधेरा होने लगा और उसने तीनों मज़दूरों को छुट्टी दे दी। तीनों को बुलाया—एक-एक रुपया मजदूरी दे दी।

इस कहानी से यह पता चल जाता है कि उस पुस्तक में क्या लिखा है। उसका सार यही है कि हरेक आदमी को मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट भरना चाहिए, एक-दूसरे की मदद करनी चाहिए और प्रेम से मिल-जुलकर रहना चाहिए ताकि सभी का कल्याण हो।

गांधीजी ने इस किताब को सिर्फ पढ़ा ही नहीं, उसके अनुसार अपने जीवन को भी बनाया और ढाला।

पहली बात उन्होंने यह सीखी और हमें सिखाई कि हरेक आदमी को स्वावलम्बी होने की कोशिश करनी चाहिए। जो बिना मेहनत किये खाता है वह चोर समझा जाना चाहिए। हमें अपने पसीने की रोटी खाना चाहिए। अन्न, साग-भाजी उगा लेनी चाहिए। जहां तक हो सके, स्वयं कातकर-बुनकर कपड़ा पहनना चाहिए। दूध, तेल वगैरह भी। उसमें आनन्द मिलता है।

दूसरी बात है, प्रोत्साहन देना चाहिए पड़ोसी धर्म को। अगर कुछ चीजें बाहर से खरी-

दनी हैं तो अपने पड़ोसी की खरीदें, चाहे वे कुछ महंगी भले हों। खादी और ग्रामोद्योगों को विलायती तथा मिल की बनी चीजों के बजाय स्वदेशी चीजें ही लेनी चाहिए।

हमारे जीवन में प्रेम और सच्चाई हो। कितना ही अच्छा काम हम करना चाहें, लेकिन उसमें प्रेम और सच्चाई न हो तो बेकार हो जाता है। उसमें आनंद ही नहीं आता।

आजादी के लिए भी उन्होंने हिंसा और झूठ का उपयोग नहीं किया।

गरीबों की मदद करना हो तो चोरी करके, डाका डालकर, दूसरों का धन लूटकर नहीं।

गांधीजी के देहान्त के बाद मार्च १९४८ में 'सर्वोदय समाज' की स्थापना हुई।

सारे देश और सारी दुनिया के लोग चाहें तो इस सर्वोदय के तरीके से एक साथ सबकी भलाई और सबके जीवन का सुंदर विकास हो सकता है। इसमें हरेक को आगे बढ़ने के लिए दूसरे किसी को भी पीछे हटाने की जरूरत नहीं है। ऐसा सुंदर रास्ता है यह।

इस तरह 'सर्वोदय' जिंदगी का एक नया तरीका है। वह तरीका है प्रेम और मिल-जुलकर काम करने का, अपनी मेहनत से नित नई चीज बनाने-सीखने का और अपनी जरूरत की चीजें आपस में मिल-जुलकर पूरी कर लेने का। बिना भेदभाव के सेवा करने का और हिम्मत तथा सच्चाई से अपने रास्ते पर आगे बढ़ने का। □

७ / आराम हराम है

काफी वर्ष पहले की बात है। गांधीजी वर्धा में खादी और ग्रामोद्योग के महत्त्व पर भाषण दे रहे थे। वे समझा रहे थे कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी आजीविका के लिए दिन में आठ घण्टे परिश्रम करना चाहिए। यह श्रम उसके शारीरिक और मानसिक विकास के लिए जरूरी है। एक सज्जन बीच ही में खड़े होकर पूछने लगे, "बापूजी, अगर चार ही घण्टे काम करें तो क्या हर्ज है? मनुष्य को कुछ फुरसत भी तो मिलनी चाहिए।"

"दिन-रात मिलकर चौबीस घण्टे होते हैं न?" गांधीजी ने हंसकर पूछा।

"जी हां।"

"आप आठ घण्टे सोते होंगे?"

"जी नहीं, छह घण्टे की नींद मेरे लिए काफी है।"

"बहुत अच्छा। तो फिर बचे अठारह घण्टे। उसमें से सिर्फ चार घण्टे आप निर्वाह के लिए मेहनत करेंगे। तो फिर कितने घण्टे बचे? जरा गणित कीजिए!" गांधीजी ने मुस्कराकर कहा।

"चौदह घण्टे!"

"तो इन चौदह घण्टों का आप क्या करेंगे? क्या दिन-भर हजामत बनाएंगे?"

गांधीजी ने किया तो मजाक ही था, पर उनके प्रश्न के पीछे दुनिया की एक जटिल समस्या छिपी हुई है। इस यंत्र-युग में मशीनें बड़ी तेजी से मनुष्य का काम कर देती हैं। इन्सान

को अपने हाथों से बहुत कम मेहनत करने की जरूरत पड़ती है। अपनी पूंजी के बल पर अमीर लोग एक उंगली हिलाए बिना करोड़ों रुपये कमाते हैं और आराम-चैन करते हैं। पर मशीनों के साथ काम करते-करते खुद मशीन बन जाने वाले बेचारे मजदूर उनके लिए पसीना बहाते हैं और फिर भी उन्हें गरीबी में सारी जिन्दगी गुजारनी पड़ती है। मशीनों का भद्दा शोर-गुल और उनका वेग उन्हें थोड़े घण्टों में ही थका देता है। इसलिए वे मांग पेश करते हैं कि उन्हें कम घण्टे काम दिया जाय। अपने अवकाश का समय वे अमीरों की तरह नाच-गान, सिनेमा-थियेटर में बिताने की चाह रखते है।

अब जरा अमीरों की जिन्दगी की ओर भी एक नजर डालिए। उनके खजाने पर धन की वर्षा दिन-रात होती है। फिर भी उन्हें चैन नहीं, सन्तोष नहीं। अपना माल खपाने के लिए वे नये देश खोजते हैं, आपस में लड़ते हैं और जरूरत पड़ने पर युद्ध भी छिड़वा देते हैं, जिसमें लाखों नौजवानों का खून पानी की तरह बह जाता है। पर इन करोड़पतियों को तो हाथ-पैर हिलाने की भी आवश्यकता नहीं। उनका सारा कारबार उनके मुनीम-गुमाश्ते करते रहते हैं। आखिर उनका वक्त कटे कैसे ? रात को देर तक नाच-तमाशे और शराबखोरी के बाद सुबह देर से उठना, छोटी हाजिरी पलंग पर पड़े-पड़े मिल जाती है। आराम से हजामत बनाना, तबीयत हुई तो नहाकर, नहीं सिर्फ मुंह-हाथ धोकर ड्राइंगरूम में बैठ जाना और यार-दोस्तों से गप-शप करना। चाय और अखबार भी हाजिर हो जाते हैं। सुबह बैठकर शाम का कार्यक्रम बनाना, चाय-पार्टी, डिनर आदि का। दोपहर में कुछ समय के लिए अपने आफिस में हो आना, फिर तीसरे पहर की चाय, ब्रिज, टेनिस। शाम को एक बार फिर हजामत, नाच, सिनेमा आदि में जाने के पहले। बस, इसी तरह वे कुछ न कुछ करते रहने में ही सुबह से रात तक मशगूल रहते हैं। हां, कुछ अपवाद तो जरूर होते हैं, पर वे अपवाद नियम को ही सिद्ध करते हैं।

लेकिन क्या ये अमीर इतनी फुरसत पाकर भी सुखी हैं? दिन-भर खाते-पीते हैं, पर शारीरिक श्रम न होने से उनका हाजमा हमेशा खराब रहता है और टानिकों के सहारे उनकी जिन्दगी की गाड़ी चलती है। यूरोप और अमेरिका में जाकर देखिए इन धनिकों का जीवन ! आपको उनके चेहरे पर परेशानी, थकान और व्याकुलता ही नजर आएगी। उनके जीवन में रस नहीं, जायका नहीं।

एक गरीब किसान ने शंकरजी की तपस्या की। उसे वरदान भी मिल गया। शंकरजी जरा जल्द ही प्रसन्न हो जाते हैं। उस किसान की सेवा में एक भूत दिया गया। बात निकलने की देर नहीं कि चीज हाजिर। जो चाहो सो मिल सकता था। पर एक बेढब शर्त भी थी। अगर उस भूत को कोई काम न बताया जाय तो वह किसान को ही हड़प कर जायगा।

भूत-नौकर से फरमाइशें हुईं—महल की, सैकड़ों नौकरों का, अच्छी स्वादिष्ट मिठाइयों की, रंग-बिरंगी पोशाकों की। फिर हाथ जोड़कर भूत ने पूछा, "और ?"

"ठहरो, सोचकर बताता हूं।" किसान बोला।

पर शंकरजी की शर्त के अनुसार वह ठहर नहीं सकता था। किसान को और तो कुछ न सूझा, वह घबराकर बोला, "मुझे शंकरजी के पास ले चलो।"

"इस भूत से जान बचाइए।" किसान हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा, "महाराज, मुझे यह शान-शौकत कुछ नहीं चाहिए। मैं फिर किसान बनना ही पसन्द करूंगा।"

"एवमस्तु।" शंकरजी ने कहा।

बेचारे किसान के जी में जी आया। जान बची, लाखों पाए। शंकरजी का यह भूत कोरी कल्पना नहीं है। यह भूत तो हम सबके अन्दर रहता है और अगर उसे भरपूर काम न दिया जाय तो वह हमारा जीवन ही हराम कर डालता है। यह सर्वव्यापी भूत हमारा मन है, जिसको वश में रखने के लिए मुनि और सन्त भी सदा प्रयत्नशील रहते हैं। मेरे खयाल से अगर किसी को कड़ी सजा देनी हो तो उसे कुछ भी काम न देकर सिर्फ बैठाए रखना चाहिए। बर्नार्ड शा ने ठीक ही कहा है, "अनन्त अवकाश ही नरक की सबसे अच्छी व्याख्या है।"

यूनान के टेण्टेलस की कथा शायद पाठक जानते हों। उसे देवों का एक भयंकर शाप था। उसे एक पानी के तालाब में खड़ा कर दिया गया था। जब प्यास लगती और वह प्यास बुझाने के लिए अपना सिर झुकाता तो पानी की सतह नीची हो जाती और टेण्टेलस प्यासा ही रह जाता। धनिकों का भी यही हाल है। उनके चारों ओर सभी प्रकार की भोग-सामग्री रहती हैं, पर उनकी विषय-वासना तृप्त नहीं होती। उनकी हालत उस प्यासे नाविक के समान है, जो अपनी किश्ती पर जा रहा है। उसके चौगिर्द पानी ही पानी है, पर नमकीन होने के कारण उसकी प्यास नहीं बुझती। जीवन की मिठास श्रम में है, विश्राम में नहीं। जिन्दगी का जायका कड़ी मेहनत में है, आराम-चैन में नहीं। पंडित नेहरू कहते थे, "आराम हराम है।"

सन्त कबीर एक मामूली जुलाहे थे। दिन-भर करघे पर कपड़ा बुनते और उसी से अपना निर्वाह करते। पर सूत बुनने के साथ-साथ उनके जीवन के आनन्द के तार भी बुन जाते थे, उनके आह्लाद का क्या ठिकाना! उनका जीवन परम शान्ति की एक विमल हिलोर बन चुका था।

"सुख-दुःख से कोई परे परम-पद,
तेहि पद रहा समाई।"

जो लोग कम घण्टे काम करके ज्यादा फुरसत चाहते हैं उनकी दलील है कि वे अवकाश का उपयोग कला, साहित्य और विज्ञान के निर्माण में करेंगे। किन्तु उन्होंने शायद दुनिया के बड़े-बड़े कलाकारों, साहित्यिकों और वैज्ञानिकों के जीवन-चरित्र नहीं पढ़े हैं। पहले विज्ञान को ही लीजिए। बहुत-से आविष्कारक मजदूर ही रहे हैं, जो अपने हाथ से काम करते थे, केवल अपनी प्रयोगशाला में बैठकर मजदूरों पर हुक्म नहीं चलाते थे। गैलीलियो, जिसने यूरोप में पहली बार यह सिद्ध किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, हकीमी का पेशा करता था। आकाश के निरीक्षण के लिए अपनी दूरबीन खुद बनाता था, उनके कांच स्वयं घड़ता था। स्टीफेंसन, जिसने सबसे पहले इंजिन बनाया, एक साधारण मजदूर था। यही हाल वाट और आर्कराइट का था, जिन्होंने कई तरह की कलें ईजाद कीं। अंग्रेजी साहित्यकारों में आदिकवि चौसर बहुत दिनों तक एक सिपाही रहा, बेकन एक प्रख्यात और व्यस्त वकील था, सर वाल्टर रेले सिपाही और नाविक रहा, शेक्सपियर शुरू में थियेटर आनेवालों के घोड़े संभालने का धन्धा करता था। डा० जानसन का जीवन तो एक अनन्त संघर्ष ही था। इटली का अमर कवि दांते बहुत समय तक दवाइयां बेचने का रोजगार करता था। फ्रांस के प्रसिद्ध लेखक वालटेयर का

आदर्श था, 'हमेशा काम में लगे रहना।' संसार के प्रसिद्ध चित्रकारों, शिल्पियों और संगीतज्ञों की जिन्दगी इसी तरह की रही है। वे अपने व्यस्त और संघर्ष से भरे जीवन के अवकाश की कुछ घड़ियों का सदुपयोग करके ऊंचे से ऊंचे कलाकार बन गए। श्रम और संघर्ष से ही मनुष्य की सभी शक्तियों का विकास होता है, चैन की बंसी बजाकर नहीं।

पर मुझे गलत न समझें। मेरा यह मतलब नहीं कि हमें अवकाश की बिलकुल ही जरूरत नहीं। थोड़ी फुरसत तो हमारे मन और शरीर को आराम देने के लिए आवश्यक है। पर आज की दुनिया में काम और श्रम को अभिशाप मानकर, अवकाश को वरदान मान लेने का जो रवैया है, मैं उसके खिलाफ अपनी आवाज उठाना चाहता हूं। बाइबिल के अनुसार 'अपने ललाट के पसीने से रोटी खाना' ईश्वर का इन्सान को शाप है, पर हम भूल जाते हैं कि वह भगवान् का मनुष्य को सबसे बड़ा वरदान भी है। कारलाइल तो श्रम को ही परमेश्वर की पूजा मानता था।

और सच बात तो यह है कि जो लोग अधिक अवकाश की मांग पेश करते हैं वे काम से घृणा नहीं करते, बल्कि जिस तरह का काम आज करना पड़ता है, उसमें उन्हें दिलचस्पी नहीं है। एक मिल-मजदूर अपने श्रम में क्योंकर रस ले सकता है? उसे तो बस कलों की तरह कलों की देखरेख करना और अपनी मजदूरी प्राप्त करना है। इसके अलावा न उसे कोई जानकारी है, न जिज्ञासा। मशीनों की कर्कश आवाज से, गर्मी से, मिल की दूषित हवा से वह घबरा उठता है। रोजाना एक-सा काम करते रहने से वह व्याकुल हो जाता है, उसकी नसें तनने लगती हैं, दिमाग चक्कर खाने लगता है, उसका दिल नीरस बनने लगता है। फिर वह बेचारा आफत का मारा कम घण्टे काम करने की और अधिक वेतन की मांग पेश न करे, तो क्या करे?

जब लोग अपने घर में या अपने गांव की छोटी-सी दुकान में काम करते थे उन्हें अपनी छोटी-सी मशीन—चर्खा या करघा—का सारा भेद मालूम रहता था। जो चीज वे तैयार करते थे, उसकी पूरी जिम्मेदारी उनकी होती थी। अपने माल की उत्पत्ति में उन्हें आनन्द और संतोष का अनुभव होता था। अपने परिश्रमालय में वे खुली हवा में शान्ति से काम करते थे—बारह-बारह घण्टे, चौदह-चौदह घण्टे—फिर भी ऊबते न थे। वे तन्दुरुस्त थे, आजाद थे, कलाकार थे। उनका दिल भाईचारे से रसीला बना रहता था। उनका दिमाग ताजा व तेज रहता था। वे अपनी छोटी, स्वच्छ कुटी में आराम से जिन्दगी बिताते और काम करते-करते अपने सिरजनहार की भक्ति के भजन भी गुनगुनाते रहते थे।

लेकिन आज का बेचारा मजदूर धन के लालच में गांव छोड़कर शहर गया, पर न उसे मन की शान्ति है, न वह खुशहाल ही है। जो दो पैसे ज्यादा कमाता है, उसे अपनी थकान और नीरस जीवन को भूलने के लिए शराब वगैरा पर न्योछावर कर देता है। उसे न माया मिली, न राम; न दीन और न दुनिया।

मैं नहीं चाहता कि हम ज्ञान-विज्ञान की उन्नति का फायदा न उठायें। चीन-जापान की तरह बिजली की ताकत से छोटी उपयोगी मशीनों का आविष्कार करके अपनी उत्पादन-क्षमता बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए। रूस की तरह गांवों में सहकारी खेती और सहकारी उद्योग शुरू

करना उचित ही है। लेकिन फुरसत के लालच में, मोह में, आवश्यकता से अधिक कल-पुर्जों का प्रयोग करना भी उचित नहीं। उससे बेकारी बढ़ेगी। काम रसहीन और थकाने वाला बनेगा। सुस्ती जागेगी, ऐश-आराम की वृत्ति उमड़ेगी। आठ घण्टे सोकर और आठ घण्टे आजीविका के लिए मेहनत करके भी आठ घण्टे बच रहते हैं। इन आठ घण्टों में हम जो चाहें कर सकते हैं। चौबीस घण्टों में आठ घण्टे की फुरसत कम नहीं है—तैंतीस फीसदी, एक तिहाई।

आज अमीरों को अवकाश-ही-अवकाश है और गरीबों को काम ही काम। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि समाज की वर्तमान आर्थिक रचना जड़ से बदली जाय। तभी सबको श्रम और विश्राम उचित मात्रा में मिल सकेंगे। फिर अवकाश का मोह नहीं रहेगा, दिन-भर हजामत बनाते रहने की नौबत भी नहीं आयगी। □

८ / है बहारे बाग दुनिया चंद रोज

शरद् पूर्णिमा की चमकती-सी चांदनी में बसौंधी बनाकर खाना इस देश में एक आम रिवाज है। शुभ्र चांदनी में सफेद दूध का खयाल आना स्वाभाविक ही है। पर लोगों का यह भी खयाल है कि उस दिन चांद से अमृत की एक बूंद टपकती है। हरेक व्यक्ति चाहता है कि वह बूंद उसकी ही बसौंधी में गिरे और अमर बना दे। अमृत की बूंद की यह कल्पना केवल किसी कवि की उड़ान हो सकती है। और यह बात लोग नहीं समझते, ऐसी बात नहीं। पर फिर भी हम इस कल्पना का खयाल बड़े चाव से करते हैं और मन में शायद एक नन्हीं आशा भी छिपी रहती है—काश, यह बात सच हो! अगर उसमें सच होने की थोड़ी-सी भी सम्भावना हो तो अमर हो जाने का सुनहरा मौका क्यों खोया जाए?

अमृत की बूंद की यह कल्पना है बड़े मौके की। वह इन्सान के दिल की एक छिपी हसरत का इजहार कर देती है। हम चाहे कहें या न कहें, पर सभी लोग यह चाहते जरूर हैं कि मुमकिन हो तो अमर बन जाएं और इस ख्वाहिश को पूरा करने की कोशिशें अजीब-अजीब शक्लों में जाहिर होती हैं। हजारों वर्ष पहले के राजाओं ने अपनी यादगार कायम रखने के लिए विशाल 'पिरामिड' खड़े करवाए। उनके अन्दर राजाओं के 'मृत शरीर' आज भी हैं। इतने लम्बे अर्से तक लाशों को भी कायम रखने के लिए क्या-क्या तरकीबें निकाली थीं और कौन-कौन से मसाले तैयार करवाए थे, आज भी हमें नहीं मालूम, पर उनकी सूझ बड़ी तेज थी और उनकी हिकमत की बदौलत उनकी यादगार अभी कायम है भी, भले ही हम उनके अलग-अलग नाम न जानते हों।

शाहजहां ने अपनी प्रेयसी की स्मृति अमर करने के लिए उस ताजमहल का निर्माण करवाया था, जो न जाने कितने कवियों और कलाकारों को प्रेरणा और स्फूर्ति देता रहा है, और आज भी देता है। उसने दुनिया के कोने-कोने से लोगों को अपनी खूबसूरती से खींचा है। वह

और कितनी सदियों तक दुनिया को शाहजहां और मुमताज की दु:ख-भरी प्रेम-कहानी की याद दिलाता रहेगा, कौन जाने। पर समय के सदा बढ़ते कदम के नीचे कुचल जाने से बचने का शाहजहां ने एक भगीरथ प्रयत्न किया, इससे कौन इन्कार कर सकता है ?

आज भी विभिन्न देशों के राजा अपना नाम कायम रखने के लिए आलीशान महल बनवाते हैं। धनी लोग दान देकर ऐसी संस्थाओं का निर्माण कराना चाहते हैं, जो उनकी कीर्ति को हमेशा फैलाती रहे। कवि और लेखक ऐसी कृतियों को जन्म देने का सतत प्रयत्न करते रहे हैं जो उनके नाम को सदियों तक दुनिया में रौशन करती रहें। शिल्पी और कलाकार ऐसी कलापूर्ण कारीगरी दर्शाना चाहते हैं जो उनकी स्मृति और कला को अमर बना दें। राजनीतिज्ञ देश में ऐसी उथल-पुथल मचा देने की कोशिश करते हैं, जो इतिहास में उनका नाम अमिट अक्षरों में लिखा दें। और बेचारे आम इन्सानों की यही तमन्ना रहती है कि उनकी पुश्तें कायम रहें, ताकि उनका वंश न डूबे। उनकी कब्र पर नाम लिखा रहे और जो लोग कब्रिस्तान में किसी वक्त आयें वे उनका नाम ही पढ़कर उनकी याद कर लें। फिर भी न जाने बेचारे कितने गरीबों को कब्रें भी नसीब नहीं होतीं और उनका नाम-निशान ही इस दुनिया से हमेशा के लिए उठ जाता है। न जाने कितने फूल बिना खिले ही मुरझा जाते हैं और उनकी हस्ती सदा के लिए मिट जाती है।

पौराणिक साहित्य में समुद्र-मंथन का वर्णन काफी रोचक है। उसका ठीक अर्थ क्या लगाया जाता है, मुझे पता नहीं। शायद कोई रूपक ही होगा। पर मैं तो इस समुद्र-मंथन को मनुष्य के हृदय-मंथन के ही रूप में देखता हूं। जो रत्न उस मंथन के बाद बाहर निकले थे, वे केवल मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं और आकांक्षाओं के प्रतीक हैं। अमरत्व की भावना मनुष्य में शुरू से ही रही है और उसकी कामना का प्रतीक अमृत है। जिन देवों ने उस अमृत का पान किया, वे अमर हो गए। या यों कहें कि चूंकि अमृत पीकर अमर हो गए, इसलिए हम उन्हें देवता मानते हैं। चूंकि सुर अमर हैं, हम उन्हें पूजते हैं और उन्हें पूजकर खुद भी अमर होने की लालसा को शायद अनजाने ही व्यक्त करते रहते हैं।

लेकिन अमर होने की यह ख्वाहिश इन्सान में क्योंकर पाई जाती है ? क्या इसलिए कि वह इस दुनिया में हमेशा के लिए जिन्दा रहना चाहता है ? अगर हम अपने दिलों को टटोलकर देखें तो मौत इतनी बुरी चीज नहीं है, जितनी हम उसे गफलत में समझते हैं। क्या सचमुच हम इस संसार में सदा के लिए रहना चाहते हैं ताकि उसके भोग भोगें ?

अगर इस दुनिया में मौत न होती तो हमारा जीवन क्या ज्यादा सुखी होता ? मैं ऐसा नहीं मानता। अगर मौत न होती तो हम दुनिया से तंग आकर खुदकशी करने की कोशिश करने लगते। यूनान के साहित्य में एक ऐसी कथा है भी। एक नौजवान, जिसको अमरत्व का वर मिला था, अपनी जिन्दगी से बिलकुल ऊब गया और मामूली इन्सानों को बड़ा भाग्यशाली मानने लगा, जिनके लिए मृत्यु ईश्वर की एक कुदरती देन है। अगर मौत न होती तो इन्सान अपनी मुहब्बत और हमदर्दी की भावनाओं को धीरे-धीरे खो बैठता। मां-बेटा, भाई-बहन, पति-पत्नी और मित्र एक-दूसरे से प्रेम करते-करते आखिर नीरस बनने लगते और भगवान से मौत की प्रार्थना करते। मौत का डर हमारे दिलों को जोड़े रखता है, एक-दूसरे के सुख-दु:ख में हमदर्दी का संचार कराता

है और चंद दिनों की जिन्दगी लड़-भिड़ कर नहीं, बल्कि मुहब्बत से पेश आकर विताने को प्रेरित करता है। हम अनायास गाने लगते हैं :

"है वहारे वाग दुनिया चंद रोज़ !
फिर तुम कहां मैं कहां ऐ दोस्तो ॥
साथ है मेरा तुम्हारा चंद रोज़ !"

अगर मौत न होती तो फिर हम परमेश्वर को भी क्यों याद करते ? इस दुनिया में मृत्यु का भय ही हमारी जिन्दगी का समतोल वनाए रखने में पूरी मदद करता है, नहीं तो हम ऐश-आराम में डूवकर अपना जीवन ऐसा वना डालते हैं कि पशु-पक्षी भी हमारी ओर देखकर शर्माते और हंसते। मौत के वाद हमें अपने कर्मों के अनुसार ही सुख या दुःख हासिल होगा, इसी खयाल से हम पुण्य कमाने की कोशिश करते हैं और पाप से दूर रहने का यत्न करते हैं। अगर इसी दुनिया में हमेशा के लिए रहना हो तो फिर पाप और पुण्य की हम फिक्र क्यों करने लगे ? तव तो सुख और दुःख के निर्माता हम ही वन जाते और दूसरों को दवाकर और चूसकर सदा अपने-अपने आराम की फिराक में ही रहते।

हम फिर अमरता के पीछे इतने पागल क्यों रहते हैं ? हम क्यों चाहते हैं कि हमारा नाम हमेशा कायम रहे और हमारी कारगुजारियां इस दुनिया में सदा चमकती रहें ? शायद इसीलिए कि इस वदलते, विगड़ते और क्षणिक संसार में हम अपने जीवन की यादगार को अमर वना दें। विनाश में अविनाशी हस्ती और नाम को स्थापित कर दें। मरण के वीच अमरता का निर्माण कर सकें।

असली वात यह है कि हम अपनी आत्मा की अमरता नहीं पहचानते हैं, पर यह हमारी आत्मा का ही अमरत्व भाव है, जो इस दुनिया में रहता है। अगर हम अपने अविनाशी स्वरूप को जानते तो फिर नश्वर संसार में अपनी यादगार अमर करने की फिक्र में न रहते। पर अपनी हस्ती और नाम को कायम रखने की कोशिश कर हम यही अनजाने प्रकट करते हैं कि हमारे अन्दर ऐसा कोई शाश्वत तत्त्व है, जो हमारे जीवन पर अपनी झलक और छाया डाले विना नहीं रहता। मरने के बाद हमारा क्या होगा, हम जानते नहीं। इसीलिए अपनी यादगार दुनिया में ही स्थायी और सुरक्षित कर देना चाहते हैं। यह प्रयत्न है तो विलकुल वेकार, हमारा भोलापन ही है, क्योंकि मरने के वाद हमें इससे क्या कि हमारा नाम कायम रहता है या नहीं। हमें उसका कोई इल्म न हो सकेगा। पर हमारे अन्तरशव्द की गूंज अनायास ही हमारे दिलों में इस तरह की आकांक्षाएं पैदा कर देती है।

किन्तु क्या अमरता का इस तरह पीछा करने से हम अमर हो सकते हैं ? आज तक न जाने कितने राजा और उनके साम्राज्य फले-फूले और फिर मिट्टी में मिल गए, न जाने कितने महल वड़ी कुशलता से वने, शान-शौकत से सजे रहे और फिर वेचिराग हो गए; न जाने कितने महान् ग्रन्थ लिखे गए, जिनका आज नामोनिशान भी नहीं है; न जाने कितनी संस्थाएं कायम की गईं, जिनका कोई भी लेखा-जोखा मौजूदा नहीं; न जाने कितने राजनीतिज्ञ और नेता अपने-अपने समय में जनता के देवता वने रहे और वाद की पीढ़ियों को उनका नाम भी याद न रहा।

दूसरी ओर ऐसे भी काफी ग्रन्थ हैं, जिनके लेखकों के नाम और जीवन के बारे में हम नहीं जानते, पर जिनकी हस्ती करोड़ों लोगों के दिलों में है और रहेगी। वेदों, पुराणों व उपनिषदों के सभी कवियों के ठीक नाम हमें नहीं मालूम। उन साधक कवियों ने यह भी फ़िक्र न की कि उनका नाम अमर हो। पर इन महान ग्रन्थों का स्थान दुनिया के अन्त तक—अगर दुनिया का कोई अन्त होगा—अवश्य रहेगा। अजन्ता-एलोरा जैसे कला के ऐसे बेशकीमती और बेमिसाल खजाने हैं, जिनके शिल्पी और चित्रकारों ने अपना नाम भी बताने की जरूरत नहीं समझी। हिन्दुस्तान और अन्य देशों में न जाने कितने साधु-सन्त हो गए, जिनके 'वचन' और 'बोल' आज भी लाखों की जबानों पर हैं, लेकिन जिनकी जिन्दगी के हाल का हमें जरा भी पता नहीं। इन कवियों, कलाकारों, साधु-सन्तों ने अपने हृदय की प्रेरणा से अमूल्य तथा अमर चीजों का निर्माण कर दिया, पर अपना नाम अमर करने की इच्छा से नहीं। उन्होंने अपनी जिन्दगी बहुत ऊंची सतह तक उठाई, अथक तपस्या की और दुनिया को ज्यादा सुखी और खुशनुमा बनाने का प्रयत्न किया, पर खुदी और अहंकार के भाव से नहीं। उन्होंने कला का निर्माण कला के लिए नहीं किया और न जीवन ही के लिए। इन झंझटों में उन्हें पड़ने की जरूरत ही नहीं महसूस हुई, क्योंकि उनका जीवन ही जीती-जागती कला थी और ऐसी जीवन-कला ही अमर हो सकती है।

एक नन्हा बच्चा शुभ्र चांदनी में अपनी परछाईं पकड़ने के लिए इधर से उधर घुटुओं चलता है। छाया पकड़ने के लिए हाथ बढ़ाता, कभी आगे बढ़ता, कभी पीछे घूम जाता, पर यह छाया क्योंकर पकड़ में आती ? उसकी मां बहुत देर तक यह तमाशा देख-देखकर हंसती रही, खुश होती रही। पर जब बच्चा थक गया तो मां को रहम आया। उसने बच्चे के पास जाकर उसका एक हाथ उठाकर उसके सिर पर रख दिया। बच्चे ने देखा कि परछाईं उसकी पकड़ में आ गई। वह खिलखिलाकर हंस पड़ा और फिर मां ने उसे चूमकर अपनी गोद में उठा लिया।

यही खेल हम खेल रहे हैं। दुनिया में अमरता हासिल करने के लिए तरह-तरह के उपाय करते हैं, पर वह हाथ नहीं लगती। लेकिन जिन्होंने अपने स्वरूप को पहचान लिया है, वे इस फिजूल के झमेले में नहीं पड़ते। अमरता तो उनके दिल में ही समाई हुई है। वे अपना अनन्त आनन्द दुनिया को भी बांटते रहते हैं, जगत् की सेवा में ही अपनी सारी शक्तियां जुटा देते हैं। यह उन्नत संसार ही उनका अमर स्मारक है :

> "Leaving no memorial but a world
> Made better by their lives."

वे अपने पीछे कोई स्मारक नहीं छोड़ते, बल्कि अपने जीवन से इस संसार को ही अधिक अच्छा बना जाते हैं। □

९/ मेरे तो गिरिधर गोपाल

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक बार कहा था—"मेरी गहरी-से-गहरी दो मनोकामनाएं हैं—एक अस्पृश्यता-निवारण और दूसरी गौ सेवा। इनकी सिद्धि में ही मुझे मोक्ष दिखाई देता है।" अस्पृश्यता के उन्मूलन के लिए बापू ने अपने जीवनकाल में अथक प्रयत्न किये और एक-दो बार जान की बाजी भी लगाई। उसका काफी प्रभाव भी हुआ और भारतीय संविधान में छुआछूत को गैरकानूनी जाहिर किया गया। किन्तु इस ओर अभी काफी कार्य करना शेष है।

गोवध-बन्दी की दिशा में भी आजादी प्राप्त होने के पश्चात् कई राज्यों ने कदम उठाये और संविधान की धारा ४८ के अनुसार शासन ने कुछ योजनाएं भी बनाईं।

किन्तु सिर्फ कानून द्वारा गोसंवर्धन का ध्येय पूरा नहीं किया जा सकेगा। गांधीजी ने हमें बार-बार समझाया था, "कानून बनाकर गोवध बन्द करने से गौरक्षा नहीं हो जाती; वह तो गौ-रक्षा के काम का छोटे-से-छोटा भाग है।" सच्ची और स्थायी गौरक्षा तो कई प्रकार के ठोस रचनात्मक कार्यक्रमों द्वारा ही की जा सकेगी। इसके लिए व्यापक जन-शिक्षण बहुत जरूरी है।

भगवान् कृष्ण को गोपाल, गोविन्द, गिरिधर के नाम से पुकारा जाता है। उन्होंने भारत के ग्रामीण अर्थशास्त्र को अपने सामूहिक जीवन में अपनाया और उसका व्यापक प्रचार किया। गायों की प्रेमपूर्वक किन्तु व्यवस्थित ढंग से सेवा की, गांवों में गौरस और मक्खन का विपुल उत्पादन करवाया और मिलकर उसका उपयोग किया। विनोबाजी ने हाल ही में 'मैया, मैं नहीं माखन खायो!' का एक मौलिक अर्थ समझाया। कृष्ण ने यशोदा मां से कहा कि मैंने माखन नहीं खाया, अर्थात् मैंने अकेले नहीं खाया, सबने मिलकर उसे खाया और आनन्द मनाया। भारतीय संस्कृति को यह भगवान् कृष्ण की अमूल्य देन है। महाराष्ट्र में इसी तरह जन्माष्टमी को 'गोपाल-कला' उत्सव मनाया जाता है, जिसमें बाल-गोपाल अपना-अपना भोजन घर से लाते हैं और उसे आपस में मिलकर स्वाद से खाते हैं।

मां यशोदा कृष्ण से डांटकर कहती थीं—"माखन तो हमें मथुरा में बेचना है और पैसे कमाना है।" कृष्ण उत्तर देते—"मां मथुरा में पैसा है, तो कंस भी है। मक्खन खाकर हम बलवान बनेंगे तो कंस पर विजय पायेंगे। सिर्फ पैसे लाकर क्या बनेगा?" यह था कृष्ण का भारतीय अर्थशास्त्र। विनोबाजी भी इन दिनों नारा लगाते हैं—"मक्खन खाओ, कपड़ा बनाओ।" अर्थात् गांवों को अन्न-वस्त्र आदि के उत्पादन द्वारा स्वावलम्बी और शक्तिशाली बनाओ। कांचन-मुक्ति का उनका बुनियादी विचार ही हमारे राष्ट्रीय जीवन को मजबूत व स्वाश्रयी बना सकता है।

मैं कई वर्ष पहले जापान की ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का अध्ययन करने वहां गया था। वहां के देहातों में काफी विस्तार से भ्रमण किया। जब मैं वहां करीब पच्चीस साल पहले गया था, उस

समय जापान में गायें थीं ही नहीं। वहां के लोग दूध का बहुत कम प्रयोग करते थे। इस बार मैंने देखा कि हर किसान के पास दो-चार सुन्दर गायें हैं, जिनका वे दूध पीते हैं और उनसे जोतने का काम भी लेते हैं। मैंने किसानों से पूछा, "पहले तो आप लोग यंत्रों का अधिक उपयोग करते थे। ट्रैक्टर और पावर-टिलर सभी खेतों में चलते हुए दिखलाई देते थे। अब आपने ये गायें क्यों रखी हैं?" जापानी कृषकों ने मुस्कराकर उत्तर दिया, "साहब, सिर्फ कृत्रिम खाद और मशीनों का इस्तेमाल करने से हजारों एकड़ जमीन रेगिस्तान बन गई है।" जापान में कहावत है--'नकली खाद पिता के लिए अच्छी होती है, लेकिन पुत्रों के लिए बुरी।' उसके प्रयोग से कुछ साल तक तो फसलें बहुत अच्छी होती हैं। फिर उनका उत्पादन तेजी से घटने लगता है। इसलिए अब हम रासायनिक खाद में गोबर का कम्पोस्ट मिलाकर खेतों में डालते हैं।" और फिर किसान कहने लगे—"मशीनें न तो दूध देती हैं, और न खाद! इसलिए हमने गायों का पालन शुरू किया है। इससे हमें बहुत लाभ हो रहा है।"

जापानी किसानों ने एक और मजेदार बात बतलाई। उन्होंने कहा, "पहले हम सोन खाद का बहुत इस्तेमाल करते थे। अनुभव से हमें पता चला कि मनुष्य-मल के उपयोग के कारण शाक-भाजी में कीटाणु पैदा हो जाते थे और उनकी वजह से लोगों के पेट में कई तरह की बीमारियां होने लगीं। इसलिए सोन खाद द्वारा पैदा की गई तरकारियों और फलों की मांग तेजी से घट गई। अब हम गाय के गोबर की खाद इस्तेमाल करते हैं। उससे कीटाणु मर जाते हैं और फल-सब्जी की मांग बढ़ रही है।"

कुछ महीने पहले जर्मनी के कुछ डाक्टर और वैज्ञानिक भारत आये थे। वे समझना चाहते थे कि हिन्दुस्तान की जनता गाय के ही गोबर का क्यों उपयोग करती है और उसी से अपने घरों को लीपना पसन्द करती है। इस कार्य के लिए भैंस का गोबर काम में नहीं लाया जाता। अतः गाय के गोबर का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने के लिए वे अपने साथ कई थैले गोबर भरकर जर्मनी ले गये हैं। गाय के दूध में क्या विशेष गुण और पोषक तत्त्व हैं इसकी भी जानकारी प्राप्त की जा रही है।

स्विट्ज़रलैंड में भी किसानों द्वारा गायों का बड़ी कुशलता से पालन-पोषण किया जाता है। गायों का उतना ही दूध गांवों के बाहर बेचा जा सकता है, जितना गांवों की जनता की आवश्यकता-पूर्ति के बाद बचता है। पहले गांव के बच्चे और प्रौढ़ दूध पियेंगे, जो दूध बचेगा वह सहकारी समिति द्वारा शहरों में बेचा जायगा। भारत के ग्रामीण-क्षेत्रों में तो दूध को बेचना पाप समझा जाता रहा है। आज भी राजस्थान के गांवों में दूध और पूत (पुत्र) को बेचना एक-समान बुरा माना जाता है। लेकिन डेरियों के आसपास के गांवों में तो आजकल लगभग सभी दूध रुपयों के लालच में बेच दिया जाता है, और ग्रामीण बच्चों और जवानों को दूध के पोषण से वंचित रहना पड़ता है। यह कृष्ण भगवान् का अर्थशास्त्र नहीं है। इसी वजह से राष्ट्र का स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। दूध के स्थान पर चाय और मदिरा का फैशन फैलता जाता है! कितना भयानक है यह नया अर्थशास्त्र!

अक्सर यह पूछा जाता है कि हमारे ऋषि-मुनि और अब वैद्य-हकीम भी गाय के दूध के प्रयोग को इतना महत्त्व क्यों देते हैं? यह तो स्पष्ट ही है कि अगर हम सही ढंग से देश में गोपालन

को सफल वनाना चाहते हैं तो उन चीज़ों का उपयोग करना चाहिए जो गाय हमें देती है। यदि हम गाय के दूध, घी आदि का इस्तेमाल नहीं करेंगे तो गाय का पालन-पोषण कौन करेगा ? हम गाय का सिर्फ पूजन करें, और चाय में स्वाद के लिए भैंस के दूध का प्रयोग करें तो फिर हमारी गायें किस प्रकार जिन्दा रह सकती हैं ? और अगर गाय का ठीक तरह से पालन नहीं होगा तो अच्छे वैल कहां से आयेंगे ? हां, अगर भैंसा खेती के काम में अच्छी तरह उपयोग हो सकता तव तो दूसरी वात थी। कुछ धान के क्षेत्रों को छोड़कर भारत में भैंसा कृषि के योग्य सावित नहीं हुआ है और न भविष्य में हो सकेगा। हमारे देश में गाय को सदियों से पूजनीय माना गया है। अरव देशों के रेगिस्तानी क्षेत्रों में ऊंट वहुत उपयोगी सावित हुआ है। इसलिए वहां उसका कत्ल नहीं किया जाता। इंग्लैंड और यूरोप में खेती के लिए अधिकतर घोड़े का इस्तेमाल किया जाता है। लेकिन भारत में तो गाय ही ऐसा पशु है जो सभी दृष्टि से हमारा मित्र, सखा और हितैषी है। अगर हम उसके दूध, घी वगैरह का शौक से इस्तेमाल नहीं करेंगे तो हम अपने ही स्वार्थ को ठेस पहुंचायेंगे।

मेरे पिताजी अक्सर कहा करते थे, "जो जिसका दूध पियेगा, उसका रंग रूप और अक्ल उसी तरह की होगी। मां के दूध का प्रभाव वच्चे पर तुरन्त होता है। अगर मां को ज्वर और सर्दी-जुकाम है तो वच्चे की भी तवीयत तुरन्त खराव हो जायगी। इसी तरह जो भैंस का दूध पियेगा उसकी वुद्धि भैंस-जैसी वनेगी, और जो गाय का दूध इस्तेमाल करेगा वह गाय-जैसा चपल, सजग और सावधान रहेगा।" अनुभव से भी हम यही देखते हैं कि जो पहलवान अधिक चर्वीदार भैंस का दूध पीते हैं उनका शरीर तो मोटा-ताजा और मजवूत वन जाता है, लेकिन उनकी अक्ल भी मोटी हो जाती है।

सरकारी डेरियों में अकसर फैट अधिक होने के कारण भैंस के दूध के दाम अधिक दिये जाते हैं, और गाय के दूध के कम। यह वहुत गलत नीति है। कई राज्यों में अव गाय और भैंस के दूध का एक ही मूल्य दिया जा रहा है, क्योंकि दोनों के गुण अलग-अलग हैं। यही सही तरीका है और हम आशा करते हैं कि सभी राज्य इसी नीति को अपनायेंगे ताकि गोपालन को समुचित प्रोत्साहन मिल सके।

हमारी वर्तमान गौ-प्रजनन नीति भी दोषपूर्ण है। इस समय क्रास-ब्रीडिंग की हवा सारे देश में तेजी से वह रही है। जगह-जगह गौशालाओं में विदेशों से लाये हुए साधनों द्वारा कृत्रिम गर्भादान की व्यवस्था की गई है। हमने कई गौशालाओं में देखा है कि ये संकर गायें दूध तो बहुत देती हैं, लेकिन उनमें चपलता और जीवन-शक्ति बहुत कम है। ज़रा-सी कोई बीमारी आई कि वे चटपट गिरकर मर जाती हैं। बीमारी को सहन करने की उनमें ताक़त ही नहीं रह जाती और फिर उनके वछड़े तो खेती के लिए बिलकुल अयोग्य साबित होते हैं। कसाई को भेजने के सिवाय उनका कोई उपयोग नहीं रह जाता। इसका परिणाम यह होता है कि आसपास के गांवों में बैलों की कमी होती जा रही है। यह तो हमारी गलत और संकुचित प्रजनन-नीति का ही नतीजा है न ? हमें यह भली-भांति समझ लेना होगा कि भारत में गौपालन तभी सफल हो सकता है जब गायों में दूध की वृद्धि हो, और साथ ही खेती के लिए अच्छे वैल भी तैयार किये जा सकें।

दूसरे शब्दों में, हमें एकांगी नहीं, सर्वांगी गाय का विकास करना होगा। हम आशा करते हैं कि राज्य सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी ताकि अधिक-से-अधिक दूध का उत्पादन करने के लालच में हमारी खेती को गहरा धक्का न पहुंचे।

भगवान् कृष्ण ने गोसंवर्द्धन की दृष्टि से गोवर्द्धन पर्वत का निर्माण कराया था। उसके द्वारा वहां के ग्रामीण जीवन का स्थायी कल्याण हुआ। इसीलिए भक्त-शिरोमणि मीरा ने आनन्द-विभोर होकर गाया था :

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई।" □

१० / विनोद की कला

आप खयाल करते होंगे कि गांधीजी हमेशा वहुत गम्भीर रहते थे, कभी मजाक वगैरा तो करते ही न होंगे, मुस्कराते भी वहुत कम होंगे। मगर आपका यह विचार विलकुल गलत निकले तो आपको खुशी होगी या रंज? अगर आप पत्थर के संजीदा और सदा एक-सा चेहरा रखने वाले देवों को ही पूजने के आदी हैं तव तो शायद आपके दिल को काफ़ी धक्का ही लगेगा। लेकिन आप अगर जिन्दा-दिल और ताज़ा दिमाग हैं तो आपको खुशी होनी चाहिए, क्योंकि महात्मा लोग मुश्किल से ही हंसमुख और विनोदी पाये जाते हैं। गांधीजी तो साफ कहते भी थे, "विनोद ही मेरा जीवन है। उसके विना इतने दिन जीना मेरे लिए दुश्वार हो जाता।"

दुनिया में दौलत की वहुत कीमत है—जरूरत से भी ज्यादा। अकल और इल्म की भी पूरी अहमियत है। तन्दुरुस्ती और खूवसूरती का मूल्य है। अच्छे स्वभाव और उदारदिली की कद्र है। ओहदों और समाज में ऊंची हैसियत की भी वकत है। लेकिन विनोद के बिना ये गुण फीके ही रह जाते हैं, जिन्दगी में ज़ायका नहीं रहता। विनोद की कीमत आंकना आसान नहीं। उसके द्वारा वे काम किये जाते हैं, जो लाखों रुपयों से भी पार नहीं पड़ते। उसके जरिये लोगों के दिलों को अपनी ओर खींच सकते हैं, उन्हें हम-राय वना सकते हैं। हम दूसरों को भी प्रसन्न रख सकते हैं और खुद भी हर हालत में सुख-दुःख के झोंके झेलते हुए प्रसन्न रह सकते हैं।

काफी पुराने ज़माने की वात है। इंग्लैंड में इलेक्शन-वाज़ी की काफी धूम थी। नरम और गरम दलों के बीच खासी होड़ थी। लायड जार्ज अपने चुनाव के लिए भाषण दे रहे थे। हाल खचाखच भरा था। अपने भाषण के आखिर में वे जोर से वोले, "मैं सव देशों के लिए आजादी चाहता हूं—इंग्लैंड के लिए भी पूर्ण आजादी, यूरोप के मुल्कों के लिए आजादी, हिन्दुस्तान के लिए आजादी।"

इतने में एक आदमी, जो नरम दल का था और जिसे हिन्दुस्तान की आजादी की वात सुनते ही बुखार आ जाता था, अचानक खड़ा होकर गुस्से से चिल्ला पड़ा, "जहन्नुम के लिए भी आजादी।"

लोग हंसने लगे। लायड जार्ज की ओर सभी ताकने लगे। अगर वे माकूल जवाब न दे पाते तो उनके सारे भाषण का असर मिट्टी में मिल जाता। वे मुस्कराते हुए उस खड़े हुए व्यक्ति से वोले, "जी हां, मैं जरूर चाहता हूं कि हर एक शख़्स अपने-अपने देश की आजादी के लिए खड़ा हो।"

सब कहकहा मारकर हंस पड़े। वेचारा जहन्नुम ही का नागरिक वना दिया गया।

करीव ऐसी ही एक और घटना है। इस बार मजदूर दल के नेता रेमसे मेक्डोनेल्ड व्याख्यान दे रहे थे, अपने चुनाव के सिलसिले में ही। जव उनका भाषण खत्म हो गया और वे कुरसी पर वैठ गए तो खूब तालियां वजीं। मगर विरोधी-दल के एक सज्जन खड़े होकर जोर से पूछने लगे, "मिस्टर मेकडोनेल्ड, क्या आपको याद है कि आपके पिता गधागाड़ी हांकने वाले थे?"

सब खिलखिलाकर हंस पड़े। रंग में भंग होने ही वाला था। लेकिन मेकडोनेल्ड वड़े चतुर थे। विनोद की कला जानते थे। उन्होंने फौरन जवाव दिया, "जी हां, वखूवी याद है। मेरे पिताजी की गाड़ी तो टूट गई, पर उसका गधा अव भी सामने खड़ा है।"

इस हाजिरजवावी से उस वेचारे खड़े हुए सज्जन के ऊपर घड़ों पानी पड़ गया। मुंह की खाकर तुरन्त वैठ गया।

सच है, अगर वक्ताओं में विनोद न हो तो उनकी पूरी शामत है, ख़ास तौर से पश्चिमी मुल्कों में और इलेक्शनवाजी की दौड़-धूप में। हिन्दुस्तान में, खुशनसीवी से कहिये या वदनसीवी से, अभी यह नौवत नहीं आई है। पर जैसे-जैसे प्रजा-राज वढ़ेगा और इलेक्शनों का नशा जनता पर चढ़ेगा; इस तरह के मौके आये विना न रहेंगे। अभी तो हमारे देश में ऐसे ही वक़्त काफी हैं, जिनमें विनोद का नाम-निशान भी नहीं। एक-एक, दो-दो घंटे तकरीर करते हैं, पर मजाक की, विनोद की कहीं झलक भी नहीं। वेचारे श्रोतागण जोर-जोर से जम्हाइयां लेने लगते हैं, एक-दूसरे से वातें करने लगते हैं, पर मजाक का, विनोद का आनंद उन्हें नहीं मिलता। श्रोता ऊव जाते हैं, लेकिन वक्ता महाशय 'वस एक वात और', 'वस आखिरी दो शव्द' कहते जाते हैं और उनके व्याख्यान का मानो अंत दिखलाई ही नहीं देता। ऐसी नीरस और गम्भीर तकरीरों से तो ख़ुदा ही बचाये।

वकालत के पेशे में भी मजाक का माद्दा वड़ा कारगर सावित होता है। किसी हिन्दुस्तानी नामी वकील की वात है, शायद मोतीलाल नेहरू की। वह किसी जज के इजलास में वहस कर रहे थे। उन्होंने कई मुद्दे ऐसे निकाले, जिन्हें जज महाशय भी पूरी तरह न समझ सके। जज और वकील में कुछ कहा-सुनी हो गई।

"आप मुझे कानून नहीं सिखा सकते!" जज ने गुस्से में आकर कहा।

"वजा फरमाते हैं, हुजूर! मैं आपको कानून नहीं सिखा सकता।" वकील ने मुस्कराते हुए कहा, "क्योंकि आप इतने कुंद ज़हन हैं।" यह जोड़ने की तो कोई जरूरत ही न थी। इजलास में हाजिर लोग मुस्करा पड़े। खुल्लम-खुल्ला हंसने से तो जज की तौहीन हो जाती।

ऐसा ही एक और वाकया है। वकील किसी वड़े मुकद्दमे की पैरवी कर रहा था। वह नये-नये मुद्दे जज के सामने पेश कर रहा था, लेकिन जज उस वकील की कावलियत से जलता था। वह उसका अपमान करना चाहता था। इसलिए वकील की वातों की ओर पूरा ध्यान नहीं दे रहा

था। फिर भी वकील ने अपना काम जारी रखा। लेकिन जज साहव ने तो हद पार कर दी। वे अपने कुत्ते को गोद में विठाकर उससे फुस-फुस करने लगे और वकील की वातें सुनी-अनसुनी करने लगे। यह तो वकील की खुली तौहीन थी। उसे वड़ा नाग़वार लगा। मगर गुस्सा करने से तो काम विगड़ ही जाता। उसने विनोद का सहारा लिया। वकील रुक गया और जज की ओर शान्ति से देखने लगा।

"चालू रखिये अपनी वहस !" जज ने कहा।

"वहुत अच्छा, हुजूर। मैं समझा कि आप सलाह-मशविरा कर रहे हैं।" वकील ने धीरे से जवाव दिया। इज़लास की भीड़ हंसी न रोक सकी। जज साहव फौरन होश में आ गये। कुत्ते को नीचे उतारकर वकील साहव की वहस ध्यान से सुननी ही पड़ी।

शिक्षकों और प्रोफेसरों के लिए भी विनोद-कला बड़े काम की है। उसके बिना उन्हें काफी परेशानी उठानी पड़ती है। लड़के तरह-तरह से उनका मजाक उड़ाते हैं, तंग करते हैं। लेकिन अगर वे भी होशियारी से काम लें तो विद्यार्थियों को अच्छे ढंग से संभाल सकते हैं।

प्रयाग विश्वविद्यालय में मेरे एक प्रोफेसर बड़े विनोदी थे। जव उनकी क्लास में लड़के आपस में वातचीत करने लगते तो वे कुछ सैकंड के लिए अपना लेक्चर रोक देते और जो विद्यार्थी आपस में वातें कर रहे होते उनसे मुस्कराकर पूछने लगते, "आपकी वातें तो वड़ी दिलचस्प मालूम देती हैं। ज़रा जोर से कहिये, ताकि हम सव सुन सकें।"

सारा क्लास हंस पड़ता। फिर गपशप विलकुल वन्द हो जाती। पर एक दिन एक दूसरे प्रोफेसर साहव ने इसी वातचीत करने पर हम पर पूरे चौवीस मिनट तक वड़ा गम्भीर और गरमा-गरम लेक्चर झाड़ दिया था। उनकी डांट सुनते-सुनते मैं तो विलकुल ऊव गया। अन्त में तो प्रोफेसर साहव का लाल चेहरा देख-देखकर हंसी आने लगी।

आज के सामाजिक जीवन में भी हंसी-मजाक कभी-कभी वड़े काम का सावित होता है। प्रसिद्ध नाटककार वर्नार्ड शा से एक वार एक स्त्री ने प्रणय-याचना की। उसे अपनो खूवसूरती पर वड़ा नाज था। वह कहने लगी, "मिस्टर शा, अगर हमारी शादी हो जाय तो हमारे वच्चे वड़े खुश-किस्मत होंगे !"

"कैसे ?" शा ने मुस्करा कर पूछा।

"उनमें आपकी वुद्धि होगी और मेरी सुन्दरता होगी !" स्त्री ने झट से जवाव दिया।

"और उनमें कहीं मेरी सुन्दरता और आपकी अक्ल हुई तो ?"

वेचारी औरत शर्मिदा होकर चुप हो गई।

इसी तरह किसी जगह कुछ मित्र बैठे वातें कर रहे थे। स्त्री-पुरुष दोनों ही थे। वात-वात में एक स्त्री ने किसी पुरुष से नाराज होकर कहा :

"अगर मैं आपकी पत्नी होती तो आपको जहर दे देती।"

पर वह शख्स मजाकिया था। मुस्करा कर वोला, "श्रीमतीजी, मैं जहर जरूर स्वीकार कर लेता, क्योंकि आप-जैसी पत्नी के साथ जिन्दगी विताना दुश्वार हो जाता।"

पढ़े-लिखे ही क्या, कभी-कभी अशिक्षित नौकर-चाकर भी लाजवाव मजाक कर बैठते हैं। किसी वावूसाहव ने अपने नौकर पर गरम होकर कहा, "तू वड़ा गधा है, रे !"

"हुजूर, बड़े तो आप ही हैं। मैं तो छोटा हूं आपके सामने !" नौकर ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाकर उत्तर दिया।

बाबू साहब का पारा तो एकदम काफी चढ़ गया, पर नौकर के विनोद की खूबी ने उन्हें अपने काम में फिर लग जाने के लिए मजबूर किया।

विनोद की कला दुनिया की एक बड़ी नियामत है। जिन्दगी के सभी पहलुओं में वह बड़ी कारगर हो सकती है। पर विनोद ललित होना चाहिए, भद्दा और दूसरों के दिलों को दुखाने वाला नहीं। जायकेदार होना चाहिए, जो अपने साथ दूसरों को भी हंसाकर प्रसन्न कर दे। विनोद में खुशी की फुलझड़ियां छोड़ने की सिफ्त होनी चाहिए, नहीं तो वह बदला लेना होगा, ईर्ष्या और नीचपन होगा, अहंकार और क्रोध होगा—विनोद नहीं !

हां, एक बात और। दूसरों का मज़ाक करते-करते कभी-कभी खुद अपना ही मजाक करने की कला को न भूलें !

११ / राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन

अखिल भारत नयी तालीम समिति के तत्वावधान में १८-१९-२० दिसंबर १९७७ को नयी दिल्ली में एक अखिल भारत राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन आयोजित किया गया। उसका उद्घाटन १८ दिसम्बर को प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया और २० दिसम्बर को केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री डा० प्रतापचन्द्र ने समापन भाषण दिया। इस सम्मेलन में राजस्थान के राज्यपाल श्री रघुकुल तिलक, कई राज्यों के शिक्षामंत्रियों, लगभग ३० विश्वविद्यालयों के कुलपतियों, कुछ संसद सदस्योंऔर लगभग १००अनुभवी शिक्षाशास्त्रियों व बुनियादी तालीम के रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने हिस्सा लिया। सम्मेलन के उद्घाटन सत्र में योजना आयोग के उपाध्यक्ष डॉ० लकड़ावाला, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष डा० सतीशचन्द्र और राष्ट्रीय शिक्षा अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद् के निदेशक डा० मित्रा ने भी भाग लिया।

कई दृष्टि से यह राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन शिक्षा-सुधार की दृष्टि से ऐतिहासिक रहा। विभिन्न राज्यों के शिक्षा-मंत्रियों का सम्मेलन और विश्वविद्यालय के कुलपतियों के सम्मेलन अलग-अलग होते रहते हैं। नयी तालीम समिति की ओर से भी प्रति वर्ष एक अखिल भारतीय सम्मेलन आयोजित किया जाता है। किन्तु नई दिल्ली के राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन में सभी प्रकार के प्रतिनिधि उपस्थित रहे और उन्होंने चर्चाओं में सक्रिय भाग लिया। प्रधानमंत्री और केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री ने भी उसको विशेष महत्व दिया और सम्मेलन में अपने विचार भी विस्तार से प्रकट किये। इस दृष्टि से सम्मेलन के अन्त में जो वक्तव्य जारी किया गया उसकी अहमियत जाहिर ही है।

सम्मेलन ने यह स्वीकार किया कि भारत की नयी शिक्षाप्रणाली महात्मा गांधी के सिद्धान्तों के अनुरूप और बुनियादी तालीम के आधार पर ढाली जानी चाहिए और उसका

माध्यम समाज-उपयोगी उत्पादक श्रम होना जरूरी है। बुनियादी शिक्षा के सभी आदर्शों को बाल-मंदिर से लेकर विश्वविद्यालयीन स्तर तक लागू करना भारत के लिए श्रेयस्कर होगा। अब तो गांधीजी के सिद्धान्तों को शिक्षा के क्षेत्र में विदेशों के लगभग सभी विद्वान और शिक्षा-शास्त्री मान्य कर रहे हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे देश में भी अब बुनियादी तालीम को बिना किसी मानसिक ग्रन्थियों के स्वीकार किया जायगा ताकि विद्यार्थियों को उपयोगी शिक्षा प्राप्त हो सके और वे भारत के अच्छे नागरिक बन सकें।

सम्मेलन ने इस बात पर भी बहुत जोर दिया कि शिक्षा का माध्यम हर स्तर पर मातृ-भाषा होना चाहिए और विश्वविद्यालयों में भारतीय भाषाओं द्वारा सभी विद्यार्थियों को पढ़ाने का उचित प्रबन्ध करना चाहिए। भारतीय भाषाओं के माध्यम की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि अखिल भारतीय सिविल तथा सैनिक सेवाओं में भरती के लिये जो परीक्षाएं ली जाती हैं उनका माध्यम अंग्रेजी के बजाय प्रादेशिक भाषाएं ही रखा जाय। राष्ट्रीयकृत बैंक तथा सार्व-जनिक क्षेत्रों के उद्योगों की सेवाओं के लिए भी जो परीक्षाएं ली जाती हैं उन्हें देशी भाषाओं में आयोजित किया जाय। चुनाव के बाद जिन उम्मीदवारों को चुना जाय उन्हें बाद में हिन्दी और अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान दिया जा सकता है। किन्तु जब तक इन शासकीय सेवाओं में भरती होने के लिए अंग्रेजी माध्यम अनिवार्य रखा जायेगा तब तक विश्वविद्यालयों में मातृभाषा माध्यम को सफलतापूर्वक संचालित करना मुमकिन नहीं होगा।

पब्लिक स्कूलों के सम्बन्ध में भी सम्मेलन में काफी चर्चा हुई। यह सभी ने स्वीकार किया कि इन पब्लिक स्कूलों को अपना काम-काज राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के अनुसार ही चलाना चाहिए और मातृभाषा माध्यम तथा त्रिभाषा सूत्र को लागू करने में देरी नहीं करनी चाहिए। यह भी जरूरी है कि इन शिक्षण संस्थाओं में पचास प्रतिशत स्थान समाज के कमज़ोर वर्गों के प्रतिभा-सम्पन्न बच्चों के लिए सुरक्षित रखे जायें ताकि उनमें राष्ट्रीय वातावरण का संचार हो सके।

नयी शिक्षा संरचना के सम्बन्ध में सम्मेलन की राय रही कि १०+२+३ के बजाय ८+४+३ की योजना अधिक उपयोगी होगी। भारतीय संविधान के अनुसार १४ वर्ष की उम्र तक सभी बच्चों को ८ वर्ष की अनिवार्य और मुफ्त बुनियादी शिक्षा दी जानी चाहिए। उसके बाद चार वर्ष की उत्तर बुनियादी या माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था होना जरूरी है। यह शिक्षा विद्यालयों में दी जाय, कालेजों में नहीं। माध्यमिक शिक्षण के बाद फिर तीन वर्ष की विश्व-विद्यालयीन शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय। जो विद्यार्थी चाहें वे दस वर्ष की शिक्षा के बाद मैट्री-कुलेशन परीक्षा दे सकते हैं। शेष विद्यार्थी बारह वर्ष की शिक्षा के बाद ही सार्वजनिक परीक्षा में बैठेंगे।

लेकिन सम्मेलन ने यह स्पष्ट राय ज़ाहिर की सावधानी के साथ विस्तृत चर्चाओं के उपरान्त जो नयी शिक्षा संरचना स्वीकार की जाय, उसमें फिर अगले दस-पन्द्रह वर्षों तक कोई फेर-बदल नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षा नीति में बार-बार परिवर्तन करने से तरह-तरह की मानवीय समस्याएं पैदा होती हैं और उनसे यथासम्भव बचना चाहिए।

इस बात पर भी बहुत ज़ोर दिया गया कि देश की राजनीतिक पार्टियां स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों के कार्यों में किसी प्रकार का दखल न दें। इस सम्बन्ध में उन्हें एक आचार-संहिता बना लेनी चाहिए ताकि शिक्षण संस्थाएं दलगत राजनीति के चक्कर में न डाली जायें

और उन्हें शान्तिपूर्वक अपना कार्य संचालन करने की सुविधा प्राप्त हो सके। हम आशा करते हैं कि सभी राजनैतिक दल इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

हमें पूरी आशा है कि सम्मेलन की सभी सिफारिशों पर भारत सरकार, राज्य सरकारें और विश्वविद्यालय गम्भीरतापूर्वक निर्णय भी लेंगे ताकि अगले सत्र से ही हमारी शिक्षा प्रणाली में आवश्यक सुधार दाखिल किये जा सकें और नवयुवकों में नये उत्साह का वातावरण संचारित हो सके।

नई-पुरानी यादें

१ / सेगांव का संत

सेगांव[1] को कौन जाता था ? वर्धा से लगभग पांच मील दूर इस छोटे-से गांव में किसी प्रकार का आकर्षण न था। नीची-ऊंची, पथरीली और कहीं-कहीं पानी बरसने पर कीचड़ से सनी जमीन पर चलकर इस गांव में जाना कौन पसंद करता था। लेकिन सेगांव एक तीर्थ-स्थान बन गया। जो कोई वर्धा आता है, वह सेगांव जाने की बात पहले सोचता है। वहां मोटर, तांगा, साइकिल वगैरह का जाना तो बहुत मुश्किल है ही, लेकिन किसी सवारी पर बैठकर इस स्थान पर जाना भी वर्जित है। अधिकतर तो लोगों को पैदल चलकर ही जाने की ठान लेनी पड़ती है।[2] अगर कोई विशेष बात हुई, तो सेठ जमनालालजी की 'बैल-मोटर' गाड़ी मांग ली जाती है। लेकिन यह दौड़-धूप क्यों ? केवल इसलिए कि महात्मा जी ने अपना डेरा इस गांव में डाल लिया है। हाल में यह अफवाह उड़ गई थी कि महात्माजी यूरोप जा रहे हैं। लेकिन अब तो उनका यूरोप सेगांव में ही निश्चित रूप से बन गया है।

एक दिन मैंने भी सेगांव की यात्रा करने की ठान ली। साथ में सेठ जमनालालजी श्री महादेव देसाई और जामिया मिलिया, दिल्ली की एक जर्मन महिला भी थीं। महिला आश्रम की कुछ बहनों की भी एक टोली आगे-आगे चली। वर्षा ऋतु होने के कारण हम लोगों के पास कुछ छाते और बरसातियां भी थीं। एक थैले में कुछ भुने हुए चने भी रख लिए थे। तीर्थ-यात्रा का सब साज पूरा था। रास्ते-भर हम लोग मनोविनोद करते हुए गए। एक स्थान पर तो काली मिट्टी इतनी मुलायम थी कि हमारे पैर करीब एक फुट अंदर घुस गए। चप्पलों और जूतों का तो पूछना ही क्या ! कीचड़ होने के कारण सबको जूते या चप्पल अपने-अपने हाथ में ही लेने पड़े। जर्मन बहन ने काफी हिम्मत से काम लिया। उनका हृदय सेगांव और महात्माजी को देखने के लिए इतना उत्सुक था कि रास्ते की कठिनाई से उनके चेहरे पर किसी तरह की म्लानता नहीं आई। वह बड़ी हिम्मत से हम लोगों के साथ बराबर मुस्कराती हुई चलती रहीं। मुझे तो उनका साहस और प्रेम देखकर काफी आश्चर्य हुआ।

लगभग डेढ़ घंटे बाद हम लोग महात्माजी की झोंपड़ी के पास पहुंचे। यह झोंपड़ी सेगांव

१. बाद में इसका नाम सेवाग्राम हो गया।
२. बाद में वहां जाने लिए पक्की सड़क बन गई।

से कुछ ही दूरी पर बनी हुई है। झोंपड़ी के चारों और वांस का हाता है। दूर से देखने में वह बड़ा सुंदर प्रतीत होता है। यह छोटी, साधारण, लेकिन सुडौल झोंपड़ी वांस और खपरैल से पटी हुई है। चारों ओर छोटा बरामदा वना हुआ है। अंदर एक वड़ा कमरा है, जिससे लगे हुए रसोई और स्नान-घर वने हुए हैं। इस वड़े कमरे के एक कोने में महात्माजी वैठें थे। कुछ लिखने-पढ़ने का काम चल रहा था। हम लोगों को देखकर वह मुस्कराए, "अच्छा, जमनालालजी भी आए हैं! अगर आप रोज इसी प्रकार यहां आयें, तो वदन काफी हल्का हो जायेगा।" यह कहकर वह खिलखिलाकर हंस पड़े।

"हां, यहां आने का यही तो प्रसाद मिलेगा।" सेठजी ने मुस्कराकर कहा।

महात्माजी से जर्मन महिला का, जिनको 'अप्पा जान' कहते हैं, परिचय कराया गया।

"आप हिंदुस्तान में कितने दिन से हैं?"

"करीव चार साल से।"

"अच्छा, अब तो आपको कीचड़ और धूल की काफी आदत पड़ गई होगी।" महात्माजी ने हंसकर कहा।

"जीहां, हम लोग भी तोअपनी जामिया-मिलिया को अवएक गांव में ही ले जा रहे हैं।"

"यह तो बड़ी खुशी की वात है। हम सवको अव 'गंवार' वनना ही पड़ेगा।' महात्माजी ने मुस्कराकर कहा, "अभी तो आप यहां कुछ दिन रहेंगी?"

"जी हां, मैं तो कुछ सीखकर ही जाना चाहती हूं।"

"अच्छा, तो आपको मेरा और मीरा का, जिसकी झोंपड़ी यहां से करीव डेढ़ मील पर है, मेहमान ज़रूर रहना पड़ेगा। आप जव चाहें, तव यहां आ सकती हैं।"

"इस कृपा के लिए मैं आपकी वहुत शुक्रगुजार हूं।"

महात्माजी को पास से देखने का मेरा यह पहला हीअवसर था। मैं तो उनकी आनंदमय खिलखिलाहट सुनकर दंग रह गया। मेरा विचार था, महात्माजी काफी गंभीर और चुपचाप रहते होंगे। लेकिन उनकी वच्चों की तरह भोली और दिलखुली हंसी देखकर मुझे बड़ा आनंद हुआ। महात्माओं की तरह मुंह फुलाकर वैठना तो वह सह नहीं सकते। उनका तो यह कहना है कि मैं बिना हंसी और मज़ाक के ज़िंदा ही नहीं रह सकता। एक-एक वात में मज़ाक और विनोद भरा रहता है। और, अपनी सहृदय हंसी से वह सब लोगों में एक प्रकार का जीवन डालते रहते हैं।

थोड़ी देर वाद एक वड़ी मूंछोंवाला बूढ़ा आदमी अंदर आया। वाद में मालूम हुआ कि वह सेगांव का पटेल था। गांधीजी ने उससे हंसकर पूछा, "भाई पटेल, तो क्या मुझको अब दाढ़ी बढ़ानी पड़ेगी?"

"नहीं महात्माजी, नाई तो आपके पास हमेशा आने को तैयार है।"

"लेकिन मैं अपनी दाढ़ी उस नाई से कैसे बनवा सकता हूं। क्या वह मेरे लड़कों की भी हजामत बनाने को तैयार है? मैं तो यहां का सवसे वड़ा हरिजन हूं, और मेरा कुटुंव भी है।"

काशी पटेल मुस्करा दिया। लेकिन महात्माजी उसे छोड़ने वाले थोड़े ही थे।

"काशी पटेल, तुम्हीं बताओ। अगर तुम्हें एक ऐसी जगह बुलाया जाय, जहां तुम्हारे लड़के को जाने की मनाही हो, तो तुम क्या करोगे?"

"महात्माजी, आप बेचारे पटेल को फंदे में डालते हैं।" जमनालालजी ने मुस्कराकर कहा।

"तो जबतक वह नाई मेरे हरिजन कुटुंब की हजामत बनाने को तैयार न होगा, मैं उसकी सेवा कैसे स्वीकार कर सकता हूं ?"

काशी पटेल फिर मुस्कराकर चुप हो गया।

"जमनालालजी, अगर पटेल को यह विश्वास हो जाय कि छुआछूत हटाने से वह सीधा स्वर्ग को जायेगा, तो यह समस्या अभी हल हो जाय", महात्माजी ने हंसकर कहा। हम सब लोग भी हंस पड़े।

"आप तो महात्मा हैं, जो चाहें, कर सकते हैं; लेकिन हम लोग तो···"काशी पटेल ने हाथ ज़ोड़ते हुए कहा।

"बापूजी ! काशी पटेल को आपका विश्वास थोड़े ही है। उन्हें तो स्वर्ग जाने का भरोसा कोई और ही दिलावे, तो काम चले।" जमनालालजी ने मज़ाक में कहा।

पटेल नमस्कार करके बाहर चला गया। स्वर्ग का लालच तो, सचमुच, बड़ी बुरी बला है।

मुझे बाद में यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि महात्माजी के बहुत कुछ कहने पर भी सेगांव के लोग छुआछूत दूर करने को तैयार नहीं। शुरू में तो गांव का नाई महात्मा जी के पास रोज आया करता था, लेकिन ज़ब से उन्होंने अपने हरिजन परिवार का राग छेड़ा, उसका आना बहुत कम हो गया। यह जानकर कि महात्माजी तो एक हरिजन लड़के का पकाया खाना खाते हैं, गांव के लोग तो शायद उन्हें भ्रष्ट ही समझने लगे होंगे। फिर बेचारे नाई की हिम्मत उनके पास आने की कैसे पड़े ? हां, संकोचवश काशी पटेल के द्वारा आने को तैयार रहने का संदेशा कभी-कभी भेजता रहता है। लेकिन महात्माजी तो हमेशा से हठी रहे हैं। उन्होंने भी जान लिया है कि जब तक छुआछूत दूर न होगी,वह वहां के नाई से काम न लेंगे। इसलिए आजकल उनकी सेवा 'सेफ़्टी रेज़र' ही करता है।

यह भी पता चला कि सेगांव में सेठ जमनालालजी का एक निजी कुआं है। उन्होंने गांव के हरिजनों को उसका इस्तेमाल करने की इज़ाजत दे दी। लेकिन उनका निजी कुआं होने पर भी वहां के सवर्ण हिंदुओं ने बड़ा शोर-गुल मचाया। आखिरकार इस बारे में जमनालाल जी को चुप ही रहना पड़ा।

गांव के लोगों का यह मूढ़ विश्वास और पक्षपात कैसे हटे ? महात्माजी की भी लोग सुनने को तैयार नहीं। उनके खुद गांव में आकर एक झोंपड़ी में रहने का वहां के लोगों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। यह तो बड़े दुःख की बात है। लेकिन महात्माजी तो बड़ी शांति से काम करते हैं। उन्हें इस बात से कभी निराशा नहीं। वह तो कह देते हैं, "भाई, यह तो हमारा ही दोष है। हमने अपने हरिजन भाइयों के साथ वर्षों से इतना बुरा बर्ताव किया है कि हिंदू-धर्म का यह कलंक आसानी से न छूटेगा। हमने इतने दिनों से गांववालों की कुछ भी परवा नहीं की। उन्हें नई ज्योति देने का कभी प्रयत्न नहीं किया। फिर हम एक ही दिन में उन्हें बदल देने की आशा कैसे कर सकते हैं ?

"और, मेरा तो एक और भी विचार है। हमारे काम करने की विधि में भी कोई गलती हो सकती है। मैं समझता हूं, अगर गांवों में सामाजिक सुधार करना है, तो पहले अलग-अलग लोगों के विचार बदलने से काम न चलेगा। हमें उन्हीं केसमाज-संगठन द्वारा काम करना चाहिए। इस प्रकार यदि हम गांवों के पंचायत-संगठन को सुधारें, और फिर पंचों द्वारा अपने विचारों का

प्रचार करें, तो हमारा काम काफी आसान हो जायगा। शुरू में तो लोग पंचायत के कहने से ही बुरी प्रथाओं को छोड़ेंगे। बाद में धीरे-धीरे में उनके निजी विचारों का परिवर्तन हो जायगा।"

महात्माजी के जीवन की सादगी का मुझपर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने-आपको गांव के जीवन में मिला दिया है। जो कुछ चीज़ इस्तेमाल करते हैं, वह, जहां तक होता है, गांव से ही लेते हैं। फल इत्यादि वहां नहीं मिलते, इसलिए उन्होंने ज्वार की रोटी खाना शुरू कर दिया है। हाथ से बने कागज का प्रयोग करते हैं। उनका कमरा भी बहुत सादा है। किसी प्रकार का बनावटी दिखावा नहीं। उनकी झोंपड़ी में एक कला है, जिसे सब लोग शायद समझ भी नहीं सकते। मैं तो उनके कुटीर को एक जीती-जागती कविता कहूंगा। उसमें कितने गंभीर और भावपूर्ण विचारों की व्यंजना है। भारत की मुख्य समस्या का सजीव चित्र है। अब तो महात्माजी ने फाउंटेन-पेन का भी व्यवहार छोड़ दिया है। मामूली कलम से ही अपना काम करते हैं। हमारी जर्मन महिला तो उनकी सादगी देखकर बिलकुल हैरान हो गईं। कहां पश्चिम का भोग-विलास और कहां बापू का इतना सरल जीवन!

महात्माजी सेगांव में जाकर क्यों बस गए हैं? कुछ लोगों का विचार है कि गांव में बैठकर उन्होंने कोई अच्छा काम नहीं किया। इससे उनके काम में हर्ज होगा। लेकिन ऐसा विचार करना भारी भूल है। गांव में बसकर महात्माजी यह दिखलाना चाहते हैं कि अब केवल लेक्चरबाजी और लिखने का समय गया। कभी-कभी गांवों में जाकर व्याख्यान देने से कुछ काम न निकलेगा। जबतक हम गांवों में बसकर वहां के लोगों से एक न हो जायेंगे, तबतक अंदर से सुधार नहीं कर सकते। उनकी झोंपड़ी इसी विचार की सजीव मूर्ति है। अगर वह एक तीर्थ-स्थान बन गई है, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। लेकिन इस तीर्थ-स्थान पर जाकर केवल महात्माजी के दर्शन करने से तो कुछ पुण्य नहीं होगा। अगर वहां जाकर हम भी अपना ध्यान गांवों की ओर ले जायं, तो हमारा वहां का जाना सफल सिद्ध हो सकता है।

२ / एक पल भी भारी है

जब मैं १९३६ में हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के लिए नागपुर गया तो श्रद्धेय जमनालालजी बजाज ने बहुत आग्रह किया कि मैं पूज्य गांधीजी के दर्शन के लिए वर्धा भी चलूं। मैंने पहले तो वर्धा जाने से इन्कार किया, क्योंकि मुझे यह आशा ही न थी कि महात्मा गांधी-जैसे महापुरुष मुझसे मिलने का समय निकाल सकेंगे। किन्तु जब जमनालालजी ने बहुत आग्रह किया तो मैं कुछ दिन के लिए वर्धा चला गया। दूसरे दिन ही सुबह पूज्य जमनालालजी मुझे बापूजी से मिलाने के लिए मगनवाड़ी ले गए। उस समय गांधीजी मालिश कराकर स्नान की तैयारी में थे। जब जमनालालजी ने उनसे मेरा परिचय कराया तो बापूजी ने मेरी ओर मुस्कराकर देखा और पूछा, "क्या तुम मेरा काम न करोगे?"

उनकी आंखों में इतना प्यार-भरा आग्रह था कि मेरे मुंह से सहज यही निकला, "वापूजी, आपका कार्य अवश्य करूंगा।"

वापूजी को पहली वार ही नजदीक से देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे मुझे बहुत वर्षों से जानते हों और हमारे ही कुटुम्व के एक वड़े वुजुर्ग हों। उस दिन तो और अधिक वातें न हुईं और मैं उन्हें सादर प्रणाम कर वापस चला आया। वाद में उन्हीं के आदेशानुसार मैंने वर्धा में अखिल भारतीय 'राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति' के मंत्री का कार्य कई वर्ष तक किया। इसके अलावा 'वर्धा शिक्षा मण्डल' के मंत्री की हैसियत से स्थानिक 'नवभारत विद्यालय' का व्यवस्थापक और वाद में आचार्य वना।

कुछ समय वाद वापूजी मगनवाड़ी से सेवाग्राम, जो पहले 'सेगांव' कहलाता था, रहने के लिए चल दिए। जिस दिन वे महादेव भाई और जमनालालजी के साथ मगनवाड़ी से सेवाग्राम पैदल चलकर गए, मैं भी उनके साथ था। यह अप्रैल १९३६ की वात है। उस दिन वहुत गर्मी थी, लू चल रही थी। किन्तु गांधीजी ने निश्चय कर लिया था कि अव मैं देहात में ही रहूंगा, वर्धा और शहर में नहीं। सेवाग्राम जमनालाल जी की मालगुजारी का गांव था और वर्धा से केवल चार मील दूर था। इसीलिए गांधीजी ने यही गांव अपने लिए चुन लिया था। जमनालालजी ने अस्थायी रूप से वांस के टट्टों की एक छोटी-सी झोंपड़ी संतरों के वगीचे में वनवा दी थी। वापूजी वहीं रहने लगे। वाद में तो क्रमशः सेवाग्राम एक अच्छा-खासा आश्रम वन गया। लगभग दो महीने वाद जव एक अधपक्की झोंपड़ी वनाई गई थी तव उसके एक कोने में वापूजी बैठते थे, दूसरे कोने में वा, तीसरे कोने में महादेव देसाई और चौथे में खान अव्दुल गफ्फार खां रहते थे। कुछ समय पश्चात् वापूजी एक अलग झोंपड़ी में चले गए, जो शुरू में मीरा वहन (मिस स्लेड) ने अपने लिए वनाई थी। वाद में कस्तूरवा के लिए एक अलग झोंपड़ी वना दी गई। धीरे-धीरे आश्रम-वासियों के लिए भी कई कमरे वने। महादेव भाई के लिए एक अलग मकान वनाया गया और फिर श्री किशोरलाल मशरूवाला भी एक अलग झोंपड़ी में रहने के लिए सेवाग्राम आ गए। वापूजी की झोंपड़ी के पास ही जमनालालजी ने एक अतिथिगृह वनवा दिया, जिसका उपयोग वाद में अस्पताल के लिए किया गया।

जव प्रारम्भ में पूज्य वापूजी 'आदि-निवास' के एक कोने में रहते थे तव एक दिन उन्होंने मुझे मिलने के लिए वुलाया और पूछा, "तुमने कहां तक शिक्षा पाई है?"

मैंने उत्तर दिया, "वापूजी, मैंने अंग्रेजी में एम०ए० की डिग्री प्राप्त की है।"

उन्होंने फिर पूछा, "क्या तुम चरखा चलाना जानते हो?"

मैंने नकारात्मक उत्तर दिया और कहा, "अव मैं चरखा चलाना सीख लूंगा।"

वापूजी मुस्कराकर वोले, "चरखा तो हमारे राष्ट्रीय जीवन का प्रतीक है। इसके द्वारा ही हम इस देश की गरीव जनता की सेवा कर सकेंगे। तुमने अभी तक चरखाशास्त्र न सीखकर खाक ही छानी है न?"

और फिर थोड़ी देर रुककर वोले, "अच्छा, अव मैं तुम्हें असली खाक छानने का कार्य दूंगा।"

एक आश्रमवासी श्री मुन्नालाल शाह को वुलाकर उन्होंने कहा, "देखो कल से श्रीमन् को

भी आश्रम के संडासों के लिए मिट्टी छानने के कार्य में अपने साथ ले लेना।"

इस प्रकार मैं कई महीनों तक सप्ताह में दो वार वर्धा से सेवाग्राम आश्रम जाकर चुपचाप खाक छानने का कार्य करता रहा। कुछ दिन वाद वापूजी ने मुझे 'हरिजन सेवक' के लिए अंग्रेजी लेखों का हिन्दी में अनुवाद करने का काम सौंपा। वापूजी चाहते थे कि अनुवाद की भाषा सरल हिन्दी या हिन्दुस्तानी हो। मैंने यह कार्य वड़ी दिलचस्पी से किया और जहां तक मैं समझता हूं, गांधीजी को मेरी हिन्दी भाषा की शैली पसन्द आई।

११ जुलाई, १९३७ को वापूजी के आशीर्वाद प्राप्त होने के बाद मेरा विवाह हुआ। जमनालालजी के वर्धा शहर के 'बच्छराज भवन' के सामने ही विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ। उस दिन सुवह से ही काफी वारिश हो रही थी। किन्तु ठीक समय पर वापूजी और वा विवाह-मण्डप में उपस्थित हो गए। विवाह-विधि आश्रम-पद्धति के अनुसार लगभग एक घण्टे में समाप्त हुई। इस बीच में वापूजी वरावर चरखा कातते रहे। जव मैं और मदालसा उन्हें प्रणाम करने गए तो उन्होंने उसी अवसर पर अपने हाथ से काते सूत की मालाएं हमें पहनाईं। हमारे लिए इससे अधिक पवित्र आशीर्वाद और क्या हो सकता था? वे मालाएं आज भी हमारे पास वड़ी भावना के साथ सुरक्षित हैं।

उसी दिन शाम को वापूजी ने हमें भोजन के लिए सेवाग्राम बुलाया। हम लोग 'आक्स-फोर्ड' गाड़ी में वैठकर गए, जिसे जमनालालजी खास-खास अवसरों पर ही उपयोग के लिए देते थे। एक पुरानी फोर्ड गाड़ी के आधे हिस्से की एक गाड़ी बनाई गई थी, जिसमें दो वैल जोते जाते थे। इसके दो पहिये फोर्ड गाड़ी के टायरों के ही रखे गए थे। फोर्ड मोटर को चूंकि वैल चलाते थे, इसलिए उसे मजाक में 'आक्स (वैल) फोर्ड' कहा जाता था। गांधीजी विशेष अवसरों पर इसी गाड़ी में सेवाग्राम से वर्धा आया-जाया करते थे।

जव हम रास्ते में जा रहे थे तो वहुत जोर की वर्षा हुई। उन दिनों सेवाग्राम का रास्ता भी पक्का नहीं बना था, इसलिए वैलों के पैर वार-वार गहरे कीचड़ में धंस जाते थे। एक बार तो ऐसा लगा कि आज आश्रम पहुंचना सम्भव नहीं होगा। किन्तु थोड़ी देर वाद वादल खुल गए और जरा-सी धूप भी निकल आई। हम लोग धीरे-धीरे आश्रम पहुंच गए। वापूजी हमारी राह देख रहे थे। उन्होंने सव आश्रमवासियों के साथ हमें भोजन के लिए वैठाया। उन दिनों बापूजी स्वयं ही प्रत्येक व्यक्ति को अपने हाथ से परोसकर देते थे। हमें भी वड़ी मुहव्वत के साथ थालियां परोसकर दी गईं। भोजन के वाद यह भी नियम था कि सब लोग अपनी-अपनी थाली मांज और धोकर वापस चौके में रख दें। जव भोजन के वाद मैं और मदालसा वैसा ही करने लगे तो वापूजी ने मुस्कराकर मना किया और कहा, "अरे, आज तो तुम लोगों की शादी का दिन है, आज तुम्हें थाली नहीं उठानी है, तुम उठो और हाथ धो लो।" और उन्होंने आश्रम की एक वहन को इशारा किया, जो तुरन्त हमारी थालियां उठाकर ले गई।

वाद में वापूजी ने हमें अलग ले जाकर बड़ी शान्ति से वैवाहिक जीवन का महत्त्व बतलाया और समझाने के लिए अपने जीवन की कई घटनाओं का जिक्र किया। ११ जुलाई, १९३७ हमारे जीवन की एक बहुत मधुर और मार्मिक स्मृति रही है।

सन् १९३७ के अक्तूबर महीने में 'शिक्षा-मण्डल' वर्धा का रजत जयन्ती महोत्सव मनाना निश्चित हुआ था। बंगाल के प्रसिद्ध नेता आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय को इस समारोह के उद्घाटन के लिए आमंत्रित किया गया था। उन्हीं दिनों गांधीजी शिक्षा को स्वावलम्बी वनाने की आवश्यकता के वारे में 'हरिजन' में लगातार लेख लिख रहे थे। एक दिन मैंने पूज्य वापूजी से पूछा, "यदि मण्डल की रजत जयन्ती के अवसर पर आपके शिक्षा-सम्वन्धी विचारों पर चर्चा के लिए छोटा-सा शिक्षा-सम्मेलन वुला लिया जाए तो कैसा रहेगा?"

वापूजी को यह विचार वहुत पसन्द आया। उन्होंने तुरन्त कहा, "मैं इस विचार को पसन्द करता हूं। इस सम्मेलन में किन-किन शिक्षाशास्त्रियों को वुलाना चाहिए, इसकी सूची मैं स्वयं वना दूंगा।"

कुछ दिन वाद वापूजी ने मुझे एक सूची दी, जिसमें कांग्रेस के नये मंत्रिमण्डलों के शिक्षा-मंत्रियों के अलावा आठ-दस ऐसे कार्यकर्ता थे, जो गांधीजी के शिक्षा-सम्वन्धी रचनात्मक-कार्य में लगे थे।

सूची देखकर मैंने सहज में पूछा, "दिल्ली के जामिया मिलिया इस्लामिया के संचालक डा० जाकिर हुसैन साहव को वुलाना ठीक न होगा?"

वापूजी ने ज़रा सोचकर कहा; "हां, उनको भी ज़रूर दावत दो।"

और फिर हिदायत दी, "देखो, उनको अपने हाथ से उर्दू में ख़त लिखना।"

मैंने वैसा ही किया। डा० जाहिर हुसैन का फौरन जवाव आया कि वे इस सम्मेलन में जरूर शामिल होंगे।

और कई प्रतिष्ठित शिक्षाशास्त्रियों के शामिल होने की भी खवर जव हमें मिल गई तो मैंने एक दिन सेवाग्राम जाकर वापूजी से निवेदन किया कि वे ही इस सम्मेलन की अध्यक्षता करने की कृपा करें। वापूजी ने इस वात को भी सहर्ष स्वीकार कर लिया। इससे हम वहुत खुश हुए।

ठीक सम्मेलन के वक्त मैं तो अचानक बीमार पड़ गया। डाक्टरों ने निदान किया कि यह विषमज्वर है। गांधीजी को बड़ी चिन्ता हुई। वह मुझे देखने आए और कहने लगे, "यह तुमने क्या किया? मैंने तो तुम्हारे भरोसे पर ही इस सम्मेलन को वुलाने की इजाजत दी थी। अब तो उसे स्थगित करना होगा न?"

मैंने धीरे-से उत्तर दिया, "वापूजी,जैसा उचित समझें, कीजिए। किन्तु मेरे खयाल से तो यह सम्मेलन अव हो ही जाना चाहिए। शिक्षा-सम्वन्धी आपके विचारों पर चर्चा हो जाना सव दृष्टि से अच्छा रहेगा।"

वापूजी कुछ देर चुप रहे और फिर वोले, "अच्छा, मैं जमनालालजी और आर्यनायकम-जी से वातचीत करूंगा।"

गांधीजी भारतीय शिक्षा-पद्धति को स्वावलम्वी वनाने के वारे में इतनी गम्भीरता से सोच रहे थे कि अन्त में उन्होंने भी यही ठीक समझा कि सम्मेलन स्थगित न किया जाए। तदनुसार यह सम्मेलन तारीख २२-२३ अक्टूवर को 'नवभारत विद्यालय' के प्रांगण में सम्पन्न हुआ। उसमें जो चर्चाएं हुईं, वे देश के लिए वहुत उपयोगी सिद्ध हुईं। इसी सम्मेलन ने देश में 'वुनियादी शिक्षा' को जन्म दिया।

जून, १९४७ में जब मैंने अखबारों में पढ़ा कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी के लगभग सभी सदस्य देश के विभाजन को स्वीकार कर रहे हैं तब मुझसे न रहा गया। मैं फौरन दिल्ली की ओर चल पड़ा और बापूजी के पास ही भंगी कालोनी में रहा। उनके पास मैं तीन-चार दिन रहा और जब कभी समय मिला बापूजी से आग्रहपूर्वक यही कहा कि आपको किसी भी तरह देश का बंटवारा स्वीकार नहीं करना चाहिए। उन दिनों मैं 'हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा' का प्रधानमंत्री भी था। मैं जानता था कि बापूजी दोनों लिपियों में हिंदुस्तानी का प्रचार करने के लिए बहुत उत्सुक थे। मैंने उनसे कहा, "बापूजी, यदि देश का विभाजन हो गया तो फिर आपका हिन्दुस्तानी आन्दोलन सबसे पहले खत्म हो जायगा। कम-से-कम मुझे तो मंत्रीपद से इस्तीफा देना ही होगा।"

बापूजी ने गम्भीरता से उत्तर दिया, "मैं तुम्हारे तीव्र दुःख को समझ रहा हूं। किन्तु क्या करूं? आज तो देश के सभी नेता विभाजन को स्वीकार कर चुके हैं। मेरे साथ सिर्फ खान अब्दुल गफ्फार खां हैं। अब तुम्हीं बताओ कि मैं बुढ़ापे में नये नेताओं को कैसे तैयार करूं?"

और थोड़ी देर रुककर फिर कहने लगे, "देश का बंटवारा मेरे लिए असहनीय है, किन्तु यदि मै इस समय उसका विरोध करूं तो थोड़े दिनों में होनेवाली अखिल भारत कांग्रेस कमेटी की बैठक वर्किंग कमेटी के प्रस्ताव को नामंजूर कर देगी। इसका नतीजा होगा, देश में अराजकता! कोई दूसरी ऐसी राजनैतिक पार्टी नहीं है, जो इस समय कांग्रेस की जगह ले सके। इस दृष्टि से मैं कांग्रेसजनों को सलाह दे रहा हूं कि वे सारी परिस्थिति देखते हुए वर्किंग कमेटी की राय मान लें। हां, मेरे लिए तो यह बंटवारा मरण के समान ही होगा।"

इस बीच देश का विभाजन हो गया और चारों ओर जो खून-खराबी फैली, वह हम सब जानते हैं। बिहार और नोआखाली के हत्याकांडों की आग को बुझाते-बुझाते गांधीजी फिर दिल्ली वापस आ गए थे। प्रार्थनासभा होती थी, जहां सैकड़ों शरणार्थी अपनी करुण कहानियां कहकर रोते थे।

१० जनवरी का दिन था। मैं भी उस दिन वर्धा से दिल्ली पहुंचा और शाम को पूज्य बापूजी से मिलने बिरला हाउस गया। प्रार्थना के बाद बापूजी ने मुझे अन्दर कमरे में बुला लिया। वह कमरे में ही घूम रहे थे। उनका चेहरा बहुत ही गम्भीर प्रतीत हुआ। चेहरे पर कुछ कालापन-सा नज़र आया। एक बार बापूजी ने मुझसे कहा था, जिस दिन मुस्कराहट या विनोद लुप्त हो जायेगा उस दिन मेरी मृत्यु ही समझो!" उसी वाक्य का मुझे सहज स्मरण हो आया।

बापूजी बड़े गम्भीर स्वर में कहने लगे, "श्रीमन्, अब तो मेरे लिए एक पल भी भारी हो रहा है! मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं पाकिस्तान जाऊं और फिर देश के एकीकरण के लिए प्रयत्न करूं। किन्तु अब तो मैं देखता हूं कि मेरे पैर के नीचे की जमीन ही खिसक रही है। दिल्ली में जो हत्याकांड चल रहा है, उसे अब देखा नहीं जाता। मैं किस मुंह से पाकिस्तान जा सकता हूं? एक समय था, जब मेरी आवाज में जादू था, किन्तु अब मेरे शब्दों का भारत की जनता पर कोई असर नहीं दीखता!"

यह कहते-कहते बापूजी चुप हो गए। मैं भी थोड़ी देर चुप रहा, फिर उन्हें प्रणाम कर धीरे-से विदा ली।

कुछ दिन बाद ही वर्धा लौटने पर अखबारों में पढ़ा कि बापूजी पर किसी ने प्रार्थना-सभा

में एक बम फेंका और ३० जनवरी को तो उनके परिनिर्वाण की खबर रेडियो पर सुनी। मुझे बापूजी का वही वाक्य फिर याद आया, "श्रीमन्, अब तो मेरे लिए एक पल भी भारी हो रहा है।"

३ / राष्ट्र-माता कस्तूरबा

कुछ महीने पहले की बात है शायद रविवार था, क्योंकि उसी दिन मुझे अकसर सेगांव जाने का मौका मिलता है। महात्मा गांधी की तंदुरुस्ती चिंताजनक थी। कई नेता और कांग्रेस के मंत्री उन्हें देखने गए थे। मैंने इतनी भीड़-भाड़ में गांधीजी के पास जाना उचित नहीं समझा। सोचा, तबतक बा के पास ही थोड़ी देर बैठ लूं। वह तो लीडरों से दूर भागती हैं। इस उम्र में भी उन्हें सेवा के सिवा और कुछ सूझता ही नहीं। उन नेताओं की भीड़ में वह चुपचाप रसोईघर में बापूजी के लिए खाना तैयार कर रही थीं। खाना स्वयं इसीलिए नहीं बना रही थीं कि अन्य कोई मदद करने वाला न था, किंतु इसलिए कि उनके रोम-रोम में मातृत्व और सेवा-भाव छलकता है। एक प्रेमल मां चूल्हे से दूर बैठकर घर के लोगों को भूखा देखना कैसे सहन कर सकती है। फिर वह तो राष्ट्र-माता हैं। अगर महात्माजी दिन-भर देश की विभिन्न समस्याएं सुलझाने और दरिद्र-नारायण की सेवा में लगे रहें, और एक भूखे तथा कंगाल राष्ट्र की सेवा में माता-स्वरूप कस्तूरबा अपना अधिक समय चूल्हे के आस-पास ही बिताएं, तो इसमें आश्चर्य ही किस बात का। जिस देश के करोड़ों लोगों के लिए सूखी और रूखी रोटी का टुकड़ा ही जीवन है, उसकी माता के लिए तो चूल्हे से अधिक प्रिय शायद दूसरी जगह न होगी।

मुझे देखकर वह रसोईघर के बाहर आ गईं। मुस्कराकर मेरे स्वास्थ्य के बारे में पूछा। लेकिन मैंने उनसे तुरंत पूछा, "बा, बापूजी की तबीयत कैसी है?"

मेरा प्रश्न सुनकर वह तुरंत गंभीर और कुछ उदास-सी हो गईं। धीमे स्वर में बोलीं, "बापूजी आजकल बहुत थक गए हैं।"

"ये नेता लोग तो उनका पीछा ही नहीं छोड़ते।" मैंने थोड़ा मुस्कराकर कहा।

"नेता भी क्या करें?" वे बोलीं, "वे भी सब चक्कर में फंसे हैं। बापूजी के पास आना ही पड़ता है। फिर बापूजी तो खुद उन्हें बुलाते हैं।"

"लेकिन बा, इस समय तो बापूजी को आराम की बहुत जरूरत है।"

"हां, उन्हें आराम तो जरूर चाहिए। इधर कई महीनों से उनका स्वास्थ्य बहुत नाजुक हो गया है। क्या करें, कुछ समझ में नहीं आता। सुना है, आज उन्हें खून का दबाव बहुत हो गया है।"

उनके शब्दों में कितनी वेदना थी, कितनी चिंता थी और कितना प्रेम था, यह तो शब्दों में लिखना कठिन है। वह आदर्श मातृत्व की सजीव मूर्ति हैं। महात्माजी खुद भी बहुत वर्षों से उन्हें माता के रूप में ही मानते हैं और वह महात्माजी से उम्र में भी कुछ महीने बड़ी हैं। जब

महात्माजी लंका गए थे, तब किसी सभा में एक सज्जन ने अनजाने पूछा भी था, "महात्माजी, आज आपकी मां नहीं आईं?" उन्होंने मुस्कराकर उत्तर दिया था, "वह कस्तूरवा संसार के नाते मेरी पत्नी हैं। लेकिन आपका प्रश्न ठीक है, क्योंकि मैं उन्हें अब मां के रूप में ही देखता हूं।"

यह तो हुई महात्माजी और जनता की दृष्टि। लेकिन हमें उनकी भावनाएं भी समझनी चाहिए। वह आदर्श मां हैं। इसी से हम उनका आदर्श पत्नी का रूप देखना भूल गए हैं। एक हिंदू स्त्री अपने पति को देवता के समान मानती है और उसी की सेवा में अपना कल्याण समझती है। आजकल तो इस आदर्श की हंसी उड़ाई जाती है और समानता का बोलबाला है। लेकिन उन्हें तो महात्माजी जैसे आदर्श पति मिले हैं, तब वह उन्हें देवता-स्वरूप क्यों न मानें? मैंने जब उस दिन महात्माजी के स्वास्थ्य के बारे में उनसे बातें कीं, तब मैंने पहली बार उनमें आदर्श पत्नी की झलक देखी।

लेकिन पत्नी की हैसियत से उन्हें कम कष्ट नहीं सहन करने पड़े। जिन्होंने गांधीजी की आत्मकथा पढ़ी है, वे जानते हैं कि महात्माजी के कड़े नियमों तथा आदर्शों का पालन करने में उन्हें कितनी कठिनाई तथा हैरानी उठानी पड़ी है। बीमारी की हालत में उन्हें महात्माजी के पानी और मिट्टी के प्रयोगों का ही सहारा लेना पड़ा। एक बार जब बापूजी ने उन्हें नमक छोड़ने के लिए कहा, तब वह झुंझलाकर बोलीं, "नमक छोडने के लिए तो आपसे भी कोई कहे, तो आप भी न छोड़ेंगे।" जब महात्माजी ने तुरंत नमक न खाने की प्रतिज्ञा कर ली, तब उन्हें कितना दुःख हुआ होगा, यह एक पत्नी का ही हृदय समझ सकता है। लेकिन महात्माजी के कठिन आदर्शों और प्रयोगों की आंच में तपकर उन्होंने कई बार अपूर्व दृढ़ता का भी परिचय दिया है। अफ्रीका में एक बार जब कस्तूरबा सख्त बीमार हो गई थीं, और डाक्टर ने कहा कि उन्हें मांस का शोरवा देने की जरूरत है, तब महात्माजी ने उत्तर दिया, "मांस के शोरवे के लिए मैं तो इजाजत नहीं दे सकता। लेकिन कस्तूरबा आजाद हैं। वह लेना चाहें, तो जरूर दीजिए।" पूछने पर उन्होंने दृढ़ता से उत्तर दिया, "मैं मांस का शोरवा नहीं लूंगी। यह मनुष्य-देह बार-बार नहीं मिला करती। आपकी (बापूजी की) गोद में मर जाऊं, तो परवा नहीं, पर मैं अपनी देह को भ्रष्ट न होने दूंगी।"

विवाह के समय वह बिलकुल निरक्षर थीं। महात्माजी ने शुरू में उन्हें पढ़ाने की कोशिश की। लेकिन सार्वजनिक कामों में जल्दी ही फंस जाने से उनकी शिक्षा अधूरी ही रह गई। आज भी उन्हें गुजराती का केवल साधारण और हिंदी का काम-चलाऊ ज्ञान है। जब कभी भाषण करने खड़ी होती हैं, तब गुजराती और हिंदी दो सहेलियों की तरह गले में हाथ डालकर साथ-साथ चलती हैं। हिंदी का ज्ञान बढ़ाने के लिए आजकल उन्होंने तुलसी की रामायण का कीर्तन शुरू किया है। लेकिन इस पढ़ाई-लिखाई में वह अधिक समय नहीं दे सकतीं, और शायद उन्हें ज्यादा रुचि भी नहीं। देश की विभिन्न पेचीदा समस्याओं का भी उन्हें अधिक ज्ञान नहीं। लेकिन उनको अशिक्षित कहना अपने अज्ञान का परिचय देना होगा। यद्यपि वह संसार की दृष्टि में अधिक पढ़ी-लिखी नहीं हैं, तथापि उनके व्यक्तित्व के सामने धुरंधर विद्वानों और ज्ञानियों का माथा अवश्य झुकेगा। इसलिए नहीं कि वह महात्माजी की पत्नी हैं, किंतु इसलिए कि वह सौजन्य, सुसंस्कृति, सरल और मीठे स्वभाव की मूर्ति हैं। उनका दिमाग तीखा है, पर हृदय अत्यंत सरल और प्रेम तथा सेवा-भाव से परिपूर्ण है। उनका शरीर, इस ७० वर्ष की उम्र में भी मजबूत है। जिस व्यक्ति

का शरीर, दिल और दिमाग, तीनों सुंदर तथा स्वाभाविक रूप से विकसित है, उसे अशिक्षित कहना 'शिक्षा' का अपमान करना है।

शुरू में तो मेरा झुकाव महात्माजी की ही तरफ हुआ था। जब मैं सेगांव जाता, महात्माजी के ही जीवन को देखने और समझने की कोशिश करता। मैं तो महात्माजी की मानवता से ही मुग्ध हुआ हूं। माता कस्तूरबा से तो शुरू में मेरा अधिक परिचय भी न था। हां, ज्यों-ज्यों उनके अधिक निकट आने की कोशिश की, मेरा हृदय उनकी ओर खिंचता गया, और आज, जब मैं सेगांव जाता हूं, चाहे एक बार महात्माजी से न मिलूं, उनसे मिले बिना कभी नहीं लौटता। इसका कारण है, और वह है उनकी सरलता। महात्माजी के सामने हम लोगों ने उनके व्यक्तित्व को अभी तक नजदीक से पहचानने और समझने की कोशिश नहीं की है। लेकिन मेरा पक्का विचार है कि महात्माजी से स्वतंत्र उनका एक मनन करने योग्य व्यक्तित्व है। उनकी सहृदयता, भोलापन, सहानुभूति और प्रेम अनुभव करने से ही जाने जा सकते हैं। सेगांव-आश्रम में महात्माजी से लेकर साधारण-से-साधारण व्यक्ति की प्रेम और सेवा-वृत्ति से चिंता करना, अपने कष्ट का खयाल न करके सभी के दुःख-दर्द का ध्यान रखना वही कर सकती हैं। एक बार बहुत दिनों तक उनके पैर में चोट रही। हड्डी भी शायद चटक गई थी। डाक्टर ने चलना-फिरना मना किया था, तो भी उन्हें बिना सबका इंतजाम देखे चैन न था। सुख और आराम का खयाल तो उन्हें कभी शायद होता ही नहीं। इतनी उम्र होने पर भी वह अपना सब काम खुद कर लेती हैं। अपने लिए किसी की भी सेवा स्वीकार नहीं करतीं। सुबह से शाम तक उनका सारा समय काम करते ही बीतता है और, उनका सब काम शांति तथा स्वाभाविकता से होता है। उनके चेहरे पर मैंने कभी क्रोध की झलक भी नहीं देखी। उनको तो मैं एक आदर्श कर्मयोगिनी मानता हूं। यह उनके कर्म-योग का ही फल है कि सेगांव-आश्रम में सबसे अधिक उम्र होते हुए भी उन्हीं का स्वास्थ्य सबसे अच्छा है। पैर की उक्त चोट के समय डाक्टर ने उनके पैर को देखकर कहा, "बा का साधारण स्वास्थ्य भी अच्छा मालूम नहीं होता। उन्हें काफी आराम चाहिए।"

महात्माजी हंसकर बोले, "डाक्टर साहब, आप गलती पर हैं। मेरे आश्रम-भर में इन्हीं की तंदुरुस्ती सबसे अच्छी है। यह बहुत ही कम बीमार पड़ती हैं।" सब लोग मुस्करा दिये। वह भी हंस पड़ीं।

आज हिंदुस्तान की स्त्रियों में जागृति फैल रही है। वे उच्च शिक्षा ग्रहण कर रही हैं, और पर्दे से बाहर निकलकर जनता के सामने आ रही हैं। यह तो अच्छा ही है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए स्त्रियों की तरक्की जरूरी है, लेकिन जब मैं वर्तमान पीढ़ी की युवतियों के जीवन की पुरानी पीढ़ी की महिलाओं के जीवन से तुलना करता हूं, तब मुझे अक्सर शक हो जाता है कि आजकल की स्त्रियों की उन्नति 'उत्थान' है या 'पतन'? कालेजों से निकली हुई युवतियों का कृत्रिम जीवन और उनके कमजोर शरीर देखकर अक्सर निराशा की भावनाएं मन में उत्पन्न हो जाती हैं। स्त्री-शिक्षा का क्या उद्देश्य होना चाहिए? अगर शिक्षा द्वारा हमारी बहनों के दिमाग, दिल और शरीर, तीनों का ही स्वाभाविक विकास न हुआ, तो फिर इस स्त्री-शिक्षा की पुकार किस काम की! इसलिए जब मैं स्त्री-शिक्षा की समस्या पर विचार करता हूं, तब मेरे सामने माता कस्तूरबा की जाग्रत मूर्ति आकर खड़ी हो जाती, और मानो कहती है, 'भारत की युवतियो! आओ, मेरे पास आओ। तुम शिक्षा ग्रहण करने के बहाने भारत की संस्कृति से दूर मत भागो।'

जब मैं श्री जमनालाल बजाज की ७५ वर्षीय वृद्धा माता को देखता हूं, तब भी मेरे मन में इसी प्रकार के विचार आते हैं। वह भी, इतनी आयु की होती हुईं भी, दिन-भर घर के काम में लगी रहती हैं, और आज भी कई घंटे तक सूत कातती हैं।

मैं तो मानव धर्म का पुजारी हूं। जब किसी प्रेम और सहानुभूति से भरे मानव को देखता हूं, मेरा हृदय गद्गद् हो जाता है। माता कस्तूरबा में मानवता पूर्ण रूप से पुष्पित है।

अगर हम सब इन दोनों विभूतियों को इसी नजर से देख सकें, और सच्चे मनुष्य बनने की कोशिश करें, तो संसार में कितनी शांति और प्रेम का संचार हो सकेगा।

४ / देशभक्त सेठ जमनालाल बजाज

सेठ जमनालालजी से मिलने का पहला अवसर मुझे लखनऊ कांग्रेस में मिला था। एक मित्र से सेठजी के बारे में थोड़ा-बहुत मुझे मालूम तो हो गया था, लेकिन इसके पहले उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। इंग्लैंड से लौटे कुछ ही महीने बीते थे। मैंने सोचा, कांग्रेस के अवसर पर लखनऊ घूम आना अच्छा रहेगा। 'मोतीनगर' भी देख लूंगा, कुछ तफरीह हो जायगी और सेठजी से भी मिलने का मौका मिल जायगा।

अपने भाई के साथ मोतीनगर पहुंचा। सुबह जल्दी ही जाने की कोशिश की, लेकिन चलते-चलते धूप निकल आई और काफी गर्मी हो गई। मोतीनगर में धूल भी काफी फांकनी पड़ी। पूछने पर मालूम हुआ कि सेठजी विषय-निर्वाचनी समिति में व्यस्त हैं।

"क्या मैं अपना कार्ड भेज सकता हूं ?" मैंने स्वयंसेवक से पूछा।

"अभी अंदर जाने की इजाजत नहीं है। आप अपना कार्ड मुझे दे दीजिये। उचित समय पर मैं उन्हें दे दूंगा।"

"बहुत अच्छा, जनाब !" मैंने लंबी सांस लेकर कहा।

मैं और भाई साहब पास के दूसरे पंडाल के समीप, जहां कुछ छांह थी, चुपचाप बैठ गए। कभी सिर पर तौलिया डाले कृपलानीजी बाहर आते, कभी डाक्टर खां साहब। लेकिन सेठजी का कुछ पता न चला। एक-दो बार अपने कार्ड के बारे में फिर तहकीकात की, लेकिन स्वयंसेवकों ने कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया। मैं बैठा-बैठा ऊब चला। सोचा, फिर कभी आने की कोशिश करूंगा। लेकिन कार्ड भिजवाकर चले जाना शिष्टाचार के खिलाफ था। इसी विचार से कुछ देर और बैठा रहा।

"अरे ! सेठजी तो बाहर आ गए।" मेरे भाई ने कहा।

"अच्छा, यही सेठजी हैं ?" मैंने जल्दी से उठकर पूछा।

मुझे अखबारों में देखे गए उनके फोटो का भी स्मरण हुआ। हम दोनों जल्दी से उनके पास पहुंचे। मेरे भाई ने, जो पहले से उनसे एक बार मिल चुके थे, नमस्कार किया। मेरा

परिचय कराया। मैंने भी नमस्कार किया।

"आप यूरोप से कब आये ?" उन्होंने मुझसे पूछा।

"कई महीने हो गए।" मैंने धीरे से कहा।

"अच्छा, मुझे तो कोई खबर ही नहीं मिली।"

कुछ देर तक उनसे बातें हुईं। लेकिन वह कमेटीसे बीच में ही उठ आए थे; अधिक समय तक बाहर नहीं ठहर सकते थे। उन्होंने अपने ठहरने के स्थान का पता बतलाया, और एक बार फिर मिलने को कहा। मैं उनकी आज्ञा कैसे न मानता!

कुछ ही महीनों बाद मुझे फिर उनके संपर्क में आने का अवसर मिला। उनके संपर्क में देश-सेवा का बल है, स्वार्थ का नहीं। वह नवयुवकों को देश या समाज की सेवा करने के काम में लगाने की फिराक में रहते हैं। मैं कितनी सेवा कर सकूंगा, यह तो ईश्वर ही जानता है, लेकिन हां, उनके संपर्क में आ गया हूं। मेरा कार्य-क्षेत्र तो शिक्षा और साहित्य ही है।

वर्धा में रहने के कारण मुझे उनके दैनिक जीवन को नजदीक से देखने का मौका मिला। यहां मुझे उनके दैनिक जीवन की कुछ बातों का जिक्र करना है, जिनका मुझ पर प्रभाव पड़ा है।

उनका जन्म सन् १८८९ में, सीकर के पास 'काशीकाबास' नामक एक छोटे से गांव में हुआ था। कुछ साल बाद वर्धा के सेठ बच्छराजजी ने अपने स्वर्गीय पुत्र की गोद में उनको ले लिया। परिस्थिति के अनुसार उनकी शिक्षा नहीं हो सकी। मराठी के चौथे दर्जे तक पढ़े, और दो-तीन महीने अंग्रेजी पढ़कर स्कूल छोड़ दिया। सेठ बच्छराजजी का आदर सरकार भी काफी करती थी, इसलिए सेठ जमनालालजी को लगभग अठारह साल की ही उम्र में आनरेरी मैजिस्ट्रेटी मिल गई। बाद में रायबहादुर का भी खिताब मिला। प्रांत के गवर्नर भी उनके यहां पार्टी में आया करते थे। लेकिन उनका हृदय तो कहीं और ही था। जब वह महात्मा गांधी के सम्पर्क में आए, तो उनके विचारों में और भी परिवर्तन हुआ। देश-प्रेम की आग, जो अबतक दबी हुई धीरे-धीरे सुलग रही थी, एकदम भभक उठी। आनरेरी मैजिस्ट्रेटी और रायबहादुरी छोड़कर सन् १९२१ के सत्याग्रह-आंदोलन में वह कूद पड़े। सरकार ने उन्हें अपने हाथ में रखने की कोशिश की, लेकिन सेठजी अपने निश्चय पर अडिग रहे।

जो लोग उनके संपर्क में आए हैं, उन्हें सेठजी की कुशाग्र बुद्धि का अंदाजा लग गया होगा। इतनी थोड़ी शिक्षा पाने पर भी उनका दिमाग इतना तेज है कि बड़े-बड़े लोगों को, जिन्होंने यूनिवर्सिटी की ऊंची-से-ऊंची शिक्षा पाई है, उनके सामने हार माननी पड़ती है। अभ्यास करके हिंदी, मराठी और गुजराती तो अच्छी तरह जान ही गए हैं, इनके साथ ही अंग्रेजी पर भी काफी दखल हो गया है। अच्छी तरह अंग्रेजी बोल तो नहीं सकते, लेकिन समझने में कभी-कभी बड़ी योग्यता दिखलाते हैं। उन्होंने बड़ी-बड़ी किताबें तो बहुत कम पढ़ी हैं, लेकिन व्यावहारिक दक्षता में उनको मात देना बहुत कठिन है। न जाने वह कितने ट्रस्टों, सभाओं और मंडलों का काम संभालते हैं। हर एक संस्था को बड़ी योग्यता से चला रहे हैं, और ये संस्थाएं शिक्षा, समाज, राजनीति, व्यापार इत्यादि सभी भिन-भिन्न विषयों की हैं।

परंतु सेठजी ने प्रत्येक क्षेत्र में केवल अपनी तीव्र बुद्धि के द्वारा व्यावहारिक दक्षता हासिल की है। उदाहरण के लिए उनकी व्यापारिक उन्नति को ही लीजिए। सेठ बच्छराजजी ने उनके लिए कुछ ही लाख रुपये छोड़े थे। लेकिन उन्होंने अपनी योग्यता से उस रुपये का इस प्रकार

सदुपयोग किया कि उनकी खूब आर्थिक वृद्धि हुई।

कुशाग्र बुद्धि होने के साथ ही सेठजी का हृदय भी प्रेम और सहानुभूति से भरा है। जो उनके पास रहते हैं, वे उनकी सहृदयता का पूरा अनुभव कर सकते हैं। जो उनके संपर्क में अधिक आ गए हैं, उन्हें उन्होंने बिलकुल अपना कुटुंबी बना लिया है। ईश्वर ने सेठजी को धन, बुद्धि, हृदय सब कुछ दिया है, लेकिन उन्हें किसी प्रकार का घमंड नहीं। लोक-सेवा को अपना धर्म बना लिया है, अतएव उनका जीवन बिलकुल सीधा-सादा है। उनके कर्मचारी आराम और ठाठ से रहते हैं। मेहमानों के लिए एक विशाल अतिथिगृह बनवा रखा है, जिसमें सब प्रकार की सुविधाएं उपस्थित रहती हैं। लेकिन खुद एक छोटी-सी कोठरी में ही रहते हैं। उसी में सोना, उसी में दिन-भर का सब कार्य करना। पहले तो मोटर इत्यादि सभी आराम की सामग्री रहती थी, अब तो अपने पुराने मोटर को बैलगाड़ी का रूप दे दिया है। इतने धनी होते हुए भी बिलकुल साधारण व्यक्ति जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। किसी तरह का ऐश और आराम नहीं करते। उन्हें अपने त्याग का कोई घमंड भी नहीं। यह दिखलाने का प्रयत्न नहीं करते कि सादा जीवन व्यतीत करने में वह बड़ा भारी त्याग कर रहे हैं। यात्रा करते समय अधिकतर तीसरे दर्जे में ही जाना पसंद करते हैं। अपने आराम के लिए अधिक खर्च नहीं करना चाहते, लेकिन देश-सेवा के लिए वह सदैव मुक्त-हस्त रहते हैं।

इतना त्याग और सेवा के होते हुए भी कुछ लोगों ने 'तिलक-स्वराज्य-फंड' के दुरुपयोग करने का आक्षेप उन पर कर ही डाला। सेठजी जैसे देशभक्त महापुरुष पर इस प्रकार का मिथ्या दोषारोपण करना कितना घोर पाप है, इसका उल्लेख करने की यहां जरूरत नहीं। इस तथा ऐसे आक्षेपों का केवल एक ही कारण हो सकता है, और वह है व्यक्तिगत द्वेष अथवा ईर्ष्या। कुछ लोग कांग्रेस को बदनाम करने के लिए सेठजी की भी बुराई किया करते हैं। लेकिन जो लोग उन्हें जानते हैं, वे यह बात दावे के साथ कह सकते हैं कि देश के सौंपे हुए रुपये का दुरुपयोग करना सेठ जमनालालजी के लिए उतना ही अस्वाभाविक है, जितना पानी के लिए किसी वस्तु को जला देना।

हां, सेठजी के दैनिक जीवन के बारे में एक बात और कहनी है। सुबह से शाम तक बहुत-सा काम करने पर भी वह कभी चिंतित अथवा क्रुद्ध नहीं होते। प्रत्येक काम बड़ी शांति के साथ, सोच-विचार कर करते हैं। उनकी स्मरण-शक्ति भी बड़ी तेज है। प्रत्येक बात उन्हें बड़े विस्तार से याद रहती है। ये ही सब गुण हैं, जिनके कारण वह आज देश और समाज की इतनी सेवा कर रहे हैं। भारत में उनसे अधिक धनी तो बहुत सेठ और साहूकार होंगे, लेकिन उनके जैसे दिमाग और हृदयवाले व्यक्ति विरले ही मिलेंगे।

सेठजी सामाजिक सुधार में भी लगे रहते हैं। अपना मंदिर, कुआं आदि हरिजनों के लिए वर्धा में सबसे पहले उन्होंने खोला था। विवाह-संबंधी सुधार भी बहुत से किये हैं। उनको देश-प्रेमी और सुयोग्य युवकों तथा युवतियों की परस्पर शादी कराने की बड़ी फिक्र रहती है। वह चाहते हैं, वर और वधू दोनों एक ही स्वभाव के हों, और देश तथा समाज की सेवा मिलकर कर सकें। बहुत से नवयुवकों की इसी प्रकार शादी कराकर उन्होंने एक महत्त्वपूर्ण समस्या हल की है। विवाह-संबंध कराने में वह कभी अनुचित दबाव नहीं डालते, और बहुधा ऐसे लड़के और लड़कियों की शादी कराते हैं, जिनका परस्पर परिचय हो। ऐसी शादी कराने में उन्हें बड़ी दिल-

चस्पी रहती है, इसलिए कुछ मित्रों ने मजाक में उनका नाम 'शादीलाल' रख दिया है।

यहां सेठजी के राष्ट्रीय कार्यों का भी संक्षेप में वर्णन करना आवश्यक जान पड़ता है। सन् १९२१ में जो राष्ट्र-सेवा उन्होंने की थी, वह किसी से छिपी नहीं। महात्मा गांधी यदि असहयोग-आंदोलन के मस्तिष्क थे, तो जमनालालजी उनके मेरुदंड। दो वर्ष वाद सेठजी ने नागपुर झंडा-सत्याग्रह में वड़ा उत्साह और साहस दिखलाया। इस सत्याग्रह के वही मुख्य संचालक थे। सन् १९२० की नागपुर-कांग्रेस में वह खजांची चुने गए थे। 'गांधी-सेवा-संघ' उन्हीं के उत्साह से संगठित हुआ है। 'अखिल भारतीय चरखा-संघ' को स्थापित करने में उनका काफी हाथ था। मेरे विचार में शायद ही कोई ऐसी राष्ट्रीय संस्था हो, जिसमें सेठजी किसी प्रकार सहायता न करते हों। 'अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ' के लिए तो उन्होंने अपना वहुत वड़ा, सुंदर उद्यान और इमारतें, जो अब 'मगनवाड़ी' के नाम से प्रसिद्ध हैं, दान कर दी हैं। वर्धा का 'सत्याग्रह-आश्रम', जहां कुछ वर्ष पहले महात्माजी रहते थे, उन्हीं का वनवाया हुआ है। अब वहां, 'हिंदू-महिला-मंडल' की ओर से, जिसके सेठजी अध्यक्ष हैं, 'महिला-आश्रम' चल रहा है।

शिक्षा के क्षेत्र में भी सेठजी ने वहुत कुछ सेवा की है। सन् १९१० में उन्होंने मारवाड़ियों की शिक्षा के प्रवंध के लिए वर्धा में 'मारवाड़ी-विद्यार्थी-गृह' खोला था। बाद में यह संस्था धीरे-धीरे 'मारवाड़ी-शिक्षा-मंडल' के नाम से प्रसिद्ध हुई, जिसने शिक्षा-क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है। वर्धा का 'नवभारत विद्यालय' इसी संस्था द्वारा चलाया जा रहा है।

हिंदी-प्रचार और साहित्य-क्षेत्र में भी सेठजी पीछे नहीं रहे हैं। आज से अठारह वर्ष पूर्व 'दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा' कायम हुई थी। उसमें उनका बहुत कुछ हाथ था। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के गत नागपुर-अधिवेशन में जो हिंदी-प्रचार-समिति बनी थी, उसके भी वह उपाध्यक्ष थे। 'भारतीय साहित्य परिषद्' के काम में भी सेठजी वहुत सहायता दे रहे हैं। देश की सेवा में उन्होंने सचमुच अपना तन, मन और धन लगा दिया है। राष्ट्रीय कार्यों के लिए लाखों रुपये दान दे चुके हैं। यह उन्हीं की निश्चित सेवा का फल है कि वर्धा एक गौरवपूर्ण राष्ट्रीय केंद्र वन गया है। देश की राजनीति, शिक्षा, साहित्य, ग्राम-उद्योग आदि के संबंध की सभी संस्थाओं के कार्यालय वर्धा में चल रहे हैं। ऐसी दशा में मध्यप्रांत के इस छोटे से नगर को राष्ट्र का हृदय ही समझना चाहिए, और इस हृदय में देश-भक्त जमनालालजी की विशाल शक्ति विद्यमान है।

इस विषय को समाप्त करने के पहले सेठजी की सुयोग्य पत्नी श्रीमती जानकीदेवी के विषय में भी कुछ लिखना आवश्यक है। मारवाड़ी समाज में होते हुए भी उन्होंने समाज-सुधार किया है, और वह अति प्रशंसनीय है। इन्होंने वहुत वर्षों से पर्दा करना छोड़ दिया है, और पर्दा-प्रथा के संवंध में अक्सर व्याख्यान दिया करती हैं। व्याख्यान देने में यह सेठजी से बाजी मार ले गई हैं। अधिक शिक्षित न होने पर भी वह वड़ी निर्भयता और आत्मविश्वास के साथ वोलती हैं। उनके भाषणों में हास्य का पुट भी काफी रहता है।

५ / सरहदी गांधी

"अब तो सेगांव में गांधीजी और 'सरहदी गांधी' दोनों ही रहते हैं; फिर देश का ध्यान सेगांव की ओर होना कुदरती ही है।" एक दिन मैंने खां साहव से हंसी में कहा। पिछली वार जेल से छूटने पर वह महात्माजी के साथ ही कई महीनों तक सेगांव में रहे थे। मैं भी गांधीजी की आज्ञा-नुसार हर रविवार को सेगांव जाता था, इसलिए मुझे खां साहव के संपर्क में आने और उनसे वातचीत करने का मौका मिला।

खां साहव मेरी वात सुनकर जरा मुस्कराए, फिर गंभीर होकर वोले, "भाई, गांधी तो एक ही हैं, 'सरहदी गांधी' कोई नहीं। मैं तो मुल्क का एक मामूली ख़िदमतगार हूं, चाहे खुदा का खिदमतगार समझो।"

खां साहव के इन शब्दों में उनके सारे चरित्र और जीवन का सार भरा हुआ है। उनकी भाषा कभी दिखावटी नहीं होती, और जैसे-जैसे मेरा परिचय उनसे वढ़ा, मैंने उनके उन शब्दों को अक्षरशः सत्य पाया।

जिस दिन खां साहव जेल से छूटकर वर्धा आने वाले थे, उस दिन मैं भी स्टेशन पर गया था क्योंकि पहले उन्हें कभी नहीं देखा था। स्टेशन पर काफी भीड़ थी, लेकिन जव ट्रेन आई, तव खां साहव नहीं दिखलाई दिये। वह एक तीसरे दर्जे में सोए हुए थे। जव गाड़ी स्टेशन पर खड़ी हो गयी, तव वह उठे, और जल्दी से अपना विछाने का मोटा चादर घरी करके डिव्वे के वाहर निकल आए। हम लोग उनका सामान निकालने के लिए उस डव्वे के अंदर गए, लेकिन एक छोटी-सी गठरी के सिवा कुछ न पाया। खां साहव ने जव भीड़ देखी, तव जरा सकुचाए, किंतु सेठ जमनालालजी को देखकर उनकी ओर तेजी से बढ़े और उनको जोर से गले लगा लिया। यह दृश्य देखने ही लायक था।

खां साहव वहुत मोटी खादी का पाजामा और कुर्ता पहने हुए थे। सिर पर कुछ न था, और पैर में मोटे चमड़े की एक पुरानी चप्पल थी। वहुत दिन जेल में कष्ट उठाने के कारण उनका चेहरा पीला-सा पड़ गया था। खां साहव और जमनालालजी साथ-साथ चले और सारी भीड़ उनके पीछे धीरे-धीरे चली। स्टेशन से वाहर निकलकर दोनों नेता मोटर में रवाना हो गए।

खां साहब की मेरे लिए यह पहली झांकी थी। कितनी सरल, सुंदर और हृदयस्पर्शी थी, यह तो मैं ही जानता हूं।

खां साहव का जन्म मुहम्मदजई-जाति के खान-परिवार में सन् १८९० में हुआ। इनके पिता खां साहव वेहरामखां उतमनजई के खान (सरदार) थे। उतमनजई पेशावर जिले की चर-सदा तहसील में है, और स्वात-नदी के किनारे वह एक वहुत रमणीक स्थान है। खान साहव के वड़े भाई डाक्टर खान साहव पंजाव विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा पास कर और एक साल बंबई के ग्रांट मेडिकल कालेज में अभ्यास कर अपनी डाक्टरी की पढ़ाई पूरी करने के लिए इंग्लैंड गए थे, लेकिन खान अब्दुल गफ्फारखां का कई कारणों से अधिक अध्ययन न हो सका। वह मैट्रिक तक पढ़े। वाद में कुछ समय अलीगढ़ में रहकर उर्दू का अभ्यास किया। खां साहब का स्वभाव

शुरू से ही वहुत सरल और सेवा-परायण था। वह एक उच्च और धनी कुटुंव के होते हुए भी वहुत सादा जीवन व्यतीत करते हैं। महायुद्ध के वाद हिंदुस्तानियों की सेवा के फलस्वरूप जब रौलट विल आया, तव वह निःसंकोच उसके खिलाफ महात्माजी के आंदोलन में कूद पड़े। खां साहव १९२० की नागपुर-कांग्रेस में शरीक हुए और खिलाफल-आंदोलन में उन्होंने प्रमुख भाग लिया। नागपुर-कांग्रेस से लौटकर उन्होंने रचनात्मक कार्य की नींव डाली, और अपने गांव उतमनजई में एक राष्ट्रीय स्कूल स्थापित किया, जिसकी प्रांत-भर में शाखाएं खोलने की योजना थी। उन्होंने १९२१ के सत्याग्रह-आंदोलन में यही रचनात्मक कार्य किया, और उसके लिए उन्हें कड़ी सजा भोगनी पड़ी। लेकिन परीक्षा ज्यों-ज्यों कड़ी होती गई, त्यों-त्यों उनकी राष्ट्रीय भावना जाज्वल्यमान हुई। हिंदू और सिख मित्रों से आत्मिक संवंध स्थापित करने के लिए उन्होंने जेल में ही गीता और ग्रंथसाहव का अध्ययन शुरू किया। शुरू में गीता उनको कठिन मालूम हुई, वाद में अंडमान से आने पर पंडित जुगतराम ने, सन् १९३० में, उन्हें गीता पढ़ाई, और उसी समय से उनका नाम 'सरहदी गांधी' पड़ा। सन् १९२४ से १९२९ तक हिंदू-मुसलमानों की तनातनी के समय में भी वह संकीर्ण सांप्रदायिक फंदों में नहीं पड़े। उनकी हमेशा यही धारणा रही कि यकीन और मुहव्वत ही इस्लाम है।

उतमनजई में राष्ट्रीय स्कूल की स्थापना के बाद वहां से अनेक कार्यकर्ता तैयार हुए। कुछ वर्षों वाद खुदाई खिदमतगारों के नाम से जो विस्तृत संगठन हुआ, उसका श्रेय इन्हीं कार्यकर्ताओं को था। इन कार्यकर्ताओं को 'लाल कुर्तीदल' का नाम जान-वूझकर वदनाम करने को दिया गया। वास्तव में इन लोगों का एक स्वयंसेवक दल वनाया गया था, जिसका उद्देश्य शुरू में केवल समाज-सेवा और संगठन ही था। इस दल ने सन् १९२९ में कांग्रेस के राजनैतिक आंदोलन में भाग लेने का निश्चय किया। इस दल में शामिल होने वाले सदस्यों को निम्नलिखित प्रतिज्ञाएं करनी पड़ती थीं :

१. ईश्वर, जाति और मातृभूमि के प्रति मैं वफादार रहूंगा।
२. हमेशा और हर समय अहिंसक रहूंगा।
३. किसी खिदमत के वदले पुरस्कार की कोई आशा न रखूंगा।
४. निर्भय होकर किसी भी कुर्वानी के लिए तैयार रहूंगा।
५. शुद्ध जीवन विताऊंगा।

अप्रैल १९३० में ५०० से अधिक खुदाई खिदमतगार नहीं थे, किंतु खां साहव की गिर-फ्तारी से आंदोलन को प्रोत्साहन मिला। गोली और लाठी-कांडों के बाद यह संस्था अधिक लोक-प्रिय वनती गई। हिंसा का दोषारोपण करके सरकार ने इस आंदोलन को दवाने का वहुत प्रयत्न किया, लेकिन खुदाई-खिदमतगारों की संख्या बढ़ती ही गई और उनके द्वारा सारे प्रांत में अपूर्व जागृति हो गई।

खां साहव के जीवन की एक अत्यंत मार्मिक घटना मुझे उनके एक पुत्र द्वारा मालूम हुई। जव खां साहव हज के लिए गए थे, तव वहां ठोकर खाकर गिर पड़ने से उनकी पत्नी की मृत्यु हो गई। इससे खां साहव को वहुत धक्का पहुंचा और वह जीवन से निराश हो गए। अपने भविष्य के संवंध में वहुत सोचा, किंतु कोई रास्ता साफ नजर न आया। अंत में एक रात को जब वह सोए, तव निश्चय किया कि जो स्वप्न उन्हें दिखाई पड़ेगा, उसी के मुताबिक वह अपनी जिंदगी

बसर करेंगे। उसी रात को नींद में उन्होंने आवाज सुनी, "इन्किलाब आ रहा है, उठो।" खां साहब ने उसी समय अपने देश में लौट जाने का निश्चय किया, और अपनी पूरी शक्ति समाज के संगठन और जन-सेवा में लगाने का व्रत ले लिया।

खां साहब शुरू से सेवा-वृत्ति के तो थे ही, इस इन्किलाब की आवाज को उन्होंने खुदा का पैगाम समझा, और 'खुदाई-खिदमतगार' बन गए। इसीलिए वह अपने को हमेशा देश की जनता-रूपी खुदा का सेवक समझते हैं। कभी नेता के रूप में अपने को नहीं रखना चाहते। उनके जीवन की उत्कट धार्मिकता किसी से छिपी नहीं रह सकती। यद्यपि वह कट्टर मुसलमान नहीं, तो भी इस्लाम के नमाज़ इत्यादि सब नियमों की बराबर पाबंदी करते हैं। उनका जीवन प्रार्थनामय है, और उनकी रग-रग में सेवाभाव और प्रेम भरा हुआ है।

एक दिन सेगांव में देश की सामाजिक परिस्थिति पर बातें होने लगीं। मैंने कहा, "छुआ-छूत का प्रश्न तो हमारे गांववालों के लिए बहुत कठिन है। बापूजी के होते हुए भी सेगांव में कोई अंतर नहीं हुआ। वे छुआछूत हटाने की बात ही नहीं सुनना चाहते।"

"मैं तो महात्माजी से कहता हूं कि छुआछूत का प्रश्न इस तरह शांति से हल नहीं होने वाला है। हमारे लोगों में और भी बहुत सी बुराइयां हैं। समाज अंदर तक बीमारी से सड़ गया है। यह बीमारी इस तरह शांति से दूर नहीं होने वाली है। जबतक एक दफा सामाजिक बलवा या बाढ़ नहीं पैदा होगी, और सारे कचरे को जला या बहाकर खत्म नहीं कर देगी, तब तक यह बीमारी दूर होने वाली नहीं।

खां साहब अहिंसा में विश्वास रखते हैं, किंतु अहिंसात्मक क्रांति चाहते हैं। शांतिपूर्वक, धीरे-धीरे सामाजिक कुरीतियों को हटाने का काम उन्हें पसंद नहीं। आखिर वह पठान हैं न? सेगांव में उनकी तबीयत नहीं लगती थी। अपने प्रांत में जाकर गांवों में काम करने को उनका हृदय तड़पता रहता था। जब सरकार ने उनको अपने प्रांत में जाने की अनुमति दे दी, तब वह तुरंत अपने काम में लग गए।

दूसरी बार राजनीतिक चर्चा चल पड़ी। खां साहब ने कहा, "जानते हो, सरकार मुझसे क्यों डरती है? इसलिए नहीं कि मैं पठान हूं, और तुम्हारे सब नेताओं से डीलडौल में बड़ा हूं, बल्कि इसलिए कि मेरा काम गांवों में होता है, शहरों में नहीं।"

"तो आपके प्रांत के शहरों में कुछ राजनीतिक काम ही नहीं होता?" मैंने आश्चर्य से पूछा।

"जितना तुम्हारे दूसरे प्रांतों में गांवों में काम होता है, उतना ही हमारे सूबे के शहरों में—वह 'नहीं' के बराबर समझो। यहां तो शोर-गुल मचाने वाले चंद नेता हैं, जो शहरों में बड़े-बड़े लेक्चर देते हैं और अखबारों में लेख लिखते हैं। इस अखबारी हलचल का गांवों में कोई पता भी नहीं लगता। लेकिन हमारे सूबे में राजनीतिक काम गांवों से ही—मुल्क के दिल से—शुरू हुआ है। जब दिल का खून साफ हो जायगा, तब सारा शरीर भी जल्द ही तंदुरुस्त हो सकेगा। इसीलिए तो सरकार हमारे खुदाई-खिदमतगारों से इतनी डरती है। वह जानती है कि हम लोग ऊपरी शोर-गुल मचाने वाले नहीं।"

थोड़ी देर चुप रहकर खां साहब फिर कहने लगे, "हमारे नेता लोग आजादी की तलाश में इधर-उधर भागते हैं। कभी विलायत में जाकर अपनी मांग पेश करते हैं, कभी अपनी कठि-

नाइयों का हाल दुनिया के दूसरे मुल्कों से कहते हैं, और समझते हैं कि इस तरह का प्रोपेगेंडा करने से अंग्रेज लोग डरकर हमें स्वराज्य दे देंगे। यह तो उस हिरन की-सी बात है, जो कस्तूरी के लिए चारों ओर दौड़ता फिरता है। मैं तो दावे के साथ कहता हूं कि आजादी हमारे पास है, लेकिन हम उसे पाने की तरकीब नहीं जानते। हमें चाहिए कि अपने गांवों में बैठकर जमीन पर मेहनत करें, और किसानों की गरीबी दूर करने की कोशिश करें। यह ठीक है कि स्वराज्य के बिना हम उनके सारे दुःख दूर नहीं कर सकते, लेकिन अगर हमारे नेता गांवों की ओर सचमुच ज्यादा ध्यान दें, तो गांववालों की माली और मानसिक हालत काफी सुधर सकती है। अभी तो हमारा मुल्क करीब-करीब मुर्दे की तरह है। एक बार उसकी रगों में—यानी गांवों में—खून दौड़ने लगा, तो फिर कौन-सी ताकत हमारी आजादी छीन सकती है?"

खां साहब काफी गंभीर होकर थोड़ी देर चुप रहे। मौका पाकर मैंने पूछा, "हिंदू और मुसलमानों की बेइत्तिफाकी के बारे में आपका क्या खयाल है?"

"कुछ लोग समझते हैं, हिंदू और मुसलमानों में इतना फर्क है कि दोनों में कभी इत्तिफाक हो ही नहीं सकता। लेकिन यह तो एक बेसिर-पैर की बात है। आखिर दोनों एक ही खुदा के बंदे हैं। अपने-अपने मजहब को ठीक तौर से मानकर भी दोनों मुहब्बत से क्यों नहीं रह सकते, यह मेरी समझ में नहीं आता। अगर हम एक-दूसरे के ज्यादा नजदीक आ जायें, और एक-दूसरे को समझने की कोशिश करें, तो कोई सबब नहीं कि हिंदू-मुसलमानों में इत्तिफाक न हो। लेकिन अगर हम इस इत्तिफाक के लिए एक तीसरे आदमी की तरफ देखते रहेंगे, जो हमें आपस में लड़ाते रहना चाहता है, और इसी में जिसका फायदा है, तो हमें कयामत तक, इसी तरह मुर्दे की तरह सड़ता रहना पड़ेगा।"

खां साहब का हिंदू-मुस्लिम एकता में दृढ़ विश्वास है, और वह हमेशा कोशिश करते रहते हैं कि दोनों संप्रदायों में एकता बढ़े। उनकी भाषा भी 'हिंदुस्तानी' का एक सुंदर नमूना है। वह जहां तक हो सकता है, ऐसी भाषा बोलते हैं, जो हिंदू-मुसलमान सभी समझ सकते हैं। अगर किसी हिंदू मित्र से बात करते हैं, और उनकी समझ में कोई हिंदी शब्द नहीं आता, तो वह निस्संकोच उसके मानी पूछ लेते हैं, और एक-दूसरे के अधिक नजदीक आने के लिए अपना शब्द-भंडार बढ़ाने का प्रयत्न करते रहते हैं।

पठान लोगों के बारे में आम तौर से हम लोगों में बहुत गलतफहमियां हैं। साधारण पठानों को खतरनाक और अमानुषिक समझा जाता है, जो हमारे गांवों में गरीब किसानों को ब्याज पर रुपया देकर उन्हें चूसते हैं, और सरहदी प्रांत में हिंदू-स्त्रियों का अपहरण करते हैं। अंग्रेजी कहावत के अनुसार काली भेड़ें तो हर एक झुंड में रहती ही हैं, लेकिन उनके कारण सभी को बदनाम करना अनुचित है।

"सरहद में हमेशा सरकार और पठानों में लड़ाई क्यों चलती रहती है?" मैंने एक दिन खां साहब से पूछा।

"यह अंग्रेज सरकार की कूटनीति के सबब से है। अंग्रेज-सरकार उत्तर-पश्चिम सरहद को विदेशी चढ़ाई से महफूज रखने के लिए पठानों के देश को अपने काबू में करना चाहती है, और वहां के बाशिंदों को हमेशा तकलीफ देती रहती है। गुस्से में आकर पठान लोग भी अंग्रेजों पर हमला करते रहते हैं। मैं यकीन दिलाता हूं कि पठान बड़े नरम और सच्चे दिल के होते हैं।

उनमें ताकत और हिम्मत भी बहुत है। अपने को काबू रखने की भी अजीव शक्ति है। पिछली राष्ट्रीय लड़ाई में वे अहिंसा का पालन कर सके, यह क्या कम ताज्जुव की बात है ? लेकिन अंग्रेज सरकार तो उन्हें हमेशा वदनाम ही करती रहती है।"

खां साहव के नजदीक आकर कौन पठानों को प्रेम और मुहव्वत की नजर से न देखने लगेगा ?

जव खां साहव अपने प्रांत को वापस गए, तव उनका कितने जोर का स्वागत हुआ। सचमुच वह अपने प्रांत के बिना ताज के वादशाह हैं, और उनके लिए वहां के पठान अपना सर्वस्व अर्पित करने को सर्वदा तैयार रहते हैं। इतने सीधे-सादे, मुहव्वत से भरे खुदाई-खिदमतगार के लिए किसे श्रद्धा न होगी ? सरहदी प्रांत क्यों, आज तो सारा हिंदुस्तान उन्हें अपना राष्ट्रपति वनाने को तैयार है, लेकिन वह तो जनता की खिदमत में ही अपना आनंद मानते हैं। □

६ / तपस्वी विनोबा

श्री विनोबा भावे वर्धा के उन व्यक्तियों में हैं, जिन्होंने नाम की विलकुल परवा नहीं की और अपना सारा जीवन देश की सेवा में ही विताया है। वर्धा आने के पहले मैंने उनका नाम भी नहीं सुना था, क्योंकि विनोवाजी अखवारों में नाम छपवाने से सदा घृणा करते रहे हैं; परंतु उनका व्यक्तित्व सचमुच हमारे जानने योग्य है। वह गांधी-युग की महान विभूतियों में से एक हैं, और गांधीजी के कई कार्यों के पीछे उनकी शक्ति प्रकट रूप से लगी रहती है। उनके जीवन को देख-कर हमें अनायास ही भारत के प्राचीन ऋषि-मुनियों की याद आ जाती है। उनका जीवन वहुत ही सरल और गंभीर है। वह लोगों से अधिक मिलना-जुलना पसंद नहीं करते। पहली वार की भेंट में वह वहुत रूखे स्वभाव के जान पड़ते हैं। किंतु अगर हम उनकी जीवन-कहानी जानें, तो हमें मालूम होगा कि उनकी ऊपरी शुष्कता के पीछे कितनी भावना और तपस्या छिपी हुई है।

विनोवाजी का जन्म वंबई के कोलाबा जिले में गागोदे नामक गांव में हुआ था। किंतु उनके पिता प्रोफेसर गजर द्वारा संचालित 'कला-भवन' में उद्योग सीखने के लिए वड़ौदा चले गए थे। इसलिए उनकी प्रारंभिक शिक्षा वड़ौदा में ही हुई। विनोवाजी ने कई वर्ष तो घर पर ही अपने पिताजी से शिक्षा ग्रहण की। वाद में वह एक विद्यालय में भर्ती हुए। उनके पिताजी चाहते थे कि वह किसी उद्योग में प्रवीण वन जायं। इसलिए विनोवाजी को चित्रकला का विशेष अभ्यास कराया गया।

किंतु उनका मन तो दूसरी ओर ही खिंचता जा रहा था। वंग-भंग आंदोलन के वाद महाराष्ट्र के युवकों में भी काफी उत्तेजना और हलचल फैल गई थी। सव युवक सोचते थे कि जिस तरह समर्थ रामदासजी ने ब्रह्मचारी रहकर शिवाजी के द्वारा देश की सेवा की थी, उसी तरह वे भी अपना जीवन देश को उन्नत बनाने में क्यों न लगा दें। विनोवाजी के मन पर भी वंग-

भंग आंदोलन का काफी असर हुआ—और उन्होंने वाल-ब्रह्मचारी रहने का व्रत ले लिया। उस व्रत को उन्होंने आजतक निभाया है।

विनोवाजी प्रारंभ में राजनीति की ओर भी झुके। लोकमान्य तिलक के विचारों से वह काफी प्रभावित हुए। उनके दिल में क्रांतिकारी भावनाएं भी उठती थीं, और उनका स्वभाव भी उग्र था। विद्यार्थी-जीवन में उन्हें गणित से विशेष रुचि थी, और अभ्यास में वह अपनी कक्षा में सर्वप्रथम रहते थे। उनके पिता को आशा थी कि वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर और किसी कला में पारंगत वनकर नाम कमाएंगे, किंतु दिन-दिन विनोवाजी में धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाएं जोर पकड़ती गई और उनके मन में साधारण शिक्षा और सांसारिक वातों के प्रति अरुचि पैदा होती गई। विद्यालय की पढ़ाई में वे विलकुल कम ध्यान देने लगे, और मराठी साहित्य तथा धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन में लग गए। प्रारंभ में तो उन्होंने संस्कृत का अभ्यास नहीं किया था, और उसके स्थान पर फ्रेंचभाषा सीखी, किंतु मराठी-साहित्य से अच्छा परिचय होने के कारण उन्हें संस्कृत सीखने में कठिनाई न हुई। जव उन्होंने सुना कि लोकमान्य तिलक 'गीता-रहस्य' प्रकाशित करने वाले हैं, तव उसके स्वागत की तैयारी के लिए विनोवाजी गीता के अध्ययन में लग गए, और उसके द्वारा संस्कृत के भी पंडित वन गए।

गीता के अध्ययन के वाद विनोवाजी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति और भी वढ़ गई। किंतु उनके मन में शांति न थी। उन्होंने देखा कि घर में रहकर वह पर्याप्त अध्ययन और मनन नहीं कर सकेंगे। इसलिए उन्होंने घर छोड़कर कहीं वाहर जाने का इरादा कर लिया। उनके पिता उनकी प्रवृत्ति से असंतुष्ट थे। इसलिए जब विनोवाजी इंटरमीडिएट की परीक्षा के लिए वड़ौदा से वंवई गए, तव परीक्षा में वैठने की वजाय काशी भाग गए। वहां उन्होंने कुछ महीने संस्कृत के धार्मिक ग्रंथों का अभ्यास किया। उन्हें काफी कष्ट भी सहने पड़े। किंतु तव भी उन्हें आंतरिक शांति नहीं मिली। वह संन्यासी वनकर हिमालय नहीं जाना चाहते थे। उनके मन में देश के लिए कुछ ठोस कार्य करने की भी प्रवल इच्छा थी। इतने में उन्होंने महात्मा गांधी के सावरमती आश्रम के वारे में सुना। उन्होंने देखा कि हिंदुस्तान के नेताओं मेंउनके विचार गांधजी से ही वहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। इसलिए उन्होंने गांधीजी से पत्र द्वारा आश्रम में भर्ती होने की आज्ञा मांगी, और उत्तर आने की प्रतीक्षा किए विना ही सावरमती जा पहुंचे। उन्हें आश्रय तो मिल गया, किंतु शुरू में किसी का उनकी ओर विशेष ध्यान न गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य भी वहुत खराव हो गया था, और शरीर काफी दुर्वल था। आश्रम का जीवन तो वहुत कठोर था, "शारी-रिक श्रम आवश्यक था। विनोवाजी को पानी खींचने का काम मिला, जो उन्होंने वड़ी तत्परता और लगन से किया। गांधीजी को भी काफी आश्चर्य हुआ। उन्होंने एक दिन विनोवाजी से पूछा, "तुम्हारा शरीर तो वहुत अस्वस्थ है, फिर भी तुम इतना श्रम किस प्रकार कर लेते हो ?" उत्तर मिला, "आत्मा तो वलवान हो सकती है।" उसी दिन से गांधीजी का ध्यान विनोवाजी की ओर जाने लगा, और धीरे-धीरे, ज्यों-ज्यों उनसे संपर्क वढ़ता गया, गांधीजी उनकी अधिक कद्र करने लगे। वाद में तो विनोवाजी सावरमती आश्रम के मुख्य व्यक्तियों में गिने जाने लगे।

नागपुर-कांग्रेस के वाद श्री जमनालालजी वजाज की इच्छा हुई कि वर्धा में भी एक सत्या-ग्रह-आश्रम स्थापित किया जाय। गांधीजी ने इस आश्रम का संचालन करने के लिए विनोवाजी को चुना, और इस प्रकार विनोवाजी सन् १९२१ से वर्धा में ही रहते हैं। सन् १९२३ में यह

आश्रम बंद हो गया, और विनोबाजी वर्धा शहर से डेढ़ मील की दूरी पर नालवाड़ी नामक गांव में ही बस गए। वहां उन्होंने खादी का एक केंद्र खोला, और आसपास के गांवों के कुछ लोग वहां सूत कातकर और कपड़े बुनकर अपनी जीविका चलाने लगे। विनोबाजी ने नालवाड़ी में चरखा और तकली को अधिक उपयोगी बनाने के लिए बहुत-से प्रयोग किए। फलतः खादी-शास्त्र के विकास का श्रेय उन्हीं को देना उचित होगा। बाद में वह पवनार में चले गये और वहीं रहते हैं।

विनोबाजी में आध्यात्मिकता पूरे तौर से भरी हुई है। उनका जीवन बिलकुल संतों-जैसा है। गीता के तत्त्वों को न केवल उन्होंने खुद समझकर दूसरों की कठिनाइयों को सुलझाया है, प्रत्युत उन तत्त्वों पर सफलतापूर्वक अमल भी किया है। गांधीजी के सिद्धांतों को भी अपने सुलझे दिमाग से विनोबाजी ने जितना समझा है, उतना बहुत ही कम लोगों ने समझा होगा। उनके विचार मौलिक और मार्मिक हैं। उनकी वृत्ति गणितज्ञ-जैसी है। उनका प्रत्येक विचार सुव्यवस्थित और स्पष्ट है। उनके दिमाग में व्यावहारिकता भी कूट-कूटकर भरी है। इसलिए खादी के संबंध में उनका ठोस कार्य सफल हो सका है। वर्धा-शिक्षण योजना के पीछे भी विनोबाजी का व्यावहारिक और सक्रिय ज्ञान छिपा हुआ है। उद्योग द्वारा शिक्षा देने का प्रयोग विनोबाजी के लिए बिलकुल नया नहीं था। वह तो इसी पद्धति को स्वाभाविक रूप से काम में ला रहे थे। खादी-शास्त्र में वह इतने लीन हो गए हैं कि उसी से वह सभी प्रकार की विद्या का स्रोत निकाल सकते हैं। उनकी प्रखर बुद्धि के ही कारण वर्धा-शिक्षण-योजना इतने विस्तार से देश के सामने रखी जा सकी।

विनोबाजी एक आदर्श शिक्षक हैं। उनकी लेखन-शैली भी आकर्षक है। 'मधुकर' नाम से उनके मराठी लेखों का संग्रह एक वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। अब तक उनकी बहुत-सी पुस्तकें निकली हैं। उनके लेख किसी भी भाषा के साहित्य को गौरव दे सकते हैं।

विनोबाजी का रहन-सहन बहुत ही सादा है। नालवाड़ी में वह बांस की मामूली झोंपड़ी में रहते थे। अब पवनार में भी उसी सादगी से रह रहे हैं। यह स्थान वर्धा से लगभग छह मील दूर है।

विनोबाजी शहरों से तो हमेशा दूर ही रहने की कोशिश करते हैं। उन्हें गांवों की गरीब जनता की ही मूकसेवा करने में आनंद आता है। ख्याति की उन्होंने कभी इच्छा नहीं की, पर अब तो उनका नाम देश-विदेश में फैला है। उनका जीवन इतना उज्ज्वल है कि गांधीजी भी कई बातों में उन्हें अपना आदर्श मानते थे।

७ / गांधीजी के महान् उत्तराधिकारी

"जवाहरलाल मेरे राजनैतिक उत्तराधिकारी हैं। मेरे जीवनकाल में उनका मेरा मतभेद हो सकता है, लेकिन मेरी मृत्यु के पश्चात वे ठीक मेरी ही भाषा बोलने लगेंगे।" बापू की भविष्यवाणी के

ये वे शब्द थे, जो उन्होंने वर्धा में अखिल भारतीय कांग्रेस के अवसर पर दिए गए स्मरणीय भाषण में (ऐतिहासिक अगस्त क्रान्ति के कुछ ही महीने पूर्व) व्यक्त किए थे। यह सचमुच अत्यंत आश्चर्य की बात है कि गांधीजी के स्वर्गवासी होने के बाद कैसे नेहरूजी में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो गया। बापू के जीवनकाल में उनसे जवाहरलालजी के मतभेद के अनेक अवसर आये थे। अहिंसा के सिद्धान्त पर तो उनके तीव्र मतभेद थे। लेकिन आज नेहरूजी सत्यनिष्ठ चमकीले शिखर और संभवतः गुरु के सबसे महान शिष्य के समान हैं। हिंसा और घृणा से थकित इस विश्व में भारत के प्रधानमंत्री श्री नेहरू एक उभरे हुए राजनीतिज्ञ हैं, जो सदैव लड़ाकू देशों को प्रेम और अहिंसा का संदेश देते हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ की सर्वसाधारण सभा में उनके द्वारा दिए गए तात्कालिक भाषण महात्मा गांधी के आभिजात्य शिष्यऔर उत्तराधिकारी की परिनिष्ठित शैली के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण होंगे।

अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के निर्वहन में हमारे प्रधानमंत्रीजी अद्‌भुत धैर्य और विस्तृत दृष्टि का प्रदर्शन करते हैं, जिसका लोग गलत अर्थ भी लगाने लगते हैं। जिस ढंग से उन्होंने पाकिस्तान और कश्मीर के उलझे हुए मामलों को निपटाया है, वह हमें हमेशा गांधीजी के जीवनदायक और शाश्वत संदेशों की याद दिलाता है, जो निचले दर्जे के नेताओं द्वारा सरलता से विस्मरित किया जा सकता है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि नेहरूजी अपनी जान का खतरा उठाकर भी अंतःप्रेरणापूर्वक सदा अपने स्वामी के कदमों पर कदम रखते रहे।

उनकी वफादारी के प्रति एक क्षण के लिए भी संदेह करना मूर्खता होगी। जो लोग कभी-कभी यह अनुभव करते हैं कि जवाहरलालजी गांधीजी के प्रति मात्र मौखिक श्रद्धा रखते हैं और जनता की भावना का स्वार्थ-साधन में उपयोग करते हैं, ऐसा मालूम होता है कि अपने प्रधानमंत्री को भली-भांति नहीं पहचानते। नेहरूजी में भले ही और कोई दोष या कमियां हों, लेकिन धूर्तता और मक्कारी तो उनमें किसी भी हालत में नहीं है। उसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती। उनकी शानदार ईमानदारी ऐसी महान और पारदर्शक है कि जो उनके गैर-ईमानदार होने की कल्पना करता है, वह स्वयं निश्चय ही मक्कार है। उनके समय-समय पर क्रोधी स्वभाव तथा आवेशपूर्ण शब्दों को चाहे कोई पसन्द न करे, किन्तु उनकी उज्ज्वल ईमान-दारी के प्रति जरा-सा भी संदेह तो लगभग जुर्म ही होगा।

श्री नेहरू तो कंधों और सिर की तरह हम सबसे ऊपर हैं। वे अपने युग के सबसे अधिक उभरे हुए राजनीतिज्ञों में से एक हैं। गहन विद्वता, उदार दृष्टिकोण, आन्तरिक अच्छाई और आकर्षक व्यक्तित्व ने उन्हें अमर्त्य बना दिया है। 'विश्वइतिहास की झलक', 'मेरी कहानी', तथा 'हिन्दुस्तान की कहानी'[1] शीर्षक तीन पुस्तकों के लेखक के रूप में उनका नाम सदियों तक जीवित रहेगा। देश की भावी पीढ़ी स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री को उस महान नेता के रूप में याद रखेगी जिसने भारत के जहाज को तूफानी समुद्र में उस समय सफलतापूर्वक खेया जबकि उसकी स्वतंत्रता दांव पर लगी हुई थी।

लेकिन इन सारी महानताओं और व्यक्तिगत विशेषताओं के बावजूद हमारे प्रधानमंत्री बच्चे जैसे सीधे-सादे है। वे बच्चे की तरह मुस्कुराते और खिलखिलाते हैं, बच्चे की तरह गुस्सा

१. सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित

होते और उनकी भौहों में बल पड़ते हैं और बालक की ही भांति वे कूद और दौड़ पड़ते हैं। उनकी शारीरिक चुस्ती और फुर्ती बच्चे जैसी ही है। वे चाहें गुस्से में चुभने वाले शब्द क्यों न बोलें, किन्तु किसी भी व्यक्ति के संबंध में उनके मन में गांठ नहीं पैदा होती। अपनी पैतृक परंपरा में प्राप्त उनका क्रोध जब शान्त हो जाता है तो वे संबंधित व्यक्ति से माफी मांगने में भी कभी नहीं हिचकते। उसके प्रति अपने मन में घृणा या शिकायत का भाव उत्पन्न होने दिए बिना उनका बाल-सुलभ हृदय अपनी जनता के प्रति स्नेह से, ममत्व से, भरा हुआ है। वह अक्षमता और असह्य अन्याय के प्रति एकदम विद्रोह कर उठता है।

इस प्रकार नेहरू सही रूप में गांधीजी के एक से अधिक अर्थों में महान उत्तराधिकारी हैं। उन्हें प्रधानमंत्री या जैसा कि नेहरू कहलाना पसंद करते थे, 'पहले सेवक' के रूप में पाकर भारत सचमुच भाग्यशाली है।

भारत भाग्यशाली देश है और नेहरू उसके भाग्य हैं। ईश्वर उन्हें स्वस्थ एवं शक्तिमान बनाये रखे जिससे वे देश की आने वाले अनेक वर्षों तक ऐसी सेवा कर सकें जिसके फलस्वरूप यह देश महान और संगठित बना रहे तथा मानव जाति के अस्तित्व को समाप्त करने की धमकी देने वाले चारों ओर आच्छादित महान अंधकार के बीच प्रकाश-स्तंभ की भूमिका अदा कर अपने द्वारा विकीरित प्रकाश से अंधकार का विनाश कर सके।

८ / प्रो० आइन्स्टीन के साथ बातचीत

मैं अपने को अत्यंत भाग्यशाली समझता हूं कि अपने विश्व-भ्रमण के दौरान में प्रो० आइन्स्टीन से मिल सका। उस महान् प्रोफेसर के साथ मिल पाना सरल बात नहीं थी। एक तो वे अपने वैज्ञानिक शोध में अत्यन्त व्यस्त थे। अतः हमारे लिए यह एक सुखद समाचार था कि प्रिंस्टन विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित अपने निवास में उन्होंने हमें चाय पर निमंत्रित किया है। महात्मा गांधी के ज्येष्ठ पुत्र श्री मणिलाल गांधी भी हमारे साथ रहनेवाले थे। जैसे ही हम देहात में जाने वाली बिजली गाड़ी में प्रिंस्टन की ओर रवाना हुए, मुझे प्रो० आइन्स्टीन के वे अविस्मरणीय शब्द याद आए जिनमें उन्होंने गांधीजी के प्रति अबतक की संभवतः सर्वोत्कृष्ट श्रद्धांजलि समर्पित की है—"ऐसा हो सकता है कि आने वाली पीढ़ियां शायद ही विश्वास करें कि गांधीजी नाम का कोई एक मांस का सजीव पुतला इस धरती पर विचरता था।"

प्रिंस्टन विश्वविद्यालय का परिसर असाधारण सुन्दर था। विश्वविद्यालय के कुलपति के सचिव महोदय ने हमें परिसर में घुमाया। जब हम प्रो० आइन्स्टीन की कुटिया पहुंचे तो हम लकड़ी से बने उस छोटे-से घर की सादगी से अत्यंत प्रभावित हुए। उस घर के सामने नामपट्टिका तक नहीं लगी थी। हमारे आने की खबर मिलते ही प्रोफेसर महोदय ऊपरी मंजिल स्थित अध्ययन कक्ष से नीचे आए और अपनी सहृदय मुस्कान से उन्होंने हमारा स्वागत किया। उनकी पोशाक

एकदम सादी थी तथा उन्होंने रुपहले वालों में कंघी भी नहीं की थी।

जैसे ही प्रोफेसर हमारे साथ बैठे कि उनके सचिव महोदय द्वारा चाय उपस्थित की गई। प्रो० आइन्स्टीन की इस पूछताछ के साथ हमारी वात शुरू हुई, "महात्मा गांधी की हत्या के समाचार सुनकर मुझे भारी धक्का लगा था। सारा संसार दुखी हुआ था। लेकिन यह कौन पागल युवक था जिसने गांधीजी की हत्या की ?" मैंने उन्हें समझाया कि किस प्रकार भारत-पाकिस्तान के वंटवारे के कारण हिन्दुओं का एक हिस्सा नाराज था। जव गांधीजी ने भारत में रहने वाले मुसलमानों को उस समय वचाने का प्रयत्न किया जवकि पाकिस्तान में हिन्दू निर्दयता के साथ लूटे और मारे जा रहे थे तो यह लड़ाकू हिन्दू दल अपना संतुलन खो वैठा। इस दल के कुछ युवकों ने महात्मा गांधी को मार डालने की दुरभिसंधि की और वे अपने षड्यंत्र में सफल हुए।

प्रोफेसर महोदय ने दुख-भरी लंबी सांस लेते हुए कहा, "मनुष्यों में गांधी अलौकिक थे। उन्होंने कभी इस वात की परवाह नहीं की कि उनके विचार लोकप्रिय हैं या नहीं, उन्होंने कभी पुलिस का संरक्षण नहीं चाहा। आश्चर्य तो यह है कि उनकी हत्या पहले ही क्यों नहीं हुई। ऐसी शर्मनाक दुखद घटनाएं हर महान व्यक्ति के साथ घटित होती हैं। लेकिन गांधीजी की मृत्यु उनकी सवसे वड़ी विजय थी।"

थोड़ी देर तक रुकने के वाद प्रो० आइन्स्टीन ने मुझसे पूछा, "कुटीर उद्योग के रूप में आर्थिक विकेंद्रीकरण के महात्मा गांधी के विचार केवल भारतीय स्थिति के लिए थे या उनकी दृष्टि में यह विकेंद्रीकरण का ढांचा समग्र विश्व के लिए था ?"

"जहां तक मैं जानता हूं, गांधीजी सारे विश्व में विकेंद्रित आर्थिक और राजनैतिक गठन चाहते थे, क्योंकि उनका विचार था कि अहिंसक समाज के लिए विकेंद्रीकरण अनिवार्य था।"

इस पर मणिलाल गांधी ने स्वीकृतिसूचक सिर हिलाया। प्रोफेसर महोदय अपने चिन्तन को आगे यों व्यक्त करने लगे, "मेरा विश्वास है कि विकेंद्रीकरण समाज का भावी ढांचा होगा। पर मैं नहीं समझ पाता कि यह कैसे होगा। केंद्रित सरकार द्वारा भय का हमेशा धोखा रहता है। वहुत वड़े केंद्रित शहर एकमात्र भीषण या अरुचिकर होते हैं। मेरा विश्वास है कि स्थानीय विकेंद्रीकरण संभव है। प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन-निर्वाह के लिए काम करे। मैं तो समाजवाद में विश्वास करने वाला हूं।"

प्रोफेसर महोदय को वहुत अधिक मानसिक श्रम न हो, इसलिए हमने वातचीत का विषय वदलने का प्रयत्न किया। मेरी धर्मपत्नी ने थोड़े ही दिनों पहले कनु गांधी से हमें मिला हुआ गांधी-चित्रावली का अलवम उन्हें दिखाया। धर्मपत्नी ने हाथी दांत की बनी गांधीजी की प्रतिमा उन्हें भेंट की। प्रोफेसर महोदय इस भेंट से थोड़े चल-विचलित हुए, और वोले कि वे इसे सुरक्षित रखेंगे।

मेरी पत्नी ने अत्यंत संकोच के स्वर में उनसे पूछा, "यदि आप अन्यथा न मानें तो मैं आपकी राय जानना चाहती हूं कि आधुनिक जीवन में महिला के क्या कर्त्तव्य हैं ?"

प्रोफेसर महोदय ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "भारत में महिला के कर्तव्य अत्यंत स्पष्ट हैं। उनकी वहुत अधिक सन्तानें न हों।" इस पर पत्नी ने पूछा, "क्या यह मनुष्यों का भी कर्तव्य नहीं है ?" इस पर प्रोफेसर महोदय वोले, "निश्चय। स्त्रियों को अधिक आर्थिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। उन्हे यूरोप और अमरीका की भांति निम्न स्तर पर नहीं रखा जाना चाहिए।

मेरी पत्नी ने पूछा, "व्यक्ति और समाज का चारित्रिक मापदंड कैसे उन्नत किया जाए ?" इस पर प्रोफेसर ने उत्तर दिया कि प्रत्येक पुरुष या महिला को अपने को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। वर्तमान में हम त्याग की बनिस्वत अपनी उपलब्धियों को वहुत वढ़ा-चढ़ाकर प्रदर्शित करते हैं। इससे लोग महत्वाकांक्षी बनते हैं। यह महत्वाकांक्षा मानव-जाति की सबसे बुरी दुश्मन है। हमें सेवा करना सीखना चाहिए एकमात्र धन कमाना हमारा उद्देश्य न हो। हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन लाने की दिशा में पाठशालाएं वहुत-कुछ कर सकती हैं तथा वे विश्व को और अधिक अच्छी तरह से सुखी बना सकती हैं।

श्री मणिलाल गांधी तो अमरीका की गैर-सरकारी यात्रा पर यह देखने के लिए आए थे कि दक्षिण अफ्रीका के प्रश्न पर संयुक्त राष्ट्र संघ में क्या कारंवाई हो रही है। इसलिए वे प्रो० आइन्स्टीन के यू० एन० ओ० संबंधी विचार जानने को उत्सुक थे।

प्रोफेसर महोदय ने कहा, "क्या आप सोचते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ यह संगठन किसी उपयोगी काम में सहयोगी होगा ? इसका जन्म ही इसका अपराध है। इसका जन्म ऐसी सरकारों द्वारा किया गया है, जो सीमा में बंधी होने के कारण दुखी है। लेकिन कोई कारण नहीं समझ में आता कि क्यों बंधनों के बावजूद भी वह किसी की भलाई नहीं कर पाता ?"

प्रोफेसर महोदय थोड़ी देर रुककर आगे बोले, "संयुक्त राष्ट्र संघ सफल हो सकता है, यदि उसमें शान्ति के कार्य को ईमानदारी से आगे बढ़ाने वाले लोग काफी संख्या में हों। लेकिन सबसे दयनीय बात तो यह है कि ऐसे सदिच्छा वाले व्यक्ति भी वहां उनकी सरकार द्वारा दबा दिये जाते है।"

श्री मणिलाल ने पूछा, "आगामी युद्ध के बारे में आप क्या सोचते हैं ?"

प्रो० आइन्स्टीन ने दुखी स्वर में कहा, "कौन कह सकता है ? मैं जानता हूं कि सभी देशों की अधिकांश जनता युद्ध नहीं चाहती। सेना के नेता ही युद्ध के लिए उत्तेजित करते हैं, जोकि मेरा स्पष्ट मत है कि "पागल आदमी होते हैं। लेकिन यह विचित्र है कि ये 'पागल' लोग राजनीति में कैसे इतनी अच्छी तरह चल निकलते हैं।"

इस सरस विरोधी टिप्पणी पर हम सभी हंस पड़े। प्रोफेसर आइन्स्टीन ने भी हंसी में हमारा साथ दिया। अतः हम अब किसी गंभीर विषय पर बातचीत नहीं करना चाहते थे। मेरी पत्नी ने प्रो० आइन्स्टीन से अपने अलवम पर उनका संदेश लिखकर हस्ताक्षर करने की प्रार्थना की। इस पर प्रोफेसर महोदय ने यह अत्यंत सांकेतिक वाक्य लिखा—"मनुष्य के लिए मनुष्य से अधिक महान और कुछ नहीं है।"

प्रो० आइन्स्टीन के प्रति हमने अपने अमूल्य समय का इतना अधिक हिस्सा हमें देने के लिए अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त की। अपनी कुटीर के छोटे से बगीचे के दूबघर में समूह फोटो के हेतु आने का उन्होंने सौजन्य दिखाया। समूह फोटो के बाद हम सभी उनके सामने आदर से नत-मस्तक होकर शाम की गाड़ी पकड़ने के लिए उनसे विदा हुए। इससे पहले कभी मैंने यह अनुभव नहीं किया था कि सच्ची महानता सादगी और मानवीयता में ही निहित है। लौटने पर प्रो० आइन्स्टीन का एक वाक्य मेरे दिमाग में गूंजता रहा था, "गांधीजी की मृत्यु उनकी सबसे बड़ी विजय थी।" कितना सत्य पर कितना दर्दनाक !

८ / पर्ल बक की चेतावनी

पूर्वी और पश्चिमी एसोसिएशन के न्यूयार्क स्थित कार्यालय में श्रीमती पर्ल बक से मिलने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ। श्रीमती पर्ल बक प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका और भारत की एक सुप्रसिद्ध मित्र रहीं। श्रीमती पर्ल बक अपना अधिकांश समय अमरीका के गांवों में सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों में खर्च करतीं। वे न्यूयार्क स्थित अपने कार्यालय में सप्ताह में एक दिन उपस्थित रहतीं।

जब उन्हें यह मालूम हुआ कि अमरीका के रास्ते में हम चीन से आए हैं, तो उनके दिमाग में चीन संबंधी विचार आने लगे और उन्होंने वर्तमान स्थिति संबंधी अपना विश्लेषण करना शुरू किया। उन्होंने कहा, "राष्ट्रीय सरकार की असफलता का मुख्य कारण भ्रष्टाचार और अक्षमता है। चांगकाई शेक सहित सरकारी उच्च अधिकारी चीन की सर्वसाधारण जनता से संपर्क न रखते हुए सुख-चैन की जिन्दगी बिता रहे हैं। वे स्वयं देश के कानूनों का पालन नहीं कर रहे हैं और इस प्रकार सर्वसाधारण वाहन के नियमों का पालन करने के कारण स्वयं गैरशिक्षा का बहुत बुरा उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं।"

पर्ल बक ने आगे कहा, "चांगकाई शेक की सबसे भीषण भूल केंद्रीकरण का अतिरेक है। चीनी लोग राष्ट्र के रूप में आर्थिक और राजनैतिक अधिकारों के केन्द्रीकरण से भारी घृणा करते हैं। वे स्थानीय राष्ट्रप्रेम और व्यक्तिगत हितों की भावना से ओतप्रोत हैं। कम्युनिज्म की शक्तियों को नष्ट करने की राष्ट्रीय सरकार की अपरिमित इच्छा ने चीनी जनता के स्थानीय हितों का दमन किया, जिसके परिणामस्वरूप उसे उनके कोप और आवेश का भाजन बनना पड़ा।"

"क्या आप सोचते हो कि ऐसी स्थिति में चीन में कम्युनिज्म सफल हो सकता है।" यह मेरा स्वाभाविक प्रश्न था। मुझे डर है कि चीन की धरती पर कम्युनिज्म तभी सफल हो सकता है जबकि नई सरकार राजनैतिक और अर्थिक शक्तियों का विकेंद्रीकरण करे, अन्यथा व्यक्तिगत और दलगत हितों के बीच लंबे संघर्ष की अधिक संभावना है। सोवियत ढंग की कम्युनिज्म चीन की राष्ट्रीय परंपराओं के विपरीत है और जबतक नया प्रशासन लोगों की क्षमता के अनुरूप बनता है, तबतक वह नई अनावश्यक परेशानियों को निमंत्रित कर सकता है।"

"अमरीका ने चीन की राष्ट्रीय सरकार की मदद क्यों नहीं की।" यह मेरा दूसरा सवाल था।

श्रीमती पर्ल बक ने उत्तर दिया, "तीसरे विश्वयुद्ध के लिए व्यग्र हुए बिना अमरीका चांगकाई शेक की मदद नहीं कर सकता था। कम्युनिस्ट शक्तियों के पक्ष में सोवियत संघ दृढ़ता-पूर्वक काम कर रहा था और अमरीका के लिए अपरोक्ष रूप से कम्युनिस्ट शक्तियों की धारा के प्रमुख प्रवाह को रोक पाना संभव नहीं था। कम्युनिस्टों के विरोधियों की खुले रूप में सहायता का अर्थ होता दो प्रधान खेमों के बीच सशस्त्र संघर्ष।" इसके बाद कुछ क्षणों के गंभीर मौन के बाद वे फिर बोलीं, "मुझे यह भी स्पष्ट रूप से स्वीकार करना चाहिए कि अमरीकी जनता जानती थी कि चांगकाई शेक का अपनी जनता के साथ महत्वपूर्ण संपर्क नहीं रहा है और चीनी

आम जनता के सहयोग बिना उसे कोई ठोस मदद देना असंभव है। जब मदाम चांगकाई शेक अमरीका से ठोस आर्थिक मदद प्राप्त करने आई थीं तब मैंने उनसे स्पष्ट कहा था यदि वे सचमुच सफलता प्राप्त करना चाहती हैं तो उन्हें यहां अत्यन्त सादगी से रहना चाहिए। किन्तु सावधानी की हर सूचना के बावजूद वे अत्यधिक सुविधापूर्ण होटल में अत्यन्त अमीरी ढंग से रहीं। अमरीकी जनता ने इसीलिए उसे नहीं चाहा और उसके काम में उन्होंने मदद नहीं पहुंचाई।"

इसके बाद उनकी विचारधारा भारत की ओर मुड़ी। भारत को वे प्यार करती हैं और उसे आदर की दृष्टि से देखती हैं। चूंकि वे गांधीजी के देश की सच्ची मित्र हैं, अतः भारत की नई सरकार को सावधान करने से नहीं चूकीं, "क्या मैं तुम्हारे देश के बारे में कुछ कहूं?" उस महीयसी महिला ने कहा, "चीन में चांगकाई शेक की दुखद विफलता से समय रहते तुम्हारी सरकार को पाठ सीखना चाहिए। आपके नेताओं को बड़ी सादी और ईमानदार जिंदगी बितानी चाहिए। साथ ही उनका जनसाधारण से संपर्क बना रहे, जनता यह अनुभव करे कि उनके नेताओं तथा सरकार द्वारा हमेशा उनकी भलाई के लिए कुछ न कुछ किया जा रहा है।"

वे थोड़ी देर के लिए रुकीं और फिर बोलीं, "जनता की भलाई शीघ्र ही की जानी चाहिए इसमें देरी ख़तरनाक होती है। भारतीय नेताओं को यह नहीं भूलना चाहिए कि समय सार-पदार्थ है।"

इस पर मैंने प्रश्न किया, "क्या आप नहीं सोचतीं कि हमारी सरकार भारत में विकेंद्रीकरण की नीति अपनाए?"

श्रीमती पर्ल बक ने जोर देते हुए कहा, "इसके संबंध में मेरे मन में जरा भी संदेह नहीं है। चीन के पाठकों के प्रति भारत आंख मींचकर नहीं रह सकता। यदि वह भी आर्थिक और राजनैतिक शक्तियों के केंद्रीकरण के अतिरेकी देशों जैसी ही भीषण भूल करेगा तो उसे भी भविष्य में पछताना ही पड़ेगा। भारत अनन्त काल से आर्थिक और प्रजातांत्रिक विकेंद्रीकरण की भूमि रहा है और इन राष्ट्रीय हित की स्वस्थ परम्पराओं में गड़बड़ी पैदा नहीं करनी चाहिए।"

अबतक हमारी बातचीत पूर्व पर केंद्रित थी। अतः मैं विषय को बदलकर अमरीका की स्थिति के विषय में कुछ प्रश्न पूछना चाहता था। किन्तु ऐसा करने से पहले मैं यह जानना चाहता था कि क्या निकट भविष्य में श्रीमती पर्ल बक की भारत यात्रा की कोई संभावना है।

मैंने धीरे से पूछा, "क्या आप एक सच्चे मित्र की भांति विलंब न होते और समय रहते सलाह देने के लिए भारत आना पसंद नहीं करेंगी?"

वे मुस्कराईं और बोलीं, "फिलहाल आपकी सरकार विभाजन के परिणामस्वरूप उत्पन्न आश्चर्यजनक समस्याओं को सुलझाने में व्यस्त है। आशा है, मैं उस समय भारत आऊं, जबकि वह सही अर्थ में राष्ट्र-निर्माण का कार्य कर रहा होगा।"

"फिलहाल हमारे देश के लिए आपका संदेश क्या है?" मेरी पत्नी ने प्रश्न किया।

श्रीमती पर्ल बक ने कहा, "मैं आपके सक्षम नेताओं को क्या संदेश दूं और मैं क्या सलाह दे सकती हूं? मैं तो एक ही मित्रतापूर्ण चेतावनी दे सकती हूं और वह यह कि सादगीपूर्ण जीवन ही नई सरकार का देश में और देश के बाहर ध्येय-वाक्य रहे।"

हमने श्रीमती पर्ल बक को उनके द्वारा दिये गए परामर्श और सामयिक चेतावनी के लिए हार्दिक धन्यवाद दिया। इसके बाद हमारी बातचीत विश्वयुद्ध की संभावना से उत्पन्न अमरीकी

समस्या की ओर मुड़ी।

मैंने उनसे पूछा, "निकट भविष्य में गोलार्द्धों के मुठभेड़ की संभावना के संबंध में आप क्या सोचती हैं?"

"सचमुच ऐसे प्रश्नों का उत्तर देना बहुत कठिन है। लेकिन अगले विश्वयुद्ध को टालने के लिए जो कुछ हम कर सकते हैं, वह यही है कि अपने-अपने देशों की जनता को शिक्षित बनाएं। उदाहरणस्वरूप अमरीकी ग्रामीण जनता सोवियत एशिया के कम्युनिज्म के बारे में बहुत कम जानती है। वे धरती-पटल पर इस संबंध में सबसे अज्ञानी लोग हैं। वे अमरीकी समाचार-पत्रों से अर्द्धज्ञान प्राप्त करते हैं और इन समाचारपत्रों में सोवियत संघ के विरुद्ध हलचल मचाने वाला आन्दोलन मात्र होता है। इसलिए मैं ग्रामीण जनता को सही अर्थ में शिक्षित करने का यथासंभव थोड़ा-बहुत प्रयत्न कर रही हूं।"

मैंने संकोचपूर्वक जिज्ञासा की, "क्या आप नहीं सोचतीं कि तथाकथित गैर अमरीकी प्रवृत्तियों को दबाने के बहाने अमरीकी संयुक्त राज्य में फ़ासिज्म तेजी से प्रगति पर नहीं है?

श्रीमती पर्ल बक ने जोर देते हुए उत्तर दिया, "हां-हां, आपको मालूम होना चाहिए कि शांति की निश्चितता के लिए अमरीका को तेजी से शस्त्रयुक्त बनाया जा रहा है। राष्ट्रीय अंदाज-पत्रक की ८१ प्रतिशत राशियुद्ध की तैयारियों पर खर्च की जाती है और केवल १९ प्रतिशत राशि स्वास्थ्य और शिक्षा जैसे समाज-कल्याण के कामों पर खर्च की जाती है। राष्ट्रसंघ में शांति पर खर्च प्रति डालर के लिए एक हजार डालर शस्त्रों के लिए उपयोग में लाये जाते हैं। शैक्षणिक संस्थाओं में अनिवार्य सैनिक शिक्षण की सतत चीख-चिल्लाहट मची हुई है। सैनिक नेतागण लोगों में भय पैदा करके बड़ी चतुराई से इस दूषित आन्दोलन को आगे बढ़ा रहे हैं। सबसे अधिक दयनीय बात यह है कि अमरीका के अत्यन्त शक्तिशाली महिला संगठन भी सैनिक अधिकारियों के चंगुल में फांसकर जबरन भर्ती के पक्ष में मतदान करते हैं। यह रीति जब कानून के रूप में पास हो जाती है तो सैनिक नेताओं का पूरा अंकुश हो जाएगा।"

मैंने पूछा, "एशिया के विषय में क्या?"

इस पर महिला ने उत्तर दिया, "यद्यपि उनके सैनिक नेतागण गोलार्द्ध की और दूसरी आपसी टकराहट के लिए तैयारी कर रहे है, फिर भी मैं नहीं सोचती कि रशियन युद्ध चाहते हैं। अमरीकी लोग डरते हैं कि रशिया युद्ध चाहता है जबकि रशियन भयभीत हैं कि अमरीका उन पर युद्ध न लाद दे। यह भयग्रस्त वातावरण दिनोंदिन बद-से-बदतर होता जा रहा है। अतः हमारा कार्य उस जन-साधारण के बीच होना चाहिए, जिसे इस भयग्रस्त वातावरण से मुक्त किये जाने में मदद की आवश्यकता है।"

इस महान महिला से मिलना सचमुच परम सन्तोष की बात थी—ऐसी महिला, जिसके बारे में इन सारे वर्षों में हमने बहुत-कुछ सुन रखा था।

समाज-संरचना के आधार

१ / संयोजन के मार्ग पर

हम चाहते हैं कि भारत का आर्थिक विकास योजनापूर्वक और जल्दी-से-जल्दी हो, परंतु हमारे इस अति उत्साह में एक बुनियादी सिद्धान्त की उपेक्षा हो जाने का बड़ा भय है। राष्ट्र की सच्ची प्रगति के लिए केवल भौतिक सुख-साधनों का बढ़ जाना या इनका स्तर ऊंचा हो जाना ही काफी नहीं है। उसकी प्रगति का मुख्य लक्षण केवल यही नहीं हो सकता। निस्सन्देह हम कोशिश करें कि राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को सन्तुलित भोजन मिले, पर्याप्त कपड़े और रहने को घर भी हो और शिक्षण तथा उसके परिवार के आरोग्य की रक्षा के लिए अमुक मात्रा में सुविधाएं भी हों। परन्तु इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि अन्ततोगत्वा किसी देश की सच्ची प्रगति तो उसके नागरिकों के चरित्र और व्यक्तिगत गुणों से ही नापी जायगी। पश्चिम में एडम स्मिथ से लेकर मार्क्स और कीन्स तक अर्थशास्त्र के बड़े-बड़े विचारक हो गये। ये आदर्शवादी भी थे और जड़वादी भी थे, जिन्होंने विशुद्ध रूप से अर्थशास्त्र तथा समाजवाद की भाषा में ही सोचा है। परन्तु इन सबके चिन्तन में विषय के मानवी, नैतिक और चेतना-सम्बन्धी पहलू पर किसी ने ध्यान ही नहीं दिया है।[1] लुई ममफोर्ड ने ठीक ही कहा है कि मनुष्य और समाज को नया रूप देने के हमारे प्रयास में संसार की नई संस्कृति किसी ऐसी आध्यात्मिक शक्ति को जन्म दे सकती है, जिसके अन्दर अनेक और अपूर्व नई-नई बातें हो सकती हैं, जो आज के मानव में हमें नहीं दिखाई देतीं। रेडियम के विषय में यही तो हुआ। वह संसार में था—अज्ञात रूप में पड़ा था। परन्तु सौ वर्ष पहले तक भी किसी को उसका खयाल नहीं था।[2] इसलिए हम जिस नवीन समाज की रचना करना चाहते हैं, वह कैसा हो, इसकी कल्पना केवल इस बात से नहीं करें कि उसमें हम कौन-कौन-सी और कितनी सुख-सुविधाएं प्राप्त कर सकेंगे, बल्कि यह सोचें कि व्यक्ति और समाज के जीवन से संबंध रखने वाले उच्च नैतिक गुणों को और मूल्यों को हम वहां किस मात्रा में प्राप्त करना चाहते हैं, क्योंकि किसी भी राष्ट्र का जीवन और अस्तित्व इन्हीं पर निर्भर होता है। गांधीजी कहते थे कि "सच्ची सभ्यता जरूरतों को बढ़ाने में नहीं, बल्कि उनके संयम में है।" अर्थशास्त्र के दो नियम हैं—एक तो यह कि किसी चीज की उपयोगिता सदा एक-सी नहीं

१. जान स्ट्रेची—काण्टेम्परेरी सोशलिज्म, पृ० २६४
२. लूई ममफोर्ड—दि ट्रान्सफार्मेशन आफ मैन, पृ० १८२

वनी रहती। वह घटती जाती है। और दूसरा यह कि कुछ जरूरतें ऐसी होती हैं, जो कभी पूरी ही नहीं होतीं।[३] मनुष्य इन चीजों को जितना भी अधिक प्राप्त करता है उसको कभी सन्तोष नहीं होता, सच्चा समाधान नहीं होता।

मनुष्य एक कामना को, इच्छा को, पूरी करता है कि उसके सामने दूसरी कामना खड़ी हो जाती है। उसकी इच्छाएं इन वस्तुओं से कभी पूरी हो ही नहीं सकतीं। इसलिए हम वरवस इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि अर्थशास्त्र को यदि सचमुच मानवजीवन का शास्त्र वनना है तो उसे मानव-जीवन का गहरा अध्ययन करना होगा। वास्तव में मानव-जीवन की परिपूर्णता कामनाओं के पीछे दौड़ने में नहीं, उनसे मुक्ति पाने में है। अर्थशास्त्र मनुष्य को उस दिशा में ले जाने वाला साधन वने। रोमां रोलां ने यही बात वड़े मार्मिक शब्दों में कही है—"परिग्रह का विस्तार आत्मभाव का संकोच है।" अतः आर्थिक संयोजन का लक्ष्य यह न हो कि हम अधिक-से-अधिक चीजें निर्माण करें ताकि वे अधिक-से-अधिक लोगों के लिए सुलभ वन जायं, वल्कि यह हो कि वे अच्छे-से-अच्छा जीवन विता सकें। इसके लिए हमें केवल ऐसी ही और इतनी ही चीजों का निर्माण करना चाहिए, जो इस प्रकार के जीवन में मददगार हो सकें। "जीवन की उच्चता धन से नहीं नापी जा सकती। न वह बाजार की वस्तु है।" वाल्टर लिपमन ने भी अपनी पुस्तक 'दि पब्लिक फिलासफी' में लगभग यही वात कही है और लोकराज्य के पुरस्कर्ताओं से कहा है कि वे भौतिक सत्ता और शक्ति से ऊपर उठकर 'अव्यक्त सत्यों' और 'अदृश्य सत्ता' में श्रद्धा और विश्वास करना सीखें।

आचार्य विनोवा भावे ने एक वार विनोद में कहा कि समस्त संसार में उनसे अधिक वैभवशाली शायद ही कोई व्यक्ति होगा। "मेरे पास पचास लाख एकड़ जमीन है जो लोगों ने स्वेच्छापूर्वक दान में दी है। अपनी पदयात्रा में प्रतिदिन मुझे नित्य नये मकान रहने को मिलते हैं। मैं खुली हवा में सोता हूं, जहां आकाश मेरा शानदार और विशाल चन्दोवा है और उसके अन्दर चमकने वाले नक्षत्र और चांद मुझे उस अनन्त की झांकी दिखाते रहते हैं।" एक दिन एक ग्रामसभा में उन्होंने एक मनोरंजक क़िस्सा सुनाया। किसी शहर में एक जमींदार ने उन्हें भूदान में कुछ जमीन दी थी। वह उन्हें अपने घर ले गया और वहां अपनी बैठक में लगाया हुआ सूर्योदय का चित्र उन्हें बड़े गर्व के साथ दिखाने लगा, जो उसने सौ रुपये में खरीदा था। विनोवाजी ने मुस्कराकर कहा, "सौ रुपये देकर सूर्योदय का चित्र खरीदने की अपेक्षा क्या यह अधिक अच्छा नहीं कि मनुष्य गांवों में रहे और प्रत्यक्ष उगते हुए सूर्य का रोज विना मूल्य दर्शन करे?" उन्होंने गांव के लोगों से पूछा कि आप ही वताइए, कौन ज्यादा भाग्यशाली है—शहर की एक घनी वस्ती में रहने वाला वह तथाकथित धनी मनुष्य, जिसने अपने दीवानखाने में प्राकृतिक दृश्यों के सुन्दर-सुन्दर चित्र लगा रखे हैं या वह मनुष्य, जो गांवों के स्वच्छ, सुन्दर और स्वास्थ्यदायक वातावरण में प्रत्यक्ष प्रकृति की गोद में रहता है?

हम अपना खाना खुद घर पर पकाते हैं। उसका स्वाद, स्वच्छता और आनन्द कुछ और होता है। काम वदलता रहे और वैज्ञानिक प्रगति चाहे कितनी ही हो जाय, उसके आनन्द में कोई कमी नहीं होगी। यही वात विकेन्द्रीकरण की है। स्वयंपूर्णता और स्वावलम्वन व्यक्तिगत और सामाजिक अहिंसा की चावी है।

३. न जातु कामः कामानाम् उपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते।

गांधीजी चाहते थे कि अहिंसक अथवा सर्वोदय के ढंग के संयोजन में सारा अभिक्रम गांवों के लोगों के हाथों में हो। इससे वे स्वाधीन और स्वावलम्बी बनेंगे और स्वतंत्रता के तेज का उन्हें प्रत्यक्ष अनुभव हो सकेगा। इसीलिए तो वे ग्राम-पंचायतों को फिर से विकसित करना चाहते थे ताकि वे देश के आर्थिक और राजनैतिक संगठन के अभिन्न अंग बन जायं। अनेक वर्षों के प्रारम्भिक प्रयोगों और अनुभवों के बाद सामुदायिक विकास-योजना में काम करने वाले भी अब इसी निश्चय पर पहुंच रहे हैं कि भारत की जनता के जीवनमान को यदि हम ऊपर उठाना चाहते हैं तो हमें ग्राम-पंचायतों को ही पुनर्जीवित कर उन्हें क्रियाशील बनाना होगा।

पश्चिम के अर्थशास्त्री भी अब इस नतीजे पर पहुंचते जा रहे हैं—और इसके बगैर कोई चारा है ही नहीं कि "जहां सत्ता और सम्पत्ति का केन्द्रीकरण होता है या किया जाता है, वहां लोकतन्त्र कभी पनप नहीं सकता।" अत्यधिक संगठन या बन्धन मनुष्य को यन्त्रवत् जड़ बना देता है और उसकी सृजन-शक्ति का गला घोंट देता है। स्वतंत्रता की सम्भावना तक को मिटा देता है। प्रोफेसर हक्सले ने बताया "बड़े शहरों का जीवन मनुष्य के मानसिक स्वास्थ्य के लिए कितना हानिकर है और किस प्रकार वहां छोटी-छोटी इकाइयों में भी मनुष्य स्वतंत्रता-पूर्वक जिम्मेदारी का विकास करने में असमर्थ रह जाता है जो कि सच्चे लोकतन्त्र की सबसे पहली शर्त है। समाज-कल्याण के क्षेत्र में भी यदि अत्यधिक सख्ती बरती जाती है तो वहां मनुष्य पर बड़ा विपरीत असर पड़ता है। जो समाज-निर्माता हमें इस दिशा में ढकेलने का प्रयत्न कर रहे हैं वे निस्संदेह हमें पुनः मध्ययुग की ओर ले जायेंगे।"

राजनैतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण से जुड़ा हुआ एक और प्रश्न है, बेकारी को मिटाने का—खास तौर पर अविकसित देशों में। कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि जिन देशों में यांत्रिक और केंद्रित उद्योगों का अत्यधिक विकास हो चुका है और खास तौर पर जिन भागों में आबादी बहुत घनी है, वहां बेकारी को एकदम मिटाने की गुंजाइश बहुत कम होगी। उदाहरण के लिए संयुक्त राज्य अमरीका को ही लीजिए। वहां आज भी लाखों आदमी बेकार हैं और वहां उन्हें काम नहीं दिया जा सकता। ज्यों-ज्यों अपने-आप काम करने वाले और मजदूरों की बचत करनेवाले यन्त्रों का आविष्कार होता जाता है त्यों-त्यों वहां बेकारी बढ़ती जा रही है। इसलिए वहां भी अब लोग सोचने लगे हैं कि इन उद्योगों का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए और शहरों के इन बड़े-बड़े कारखानों के बजाय यही काम छोटे पैमाने पर करने वाले कारखाने और दुकानें अब गांवों में खोली जानी चाहिए जो इन बड़े कारखानों के कामों को बांट लें।

भारत एक घनी आबादी वाला अर्ध-विकसित देश है। व्यापक, देशव्यापी विकेन्द्रीकरण के बगैर यहां बेकारी को मिटाना असम्भव है। यह काम खेती की उपज से पक्का माल बनानेवाले छोटे-छोटे गृहोद्योगों और ग्रामोद्योगों के द्वारा ही हो सकता है और वह भी सहकारी पद्धति पर। कहने की आवश्यकता नहीं कि एक सभ्य और लोकतंत्री देश में काम करने लायक शरीरवाले और काम की मांग करनेवाले सभी मनुष्यों को काम देना कितना जरूरी है। बेकारी का परिणाम केवल अर्थव्यवस्था पर ही नहीं होता, उसका असर मनुष्य के मन, शरीर, नीति और चरित्र पर भी पड़ता है। इसीलिए तो अब पश्चिम के अर्थशास्त्री भी मानने लगे हैं कि उत्पादन बढ़ जाय और बेकारी बनी रहे, इसकी अपेक्षा यह ज्यादा अच्छा है कि सबको काम मिले। और एक अविकसित देश में तो बेकारी का स्थूल भार और भी असह्य होता है, क्योंकि बेकार आदमी उन इंजिनों के

समान होते हैं, जिन्हें अन्न-रूपी ईंधन तो देना ही पड़ता है, परन्तु जिनसे कोई उत्पादक काम नहीं लिया जाता।

इसलिए गांधीजी का खादी और ग्रामोद्योग वाला कार्यक्रम केवल सैद्धांतिक नहीं, वल्कि पूरी तरह से व्यावहारिक भी है, क्योंकि इसमें वेकार पड़ी देश की सम्पूर्ण मनुष्य-शक्ति का उपयोग हो सकता है। इस योजना में मानव-शक्ति का उपयोग और पूंजी की वचत दोनों काम वन जाते हैं। श्री रिचर्ड ग्रेग मानते हैं कि "गांधीजी की यह योजना अत्यन्त मौलिक, वुद्धिमत्तापूर्ण, व्यावहारिक और परिणामजनक है। पूरी या आंशिक वेकारी को दूर करने के लिए आज तक ऐसी परिपूर्ण योजना किसी देश में नहीं वन सकी है। यह केवल इस देश में नहीं, समस्त देशों में आजमाई जा सकती है।"

जाहिर है कि देश के प्रत्येक भाग के वेकारों को काम देने की जिम्मेदारी केन्द्रीय सरकार नहीं उठा सकती। इस समस्या को तो स्थानीय ग्राम-संस्थाएं ही अपनी सूझ-वूझ, सलाह-मशविरे और स्वयं निर्णय करके हल कर सकती हैं। सार्वजनिक लाभ के काम शुरू करते समय इस वात का सदा ध्यान रहे कि उनसे स्थानीय वेकारों को रोजी मिले। गांव के लोग पास की बड़ी सड़क से अपने गांव को जोड़ने वाली सड़क भले ही श्रमदान से वना लेंगे, परन्तु मान लीजिए एक बड़ी सड़क को देश की दूसरी वड़ी सड़क से जोड़ना है तो यह काम वे मुफ्त में नहीं करेंगे। गांव के अन्दर नालियां या गटरें वनानी हैं तो यह काम वे मुफ्त में कर देंगे। परन्तु मान लीजिए, कोई ऐसा काम खोला जाता है, जिसका लाभ अधिक व्यापक क्षेत्र को मिलने वाला है तो वहां वे ऐसा नहीं करेंगे। इसीलिए तो साहस के साथ और व्यवस्थापूर्वक राजनैतिक और आर्थिक सत्ता के विकेन्द्रीकरण की जरूरत है।

एक वात और साफ तौर पर समझ लेना जरूरी है, वह यह कि छोटे-छोटे गृहोद्योगों और ग्रामोद्योगों के रूप में उत्पादन के विकेन्द्रीकरण की कल्पना का अर्थ यह नहीं है कि हम विज्ञान की उपलब्धियों और विभूतियों से कोई लाभ नहीं उठाना चाहते। विज्ञान की मदद से ग्रामोद्योगों में सुधार करने का गांधीजी ने कभी विरोध नहीं किया। परन्तु हमें केवल यान्त्रिक कुशलता और रुपये-आने-पाई के लाभ की भाषा में नहीं, वल्कि समस्त समाज और व्यक्तियों के शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और आध्यात्मिक विकास की दिशा में सोचना है। इस दृष्टि से यन्त्रों की रचना में और उनके चालन में यदि छोटे-छोटे सीधे-सादे सुधार ही कर दिये जायें तो भी अविकसित देशों में उत्पादन को काफी वढ़ाया जा सकता है। यन्त्रों से काम अधिक जरूर होता है, परन्तु इतने से यह सोचना गलत होगा कि इस कारण वे सभी प्रकार से लाभदायक होते हैं।

भारत जैसे गरीव देश को तो मौजूदा परिस्थिति में खेती का और उद्योगों का उत्पादन वढ़ाने के लिए कुछ कम कुशल यन्त्रों से ही काम चला लेना चाहिए। इसीलिए तो गांधीजी परिश्रम के महत्त्व पर इतना जोर देते थे और कहा करते थे कि अपनी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए मनुष्य को स्वयं अपने हाथों से काम करना चाहिए। अपनी जरूरत की चीजें मनुष्य खुद अपने हाथों से वना ले या उत्पन्न कर ले, इसे कभी उन्होंने वुरा नहीं समझा। वे तो शारीरिक श्रम को मनुष्य की नैतिक और आध्यात्मिक उन्नति का साधन मानते थे, "ईश्वर ने मनुष्य-शरीर की रचना ही इस प्रकार की है कि वह अपनी रोजी खुद काम करके कमाये। और जो ऐसा नहीं करता, वह चोर है।"

और सबसे बड़ी बात तो यह है कि संसार में विज्ञान, यन्त्र-निर्माण तथा हर बात में विशेष योग्यता प्राप्त करने की जो इतनी प्रगति हो गई है कि उस सबके बावजूद हमें अपने समस्त व्यापार, व्यवसाय और उद्योगों में 'मानवता' को नहीं खोना चाहिए। उसके बगैर जीवन में कोई रस नहीं रहेगा। जैसा कि लूई ममफोर्ड ने कहा है, "हमारा सबसे पहला कर्तव्य है 'मनुष्यता' को लौटा लाना। हम मनुष्य बनना, पूर्णतः मनुष्य के समान जीना सीखें। विशेषज्ञता, आदर्शवादिता, पक्षपात, राष्ट्रीयता—इन सबको अलग रखकर हम केवल विशुद्ध मनुष्यता के पुरस्कर्ता बनें। हम प्रेम और ज्ञान को प्राण से भी अधिक मूल्यवान समझें।" आचार्य विनोबा भी तो विज्ञान और अहिंसा का गठबन्धन कर देने की बात करते हैं, "विज्ञान की प्रगति ने अहिंसा को अब अपरिहार्य बना दिया है।"

वास्तव में मानवीय और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास और इनकी सफलता बड़े-बड़े शहरों में नहीं, छोटे-छोटे समाजों में ही सम्भव है। शहरों का जीवन तो यन्त्रवत् जड़ हो जाता है। वहां मनुष्य की मिलनसारिता बहुत कम हो जाती है। इसीलिए तो गांधीजी चाहते थे कि भारत का विकास पश्चिमी देशों की परम्परागत विशाल औद्योगीकरण की पद्धति से नहीं, बल्कि सुसंगठित ग्राम-पंचायतों और सहकारी संस्थाओं की दिशा में हो, जो अपने-अपने क्षेत्र में तो पूर्णतः स्वायत्त और स्वतंत्र हों परन्तु अपने आस-पास के गांवों से भी जरूर मेल-जोल रखें ताकि सबका हित हो।

इस प्रकार के विकेन्द्रित सहकारी समाज में प्रत्येक व्यक्ति अथवा समूह को सम्पूर्ण समाज या देश के व्यापक हितों को सदा अपनी आंखों के सामने रखना होगा। गांधीजी के बताए 'सर्वोदय' का अर्थ भी यही है कि ऐसे समाज को अपने अन्तर्गत सभी अंगों के हितों का ध्यान रखना चाहिए और जहां-कहीं भी विरोध दिखाई दे, उसे शान्ति और प्रेम अर्थात् अहिंसा के द्वारा दूर करने का यत्न करना चाहिए। प्रोफेसर डर्बिन ने कहा ही है कि "छोटे हिस्से को चाहिए कि सम्पूर्ण समाज के हितों के सामने अपने स्वार्थ को छोड़ दे।" और बड़े समाज का कर्तव्य है कि वह सबके हितों की रक्षा करे। इसके लिए उसमें ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति के हितों या स्वार्थों की मर्यादा वह बना दे।

संक्षेप में, मैं अपने निश्चय और विश्वास को फिर से दोहरा दूं कि आर्थिक विकास के सम्बन्ध में गांधीजी के विचार निरे आदर्शवादी के पिछड़े हुए विचार नहीं हैं। आप उन्हें विज्ञान और बुद्धि की ऊंची-से-ऊंची कसौटी पर परखकर देख लें और आप पायेंगे कि वे पश्चिम के नये-से-नये विचारकों के विचारों से अलग नहीं हैं। अपने देश के लिए आर्थिक योजनाएं और कार्यक्रम बनाते समय हम दूसरे देशों के अनुभवों और प्रयोगों से लाभ उठाने की पूरी-पूरी कोशिश करें। परन्तु साथ ही गांधीजी ने अपने सेवामय दीर्घ जीवन के गहरे अनुभवों के आधार पर जो बुनियादी सिद्धान्त हमें बताये, उन्हें हम अपनी नजरों से ओझल नहीं होने दें। इनका सार एक छोटे-से सूत्र में आ जाता है, जो उन्होंने भारत और संसार के सामने रख दिया है। वे कहते हैं :

"मैं आपको एक मंत्र बताये देता हूं। जब कभी आपको सन्देह घेर ले अथवा स्वार्थ बलवान बन जाय तब आप यह कसौटी आजमायें। अपने जीवन में दरिद्र-से-दरिद्र अथवा कमजोर-से-कमजोर आदमी यदि आपने देखा हो तो उसे याद कर लें और अपने आप से पूछें कि आप जो काम करने जा रहे हैं, उससे उसे क्या लाभ हो सकता है? क्या इससे उसका कुछ भला होगा?

क्या इसकी मदद से वह अपने जीवन या भाग्य पर कुछ भी प्रभुत्व प्राप्त कर सकेगा ? दूसरे शब्दों में, भूखों और आध्यात्मिक ज्ञान और समाधान के प्यासे करोड़ों को स्वराज्य की ओर ले जाने में क्या वह कुछ मदद कर सकेगा ? बस, इतने से आपके सारे सन्देह और स्वार्थ दूर हो जायेंगे।"

२ / संयोजन और लोकतंत्र

अक्सर पूछा जाता है कि क्या लोकतंत्र और संयोजन साथ-साथ चल सकते हैं ?

यह सवाल इस कारण पैदा होता है कि व्यापक आर्थिक संयोजन का प्रयोग सबसे पहले सोवियत रूस में किया गया और वहां था अधिनायक तंत्र। अधिनायक तंत्र में आर्थिक और राजनीतिक सत्ता का सम्पूर्ण केन्द्रीयकरण होता है। इसलिए लोगों का आम तौर पर यह खयाल बन गया कि संयोजन वहीं सम्भव है जहां केन्द्रीय शासन के हाथों में हर योजना को प्रवर्तित करने, संचालन करने और फौजी अनुशासन के साथ उसका नियमन करने की सत्ता होती है। यों आर्थिक विकास की योजनाएं सभी साम्यवादी देशों में जारी हैं और वहां उनका संचालन भी व्यवस्थापूर्वक हो रहा है, फिर भी भारत ही सबसे पहला देश है जहां लोकतंत्रीय शासन-पद्धति में आर्थिक संयोजन का इतना विशाल प्रयोग किया जा रहा है। संयुक्त राज्य अमरीका में राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने युद्धोत्तरकालीन महान मन्दी के बाद कुछ क्षेत्रों में 'दि न्यू डील' के नाम से संयोजन का प्रयोग जरूर किया था। इसी प्रकार ब्रिटिश संयुक्त राज्य में भी 'सोशल इंश्योरेंस', 'पब्लिक युटिलिटी सर्विसेस' और 'पब्लिक कारपोरेशन्स' जैसे विविध नामों से कुछ क्षेत्रों में संयोजन का प्रयत्न किया गया था। परन्तु पश्चिम के इन प्रसिद्ध लोकतंत्रों में से एक ने भी अपनी लोकतांत्रिक पद्धति के मातहत व्यापक योजना बनाने का अभी तक यत्न नहीं किया है। इस दृष्टि से संयोजन का हमारा प्रयत्न न केवल एशिया में, बल्कि समस्त संसार में बहुत अधिक महत्त्व धारण कर लेता है। इसलिए यदि यह प्रयोग सफल हो जाता है—और हमें निश्चय है कि यह अवश्य सफल होगा—तो इस देश के अनुभव दूसरे देशों के लिए, खास तौर पर एशिया और अफ्रीका के अर्द्धविकसित देशों के लिए, मार्गदर्शक सिद्ध होंगे।

आर्थिक संयोजन का असली और बुनियादी हेतु यह है कि देश के भौतिक, आर्थिक और मानवीय साधनों का पूरा-पूरा और अत्यन्त बुद्धिमत्ता के साथ उपयोग किया जाय। अनिर्बन्ध व्यापार और प्रतिस्पर्धा की पद्धति में धन-जनरूपी सम्पत्ति का बड़ा अपव्यय होता है। उसमें मनुष्यों का शोषण बहुत होता है। यों कहने को उसका नाम व्यापारिक स्वतन्त्रता भले ही हो, परन्तु उसमें अंततोगत्वा होता है 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाले सिद्धान्त का ही पालन, और लोग अपने व्यापार को बढ़ाने की धुन में बड़ी बुरी तरह एक-दूसरे का गला काटने लग जाते हैं। इसलिए अब तो पूंजीवादी देशों के लोग भी मानने लग गये हैं कि यह व्यापारिक स्वतन्त्रता की

पद्धति गई-गुजरी है। उसके स्थान पर राज्य को व्यापार का नियंत्रण-संचालन स्वयं अपने हाथों में ले लेना चाहिए। अगर हम मान लेते हैं कि लोकतंत्र में संयोजन सम्भव नहीं है तो उसका सीधा अर्थ यही होगा कि लोकतंत्र में देश की साधन-सम्पत्ति का समुचित उपयोग नहीं हो सकता। परन्तु स्पष्ट ही यह तो गलत बात है। इसके विपरीत सच तो यह है कि सच्चा आर्थिक संयोजन—अर्थात् व्यक्ति और समाज के हितों का समन्वय—तो केवल लोकतंत्र में ही सम्भव है। मेरा तो निश्चित मत है कि आर्थिक संयोजन का प्रयोग भारत में समाजवादी लोकतन्त्री शासन-पद्धति में किया जा रहा है वह संसार के सामने संयोजन का एक आदर्श नमूना पेश कर सकेगा जिसका अनुकरण अवश्य ही बहुत-से देश करेंगे और उन्हें उससे लाभ भी होगा। संसार में आजकल संयोजन का अर्थ ही यह है कि उसमें लोगों का सहर्ष और सम्पूर्ण सहयोग हो। और यह केवल लोकतन्त्री शासन-पद्धति में ही सम्भव है। अधिनायकतंत्री अर्थात् तानाशाही देशों में जो आर्थिक संयोजन होता है उसे संयोजन कहना गलत होगा। वह तो आर्थिक क्षेत्र में फौजी शासन होता है।

फिर भी एक बात साफ तौर पर समझ लेना बड़ा जरूरी है। वह यह कि जब लोकतंत्र में संयोजन का प्रयोग किया जाता है, तब आर्थिक और राजनैतिक सत्ता का बहुत व्यापक रूप से वितरण या विकेन्द्रीकरण करना पड़ता है। यदि यह सावधानी नहीं रखी गई, तो लोकतंत्र भी अत्यधिक केन्द्रीकरण और फौजी हुकूमत का रूप धारण कर सकता है। उदाहरण के लिए सोवियत रूस को ही लीजिए। जहां तक कागजी लिखावट की बात है, उसको संविधान में 'सबसे अधिक उदार प्रजातन्त्र कहा जा सकता है।' उसमें भाषणों और व्यावसायिक स्वतंत्रता का पूरा-पूरा आश्वासन है। परन्तु संविधान में लोकतंत्र के इन सिद्धांतों के समावेश के बावजूद सारा संसार जानता है कि सोवियत रूस में सत्ता अत्यधिक केन्द्रित है और वहां व्यक्ति को किसी प्रकार की राजनैतिक स्वतन्त्रता—उसके सही अर्थ में—नहीं है। इसलिए इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रहे कि भारत के इस लोकतंत्री संयोजन में कहीं आर्थिक सत्ता का केन्द्रीकरण न हो और उससे लोकतन्त्री प्रक्रियाओं के कार्य में बाधा न पहुंचे। यों संयोजन का किसी भी पद्धति में एक सीमा तक तो केन्द्रीय संचालन और नियन्त्रण अनिवार्य रूप से आवश्यक होता है, फिर भी योजना के बनाने और अमल में जितना भी विकेन्द्रीकरण सम्भव हो, किया जाना चाहिए।

इसलिए यह उचित ही है कि भारत की सामुदायिक विकास योजना लोकतंत्री ग्राम-संस्थाओं अर्थात् ग्राम-पंचायतों की मजबूत नींव पर ही खड़ी की जाय। प्रारम्भ में सामुदायिक योजनाओं को शासकीय योजनाएं कहा गया था, जिनमें जनता को भी भाग लेना था; परंतु कुछ वर्षों के अनुभव के बाद केंद्रीय और राज्य की सरकारों ने यह तय किया है कि इस योजना को जनता की अपनी योजना कहा जाय, और सरकार इसमें सहयोग दे। यह केवल शब्दों का हेरफेर नहीं है, बल्कि इसमें मूलदृष्टि और पद्धति ही बदल जाती है। लोकतंत्रीय संयोजन का मर्म इसी में है कि स्वयं जनता में सूझबूझ और अभिक्रम का संतुलित विकास हो। जिस संयोजन पद्धति में यह नहीं होता, वह लोकतंत्री संयोजन ही नहीं है। गांधीजी सदा कहा करते थे कि केवल सही साधनों से ही सही साध्य प्राप्त किये जा सकते हैं। अगर लोकतंत्र में भी केन्द्रीकरण, जबरदस्ती और हिंसा से काम लिया जाएगा तो वहां ऐसी आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियां निर्माण होंगी जो लोकतन्त्र से एकदम उलटी होंगी। प्रोफेसर लास्की भी विकेन्द्रीकरण के ही पक्ष में हैं, क्योंकि एक अति-केन्द्रित

सत्ता वाला शासन जड़ और अन्ध-अनुशासन मांगता है, जो मनुष्य की सृजन-शक्ति की हत्या कर देता है। वहां सारी हलचल यान्त्रिक और निर्जीव-सी होती है। इसलिए लूई ममफोर्ड देहात में छोटी-छोटी सुगठित, संतुलित, सामाजिक इकाइयों का निर्माण करने की सलाह देते हैं। ये संस्थाएं नौकरशाही से उत्पन्न होनेवाली बुराइयों का अमूल्य और रामवाण उपाय हैं और स्वस्थ परम्पराओं के निर्माण द्वारा लोकतंत्र की मजबूत नींव डालने का काम करती रहती हैं।

यदि हम भारतीय लोकतंत्र के इतिहास का अध्ययन करें तो देखेंगे कि भारत में अति प्राचीन काल से पंचायतें काम करती रही हैं। वैदिक काल से शासन की इकाई गांव माना गया है। उपनिषदों, जातकों और स्मृतियों में ग्रामसभाओं का उल्लेख मिलता है। अंग्रेजी राज में जरूर इन पर जबरदस्त आघात हुआ, किन्तु अब वे पुनः नवजीवन प्राप्त करने लगी हैं।

इसलिए भारत में हमें इन दोनों 'अति' से बचना है—व्यावसायिक तथा व्यापारिक स्वतन्त्रता से और फौजी अनुशासन से भी। हमें सारी व्यवस्था इस प्रकार करनी है, जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का सुन्दर और संतुलित विकास हो। इसमें शासन और जनता दोनों इस प्रकार हिल-मिलकर काम करें मानो सब एक शरीर हों और दोनों मिलकर प्रजाकीय ही बन जायं। हमने भारतीय लोकतंत्र को 'समाजवादी सहकारी लोकराज्य' कहा है। याद रहे, लोकतन्त्र में समाजवाद तभी चरितार्थ होगा, जब सहकारिता के सिद्धान्त हर क्षेत्र में और अधिक से अधिक व्यापक रूप में लागू किये जायेंगे। आचार्य विनोबा के ग्रामदान आन्दोलन ने ग्रामीण क्षेत्र में सह-कारिता का आदर्श स्वरूप क्या हो सकता है यह प्रत्यक्ष रूप से दिखा दिया है। हम आशा करते हैं कि सहकारिता के बुनियादी सिद्धान्त का यह प्रयोग धीरे-धीरे उद्योगों के क्षेत्र में भी ले जाया जाएगा। आधुनिक संसार में समाजवाद और लोकतंत्र अनमेल-से होते हैं; परन्तु ऐसा होना जरूरी नहीं है। सहकारिता की पद्धति से यदि व्यापक रूप से काम लिया जाय तो ये दोनों एक-दूसरे के पूरक बनकर एक-दूसरे का बल बढ़ा सकते हैं।

हमारी अपनी राष्ट्रीय प्रकृति के अनुरूप पद्धतियों का विकास करना छोड़कर यदि हम दूसरे देशों में किये गये प्रयोगों की केवल नकल करते रहेंगे तो वह हमारे लिए बड़ा घातक होगा। मुझे विश्वास है कि लोकतन्त्री शासन-पद्धति के मातहत आर्थिक संयोजन का हमारा यह प्रयास जरूर और खूब सफल होगा और संसार के अन्य राष्ट्रों के सामने सिद्ध कर देगा कि संयोजन और लोकतंत्र न केवल साथ-साथ चल सकते हैं, बल्कि एक-दूसरे के पोषक और अंग भी हैं।

३ / समाजवाद की कल्पना

'समाजवाद' शब्द की व्याख्या विभिन्न विचारकों और समूहों ने अलग-अलग रूपों में की है। वास्तव में समाजवाद की वकालत करने वालों की संख्या बहुत बड़ी है और इस विषय का साहित्य इतना सुंदर और विविध है कि समाजवाद का ठीक-ठीक अर्थ बता सकना कठिन है।

जैसा कि प्रोफेसर जोड ने कहा है, "संक्षेप में, समाजवाद एक ऐसा टोप है, जिसका रूप ही लोप हो गया है, कारण हर कोई उसे पहनता है।"

हम सर टामस मोर के 'आदर्श समाजवाद', इन्कास के 'धार्मिक समाजवाद', कैनन किंग्सले और रेवरेण्ड मॉरिस के 'ईसाई समाजवाद', कार्ल मार्क्स के 'वैज्ञानिक समाजवाद' और सिडनी तथा विएट्रिस वैब के 'वैधानिक समाजवाद' के विषय में साहित्य पढ़ते हैं। किंतु बुनियादी तौर पर समाजवाद की कल्पना जान स्टुअर्ट मिल द्वारा प्रतिपादित व्यक्तिवादी दर्शन की कुछ अर्थों में एक प्रतिक्रिया ही है। मिल का कहना था कि "राज्य को लोगों को उस समय तक अकेला छोड़ देना चाहिए जब तक कि ये लोग दूसरे लोगों के मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते।" बेन्थम का मानना था कि हरेक आदमी अपने हितों की देखभाल स्वयं कर सकता है और यह कि "सभी व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्ति सारे समाज की भलाई के साथ जुड़ी हुई है।" समाजवादी विचारक यद्यपि अनेक महत्त्वपूर्ण बातों में एक-दूसरे से असहमत हैं, तथापि उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति व्यक्तिवादी दृष्टिकोण का उग्र विरोध किया और न्यायोचित व्यवस्था कायम करने के अनेक उपाय सुझाये हैं।

सेंट साइमन विशाल संगठन और योजना में दृढ़ विश्वास रखते थे। उनको आशा थी कि विज्ञान और तकनीकी शास्त्र का पूरा उपयोग करके समाज के कल्याण के लिए समाजवादी संगठन की स्थापना की जा सकती है। सेंट साइमन की मान्यताओं की तुलना में चार्ल्स फूरिये की यह दृढ़ मान्यता थी कि केवल कृषि-प्रधान सामाजिक संगठन के द्वारा 'उत्तम जीवन' का सपना साकार हो सकता है। राबर्ट ओवेन ने कारखानों की प्रणाली और उससे उत्पन्न होने वाली गंदी बस्तियों की भीषणताओं के विरुद्ध विद्रोह किया और 'सहकारी बस्तियों' के रूप में कृषि और उद्योग दोनों के संतुलित विकास की हिमायत की है। लुई ब्लां का खयाल था कि आम मताधिकार द्वारा राज्य प्रगति और कल्याण का साधन बन सकता है। उन्हें आशा थी कि "औद्योगिक प्रवृत्ति और कृषि में मेल बिठाया जा सकता है।" फर्डिनेण्ड लासाल चाहते थे कि मजदूर शोषण का अंत करने के लिए अपना उत्पादन स्वयं करें। सिमाण्डी चाहते थे कि उत्पादक साधनों के क्षेत्र में वास्तविक उपभोक्ताओं के मध्य संपत्ति का व्यापक वितरण हो और राज्य छोटे उत्पादकों और किसान भूस्वामियों के हित में आर्थिक परिस्थितियों का नियमन करे। प्रूढ़ो का दृढ़ विश्वास था कि 'क्षेत्रीयता' के सिद्धांतों के आधार पर समाजवादी समाज की स्थापना की जा सकती है, जहां छोटे-छोटे समूह आर्थिक प्रवृत्तियों को चलाते हैं।

जहां अनेक सामाजिक और राजनैतिक विचारकों ने सुख और समृद्धि की प्राप्ति के लिए व्यक्ति और छोटे समूहों की स्वतंत्रता की हिमायत की है, वहां हाब्स ने राज्य को 'लोगों की वफादारी का एकमात्र केंद्र' बनाने की कोशिश की है। रूसो ने कहा है कि जहां प्रत्येक नागरिक को अपने तमाम साथी नागरिकों से पूर्णतया स्वतंत्र होना चाहिए, वहां उसे स्वयं 'पूर्णतया राज्य के अधीन' होना चाहिए। यह राज्य के सर्वग्राही प्रभुत्व का नतीजा था कि फ्रांस की राज्यक्रांति का जन्म हुआ। बाद में कार्ल मार्क्स ने 'अतिरिक्त मूल्य' के आधार पर अपने साम्यवाद के दर्शन का प्रतिपादन किया। उन्हें हीगल की विचारधारा से पथ-प्रदर्शन मिला, जो यह मानते थे कि विकास की हर मंजिल विरोधी तत्त्वों के संघर्ष के फलस्वरूप सिद्ध होती है और अंत में उनमें समन्वय होता है। 'वर्ग-संघर्ष' का यह बुनियादी दर्शन ही आधुनिक साम्यवाद का सार-तत्त्व है। मार्क्स

ने ऐसे समाज की कल्पना की है, जिसमें ''विकासशील सामाजिक शक्तियां अनेक संकटों के भीतर से विकसित और परिपक्व होती हैं और अंत में संकट चरम सीमा को पहुंच जाता है और भारी विनाश और उथल-पुथल के भीतर से नई समाज-व्यवस्था का जन्म होता है।'' उन्होंने अन्य प्रकार की शक्तियों के विपरीत आर्थिक शक्तियों पर वहुत अधिक जोर दिया है।

वर्न्सटाइन 'संशोधनवाद' के जनक माने जाते हैं। वह चाहते थे कि समाजवाद क्रांतिकारी नहीं, 'विकासशील' होना चाहिए। समाजवादी दर्शन के इस पहलू का इंग्लैंड के फेवियन लोगों ने अधिक पूरी तरह विकास किया। उन्होंने 'क्रमिकवाद' के सिद्धांत की पुष्टि की। वेद-बंधुओं ने कहा कि ''अनिवार्य सामाजिक न्यूनतम स्तर और साधनों के सामाजिक नियंत्रण द्वारा, जिसमें उत्तरोत्तर करारोपण का तरीका भी शामिल है, गरीवी का अंत किया जाय।'' जार्ज वर्नार्ड शा का यह सुदृढ़ विश्वास था कि 'आय की समानता' के जरिये समाजवाद की स्थापना की जा सकती है। श्री शा कहते हैं कि 'अवसर की समानता' असंभव है। ''समाजवाद का अर्थ है आय की समानता, और कुछ नहीं, अन्य वातें केवल उसकी अवस्थाएं अथवा उसके परिणाम हैं।''

समाजवाद के और भी अनेक प्रकार हैं, जिनकी विभिन्न व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों ने हिमायत की है। 'संघीय समाजवाद' व्यावसायिक लोकतंत्र पर आधारित है, जिसमें श्रमिक मज-दूर-संघों के द्वारा उद्योग-प्रबंध का प्रभावशाली रूप में संचालन होता है। जहां संघीय समाजवादी मजदूरों के शांतिमय संगठनों में विश्वास करते हैं, वहां उग्र संगठनवादी (सिंडीकेटिस्ट) आम हड़ताल के द्वारा हिंसक और क्रांतिकारी तरीकों की हिमायत करते हैं। प्रिंस क्रोपाटकिन जैसे अराजकतावादी शासन-रहित 'स्वतंत्र-समाज' की कल्पना करते हैं, जिसमें कानून के अनुसरण अथवा किसी सत्ता की आज्ञा के द्वारा नहीं, वल्कि ''विभिन्न समूहों के मध्य स्वीकृत स्वतंत्र समझौतों के द्वारा शांति स्थापित की जाती है।'' हमारे अपने जमाने में हमने हिटलर के 'राष्ट्रीय समाजवाद' अथवा नाजीवाद और मुसोलिनी के 'निगम राज्य' अथवा फासिस्टवाद के वारे में पढ़ा है। हमने इण्डोनेशिया के राष्ट्रपति श्री सुकर्ण के 'इण्डोनेशियाई' समाजवाद के विषय में भी पढ़ा है, जो 'निर्देशित लोकतंत्र' में विश्वास करते हैं और यह मानते हैं कि ''तमाम एशियाई समस्याएं पश्चिमी विधियों के द्वारा हल नहीं की जा सकतीं।'' इण्डोनेशिया के आजीवन राष्ट्रपति नियुक्त किये जाने के शीघ्र वाद ही डा० सुकर्ण ने वचन दिया कि ''वह देश को ऐसा आदर्श समाजवादी राष्ट्र बनाने की चेष्टा करेंगे, जो सामाजिक और आर्थिक वर्ग-विषमताओं को समाप्त करने का आश्वासन देता है।'' राष्ट्रपति नासिर ने अपने हितकारी नेतृत्व में अरब नमूने का समाजवाद विकसित किया है। हाल में स्वतंत्र हुए अफ्रीकी देश एक नई किस्म के 'अफ्रीकी समाजवाद' की रचना कर रहे हैं। घाना के डा० क्वामे एन्कूमा 'प्रगति के समाजवादी पथ पर' अग्रसर होकर चाहते हैं कि सब लोगों के लिए ''यथासंभव उच्चतम स्तर पर पूरा रोजगार, अच्छे मकान तथा शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रगति के लिए समान अवसर सुलभ हों।'' टांगानिका के राष्ट्रपति श्री न्येरेरे के समाज-वाद की व्याख्या यह है कि वह ''एक मानसिक दृष्टिकोण है, किसी निर्धारित राजनीतिक ढांचे का कठोर अनुसरण नहीं।'' उनके अनुसार अफ्रीकी समाजवाद की नींव और उद्देश्य ''कुटुंब का विस्तार है, जिसमें अंततः सारे मानव समाज का समावेश होगा।'' स्वतंत्र अल्जीरिया के भूत-पूर्व राष्ट्रपति श्री अहमद वेग वेल्ला ने कहा था कि ''समाजवाद मुख्यतः विशेषाधिकारों को समाप्त करना चाहता है।''

यद्यपि समाजवाद की कल्पना के विषय में विभिन्न व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के विभिन्न विचार रहे हैं, किंतु कम-ज्यादा सभी का यह खयाल रहा है कि समाजवादी समाज को 'मानव भाईचारे' की स्थापना करनी चाहिए और उसका यह विश्वास है कि "प्रत्येक मनुष्य को सुख और जीवन को मूल्य प्रदान करने वाले साधन प्राप्त करने का समान अधिकार है।" जान स्ट्रेंची ने लोकतंत्री समाजवाद के ध्येय को 'सामाजिक उद्देश्यों' से संबंधित विभिन्न प्रश्नों में निहित 'श्रद्धा का कार्य' कहा है। प्रोफेसर पीगू समाजवाद को 'एक छोटे शासनकर्ता गुट' के लाभ के लिए नहीं, बल्कि 'सारे समाज के हित की योजना' कहते हैं। समाज का यह उद्देश्य भी बताया गया है कि वह 'मानव-दृष्टिकोण' और संबंधों में परिवर्तन द्वारा आर्थिक संघर्ष की समाप्ति करना चाहता है। श्री जयप्रकाश नारायण कहते हैं कि "जीवन का समाजवादी तरीका आम लोगों के परिश्रम से उत्पन्न अच्छी वस्तुओं को मिलकर उपभोग करने का एक तरीका है।" नेहरूजी की राय थी कि "समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का अर्थ सार्वजनिक हित में नियंत्रित उत्पादन और वितरण" होगा। महात्मा गांधी ने सर्वोदय का आदर्श प्रस्तुत किया, जो समाज के सभी वर्गों—विशेषकर समाज के निम्नतम और दरिद्रतम वर्गों—के भौतिक और नैतिक दोनों हित सिद्ध करना चाहता है।

भारत में राष्ट्रीय नेताओं ने आधुनिक विचारधाराओं और प्राचीन परम्पराओं के आधार पर समाजवाद की कल्पना का विकास किया है।

४ / सामाजिक और राष्ट्रीय एकता

यह प्रकट है कि समाजवादी समाज में समाज के सभी वर्गों के अंदर राष्ट्रीय एकता और समान-हित एवं साझेदारी का सुदृढ़ आधार होना चाहिए। इसलिए भारत में समाजवादी इमारत खड़ी करने के लिए सामाजिक अथवा राष्ट्रीय एकता की नींव जरूरी है। यह स्पष्ट समझना होगा कि राष्ट्रीय एकता का आदर्श केवल भावात्मक प्रेरणा नहीं है। एकता की भावना आर्थिक दृष्टि से भी जरूरी है। यह जानना दिलचस्प होगा कि अमरीकी राष्ट्रपति को आर्थिक मामलों में सलाह देने वाली परिषद् ने जातीय भेद के बारे में अपनी हाल की रिपोर्ट में कहा है कि यह 'राष्ट्रीय कलंक' है, जिससे "राष्ट्र को आर्थिक हानि पहुंचती है।" रिपोर्ट में आगे कहा गया है, "यह रंग-भेद मानव-साधनों के विकास और उपभोग में बाधक होता है, कार्यक्षमता घटाता है, अर्थ-व्यवस्था के विकास को धीमा करता है, और आर्थिक प्रगति के नेताओं के वितरण को बदल देता है।" श्री रेमंड फ्रोस्ट करते हैं, "राष्ट्र के भीतर एकता का अभाव केवल राजनैतिक परेशानी ही पैदा नहीं करता, बल्कि आर्थिक हानि का कारण भी होता है। जहां एकता नहीं होती, सरकार को उसे थोपना और उसका पालन कराना पड़ता है और एकता को थोपने का खर्च राष्ट्र के आर्थिक साधनों को क्षीण कर सकता है।"

श्री लुई फिशर का यह उल्लेखनीय कथन है कि एशिया और अफ्रीका के नवोदित स्वतंत्र देशों में राष्ट्रवाद तो है, किंतु राष्ट्रों का पता नहीं है। भारत में सभी राष्ट्रीय नेता सामाजिक एकता पर सबसे अधिक जोर देते हैं। हम इस नग्न तथ्य के प्रति आंख नहीं मूंद सकते कि धार्मिक असहिष्णुता, जातिवाद, क्षेत्रीयतावाद और भाषावाद जैसी विघटनकारी शक्तियां हमारे देश में सक्रिय रही हैं। दुर्भाग्यवश, हर आम चुनाव के समय इन राष्ट्रीयता विरोधी शक्तियों की ज्वाला पहले से अधिक भड़कती दिखाई देती है। निस्संदेह, दूसरी बहुत-सी शक्तियां भी काम कर रही हैं, जैसे कि शहरों और उद्योगोंका विस्तार हो रहा है और उनके कारण, श्री ताया जिंकिन के शब्दों में, "जाति-प्रथा का अंत हो रहा है।" फिर भी हमें साफ-साफ स्वीकार करना होगा कि अनेक विघटनमूलक प्रवृत्तियां हमारे त्वरित आर्थिक विकास के अभियान में भारी बाधा डाल रही हैं।

यह सौभाग्य की बात है कि हमारा संविधान देश के सब लोगों के लिए एक ही नागरिकता स्वीकार करता है और सारे देश में उन्हें समान अधिकार और अवसर देता है। इसलिए जाति, भाषा और क्षेत्रीय विचारों को दूसरा स्थान देना होगा। हमें नेहरूजी के इन सार्थक शब्दों को हमेशा याद रखना चाहिए, "मैं चाहता हूं कि धर्म अथवा जाति, भाषा अथवा प्रांत के नाम पर होनेवाले वर्तमान संकुचित संघर्ष समाप्त हो जायं और एक वर्गहीन और जाति-विहीन समाज की स्थापना हो, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार विकास करने का पूरा अवसर मिले। खास तौर पर, मैं आशा करता हूं कि जात-पांत का अभिशाप मिटा दिया जायगा, क्योंकि जात-पांत के आधार पर न लोकतंत्र और न समाजवाद ही संभव हो सकता है।"

यह सही है कि राष्ट्रीय एकता अपीलों और मीठे नारों से स्थापित नहीं हो सकती। राष्ट्रीय-एकता-परिषद् ने सम्प्रदायवाद, क्षेत्रीयतावाद और अन्य विघटनकारी शक्तियों के बारे में अनेक कमेटियां नियुक्त की हैं और उनसे समस्याओं की जड़ में जाने और व्यावहारिक हल प्रस्तुत करने का अनुरोध किया है। उदाहरण के लिए, शिक्षा मंत्रालय ने जो 'त्रिभाषी-सूत्र' तजवीज किया है, वह सांस्कृतिक और सामाजिक समन्वय की दिशा में सही कदम है। अपनी मातृभाषा जानने के अलावा माध्यमिक स्तर पर हर विद्यार्थी को अंग्रेजी और भारतीय संघ की राजभाषा, हिन्दी का ज्ञान होना चाहिए। जिन विद्यार्थियों की मातृभाषा हिंदी हो, अगर वे एक और आधुनिक भारतीय भाषा, विशेषकर दक्षिण की भाषा का ज्ञान प्राप्त करेंगे तो उससे राष्ट्रीय एकता का वातावरण पैदा करने में मदद मिलेगी। किंतु यह ध्यान में रखना होगा कि केवल अनेक भाषाओं के ज्ञान से ही अंततः सांस्कृतिक एकता स्थापित नहीं हो सकती। अंतिम निष्कर्ष यह है कि आनेवाली पीढ़ियों की उदारता और दूरदर्शिता से ही राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त होगा। संकुचितता के वातावरण में अगर पाठ्यक्रमों में अनेक भाषाएं सिखाने की व्यवस्था की गई तो एकता और मजबूती का स्वस्थ वातावरण पैदा होने के बजाय भाषाई कटुता और प्रतियोगिताएं बढ़ सकती हैं।

अंग्रेजी का स्थान

हिंदी के साथ-साथ सन् १९६५ के बाद भी अंग्रेजी को भारतीय संघ की सहायक राज-भाषा बनाने के फैसले ने देश में अनेक प्रतिक्रियाओं को जन्म दिया है। इस नाजुक प्रश्न पर सहिष्णुता

और दूरदर्शिता से विचार करना होगा ताकि भाषा का सवाल राष्ट्रीय सद्भावना की सर्वोपरि आवश्यकता पर हावी न हो जाय। अगले पांच या दस वर्षों में केंद्र और राज्यों में हिंदी का ज्ञान व्यवस्थित रूप से फैलाने की काफी कोशिश करनी होगी, अन्यथा अंग्रेजी भाषा सहकारी राज-भाषा रहने के वजाय हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की कीमत पर अपने को स्थायी वनाने की कोशिश कर सकती है।

शिक्षा का माध्यम

विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा का माध्यम क्या हो, इस वारे में हाल के वर्षों में काफी विवाद रहा है। एक ओर अनेक शिक्षाशास्त्रियों की यह दृढ़ राय है कि हमारे कालेजों और विश्व-विद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय, तो दूसरी ओर बहुत से ऐसे लोग हैं, जो उच्च शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दी को शिक्षा का माध्यम वनाने की उतने ही जोर से हिमायत करते हैं। उपकुलपतियों और राज्यों के मंत्रियों की अनेक कांफ्रेंसों में इस प्रश्न पर वार-वार और विस्तार से विचार हुआ है, और निष्कर्ष यह है कि विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषा शिक्षा का माध्यम होनी चाहिए, किंतु साथ ही अंग्रेजी और हिंदी दोनों क्रमों में; विशेषकर चिकित्सा और इंजीनियरी में, आने वाले अनेक वर्षों तक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बनी रहनी चाहिए, जबतक कि हिंदी अथवा क्षेत्रीय भाषाएं इस काम के लिए काफी विकसित न हो जायं।

अल्पसंख्यकों की समस्याएं

भाषायी अल्पसंख्यकों-संबंधी समस्याओं पर भी सहानुभूति के साथ विचार करना चाहिए। अल्प-संख्यकों के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर जरूरत से ज्यादा जोर देने की जरूरत नहीं; क्योंकि इससे समान राष्ट्रीयता के विकास में बाधा पड़ती है। किंतु अल्प-संख्यकों में यह विश्वास की भावना पैदा करने की सच्ची कोशिश होनी चाहिए कि उनके उचित हितों को पर्याप्त संरक्षण मिल रहा है। उदाहरण के लिए, राज्य सरकारों को भाषायी अल्प-संख्यकों के बालकों को प्राथमिक स्तर पर उनकी मातृभाषा में शिक्षा देने की पूरी कोशिश करनी चाहिए। इस विषय में उर्दू के प्रश्न पर विशेष सहानुभूति से विचार करना चाहिए। इसके अलावा, राज्यों की नौकरियों में भरती की प्रणाली किसी भी रूप में अल्पसंख्यकों के न्यायोचित प्रतियोगिता में शामिल होने के रास्ते में बाधक नहीं होनी चाहिए। क्षेत्र-विशेष में आवास के नियम अक्सर इस तरह बनाए गए हैं कि अल्पसंख्यक समूहों को नौकरियों में स्थान नहीं मिल पाता। यह निश्चय ही युक्ति-युक्त नहीं है और आशा है, राज्य सरकारें अविलंब इन नियमों में संशोधन करेंगी।

वर्तमान में हर राज्य के लिए एक राज्य सेवा-आयोग है। शायद यह ज्यादा अच्छा होगा कि एक से अधिक राज्यों के लिए एक ही राज्य सेवा-आयोग हो, ताकि राज्यों की नौकरियों के लिए उम्मीदवारों के चुनाव में संकुचित और क्षेत्रीय विचार हावी न हों।

सबसे वड़ा कलंक

परिगणित जाति और परिगणित आदिम जाति आयुक्त की वार्षिक रिपोर्टों में बराबर इस बात

की ओर ध्यान दिलाया गया है कि यह सामाजिक बुराई अनेक क्षेत्रों में, विशेषकर देहातों में, आज भी बनी हुई है। गांधीजी ने स्वतंत्रता आंदोलन से संबंधित राजनैतिक लड़ाइयों में व्यस्त रहते हुए भी हिंदू समाज पर लगे इस 'सबसे बड़े कलंक' को मिटाने के लिए अनेक बार अपने प्राणों की बाजी लगा दी थी। किंतु हमें वास्तविक स्थिति का मुकाबला करना होगा और राज्य सरकारों की मदद से इस सामाजिक बुराई के अमानवीय पहलू के बारे में लोगों को शिक्षित करने का संगठित प्रयास करना होगा और जो लोग संविधान के निर्देशों का पालन करने से इनकार करें, उनके विरुद्ध कड़ी कार्रवाई करनी होगी। गृह मंत्रालय ने हाल में अनुसूचित जातियों के आधार पर नहीं, बल्कि आर्थिक पिछड़ेपन के आधार पर शैक्षणिक छात्रवृत्तियां देने का सही निर्णय किया है। राज्य सरकारों से भी भविष्य में इसी सिद्धांत पर चलने का अनुरोध किया गया है। जाति-प्रथा और अस्पृश्यता को बिना किसी दण्ड-भय के सहन करने वाला समाजवादी समाज निश्चय ही समाजवाद का मजाक होगा।

नेहरूजी ने अपनी आत्मकथा में कहा है कि हमें भारत में साम्यवाद और सम्प्रदायवाद दोनों से निपटना होगा। यद्यपि साम्यवादी दर्शन के उद्देश्य सराहनीय हैं; किंतु इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए जो साधन अपनाये जाते हैं, वे हिंसा और वर्ग संघर्ष पर आधारित हैं। सम्प्रदाय-वाद में तो सभ्य समाज के लिए कुछ भी अपनाने योग्य नहीं है, वह तो आदि से अंत तक कुरूप है। जाति प्रथा, जैसा गांधीजी ने कहा है, प्राचीन भारत में आर्थिक और सामाजिक दृष्टियों से कुछ लाभदायक रही होगी। उन्होंने लिखा है, "वह गरीबी की रामबाण दवा थी और व्यावसायिक संघों के सब लाभ उसमें मौजूद थे।" किंतु यह सामाजिक प्रथा गत कुछ शताब्दियों में इस देश में जिस तरह विकसित हुई, उसने अस्पृश्यता की निर्दय प्रथा को जन्म दिया है।

स्त्रियों का दर्जा

भारतीय संविधान में, सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों को पुरुषों के बराबर दर्जा दिया गया है। बुनियादी अधिकारों के अंतर्गत यह स्पष्ट निर्दिष्ट किया गया है कि पुरुषों और स्त्रियों को समान रूप से आजीविका के पर्याप्त साधन पाने का अधिकार है। वास्तव में गांधीजी ने स्वतंत्रता-प्राप्ति के पहले ही भारत में स्त्रियों को सार्वजनिक मामलों में सम्मानजनक स्थान देने को बहुत अधिक महत्त्व दिया था। उनकी प्रेरणा से ही स्त्रियों ने स्वतंत्रता के राष्ट्रीय संग्राम में प्रमुख भाग लिया था। गांधीजी ने कहा था,"मेरी यह दृढ़ राय है कि भारत की स्वतंत्रता स्त्रियों के त्याग और ज्ञान पर निर्भर करती है।"

नेहरूजी भी भारतीय लोकतंत्र में स्त्रियों के उचित अधिकारों के कट्टर हिमायती रहे। भारतीय संसद में हिंदू विवाह विधेयक पर बोलते हुए उन्होंने कहा था, "अगर आप मानवता के एक बड़े अंग को, जनसंख्या के ५० प्रतिशत को, काटकर अलग कर देते हैं और उनकी सामाजिक सुविधाओं आदि की दृष्टि से अलग ही श्रेणी बना देते हैं तो आप लोकतंत्र कायम नहीं कर सकते।"

यह संतोष का विषय है कि भारत में स्त्रियां सरकार में और सार्वजनिक जीवन में उच्च पद ग्रहण किये हुए हैं। वस्तुत यह उल्लेखनीय है कि हमारी संसद में दुनिया की अन्य संसदों के मुकाबले स्त्रियों का अनुपात अधिक है। यह कहना सही नहीं है कि भारत में स्त्रियों के प्रति जो सम्मान दिखाया जाता है, उसको पैदा हुए थोड़ा ही समय हुआ है। असल में इस देश में स्त्रियों

को अत्यंत प्राचीनकाल से बहुत उच्चस्थान दिया गया है। महान स्मृतिकार मनु ने दो हजार वर्ष पहले लिखा है, "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"—जहां नारी की पूजा होती है, वहां देवताओं का निवास है। गत कुछ शताब्दियों से देश के अनेक भागों में स्त्रियां पर्दा, दहेज, बाल-विवाह और विषम उत्तराधिकार अधिकारों जैसी अवांछनीय सामाजिक कुरीतियों की शिकार रही हैं। किंतु भारत की स्त्री जाति समाजवादी लोकतंत्र के अधीन अपना स्थान ग्रहण कर रही है।

धर्मों के प्रति समान आदर

भारत अनेक धर्मों का देश है और सदियों के दौरान उसकी शक्ति का रहस्य 'विविधता में एकता' का सिद्धांत रहा है। यद्यपि अन्य देशों की भांति भारत में धर्म की छाया में अनेक पापों को आश्रय मिला है, किंतु यह स्वीकार करना होगा कि धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय की भावना भारतीय संस्कृति की एक प्रधान विशेषता रही है। समाजवादी समाज में धार्मिक श्रद्धा और उपासना के क्षेत्र में इस सहिष्णुता की भावना का बहुत बड़ा महत्त्व है। गांधीजी ने अपनी सामाजिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों में 'सर्वधर्म समभाव' अर्थात् सब धर्मों के प्रति समान आदर के आदर्श पर हमेशा जोर दिया। इस धार्मिक सहिष्णुता और उदारता को भारतीय समाजवाद का मूलभूत अंग समझा जाना चाहिए।

राजनैतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद भारत की धर्म निरपेक्ष-राज्य की कल्पना को अक्सर गलत समझा गया है। आम तौर पर यह माना जाता है कि धर्म निरपेक्षता का मतलब अधार्मिकता है और खयाल किया जाता है कि धर्म निरपेक्ष राज्य में धर्म के लिए कोई स्थान नहीं है। यह अत्यंत भ्रामक खयाल है और असंख्य उलझनों का जनक है। पश्चिम में, पुरोहिती राज्य की बुराइयों के विरुद्ध प्रतिक्रिया धर्म निरपेक्षता के रूप में प्रकट हुई। किंतु हमारे लिए धर्म निरपेक्ष राज्य का मतलब ऐसा राज्य है जहां सब धर्मों पर चलने की पूरी स्वतंत्रता है और जहां सरकार अन्य सब धर्मों के मुकाबले किसी एक धर्म को संरक्षण नहीं देती। डा० राधाकृष्णन् ने कहा है, "धर्म निरपेक्षता का मतलब धर्म की उपेक्षा नहीं है, उसका मतलब है सब धर्मों के प्रति आदर।"

भाषायी राज्य

कुछ जिम्मेदार लोकनेताओं ने कहा है कि क्षेत्रीय भाषाओं के आधार पर भारत का विभाजन एक बुनियादी गलती थी और उसे बहुभाषी राज्य बनाकर सुधार लेना चाहिए। इस दलील के पीछे खयाल यह है कि भाषा के आधारपर राज्य का निर्माण विघटनकारी प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन देगा और भारत की बुनियादी एकता को कमजोर करेगा। मेरे विचार से इस विचार के मूल में गहरी भ्रांति है। भाषायी राज्यों का गठन, शिक्षा और शासन के क्षेत्रों में अंग्रेजी के बजाय क्षेत्रीय भाषाओं को स्थान देने के व्यावहारिक विचारों से प्रेरित होकर किया गया। बहुभाषी राज्यों में, शिक्षा के माध्यम और प्रशासन, दोनों क्षेत्रों में, अंग्रेजी के उपयोग को जारी रखने की निश्चित मनोवृत्ति थी। इसलिए मैं भारत में भाषायी राज्यों के गठन में कोई बुनियादी गलती नहीं देखता।

तटस्थता और विश्वशांति

भारत का समाजवाद तटस्थता और पंचशील की नीति के द्वारा विश्वशांति और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की स्थापना के लिए सचाई से काम कर रहा है। तीसरी पंचवर्षीय योजना की पहली वाक्यावली में ही कहा गया है, "भारत के विकास का बुनियादी लक्ष्य विश्वशांति के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है और उसी पर निर्भर करता है। आधुनिक शस्त्रास्त्रों की मदद से लड़ा गया युद्ध न केवल प्रगति की आशाओं को समाप्त कर देगा, बल्कि मानव जाति के अस्तित्व को भी खतरे में डाल देगा। इसलिए राष्ट्रीय प्रगति के लिए शांति का कायम रहना, निहायत जरूरी और आवश्यक शर्त है।"

भारत की तटस्थता अथवा गुटों से अलग रहने की नीति उसकी अहिंसा और विश्व-बंधुत्व की प्राचीन परम्पराओं के अनुकूल है। वह भगवान् बुद्ध की महान् शिक्षाओं, सम्राट अशोक के आदेशों और महात्मा गांधी के आदर्शों के अनुसार है। नेहरूजी दोनों शक्ति गुटों के सैनिक गठबंधनों से बिलकुल अलग रहकर तटस्थता अथवा शांतिमय सहअस्तित्व की नीति के शानदार निर्माता थे। जिस अटूट श्रद्धा और दृढ़ता के साथ भारत इस नीति का अनुसरण कर रहा है, इससे एशिया और अफ्रीका के अनेक नवोदित स्वतंत्र राष्ट्रों को प्रेरणा मिली है। यद्यपि हमारी नीति को अनेक पश्चिमी लोकतंत्री देशों ने शंका और संदेह की दृष्टि से देखा था, किंतु चीनी आक्रमण से उत्पन्न स्थिति ने उसकी उपयुक्तता और व्यावहारिक बुद्धिमता को पर्याप्त मात्रा में प्रमाणित कर दिया है। यह बड़े संतोष का विषय है कि अमरीका और रूस दोनों ही हमसे इस कठिन स्थिति का सामना करने के लिए अब तटस्थ बने रहने का आग्रह कर रहे हैं। कारण, वे दोनों ही अनुभव करते हैं कि भारत यदि किसी शक्ति-गुट में प्रत्यक्ष रूप में शामिल हुआ तो विश्वयुद्ध हो जायगा। श्री ह्यू गेट्सकल के शब्दों में अनेक एशियाई देशों की तटस्थवादी नीति के मूल में यह भावना है कि "उन्हें अपनी अर्थ व्यवस्थाओं का विकास करने में अपनी सब शक्ति लगानी चाहिए और रक्षा पर भारी व्यय नहीं करना चाहिए।" इसलिए यह बहुत जरूरी है कि हम भारत और मानवता के हित में तटस्थता की नीति पर नई श्रद्धा के साथ डटे रहें।

विज्ञान और अहिंसा

विज्ञान के इस युग में अगर कोई राष्ट्र हिंसा और अंतर्राष्ट्रीय संघर्ष का मार्ग अपनाता है तो उसके फलस्वरूप सर्वसंहारकारी विश्वयुद्ध छिड़ जायगा। गांधीजी ने अणुबम के लिए कहा था कि यह विज्ञान का 'अत्यंत राक्षसी' उपयोग है और उन्होंने राष्ट्रों के आपसी मतभेदों को अहिंसा के जरिये हल करने की हिमायत की थी। विनोबाजी बार-बार यह प्रत्यक्ष किंतु अक्सर भूली हुई बात दोहरा रहे हैं कि विज्ञान के साथ अहिंसा के योग से विश्वशांति स्थापित होगी और यदि उसका हिंसा के साथ गठबंधन हो गया तो वह विश्वव्यापी विनाश का जनक हो जायगा। आणविक शक्ति के विकास ने दुनिया के देशों को अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए सही चुनाव करने को विवश कर दिया है।

दुनिया के भविष्य के लिए यह शुभ चिह्न है कि अमरीका, रूस और ब्रिटेन ने आणविक परीक्षणों को रोकने की सीमित संधि पर हस्ताक्षर कर आणविक शस्त्रों की समस्या को रचना-

त्मक दृष्टि से हल करने का प्रयास किया है। यदि इस कदम पर सही भावना से चला गया तो यथासमय आम निश्स्त्रीकरण की पूरी संधि की जा सकेगी। अब तक स्पुतनिक 'मानव की उपलब्धि और उसकी हताशा' के प्रतीक रहे हैं। लंदन के 'इकोनोमिस्ट' पत्र के शब्दों में, "यह इस कारण है कि अंतरिक्ष को जीतने की वैज्ञानिक दौड़ सहयोग की भावना से नहीं, बल्कि शंका और विरोधी प्रतियोगिताओं से प्रेरित रही है।" यह महत्त्व की बात नहीं कि अमरीका अथवा रूस कौन सबसे पहले चन्द्रमा अथवा अन्य नक्षत्रों पर पहुंचने में सफल होता है। किंतु यह शत-प्रतिशत निश्चित है कि यदि आधुनिक विज्ञान और अंतरिक्ष विद्या का सैनिक क्षेत्र में उपयोग किया गया तो मानव जाति के विनाश की घंटी बज जायगी। अंतिम निष्कर्ष यह है कि राज-नीतिक क्षितिज पर से युद्ध की छाया तभी हटाई जा सकती है जब घृणा के समस्त चिह्न मिटा दिये जायें। प्रोफेसर टोयनबी कहते हैं कि वैज्ञानिक शोध के दुरुपयोग का मूल कारण यह है कि "प्रकृति पर मनुष्य की विजय के साथ वैज्ञानिक स्वयं पर विजय पाने में असमर्थ रहा है।" प्रोफे-सर डेवी की राय है कि असली युद्ध-क्षेत्र "हमारे और हमारी संस्थाओं के भीतर है।" श्री मम-फोर्ड कहते हैं कि प्रकृति पर नियंत्रण पाने की कोशिश में "आत्म-नियंत्रण करने की हमारी बुद्धि और इच्छा लुप्त हो गई है और हमने जिस मशीन का निर्माण किया है, उसके हम बेबस पुर्जे बन गए हैं।"

युद्धकला की अर्थव्यवस्था

ब्रिटिश दार्शनिक बर्ट्रेंड रसेल ने आधुनिक युद्धकला की अर्थव्यवस्था के बारे में कुछ आंखें खोल देने वाले अंक-प्रकाशित किये हैं। उन्होंने अनुमान लगाया है कि दुनिया के विभिन्न राष्ट्र सुरक्षा-तैयारियों पर ५० करोड़ रुपया प्रतिदिन खर्च कर रहे हैं। प्रमुख अर्थशास्त्रियों ने भी यह अनुमान लगाया है कि दुनिया के अल्पविकसित देशों में करीब ५० करोड़ इंसान भूख और अल्प पोषण के शिकार हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि विकसित राष्ट्र यदि सुरक्षा-व्यय में थोड़ी बचत करें तो काफी रुपया बच सकता है।

वास्तव में, आधुनिक दुनिया में समाजवाद की कल्पना उस समय तक अधूरी रहेगी जब तक कि उसमें सभी देशों का समावेश नहीं होगा। नेहरूजी का यह दृढ़ विश्वास था कि पहले तो राष्ट्रों की सीमाओं के भीतर और अनंतर सारी दुनिया में समाजवाद की स्थापना होनी चाहिए और उसके साथ ही साथ सार्वजनिक हित में संपत्ति का उत्पादन और वितरण होना चाहिए। चौथाई शताब्दी पूर्व ही उन्होंने लिखा था, "भारत किधर जा रहा है? निश्चय ही, वह सामा-जिक और आर्थिक समानता के महान मानव-कल्याण की ओर, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र और एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग के शोषण मात्र को समाप्त करने की ओर, तथा अंतर्राष्ट्रीय सहकारी समाजवादी विश्व-संघ के अंतर्गत राष्ट्रीय स्वतंत्रता की ओर जा रहा है।"

समानता की क्रांति

किंतु यह आवश्यक है कि विश्व-समृद्धि लाने और विकासोन्मुख राष्ट्रों को गरीबी, भूख और बेकारी के दलदल से बाहर निकालने के इस महान् अभियान में विकसित देशों को बिना किसी शर्त अथवा संकीर्ण हेतुओं के सहायता का हाथ आगे बढ़ाना चाहिए। आधुनिक समाजवाद

की कल्पना अधूरी रहेगी, यदि वह सब अल्पविकसित देशों को स्पर्श नहीं करेगी तथा अमीर और गरीब राष्ट्रों के बीच की चौड़ी खाई को नहीं पाटेगी। श्रीमती बारबरा वार्ड ने बड़े शक्तिशाली रूप में कहा है कि आधुनिक दुनिया की सबसे अर्थसूचक क्रांति "समानता की, मनुष्य की समानता और राष्ट्रों की समानता की क्रांति है।" हरेक विकासोन्मुख देश करोड़ों लोगों की सामाजिक और आर्थिक दशा तेजी से सुधारना चाहता है ताकि प्रचुरता की अर्थव्यवस्था का लक्ष्य सिद्ध हो सके। इसलिए यह निहायत जरूरी है कि एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के देशों की समृद्ध-राष्ट्र सक्रिय मदद करें, ताकि वे गरीबी की लक्ष्मण-रेखा को लांघ सकें और अंतर्राष्ट्रीय सहकारी राष्ट्र-मंडल गठित करने के महान् काम में करीब-करीब बराबरी के साझीदार बन सकें। वर्तमान में ये देश न केवल आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं, बल्कि निरंतर बढ़ती हुई जनसंख्या की जटिलता भी उन्हें परेशान कर रही है।

विश्व-नागरिकता

जब हम विश्व-संगठन की बात सोचने लगेंगे तभी दुनिया के विभिन्न राष्ट्रों में सच्ची आर्थिक और राजनीतिक समानता कायम कर सकेंगे। इंगलैंड के मजदूर नेता श्री एन्यूरिन बेविन ने कुछ वर्षों पहले कहा था, "राष्ट्रीय सार्वभौमिकता ऐसा शब्द है, जिसे इतिहास अर्थहीन बना रहा है।" इस आणविक युग में एकमात्र व्यावहारिक हल यही हो सकता है, चाहे वह इस समय कितना ही कठिन क्यों न प्रतीत हो कि विश्व-सरकार के अंतिम लक्ष्य के हित में अथवा जैसा कि कवि टेनीसन ने अनेक वर्षों पहले कहा था, "मानव की 'पार्लमेंट' की खातिर 'राष्ट्रीय हितों' को गौण स्थान दिया जाय।" यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी भावी युद्ध जो आज के घातक शस्त्रास्त्रों से लड़ा जायगा, अपने पीछे विजेता नहीं, बल्कि पराजित ही छोड़ेगा। जब प्रसिद्ध वैज्ञानिक डा० आइंस्टीन से तीसरे विश्वयुद्ध के शस्त्रास्त्रों के बारे में पूछा गया तो उन्होंने उत्तर दिया, "मैं नहीं जानता। किंतु मैं जानता हूं कि चौथे विश्वयुद्ध के शस्त्रास्त्र क्या होंगे—चट्टानें।"

लंबे चलने वाले सम्मेलनों और, 'शिखर-सम्मेलनों' से विश्व-संगठन कायम नहीं किया जा सकेगा। अंततः जब राष्ट्र राष्ट्रवाद की उदार कल्पना का विकास करेंगे और विश्व-संस्था के अनुशासन को राजी-खुशी स्वीकार करेंगे तभी शांति और सहयोग का वातावरण पैदा हो सकेगा। ११ जून १९६३ को संयुक्त राष्ट्र-संघ की साधारण सभा के विशेष अधिवेशन में बोलते हुए डा० राधाकृष्णन ने कहा था कि "राष्ट्रों को विश्व-व्यवस्था के लिए अपनी प्रभुसत्ता का एक अंश छोड़ना चाहिए और अपने मतभेदों का समाधान संधि-चर्चा द्वारा करना चाहिए।" इसलिए हर देश के नागरिकों को अब दूसरे प्रकार की 'विश्व नागरिकता' का विकास करना चाहिए, जिसके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र एक से अधिक राष्ट्रों से संबंध रखनेवाले मामलों में अंतर्राष्ट्रीय संगठन के अनुशासन को मानने के लिए तैयार होगा। हम आशा करते हैं कि भविष्य में दुनिया के प्रमुख राष्ट्र ऐसी विश्व सरकार की रूपरेखा बनायेंगे जो स्थायी शांति का मार्ग प्रशस्त करेगी और मानवता को नये युद्ध के भय से मुक्ति प्रदान करेगी।

राष्ट्रवाद और अन्तर्राष्ट्रीयवाद

जब हम अंतर्राष्ट्रीयवाद और विश्वशांति की चर्चा करते हैं तो इसका यह अर्थ नहीं कि हम राष्ट्र के रूप में सोचना वंद कर देते हैं। जैसा कि वार-वार कहा गया है, भारत में हमको ऐसा उदार राष्ट्रवाद विकसित करने की कोशिश करनी चाहिए जो अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के अनुकूल होगा। नेहरूजी ने कहा है, "राष्ट्रवाद का हर देश में स्थान है और उसे पुष्ट किया जाना चाहिए। किंतु वह आक्रामक नहीं होना चाहिए और अंतर्राष्ट्रीय विकास के मार्ग में बाधक भी नहीं होना चाहिए।" राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् ने अपने गणराज्य दिवस के संदेश में कहा, "हमारे सामने यह विकल्प नहीं है कि हम राष्ट्रवाद अथवा अंतर्राष्ट्रीयवाद दोनों में से किसको स्वीकार करें। अंतर्राष्ट्रीयवाद बड़ा आदर्श है, जो हमारी राष्ट्रवाद की कल्पना से मेल खाता है।" माहात्मा गांधी ने इसी विचार को अपने ही अर्थभरे शब्दों में यों प्रकट किया है, "मैं अपने घर के चारों ओर दीवारें खड़ी नहीं करना चाहता और न अपनी खिड़कियों को वंद करना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि सब देशों की संस्कृतियों की वायु पूरी स्वतंत्रता के साथ मेरे घर के आसपास बहे। किन्तु मैं उनमें से किसी को अपने पांव नहीं उखाड़ने दूंगा।" □

५ / समाजवादी समाज : सात सिद्धांत

मेरा खयाल है, समाजवादी समाज के सात बुनियादी सिद्धान्त हैं। पहला सिद्धान्त है—प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि उसे रोजी अर्थात् रोजी कमाने का साधन—काम—दिया जाय और देश में कोई वेकार न रहे। जबतक काम करने योग्य हर आदमी को पर्याप्त रोजी कमाने के लिए काम नहीं दिया जाता तबतक समाजवादी समाज की स्थापना असम्भव है। बेकारी और समाजवाद साथ-साथ रह नहीं सकते। जो हो, भारत में आज हम ऐसे समाजवादी समाज की कल्पना नहीं कर सकते, जिसके अन्दर किसी भी वेकार मनुष्य को अपना नाम दर्ज करा देने पर वगैर काम किये घर बैठे वेकारी का मासिक भत्ता मिलता रहे। वेकारी के भत्ते वाली समाज-व्यवस्था को हम ठीक नहीं मानते। महात्मा गांधी ने हमें सिखाया है कि वेकारी अर्थात् निष्क्रियता से मनुष्य का केवल मानसिक और शारीरिक ह्रासही नहीं होता, बल्कि नैतिक पतन भी होता है। इसलिए भारत अपने यहां ऐसे समाजवाद की स्थापना करना चाहता है, जिसके अन्दर हर पुरुष और स्त्री अपने खरे पसीने की कमाई खाना ही पसन्द करेगा। गीता में कहा गया है कि जो मनुष्य वगैर परिश्रम किये खाता है, वह चोर है और जो समाज इस दुरवस्था को बरदाश्त कर लेता है, वह असभ्य और अनैतिक है।

समाजवादी समाज का मूलभूत दूसरा सिद्धान्त है—राष्ट्रीय सम्पत्ति का अधिक से अधिक निर्माण। समाजवादी समाज की स्थापना के लिए केवल इतना काफी नहीं है कि आप काम करने

योग्य लोगों को रोजी दें। इसके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि समाज के आर्थिक जीवन का संगठन हम इस प्रकार करें कि उपभोग्य सामग्री के कुल उत्पादन में भी काफी वृद्धि हो, ताकि लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठ सके। यह सोचना गलत है कि लोगों को पूरा काम देने के लिए यदि छोटे-छोटे उद्योगों और ग्रामोद्योगों की स्थापना की जाएगी तो उससे लोगों के रहन-सहन का स्तर गिर जाएगा, क्योंकि प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ़ाने के लिए कारीगर बिजली, बल्कि अणु-शक्ति का भी उपभोग करसकेंगे। उत्पादन को यदि औद्योगिक सहकारी संगठनों में विकेन्द्रित कर दिया जाएगा तो केन्द्रित उत्पादन वाले बड़े कारखाने की अपेक्षा महंगा नहीं पड़ेगा। दूसरी बातों में यदि कहीं पक्षपात नहीं किया जाए तो कुल मिलाकर छोटे-छोटे उद्योगों में पैदा की जाने वाली चीजें बड़े कारखानों के उत्पादन की अपेक्षा सस्ती ही पड़नी चाहिए। इस प्रकार स्पष्ट है कि समाजवादी समाज-रचना तभी सफल हो सकेगी जब सबको रोजी देने के फलस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति के उत्पादन में अधिकाधिक वृद्धि भी हो। केवल गरीबी के वितरण से कल्याण-राज्य कायम नहीं हो सकता।

समाजवादी समाज-रचना का तीसरा सिद्धान्त है—राष्ट्र में अधिकतम स्वावलम्बन। एक राष्ट्र अपने उत्पादन को बढ़ाकर दूसरे अविकसित पड़ोसी देशों को अपना माल बेचकर भी अपने लोगों को पूरा काम दे सकता है। किन्तु ऐसी संकीर्ण राष्ट्रीयता को और पिछड़े राष्ट्रों के शोषण को हमारा समाजवाद अच्छा नहीं मानता। अंतर्राष्ट्रीय व्यापार हम जरूर चाहते हैं,परन्तु वह स्वच्छ और निर्दोष हो। पड़ोसी देशों को हानि पहुंचाकर हम अपना निर्यात-व्यापार नहीं बढ़ाना चाहते। हमारे आर्थिक संयोजन का आधार ऐसा न हो। जो समाज अपने देश के बाहर दूसरों का योजनापूर्वक शोषण करके अपने देश में समाजवाद की स्थापना करने का ढोंग करता है, वह सही अर्थों में समाजवादी नहीं कहा जा सकता।

समाजवादी समाज का चौथा मूलभूत सिद्धान्त है—सामाजिक और आर्थिक न्याय। कोई भी राष्ट्र तबतक समाजवादी नहीं कहा जा सकता, जबतक कि उसके संगठन के अन्दर समानता और न्याय नहीं होगा। उदाहरण के लिए भारत में जबतक हम छुआछूत को पूरी तरह नहीं मिटा देते तबतक समाजवादी राज्य की स्थापना की बातें करना भी व्यर्थ है। यह सामाजिक बुराई भारत की संस्कृति और सभ्यता पर सबसे बड़ा कलंक है। जो समाज-रचना मनुष्य-मनुष्य के बीच भेदभाव बरतती है और अपने ही एक अंग को जानवरों से भी बुरी हालत में डाल देती है, उसमें जड़मूल से क्रान्ति होनी ही चाहिए। इसी प्रकार हमारे समाज को समाजवादी रूप देने के लिए स्त्रियों को भी ऊपर उठाना होगा। शराबखोरी, वेश्यावृत्ति को भी मिटाना होगा। अन्य जितनी भी प्रकार की सामाजिक असमानताएं और अन्याय हैं, उनको हटाने के बाद भारतीय समाज में आर्थिक समता को भी बढ़ाना होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समय हमारे समाज में गरीबों और अमीरों के बीच बहुत बड़ा अंतर है। समाजवादी समाज की नींव डालने से पहले इस गहरी और चौड़ी खाई को पाटना बहुत जरूरी है। कर-जांच आयोग (टैक्सेशन इंक्वायरी कमीशन) ने सुझाया है कि समाज में १:३० से अधिक विषमता नहीं होनी चाहिए। इस विषमता को घटाकर शायद १:२० तक ले आना अधिक उचित होगा। मृत्यु-कर, भारतीय संविधान की धारा ३१ को बदलना, जो जायदाद से संबंध रखती है, कारखानों की व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले कम्पनी-लॉ में बुनियादी परिवर्तन करना, इम्पीरियल बैंक का राष्ट्रीयकरण

और आय-कर की ऊंची दरों को वढ़ाना, ये सब समाजवादी समाज की दिशा में ले जानेवाले कदम हैं। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बीचवाली इन असमानताओं को भी बगैर किसी भेदभाव के मिटाना ही होगा। आचार्य विनोबा भावे द्वारा जारी किए गए भूदान और संपत्तिदान वाले आंदोलन केवल भारत में ही नहीं, बल्कि समस्त संसार में समानता पैदा करने के लिए आवश्यक वातावरण तैयार करने में बहुत सहायक हो रहे हैं।

समाजवादी समाज की पांचवीं बुनियादी कल्पना यह है कि हमारे सारे तरीके शान्ति-पूर्ण, अहिंसक और लोकतांत्रिक हों। समाजवादी और साम्यवादी देशों ने समाजवाद लाने के लिए वर्ग-संघर्ष, हिंसा और सत्ता के केन्द्रीकरण से काम लिया है। भारत इस मार्ग का अनुसरण नहीं करना चाहता। महात्मा गांधी हमेशा कहा करते थे कि साधनों की शुद्धि उतनी ही महत्त्व की चीज है, जितनी साध्यों की शुद्धि। अच्छे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए यदि गलत साधनों का प्रयोग किया जाता है तो अच्छे लक्ष्य स्वयं अपवित्र और अशुद्ध हो जाते हैं। भारत की स्वाधीनता भी वह द्वेष और मारकाट के द्वारा नहीं लाना चाहते थे। बहुत सोच-विचार के बाद ही भारत ने शान्ति और लोकतंत्र के मार्ग को पसन्द किया है। इसलिए उसने लोकतांत्रिक तरीकों से ही अपने सब नागरिकों को रोजी देने का तथा अधिक से अधिक उत्पादन करने की योजना करने का निश्चय किया है। यह सचमुच एक महान और शायद सबसे बड़ी चुनौती है। हमारी पहली और दूसरी पंचवर्षीय योजनाएं इसीलिए खास तौर पर लोकतांत्रिक और वैधानिक प्रगति पर आधारित की गई हैं। भारत ने निश्चय कर लिया है कि हर हालत में वह इन आदर्शों पर ही चलेगा। हिंसा और मारकाट का रास्ता नहीं अपनायेगा। हमें निश्चय है कि अपने करोड़ों श्रमजीवियों को खुशहाल बनाने के इस महान और शानदार कार्य में उसे सफलता अवश्य मिलेगी।

समाजवादी समाज का छठा सिद्धान्त है—सत्ता और सम्पत्ति का विकेन्द्रीकरण। यह विकेन्द्रीकरण भारत औद्योगिक सहकारी समितियों और ग्राम-पंचायतों की स्थापना द्वारा करना चाहता है। अहिंसक और लोकतांत्रिक समाज के लिए यंत्रों पर आधारित और अत्यधिक केंद्रित उत्पादन की पद्धति का संयोजन सम्भव ही नहीं है। अत्यधिक केन्द्रित उत्पादन के लिए मुट्ठी-भर आदमियों के हाथों में सत्ता और संपत्ति का केंद्रीकरण अनिवार्य हो जाता है। भारत को ऐसी हिंसा पर आधारित कठोर सैनिक अनुशासन वाली पद्धति कतई पसन्द नहीं। भारत में ग्राम-पंचायतें बहुत प्राचीन काल से काम करती आई हैं। उसकी संस्कृति और सभ्यता का वे एक अभिन्न अंग रही हैं। हमारे पूर्वजों ने अत्यन्त सोच-विचार और अनुभव के बाद उनको कायम किया है। पश्चिम के भी बहुत से महान विचारक अब इसी नतीजे पर पहुंच रहे हैं कि यदि लोकतंत्र को सफल बनाना है तो उसकी इकाइयां छोटी-छोटी ही होनी चाहिए। इसलिये यदि भारत में हमें समाजवादी समाज-रचना की योजना बनानी है तो लोकतंत्र को छोटी-छोटी इकाइयों में बांटना परम आवश्यक है। व्यक्ति और समाज के हितों का सबसे उत्तम सामंजस्य ऐसी छोटी-छोटी सामाजिक इकाइयों में ही हो सकता है। हम न तो यह चाहते हैं कि समाज की वेदी पर व्यक्ति के हितों का बलिदान हो और न हम यह बरदाश्त कर सकते हैं कि व्यक्ति अपने स्वार्थों के लिए समाज के हितों की हत्या करे। हम ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं, जिसमें किसी प्रकार का शोषण न हो और जिसके अन्दर व्यक्ति और समाज के हितों का सफल समन्वय हो। जाहिर है कि विकेन्द्रित लोकतंत्र में ही ये उद्देश्य सिद्ध हो सकते हैं। भारत अपने समाज-

वाद की इमारत नीचे से उठाना चाहता है। वह मानता है कि यह चीज ऊपर से लादी नहीं जा सकती।

हमारे समाजवादी राज्य का सातवां सिद्धांत 'सर्वोदय' (अन्टू दिस लास्ट) का आदर्श है। गांधीजी यह कहते हुए कभी थकते ही नहीं थे कि आखिरी अर्थात् सबसे नीचे वाले आदमी की तरफ हमें सबसे पहले ध्यान देना चाहिए। शहरों की सड़कों को चौड़ी करने और उन्हें डामर की वनाने के लिए तो हम वड़ी अधीरता दिखाते हैं, परन्तु गांवों में सादी सड़कें भी वनाने की हमें चिन्ता नहीं होती। शहरों में वड़े-वड़े मकान और दफ्तरों की इमारतें वनाना हमें जरूरी मालूम होता है, परन्तु गांवों के लोगों के लिए सीधे-सादे सुन्दर मकान वनाने की वात भी हम नहीं करते। आजाद हुए हमें इतने वर्ष हो गये, परन्तु देश में आज भी ऐसे अनेक भाग हैं, जिनका विकास नहीं हो पाया है। आज भी इतनी पिछड़ी हुई आवादियां हैं, जिनकी तरफ हमारा ध्यान अभी तक नहीं गया है। समाजवादी समाज-रचना में उन लोगों की जरूरतों की तरफ सवसे पहले ध्यान देना होगा, जो सवसे अधिक गरीव और गिरे हुए हैं।

भारत में समाजवादी समाज की स्थापना के लिए ये सात सिद्धान्त जरूरी हैं। ये राष्ट्र-पिता गांधीजी की सिखावन के अनुरूप ही हैं। सर्वोदय में इन सवका समावेश हो जाता है और भारत इनपर चलने का निश्चय कर चुका है। इसलिए हमारा कर्त्तव्य है कि हम अपनी पूरी शान्ति और वुद्धि से इनके अनुसार चलने का यत्न करें। यदि हम दूसरे देशों के समाजवादी या पूंजीवादी सिद्धान्तों की नकल करने का प्रयत्न करेंगे तो हम सही रास्ते को छोड़कर भटक जायेंगे। भगवान की दया से हमें एक अत्यन्त महान सांस्कृतिक विरासत मिली है। इस पुण्य-पुरातन देश में उन्हीं मानवीय आदर्शों के आधार पर हम अपने समाजवाद की इमारत खड़ी करना चाहते हैं। □

चिन्तन-मनन

('भारत छोड़ो' आंदोलन में श्रीमन्‌जी को गिरफ्तार करके महाराष्ट्र के बुल्ढाना जेल में रक्खा गया था। अपने बंदी जीवन (१६४२-४३) में उन्होंने विभिन्न प्रश्नों पर गहन चिंतन किया। उनकी जेल-दैनंदिनी के कुछ चुने हुए अंश यहां दिये जा रहे हैं।)—सम्पादक

११-११-४२ : ज्ञानेश्वरी सुनते हुए संयम और इन्द्रिय-निग्रह का महत्व तथा अर्थ अनायास समझ में आ गया। इन्द्रियों का भोग कितना तुच्छ है आत्म-स्वरूप को पहचानने के आनन्द के सामने। रूहानी तरक्की की सबसे पहली सीढ़ी है अपने आपको इन्द्रियों से परे समझना। अगर हम यह जानने की कोशिश करें कि 'हम' यह शरीर नहीं हैं, तो हमारा व्यवहार शीघ्र ही बदल सकेगा और हमारा जीवन अधिक शुद्ध तथा प्रेरक बन सकेगा।

१३-११-४२ : हमारा शरीर और इन्द्रियां घोड़ों सहित गाड़ी के समान हैं। मन ड्राइवर (हांकने वाला) है, आत्मा मालिक है। अगर हांकने वाला मालिक की न सुनकर मनमानी करने लगे तो गाड़ी गड्ढे में अवश्य पड़ेगी। मालिक को जिस जगह जाना है, वहीं मन को यह शरीर ले जाना चाहिये। वह जगह तो कदम ही है। बिना मन को काबू में किये इन्द्रिय-निग्रह नहीं हो सकता। इसलिये अपने को आत्मा समझकर मन और उसके द्वारा इन्द्रियों को काबू करना बहुत जरूरी है।

१९-११-४२ : मुहम्मद साहब का जीवन मुझे बहुत पसंद आया। उनका रहन-सहन पूज्य बापूजी से बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। उनकी सादगी, मोटे कपड़े पहनना, चटाइयों पर बैठना, बच्चों से और गरीबों से अगाध प्रेम, बकरी का दूध पीना, सत्याग्रह वृत्ति, तेज चलना, इत्यादि बातें जानने से ऐसा लगता है, मानो मुहम्मदसाहब ने बापू बनकर हिंदुस्तान में जन्म लिया है। उन्हें इस जन्म में भी बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है और पड़ रहा है। किन्तु उनका संदेश दिव्य है। उन्हें सफलता मिलेगी, इसमें शक नहीं है।

२८-११-४२ : जो साहित्य मनुष्य की आत्मा को ऊंचा नहीं उठाता, उसमें सात्विक गुण पैदा नहीं करता, उसके अंदर शुद्ध भावनाएं उत्पन्न नहीं करता, वह केवल बुद्धि और हृदय का विलास है, विकास नहीं। 'कला कला के लिये' या 'कला जीवन के लिए' के सिद्धांत निरर्थक हैं। केवल

'कला' के लिए जो साहित्य निर्माण होता है वह कैसा होता है यह मैं समझने में असमर्थ हूं, क्योंकि कला जीवन से अलग कोई वस्तु हो ही नहीं सकती ! कला भी तो आखिर जीवन की भावनाओं और विचारों का दिग्दर्शन ही है।

४-१२-४२ : दूसरों की निंदा उनके पीठ के पीछे करना अच्छा नहीं है। इसमें दूसरों के प्रति अन्याय तो है ही, अपने लिये भी विकार पैदा करना है। जो बात हम किसी के सामने नहीं कह सकते, वह उसके पीछे न कहें, इतना खयाल रखने से हम बहुत-सी बुराइयों से आसानी से बच सकते हैं।

७-१२-४२ : मनुष्य अपनी बुद्धि पर घमंड करते हैं। विज्ञान के आविष्कारों को देख कर हम सोचते हैं कि मनुष्य भी कितना बुद्धिमान है। मानों ईश्वर से कुछ ही कम रह गया है। मनुष्य ने और तो सब चीज समझ ली हैं, केवल आदमी में जीवन नहीं दे सका है। शायद यह भी कभी हो सके। इस प्रकार के विचार बड़े गलत और हास्यास्पद हैं। हम ऐसा क्यों नहीं सोचते कि देखो, परमेश्वर इतना शक्तिशाली है, इतना बुद्धिमान और ऐश्वर्यशाली है कि उसका बनाया मनुष्य भी रेडियो, टेलीफोन इत्यादि जैसे चमत्कार कर सकता है। जिस प्रभु ने ऐसे मनुष्य को पैदा किया, उसके सामने किसका सिर न झुकेगा ?

१४-१२-४२ : आध्यात्मिक उन्नति के लिए क्रोध को काबू में रखना बहुत आवश्यक है। जैसा गीता में कहा गया है, क्रोध से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और हम कुछ-का-कुछ कर बैठते हैं। कभी क्रोध दिखलाना जरूरी हो जाता है, किन्तु क्रोध के वश हमें नहीं हो जाना चाहिए, नहीं तो जिस पर क्रोध किया जाता है, उससे अधिक नुकसान हमारा ही हो जाता है और क्रोध का कोई असर भी दूसरे पर नहीं होता। शांत-चित्त होकर किसी को कुछ दंड दिया जाय तो उसका बहुत प्रभाव पड़ता है।

२३-१२-४२ : ईसा मसीह का जीवन भी बहुत दुःखमय रहा। उनके ही जैसे उन्हें केवल बारह शिष्य मिले, किंतु कष्ट के समय जब ईसा को पकड़ा गया, तो वे भी सब भाग खड़े हुए। पीटर ने उन्हें तीन बार साफ इंकार कर दिया। उन्हें फांसी पर चढ़ाया गया। कोई साथी न रहा। लेकिन उनकी अहिंसा और श्रद्धा कितनी अद्‌भुत थी। इतना ही कहा—"हे ईश्वर ! इन्हें क्षमा कर, क्योंकि वे नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं !" इसी अहिंसा का फल हुआ कि ईसा की मृत्यु के बाद उनका प्रभाव फैलता ही चला गया। उनका प्रेम का और श्रद्धा का संदेश करोड़ों लोगों में फैला। जो काम वे जीवन में नहीं कर सके, वह मृत्यु ने—दिव्य व गौरवपूर्ण मृत्यु ने—पूर्ण किया। उनकी मृत्यु, मृत्यु नहीं, दिव्य जीवन साबित हुई। यही है सत्य और अहिंसा की अद्‌भुत शक्ति, जिसके सामने पाप, क्रूरता, ढोंग, क्रोध और पाखंड कोहरे की तरह छिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

१९-१२-४२ : मेरा विश्वास है कि बिना ईश्वर की मर्जी के एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। फिर हमारे जीवन की और देशव्यापी घटनाएं तो उसकी इच्छा और योजना के बिना हो ही

कैसे सकती हैं। लेकिन साथ-ही-साथ उसकी यह भी योजना है कि हरेक व्यक्ति अपनी इच्छा-स्वातंत्र्य को भी महसूस करके ही कार्य करे, अर्थात् पूरी तरह सोच-विचार कर, अपनी संपूर्ण शक्ति के अनुसार अपने पूरे तन, मन और भावों से। ईश्वर हमें यह कहने का मौका नहीं देना चाहता कि "मैं क्या करूं, परमेश्वर की ऐसी मर्जी थी!" हमें पुरुषार्थहीन नहीं होना चाहिए। अपनी अक्ल से काम करते जाना चाहिए। किंतु फल के लिए सुख या दुःख नहीं मानना चाहिए। जो फल मिले, उससे संतुष्ट हो जाना चाहिये, क्योंकि फल हमारे हाथ में नहीं है। वह तो ईश्वर की मर्जी के अनुसार ही होता है। इसी का मतलब है निष्काम कर्म या अनासक्तियोग, जिसको कृष्णजी ने गीता में कहा है। हमारा धर्म है काम करना, ईश्वर हमें उचित फल देगा ही, वह इस समय हमें अच्छा लगे या बुरा! वह फल क्यों मिला, इसका कारण तो ईश्वर ही जान सकता है, हम नहीं समझ सकते! फिर सोच क्यों करें?

४-१-४३ : हम दूसरों को समझाने की और उनके दोषों को दूर करने की कोशिश करते हैं और जब वे नहीं सुधरते तो हम नाराज होते हैं और व्याकुल हो जाते हैं। यह गलत विचार-रीति है। हमारा काम सिर्फ समझा देना है, लोगों को उनके दोषों की ओर ध्यान आकर्षित करा देना है। सुधार होना न होना तो हमारे वश का नहीं है। वह तो ईश्वर की मर्जी है। वही उसकी चिंता करेगा; हम अपने को आत्म-बड़प्पन क्यों दें। ईश्वर सर्वशक्तिमान है। वह सबकी फिक्र करता है। हम उसका स्थान लेने की कोशिश कभी न करें। इससे हमें भी शांति न मिलेगी और दूसरों को भी अपने दोषों को स्वयं हटाने का शांति से प्रयत्न करने का मौका मिलेगा।

१३-१-४३ : अक्सर लोग एक-दूसरे से इस तरह व्यवहार करते हैं, मानो वे हमेशा ही जिंदा रहने वाले हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक-न-एक दिन सभी को मरना है। फिर हम क्यों दूसरों को तकलीफ देकर, धोखा देकर, झूठ बोलकर धन एकत्र करना चाहते हैं और सुखी रहना चाहते हैं। इस जीवन के बाद भी हमारा जीवन है और अपने अच्छे-बुरे कर्मों का अवश्य नतीजा मिलेगा। इसलिए हम भविष्य को समझकर ही अपना वर्तमान जीवन ढालें तो हितकर होगा।

झण्डा-गान

तीन रंगों का झण्डा प्यारा,
ऊंचा उड़ हर दम फहराये !
सत्य, न्याय का चिन्ह, हमारा
प्रेम-सुधा सब पर वरसाये।

इस झण्डे को आगे लेकर
एक कौम बन क़दम बढ़ावें,
अपनी अपनी कुरबानी को
आजादी के लिए चढ़ावें !

फिर से प्यारा हिन्द हमारा,
सुख की लहरों से लहराये !
तीन रंगों का झण्डा प्यारा,
ऊंचा उड़ हरदम फहराये !

हिन्दू-मुसलिम, बौद्ध, पारसिक,
ब्राह्मण, हरिजन, सिख, ईसाई,
हम तो एक वतन के ही हैं,
आपस में सब भाई भाई !

हिलमिल कर अब काम करेंगे,
आजादी भारत पा जाये !

कवि बन जाओ

सूर्य किरण बन जाओ हे कवि,
खारे जल से अमृत खींचो !
भव सागर दुख-क्षार कणों से
आशा-वर्षा कर जग सींचो !

बना साधना-मय जीवन, कवि,
तप-किरणों से दुःख तपाओ,
निज अनुभव की भाप बनाकर
ऊंचे उड़ बादल से छाओ !

दग्ध उरों को शीतल कर दो,
मीठे आशा-जल से सींचो,
कवि ! बन जाओ सूर्य-किरण सम,
खारे जल से अमृत खींचो !

बढ़े चलो

पंथी ! बढ़े चलो निज पथ पर !

यदि चलते-चलते गिर जाओ,
पैरों में कांटे चुभ जायें,
अंधियारी में मार्ग न सूझे,
सघन मेघ अंबर में छायें !

फिर भी चलना काम हमारा
दृढ़ श्रद्धा उर में धारण कर,
मंजिल तक चाहे जा पहुंचें,
या गिर कर मर जायें पथ पर !

नहीं विफलता चलकर गिरना,
बैठे रहना अधम पाप है;
अथक यत्न वरदान देव का,
दीन निराशा घोर शाप है!

हो न निराश कभी तुम पल भर,
पंथी! बढ़े चलो निज पथ पर!

जीने की कला

आओ साथी! जीना सीखें!

निर्भयता से क्षण-भर जीना,
पर डर कर मत युग-भर जीना!
जीना है तो हँसकर जी लो,
मातृ-भूमि प्रेमामृत पी लो!

रोना है तो अश्रु दुराओ,
हँसना है तो हँसो-हँसाओ;
अगर नहीं दे सकते तुम सुख
जग में क्यों फैलाते हो दुःख?

जीना हो तो मरना सीखो,
निज प्रण पर मर मिटना सीखो,
डर-डर कर मत समय गंवाओ,
मर कर भी प्रिय, अमर कहाओ!

प्रेम का नाता

जागो, मेरी भारत माता!
नव प्रकाश चारों दिश फैला,
सोना अब न सुहाता!

सभी देश उठ खड़े हुए हैं,
स्वागत में नवयुग के,
नये-नये पथ से सब कोई
शान्ति खोजने जाता ।

अब भी तुम आलस में क्यों, माँ,
पड़ी-पड़ी सोती हो ?
जननि ! तुम्हारी घोर नींद से
चिन्तित हुआ विधाता !

बिन वात्सल्य तुम्हारे ये सब,
राष्ट्र परस्पर लड़ते ;
उठकर शान्ति सुखद फैलाओ,
जोड़ प्रेम का नाता !

विविधता में एकता

विविधता में एकता का
गान ही गौरव हमारा !
शान भारत की यही है,
युगों का सौरभ हमारा !
प्रेम के जल-कण पिरोकर
रजत-रश्मि सुरंग भरती,
सप्त-रंगों की छटा से
जगत को सम्पन्न करती !
भरत का यह देश भी
रंगीन समता का सरोवर,
भिन्न भाषाओं विधर्मों,
जातियों का धन-धरोहर !
यदि कभी भ्रम भूल से हम
विविधता का ऐक्य खोयें,
धर्म, भाषा भेद का चक्कर
चला विष-बीज बोयें,

छिन्न होगी, भिन्न होगी,
राष्ट्र की गरिमा पुरातन,
बिखर कर रज में मिलेगी,
हिन्द की महिमा सनातन !
गुरुदेव-गांधी देश का
मस्तक कभी नीचा न हो प्रभु !
विविधता में एकता का
स्वर सदा ऊंचा रहे प्रभु !

मानव-जीवन की आशा

ताज-महल ! तू मनुज-प्रेम की
सुन्दर, सुरभित, सुखद कली !
खिलकर, परिमल विश्व पसारा,
किया पराजित काल बली !

वह समीप कालिन्दी गाती
मन्द-मन्द प्रियतम के गीत,
सींच प्रेम-जल से वह तुझको,
नित रटती जीवन-संगीत

शाहजहां के प्रेम अश्रु के
निर्मल, कान्ति-भरे मोती !
बहा नित्य आंसू की यमुना,
प्रकृति सदा तुझ पर रोती !

रह सचेत पर ताजमहल तू,
धोखा दे यह सरित कहीं !
बन भुजंगिनी निठुर काल की,
निगल जाय वह तुझे नहीं !

तू मानव-जीवन की आशा,
प्रेम-मूर्ति उर-मंदिर की !
तुझे नष्ट कर काल सकेगा
क्या जी इस जग में फिर भी ?

मानव से मानव का शोषण

मानव से मानव का शोषण
नहीं सहा, देखा अब जाता !

सब धन तो श्रम का ही फल है,
किन्तु श्रमिक ही अति निर्धन है ;
यह कैसा है न्याय जगत का,
यह तो प्रभु, दानव-नर्तन है !

श्रम जो था आधार धर्म का
आग बना जड़ता का कारण !
फूटा है सौभाग्य मनुज का
हो कैसे हरि, दुःख निवारण ?

श्रम तो अब लघुता का द्योतक,
गुरुता का गौरव विलास है !
यह तो है उपहास मनुज का,
शोषण का विध्वंस पास है !

उठो ! उठो ! जग के श्रम-जीवो,
भूलो अपनी कल्पित जड़ता;
निर्भयता का कवच इष्ट है,
दुष्टों से जब पाला पड़ता !

आगे बढ़ अपने हक मांगो,
जब उछले दानव मदमाता !
मानव से मानव का शोषण,
नहीं सहा देखा अब जाता !

अहिंसा

नहीं अहिंसा कायरता, वह
वीरों का बाना, हथियार;
हो बलवान शत्रु से फिर भी
करे अहिंसक प्रेमाचार !

कांटों में भी फूल खिलाती,
पत्थर में कोमल जल-धार !
क्रोध, द्वेष, हिंसा का उत्तर
देती शान्ति, क्षमामय प्यार !

अक्षर सुख

अक्षर सुख के लिए हृदय व्याकुल है मेरा,
कैसे पाऊं उसे, तोड़ नश्वर का घेरा !

जैसे उतरे तुंग हिमाच्छादित शिखरों से सरिता कोई,
पहले भटके तंग घाटियों में पथहारा खोई-खोई,
और शांत चुपचाप चरण फिर पैंठे विस्तृत मैदानों में
पास-दूर वन-खेत किनारे हरे भरे हो वरदानों में,
युगों-युगों तक ऋजुकुंचित संचरण क्लांति देकर रह जाये
किन्तु अंत में किसी एक दिन सरिता सिंधु समागम पाये !

इसी तरह सत्कर्म शिखर से मन की गंगा पथ आराधे,
सेवा, स्नेह, शक्तिमय श्रम से जीवन के सारे क्षण साधे,
कूल-कूल अनुकूल शस्य से श्यामल होकर हर्ष गुंजाये,
शाश्वत सुख समुद्र में मेरा मन तब डूबे अनहद गाये !

सच्चा स्वर्ग

साथी, सच्चा स्वर्ग कहां ?

नहीं जहां साम्राज्य इन्द्र का,
सुर बालाओं का कलगान,
छूम-छनाछन मदिर नृत्य में
जहां सुधा का शाश्वत भान !

नहीं जहां शोभा सुवर्ण की
मणि-रत्नों की चमक-दमक,
शहद, दूध के मीठे, उज्ज्वल
झरने झरते वहक-वहक !

नहीं जहां ऋषि, मुनि, यति गाते
मुक्ति पंथ का गौरव-गीत,
नहीं जहां गंधर्व झूमकर
आलापें मधुमय संगीत !

वह तो जहां सिहरता व्याकुल,
विह्वल प्रेमी मनुज-हृदय,
दीन जनों में जाग्रत करता
समतामय शुचि सर्वोदय !

जहां मूर्ति के सम्मुख कोई
भक्त भजन, शृंगार करे,
नहीं मूर्ति में, भक्त हृदय में,
स्वर्ग-शान्ति संचार करे !

हँसते-हँसते फाँसी चढ़ते
वीर सत्य के हेतु जहां,
सच्चे सुन्दर सुखद स्वर्ग के
दर्शन शाश्वत सदा वहां !

सेगांव-संत

जय ! जय ! जय ! सेगांव सन्त

कहता है संसार महात्मा,
गाता है गुणगान तुम्हारा,
किन्तु झुका है माथा मेरा,
इसका तो कारण ही न्यारा !

सत्य अहिंसा के मन्दिर में,
रहे सदा हो अटल पुजारी
दलित अकिंचन अवल जनों के
चिर सेवक, अनन्य हितकारी !

निज शरीर को जला-जलाकर,
आलोकित करते हो जग को,
सुलभ वनाते त्याग-तपस्या
से स्वदेश के दुर्गम पथ को !

कारण नहीं किन्तु यह कोई,
मेरे तव गुण गाने का,
भेद और ही कुछ है, वापू,
अपना राग सुनाने का !

विमल प्रेम-जल से तुमने नित,
मनुज हृदय को सींचा है
सन्त, तुम्हारी मानवता ने
ही मुझको तो खींचा है !

रोटी का राग

क्या होगा गाकर अनन्त का
नीरव और मदिर संगीत ?
मलयानिल के उच्छ्वासों का
मर्मर, निर्झर-झरझर गीत ?

कनक रश्मियों के गौरव से
क्या होगा दुखियों का त्राण,
रूखी रोटी ही में जिनको
है यथार्थ जीवन का प्राण ?

होगा क्या बनवाकर कविते,
तुहिन विन्दु की निर्मल माल ?
विस्मृति के असीम सागर में
फैलाकर स्वप्नों का जाल ?

कब तक सुनता रहूं बन्धु मैं,
मतवाले अलि की गुंजार ?
क्यों 'पागल' बनकर मैं घूमूं
भूल सकल मानव, संसार ?

निष्फल है निर्मम अतीत का
छायायुत, रहस्यमय गान !
हँसी-मात्र है उस 'अनन्त' की
वांकी, मन्द, मधुर मुस्कान !

साधारण जीवन के सुख-दुख
गाऊंगा आडम्बर त्याग,
सम्पत्ति-विद्याहीन जनों का
करुणामय रोटी का राग।

चाह नहीं

चाह नहीं मुझको सुनने की
मोहन की वंसी की तान,
क्या होगा उसको सुन सुनकर
भूखे भक्ति नहीं भगवान !

अनहद नाद सुनूँ मैं क्यों प्रिय,
होगी व्यर्थ चित्त में भ्रान्ति,
मुझको तो रोटी के कण में,
मिलती है असीम चिर शान्ति !

इच्छा नहीं मुझे सुनने की,
दुःख-वीणा का करुण विहाग
आओ मिलकर नित्य अलापें,
अति पुनीत रोटी का राग।

रोटी की रटना लगी, भूख उठी है जाग
आठ पहर, चौंसठ घड़ी, यही हमारा राग !

मेरा घर

ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

पटा फूस से,
दर कच्चा है,
टूटा-फूटा,
सब अच्छा है !

नहीं चोर का कुछ भी डर है !
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

नहीं सुनहरी
चमक-दमक है,
बस गोबर ही
विमल कनक है,

इस पर ही जीवन निर्भर है !
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

गंगा - यमुना
यहां कहां हैं !
वे तो बहतीं
धनी जहां हैं,
मेरा तीर्थ यही निर्झर है,
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

पुत्र जन्म पर
गान नहीं है,
हम कृषकों की
शान यहीं है,

शीत अनिल का ही शुचि स्वर है,
ह ! ह ! ह ! यह मेरा घर है !

सुख-दुःख से परे

कितनी मीठी रूखी रोटी !

दुखी ! नहीं,
हम दुखी नहीं हैं !
सुखी ! नहीं,
हम सुखी नहीं हैं !

हम सुख-दुःख से परे हुये हैं,
खा-खाकर यह सूखी रोटी !
कितनी मीठी रूखी रोटी !

क्षुधा सताती है जब हमको,
सुख-दुःख सभी भूल जाते हैं,
रूखी-सूखी रोटी ही को,
बड़े स्वाद से हम खाते हैं !

सूखी-रूखी छोटी-मोटी,
हा ! कितनी मीठी यह रोटी !

धनी लोग जानें क्या भाई,
इस रूखी रोटी का स्वाद !
इस रूखेपन के सम्मुख तो,
फीका हुआ अमृत आह्लाद !

रहे खरी, पर क्या वह खोटी ?
है कितनी मीठी यह रोटी !

भारत जननी

जय ! जय ! जय ! हे भारत-जननी,
प्यारी मात हमारी !
हिन्दू, ख्रिस्ती, सिक्ख, मुसलमां,
सब सन्तान तुम्हारी !

कठिन गुलामी में जकड़ी हो,
दुख-पिंजरे में तुम पकड़ी हो,
ताकत दो आजाद करें मां,
तोड़ बेड़ियां सारी !

आजादी की पाक लड़ाई
में मिलजुल कर भाई-भाई,
सत्य, अहिंसा के शस्त्रों से
काटें व्यथा तुम्हारी !

आजादी की किरणों से खिल,
हम सब कलियां डालें हिलहिल,
गले हार फूलों का जिनकी
खुशबू न्यारी-न्यारी !

काश कि फिर बालक हो जाऊं !

काश कि फिर बालक हो जाऊं !
भूल जगत का सारा संकट,
बाल-लोक में ही खो जाऊं !

वैभव-तरणी पार निकलती,
या जाती भंवरों में ही घिर;
भव-सागर में कौन तैरता,
कौन डूबता, मुझको क्या फिर !

मैं तो जलधि-किनारे खेलूं,
चुन, चुन, बना सीप की माला;
निज दुनिया का बनूं विधाता,
बना, गिरा रेती की शाला !
जब मन आवे रोऊं, गाऊं,
काश कि फिर बालक हो जाऊं !

घूमूं मां की उंगली पकड़े,
विमल चांदनी में निधि-तट पर,
राग-द्वेष की लहरों के संग,
दे दे ताली नाचूं जी भर,

हो सुख-दुख के परे, भुला दूं
जननी-प्रेम में अपने मन को,
वेफिक्री से नींद सुलाऊं
मात-गोद में अपने तक को !
जगदम्वा के दर्शन पाऊं !
काश कि फिर वालक हो जाऊं !

खेलें होली

वन्धु ! आज मिल खेलें होली !
दुःख भूलकर, ऐक्य जगाकर,
द्वेष, क्रोध, मद, लोभ, भगाकर,
अमल प्रेम का नाता जोड़ें,

वोल सभी से मीठी वोली
वन्धु ! आज मिल खेलें होली !

चलो चलें खेतों के अन्दर,
जौ-गेहूं लगते अति सुन्दर,
पौधों से भी प्रीति करेंगे,

विखरा कर उन पर यह रोली,
वन्धु ! आज मिल खेलें होली !

पशु तो हैं साथी निशिदिन के,
हम चिर ऋणी रहेंगे जिनके;
उनके पास चलो सब मिल कर

गाय खड़ी है कैसी भोली !
वन्धु ! आज मिल खेलें होली !

भारत मां ! हम तुझे न भूलें,
तेरी ही गोदी में झूलें,
चाहे कैसे कष्ट सतावें,

सदा रहे हिल मिल यह टोली,
वन्धु ! आज मिल खेलें होली !

दुःख

दुःख दिलाता याद राम की
सुख में मन जव रमता जाता !

जव जग की छोटी-मोटी-सी
चीजों में दिल भूला फिरता;
जव निर्मल, निष्काम जीव भी
माया के मेघों में घिरता;

तब यह प्यारा दुःख आ आ कर
चुटकी ले फिर मुझे जगाता;
कर देता चेतन वह मन को
माया-ममता दूर भगाता !

जव मेरे जीवन की कलियां
सुख-हिमजल से ठिठुर लजातीं,
दुख-रवि की तीखी किरणें ही
पुष्पित कर, कवि, उन्हें सजातीं !

क्यों न करूं सत्कार दुःख का
जव वह मुझको राह दिखाता,
क्यों न हँसूं दुख पाकर, प्रिय, मैं,
वह तो जीवन-पाठ सिखाता !

दुःख दिलाता याद राम की
सुख में मन जव रमता जाता !

प्रेम का शुभ पथ

दीपावली की रात्रि के, ऐ
दीपको ! घन-तम मिटाओ !

देश में सब ओर घन
रजनी निराशा की घिरी है
ज्योति आशा की जगा
सन्मार्ग सेवा का सुझाओ !

भूख, तृष्णा से करोड़ों
देश-वासी मर रहे हैं;
प्रज्वलित हो दीप, उनमें
ज्योति जीवन की जगाओ !

स्नेह-रूप सनेह में
सद्ज्ञान की वाती डुबोकर,
द्वेष से पागल जगत को
प्रेम का शुभ-पथ दिखाओ !

मानव की आत्मा

धन्य ! धन्य ! मानव की आत्मा
मंगल, पावन, मृदुल महान !

कठिन निराशाओं को झेले,
सह लेता सब राग-विराग
सिरमाथे ले लेता है नर
अपना टूटा-फूटा भाग !

दु:ख, रुदन, विपदा, निर्धनता
फैलाते गहरा अंधियारा

पर तेरी आशा-चिनगारी
कर देती तम में उजियारा !

चकित हुआ है स्वयं विधाता
तेरी आशा की दृढ़ता पर,
जग कर नव-निर्माण करो युग
आत्मा की शाश्वत सत्ता पर !

जग के भाग्य-विधाता वन कर
निर्मित कर दो नव-भगवान् !
धन्य ! धन्य ! मानव की आत्मा
मंगल, मंजुल, मृदुल, महान !

प्रेमल हृदय

प्रेममय मानव-दृगों विन
प्रकृति भी सूनी वनेगी !

गिरि-शिखर-श्यामल जलद का
सुखालिंगन कौन देखे ?
नव-द्रुमों पर नित अनिल का
प्रेम-चुम्बन कौन देखे ?

कौन रंजित, ललित सुमनों
पर भ्रमर सुविलास देखे,
झरझराती लोल लहरों
में प्रणय-उल्लास देखे ?

कौन चाहे देखना फिर
सरित-सागर चिर मिलन को,
वादलों के वीच छिपते
चन्द्र के उज्ज्वल वदन को !

हो अगर प्रेमल हृदय तो
प्रेम से दुनिया सनेगी,
प्रेममय मानव-दृगों बिन
प्रकृति भी सूनी बनेगी !

प्रेममय जीवन

खोजता था सदय प्रभु को,
पा गया मानव-हृदय को !

ढूंढ़ती आनन्द दुनिया
धर्म पर पागल बनी है,
द्वैत औ' अद्वैत वादों
के विवादों में सनी है;

भागकर मानव-जगत् से
अस्त-जीवन चाहता था !
पा लिया पर हृदय में ही
प्रेममय जीवन उदय को !

खोजता था सदय प्रभु को,
पा गया मानव-हृदय को !

मानव-मंदिर

मानव-मंदिर चलो बनायें !

मूर्ति पूज जग झगड़ रहा है,
मानव की झांकी सजवायें !

श्रद्धा की धरती पर बांधें
नींव सुदृढ़ निश्चय की मन में,
प्रेम-पगी अनुभव की ईंटें
चुन-चुन कर सहयोगी जन में !

सुमति, भक्ति का चूना-गारा
रंग, कला की नव-बहार हो,
आशा की उज्ज्वजल-तम प्रतिमा,
सर्वोदय की ही पुकार हो !

साथी, ईंटें चुन-चुन गायें !
मानव-मंदिर चलो बनायें !

नीति के बोल

मानव। मत तू फिक्र कर, यश, अपयश सम हव्य
बल, धीरज मन, बुद्धि से करता जा कर्तव्य !

मानव तू क्यों मद करे, दिखा ज्ञान विज्ञान ?
तुझ जैसा ज्ञानी रचा, उसका ही कर ध्यान।

श्वेत-रश्मि में निहित सप्त-रंग इन्द्र-धनुष दिखलाता,
वैसे ही अव्यक्त ज्योति को व्यक्त जगत झलकाता।

पिंड-देह, मन, बुद्धि सभी में पितृ-गुणों की भ्रान्ति,
चिद् की लघु चिनगारी में भी अमर ज्योति की क्रान्ति।

नाम की इच्छा नहीं, व्यक्तित्व मिट्टी में मिले,
बीज-सम हम पर मिटें पर राष्ट्र-तरु फूले फले।

शान्ति खोजने क्योंकर भटको इधर उधर निश दिन विभ्रान्त,
झुककर जरा हृदय को देखो, निश्चित नियमित, नीरव शान्त।

है आसान देव बन जाना, बड़ा कठिन बनना इन्सान,
पूजा जाना सदा सुलभ है, पूजा करना कला महान।

कहते हैं ईश्वर ने तुझको रूप दिया निज रूप समान,
मानव ! तेरी शक्ति अतुल तू ढाल सके नूतन भगवान।

जीत, हार कुछ भी मिले, रखना अपनी आन,
डटा रहे निज वचन पर, नर की यह पहचान।

'आप भले तो जग भला' यह अनुभव का सार,
दर्पण-सा बिम्बित करे, जग जन-भाव विचार।

'आधी गगरी रिक्त है।' कहकर क्यों कुम्हलाता।
'गगरी है आधी भरी।' यूं कह मैं मुस्काता।

हम ही अपने दीप हैं, अपने अंतिम साध्य,
हम ही साधन, साधना, है स्वधर्म आराध्य।

महात्मा गांधी के नाम

जीवन-कुटीर
वर्धा
२८-९-१९३९

पूज्य वापूजी,

आपके कहे मुताबिक मैंने गुप्त-वंधु को झंडा-गान के लिए लिखा था। श्री मैथिलीशरण-जी और श्री सियारामशरणजी ने गीत भेजे हैं; उन्हें साथ में भेज रहा हूं। श्री सियारामशरणजी का जन्म-दिन आज ही है इसलिए उनकी इच्छानुसार उनका गीत आपको 'चरण वंदन' के रूप में भेज रहा हूं।

मैंने भी एक छोटा-सा गीत वनाया, वह भी साथ है। आप इन सब गीतों को देख जाने की कृपा करें। २ तारीख को मैं इनमें से जितने गीत हो सके, आपके सामने गवाने की कोशिश करूंगा, तब आप उनके वारे में निश्चय कर सकेंगे।

यदि आपको समय होगा, तो मैं कभी आकर इस वारे में प्रत्यक्ष वातें कर लूंगा।

विनम्र
श्रीमन

माता आनन्दमयी के नाम

नई दिल्ली
७ दिसम्बर, १९७७

श्री श्री मां आनन्दमयी मां,

राष्ट्रीय स्वधर्म स्वरूप गीता सम्मेलन के शुभ अवसर पर श्रद्धानत प्रणाम। मां, कल से यहां राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन भी महत्वपूर्ण हो रहा है। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, शिक्षामंत्री सभी खूब ध्यान दे रहे हैं। आपके शुभाशीर्वाद से राष्ट्रीय गीता सम्मेलन और राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की भावनाओं का समन्वय हो। जनमत जागृत हो। राष्ट्र का उत्थान हो ! आध्यात्मिक शक्ति का सम्मिलित विकास हो, यही प्रार्थना है।

श्रीमन्नारायण
मदालसा

स्वामी परमानन्दजी के नाम

२७ नवम्बर, १९७७

आदरणीय स्वामी जी,

सादर प्रणाम।

आपको मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा। इसी बीच चि० रजत से मालूम हुआ कि गीता जयन्ती सम्मेलन अब पूना में २१ दिसम्बर को होना निश्चित हो चुका है और उसकी तारीखें बदलना सम्भव नहीं है। ऐसी अवस्था में तीव्र इच्छा होते हुए भी मदालसाजी और मैं उस अवसर पर उपस्थित न हो सकेंगे। इसका हमें स्वयं बहुत दुःख है। उन्हीं दिनों अखिल भारत शिक्षा सम्मेलन का दिल्ली में आयोजन बहुत महत्वपूर्ण है। मेरी लाचारी के लिए पूज्य मां व आप मुझे क्षमा करें।

जैसा मैंने पूज्य मां से विनम्र निवेदन किया था और मैं चाहता हूं कि इस समय देश में जो हिंसा, द्वेष और तोड़-फोड़ का वातावरण छा रहा है, उसका निवारण राजनैतिक दलों द्वारा नहीं हो सकेगा। उसको दूर करने के लिए देश के सभी संत-महात्माओं की सम्मिलित आध्यात्मिक शक्ति जगाना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। इस अध्यात्म का सार और निचोड़ स्वयं भगवान कृष्ण ने गीता में समझाया है। यह स्पष्ट है कि जबतक हम सभी अनासक्त और निर्लिप्त भावना से अपना कार्य नहीं करेंगे और दिन-प्रतिदिन के राग-द्वेष के जाल में फंसे रहेंगे तबतक हमारा देश सच्चे अर्थ में उन्नत और विकसित नहीं हो सकेगा। मुझे पूरी आशा है कि गीता जयन्ती के अवसर पर जो प्रमुख संत-महात्मा पूज्य मां के सान्निध्य में शामिल होंगे, वे इस सम्बन्ध में सामूहिक ढंग से अवश्य विचार करेंगे। मेरा यह नम्र निवेदन उनके समक्ष अवश्य पेश करने की कृपा कीजिएगा।

स्वामी श्री परमानंदजी महाराज, द्वारा श्री श्री आनन्दमयी मां आश्रम, पो० चांदोद (जि० बड़ौदा, गुजरात)

विनम्र
श्रीमन्नारायण

१

आचार्य विनोबा के नाम

१८ अगस्त, १९६५

पूज्य विनोबाजी,

सादर प्रणाम। आशा है, विदर्भ में आपका भ्रमण सुचारु रूप से चल रहा होगा और आप कुछ दिनों बाद पौनार आश्रम वापिस आकर बिहार यात्रा के लिए २४ अगस्त को चल पड़ेंगे। मैं ६ सितंबर को वाराणसी पहुंच रहा हूं ताकि वहां आपके दर्शन कर सकूं और आपको नेपाल पधारने के लिए निमंत्रण भी दे सकूं। मदालसा भी उसी समय वाराणसी पहुंच जायगी। शायद वह आपको प्रयाग में ही मिल जाय।

कल ही मैंने यहां की राष्ट्रीय पंचायत के सदस्यों को अल्पाहार के लिए निमंत्रित किया

था। भारत सरकार द्वारा तैयार की हुई आपके जीवन और कार्य संबंधी फिल्म भी उन्हें दिखाई ताकि आपके यहां पधारने के पहले यहां के प्रमुख व्यक्तियों को भूदान और ग्रामदान के वारे में आवश्यक जानकारी प्राप्त हो जाय। फिल्म देखकर सबको खुशी हुई।

आपको मालूम हुआ होगा कि मदालसा पू० खान अब्दुल गफ्फार खां को मिलने भाई कमलनयनजी के साथ काबुल गई हैं। शायद अब तो दिल्ली वापिस आ गई होगी। आपने अखवारों में यह भी खबर पढ़ी होगी कि भारत सरकार ने पूज्य खां साहब को भारत आने का निमंत्रण दिया है।

आपके आशीर्वाद से हमारा यहां का काम ठीक चल रहा है। नेपाल के बारे में कुछ समय पहले मैंने 'इंडियन एक्सप्रेस' में जो लेख-माला लिखी थी, वह शायद आपने देखी होगी। उसकी एक प्रति साथ में नत्थी है।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

२

२४ अक्तूबर, १९६५

पूज्य विनोवाजी,

हमारी ओर से दीपावली के सादर प्रणाम।

आपका तारीख २० सितम्बर का पत्र समय पर मिल गया था। जानकर खुशी हुई कि आपकी बिहार यात्रा अच्छी चल रही है। आपके प्रवचनों के समाचार अखबारों में हम बराबर पढ़ते रहते हैं।

यह सही है कि आपकी नेपाल यात्रा ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है, किंतु हमारी श्रद्धा तो यही है कि आपका नेपाल में फरवरी-मार्च में अवश्य आगमन होगा और नेपाल के महाराजाधिराज की इच्छा पूरी होगी।

हमें जानकारी मिली है कि आप १८ नवम्बर को मोतीहारी और १९ नवम्बर को रक्सौल में पधारेंगे। मदालसा और मैं उस समय आपसे मिलने के लिए वहां आने की पूरी कोशिश करेंगे। तब नेपाल के कार्यक्रम के बारे में अधिक बातचीत भी हो सकेगी।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

३

११ फरवरी, १९६६

पूज्य विनोवाजी,

सादर प्रणाम। आज पूज्य काकाजी जमनालालजी को गये पूरे चौबीस वर्ष हो गये। वैसे तो यह अर्सा काफी लम्बा है, किन्तु लगता है कि जैसे वे कुछ समय पहले तक हमारे बीच ही थे।

आज भी उनकी उपस्थिति महसूस होती रहती है। उन्हीं के पुण्य स्मरण में आज हम आपको अपने सादर सविनय प्रणाम इस पत्र द्वारा भेज रहे हैं। उत्तर प्रदेश में राज्यपाल श्री विश्वनाथ तथा पूज्य दादा धर्माधिकारी भी आज यहीं हैं। हम सब श्री तुलसी मेहरजी के आश्रम में प्रार्थना में शामिल होने जा रहे हैं। संस्था का दसवां वार्षिकोत्सव भी है।

मदालसा को और मुझे आपने तथा आदरणीय शास्त्रीजी ने नेपाल भेजा था। हमें यहां आये एक वर्ष और दो महीने के लगभग हो गया। आपके आशीर्वाद से इस अवधि में यहां काफी कार्य हो सका है, जिसकी वजह से नेपाल और भारत के बीच सद्भावना बढ़ी है। किन्तु अभी काफी काम बाकी भी है। लेकिन पूज्य शास्त्रीजी के अचानक चले जाने से हमें अब यहां बड़ा सूना-सा लगने लगा है। हम आपके यहां पधारने की राह देख रहे हैं। मदालसा और मैं भगवान यही प्रार्थना करते हैं कि आपका स्वास्थ्य शीघ्र बिलकुल ठीक हो जाय ताकि आप अपनी यात्रा फिर शुरू कर सकें और गर्मियों में—याने अप्रैल-मई में—यहां कुछ समय के लिए आप पधार सकें।

नेपाल के महाराजाधिराज तो बीच-बीच में हमसे पूछते ही रहते हैं कि विनोबाजी यहां कब आ रहे हैं? आपके यहां आने से इस पड़ौसी मित्र राष्ट्र में बहुत काम हो सकेगा, आध्यात्मिक दृष्टि से, इसमें कोई शक नहीं है। भगवान हमारी इच्छा पूर्ण करेगा, ऐसी आशा है।

विनम्र

श्रीमन्नारायण

आचार्य विनोबा का उत्तर

विनोबा-निवास

जमशेदपुर

२५-२-६६

श्री श्रीमन्‌जी,

आपका पत्र मिला। नेपाल में मैं थोड़े दिन बिताऊं तो कई दृष्टियों से लाभ होगा, यह तो जाहिर ही है। अभी दादा और देवेंद्र भाई ने भी उस पर जोर देकर मुझे लिखा है।

लेकिन इन दिनों बहुत गहरे चिन्तन में हूं। १९१६ में गृहत्याग करके निकला था। उस बात को पचास साल हो रहे हैं, तो चिंतन चल रहा है कि आगे जीवन का स्वरूप क्या होगा? यानी क्या होना उचित है? स्थूल कार्यों का लोभ कहां तक रखा जाय। बचा हुआ समय कितना है, मालूम नहीं। उसका उपयोग स्थूल के बजाय सूक्ष्म में किया जाना उचित दीखता है।

मेरे चित्त में चिन्तनकी इस हालत में मैं नहीं कह सकता कि मैं नैपाल में आ भी सकूंगा, और अगर आऊंगा तो कब।

इतना निश्चित है कि मैं अपने ही चिंतन से कुछ निर्णय करूंगा नहीं। अंत में अंतर्यामी का जो आदेश मिलेगा, उसी को प्रमाण मानूंगा।

अभी रामकृष्ण बजाज के पत्र के उत्तर में मैंने एक पत्र लिखा है। पत्र तो उनका व्यापार की ट्रस्टीशिप के बारे में था। उसके अंत में मेरे अपने विषय में मैंने दो-चार वाक्य लिखे हैं। उस की नकल इसके साथ आप दोनों के देखने के लिए भेजी है।

विनोबा का
जय जगत

४

२१ मई, १९६६

पूज्य विनोबाजी,

सादर प्रणाम। आपको मेरा पिछला पत्र मिला होगा। इसी बीच मैंने समाचार पत्रों में पढ़ा कि आप फिर अस्वस्थ हो गए हैं। मैंने बालभाई को इस बारे में तार दिया था। किन्तु उसका अभी तक कोई उत्तर नहीं मिला है। अखबारों में यह पढ़कर खुशी हुई कि पटना के दो डाक्टरों ने आपके स्वास्थ्य का परीक्षण किया और संतोष जाहिर किया। आशा है अब आपकी तबियत पहले से ठीक होगी। बालभाई मुझे विस्तार से सब हाल लिखेंगे ही।

आजकल सुबह हम लोग प्रार्थना में आदरणीय राजाजी द्वारा लिखित महाभारत पढ़ रहे हैं। उसमें यक्ष-युधिष्ठिर संवाद हमें बहुत पसंद आया। उसकी एक प्रतिलिपि आपके अवलोकनार्थ भेज रहा हूं। मैं आशा करता हूं कि पूज्य राजाजी ने संस्कृत श्लोकों का ठीक अनुवाद किया है। यह संवाद सचमुच बहुत ही मार्मिक और सारगर्भित है।

मदालसा कल यहां वापस पहुंच रही है। पूज्य पिताजी का स्वास्थ्य पहले से अब काफी अच्छा है। अपनी गंभीर बीमारी में भी वे हमेशा प्रेम, मुहब्बत और धर्मशीलता के बारे में ही बातें करते रहे। जगतमाता की वात्सलता के संबंध में अपनी गहरी श्रद्धा व्यक्त करते रहे। उन्हें तुलसीदास की 'विनय पत्रिका' बहुत ही प्रिय है। लगभग १५ वर्ष पहले जब महिला आश्रम में उन्होंने 'विनय पत्रिका' के गीतों पर आपका व्याख्यान सुना तो उन्हें दिलचस्पी पैदा हुई। बाद में उन्होंने बहुत से गीतों का बड़ा गहरा अध्ययन किया और उन्हें कंठस्थ भी कर लिया। बीमारी में भी वह उन गीतों को बार-बार गुनगुनाते रहे और आपको बार-बार स्मरण किया।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

५

२० अगस्त, १९६७

पूज्य विनोबाजी,

सादर प्रणाम। आशा है आपका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक होगा। इस बार आपसे कई विषयों पर काफी विस्तार से चर्चा हो सकी, इसकी हमें खुशी है। चि० रजत भी चर्चाओं में सम्मिलित रहा, इससे भी बहुत संतोष हुआ। जैसा मैंने बातचीत में सूचित किया था, दरभंगा जिले में ग्रामदानी आदर्शों के अनुसार विकास योजना बनाने और कार्यान्वित करने में आवश्यक सहायता देने के लिए मैंने प्रो० गाडगिल और डा० के० एल० राव को व्यक्तिगत पत्र लिख दिये हैं। उनकी

प्रतियां श्री रामश्रेष्ठ जी राय को भी भेज दी हैं, ताकि वे इस संबंध में उचित कार्रवाई कर सकें। श्रीमती इंदिरा गांधीजी को भी वहां की सामान्य जानकारी मैंने दे दी है। जो चार बागी भिंड-मुरैना क्षेत्र में अभी भी जेल में हैं, उनके संबंध में इंदिराजी को लिख दिया है, ताकि वे उन्हें छुड़ाने के लिये आवश्यक प्रयत्न कर सकें। इस संबंध में वालभाई ने मुझे फिर इस बार याद दिलाई थी।

१४ अगस्त की शाम को नेपाल के महाराजाधिराज और महारानी जी तथा शाही परिवार के अन्य सदस्य भारतीय राजदूतावास में हमारे साथ भोजन पर पधारे थे। उस समय आपके यहां आने के सबंध में जो कुछ आपसे चर्चा हुई थी, वह मैंने महाराजाधिराज को विस्तार से वतला दी। उन्हें स्मरण था कि आपने उनके पत्न के ऊपर ही लिख दिया था—"यह ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है।"

किन्तु बाद में उन्होंने इस प्रकार उद्‌गार प्रकट किये, "भारत और नेपाल जैसे देशों में यह आवश्यक है कि भौतिक विकास के साथ-साथ आध्यात्मिक उन्नति भी होती रहे। इसके लिए आचार्य विनोबाजी जैसे महान व्यक्ति हरेक देश में होने चाहिए। पता नहीं, भविष्य में इस प्रकार के संत पुरुष कभी विद्यमान रहेंगे भी या नहीं।" और फिर मदालसा जी की ओर देखकर कहा "एम्बेसेडर साहेव तो और कई महत्व के कामों में व्यस्त रहते हैं; किन्तु विनोवाजी को नेपाल लाने की आपकी जिम्मेदारी है।" इससे साफ जाहिर होता है कि आपके यहां आगमन के संवंध में महाराजाधिराज की कितनी तीव्र इच्छा है।

'एशिया पब्लिशिंग हाउस' की ओर से मुझे लिखे गये पूज्य वापूजी, पंडितजी और आपके कुछ पत्नों का संग्रह प्रकाशित हो रहा है। मैंने आपके लगभग १० पत्न इस संकलन में सम्मिलित किये हैं। इनमें से अधिकतर 'सस्ता साहित्य मंडल' द्वारा प्रकाशित "विनोबा के पत्न" पुस्तक में छप चुके हैं। आशा है, इन पत्नों को मेरे नये संकलन में प्रकाशन की आपकी अनुमति रहेगी। पूज्य पंडितजी के वहुत से पत्नों में भी आपका जिक्र आया है। मैंने यह प्रयत्न किया है कि इस संग्रह में कोई ऐसा पत्न न सम्मिलित किया जाय जो विवादग्रस्त हो। पुस्तक का नाम होगा—'लैटर्स फ्राम गांधी, नेहरू एण्ड विनोवा।'

मेरे योग्य सेवा लिखवाते रहियेगा।

विनम्र

श्रीमन्नारायण

६

१९-६-७२

परम पूज्य विनोबाजी,

सादर प्रणाम। आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा और 'ब्रह्मविद्या मंदिर' का काम सुचारु रूप से चल रहा होगा। शारदाग्राम, जिला जूनागढ़ गुजरात में ३ और ४ जून को मेरी अध्यक्षता में नई तालीम सम्मेलन हुआ था। उसमें जो निवेदन और प्रस्ताव पारित हुए, उनकी एक प्रति-लिपि आपकी जानकारी के लिए साथ में भेज रहा हूं।

हमारा विचार है कि अक्टूबर मास में सेवाग्राम में एक अखिल भारतीय बुनियादी शिक्षा

सम्मेलन आयोजित किया जाय, जिसमें हम विभिन्न राज्यों के शिक्षामंत्रियों और देश के प्रमुख शिक्षाशास्त्रियों को आमंत्रित करें। मेरा खयाल है कि इस सम्मेलन के लिए श्रीमती इंदिरा गांधी से आग्रह किया जाय। प्रधानमंत्री वनने के बाद वे वर्धा या सेवाग्राम अभी तक आई भी नहीं हैं। मैं कुछ दिन वाद जब दिल्ली जाऊंगा तव उनसे इस संबंध में मिलूंगा। पिछली बार पवनार में आपसे जो चर्चाएं हुई थीं, उनका सार मैंने इंदिराजी को वतला दिया था। उन्होंने सब वातें ध्यान से पढ़ ली थीं।

मदालसा और सौ० अमला इन दिनों मसूरी में ही हैं। चि० रजत १५ दिन के लिये फौजी यूनिट के साथ गुजरात और राजस्थान सीमाक्षेत्रों का अवलोकन करने गया है। आई०ए०एस० के छह और साथी भी साथ में है। यह कार्यक्रम आई० ए० एस० ट्रेनिंग का अविभाज्य अंग रखा गया है। वह ता० २९ को यहां वापस आयगा और ३० को दिल्ली चला जायगा। वहां एक सप्ताह की ट्रेनिंग होगी और विभिन्न संस्थाएं दिखलाई जाएंगी। बाद में वह दो हफ्ते के लिए उड़ीसा और आन्ध्रप्रदेश 'भारत-दर्शन' के लिए जाएगा। इस प्रकार उसकी जुलाई के अंत तक ट्रेनिंग पूरी हो जायगी। वाद में उत्तर-प्रदेश के किसी जिले में उसका पोस्टिंग होगा।

इस बार तो सभी जगह वहुत गर्मी पड़ी। किन्तु आज ही रेडियो पर सुना कि केरल में मानसून प्रारम्भ हो गया है। आशा है कि कुछ दिनों में सभी जगह अच्छी बरसात शुरू हो जाएगी।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

७

१५-७-१९७२

पूज्य बावा,

गुजरात में राज्यपाल-कार्य की मेरी अवधि २६ दिसम्बर, १९७२ को पूरी होती है। बाद में यदि इंदिराजी मुझसे कोई विशेष काम लेना चाहें तो आपकी मंजूरी से ६५ वर्ष तक वह कार्य किया जा सकता है, नहीं तो सीधे हमें वर्धा वापिस आना है और वर्धा की शिक्षण संस्थाओं और सेवाग्राम आश्रम की ओर फिर ध्यान देना है।

वैसे मेरी वृत्ति अब स्थूल कार्यों की तरफ कम होती जा रही है। चि० भरत व चि० रजत अपने-अपने काम में लग गये हैं; शादी भी हो गई है और दोनों बहुएं वड़ी संस्कारी मिली हैं। इसलिए पारिवारिक जिम्मेदारी अधिक नहीं रही।

आध्यात्मिक अध्ययन और चिन्तन की ओर अधिक दिलचस्पी होती जा रही है। हिमालय का आकर्षण वढ़ता जा रहा है। वीच-वीच में कौसानी आश्रम—गर्मियों में रहने का विचार हो रहा है।

और जैसी हरि इच्छा ! मेरा तो पक्का विश्वास हो गया है कि ईश्वर की कृपा के बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है। हां, पुरुषार्थ करना हमारा कर्तव्य तो है ही। यदि कार्य अहं-कार शून्य हो तो हरि-कृपा भी प्राप्त हो जाती है न ?

आपका
श्रीमन्नारायण

१

पं० जवाहरलाल नेहरू के नाम

नई दिल्ली
३ अगस्त, १९५३

प्रिय पंडितजी,

बिहार में विनोबाजी से मिलकर मैं कल दिल्ली वापस लौट आया। तीन दिन उनके साथ रहा और कई समस्याओं पर लम्बी चर्चा हुई, विशेषकर बेरोजगारी, भूमि सुधार और राज्यों के पुनर्गठन के विषय में। इस पत्र के साथ एक नोट संलग्न है, जिनमें विभिन्न समस्याओं पर विनोबाजी के विचार दिये हैं।

राज्य-पुनर्गठन आयोग के सम्बन्ध में मैंने विनोबाजी से अकेले में चर्चा की। उन्होंने आप की इस विषय में जो नीति है, उससे सामान्य रूप में सहमति प्रकट की और उच्च स्तरीय आयोग की नियुक्ति का स्वागत किया। उनकी राय में आयोग में वरिष्ठ जजों को नियुक्त करना उपयुक्त होगा ताकि वे पूरे मामले पर निष्पक्ष दृष्टि से विचार कर सकें। किन्तु यह आवश्यक है कि आयोग द्वारा विचारार्थ विषय प्रारम्भ से ही बिलकुल स्पष्ट हों। उनका मत है कि आयोग को यह स्पष्ट रूप से सूचित कर दिया जाय कि भारत सरकार इस समस्या को ताक पर नहीं रखना चाहती, बल्कि सुलझाना चाहती है। विनोबाजी के अनुसार राज्य पुनर्गठन आयोग की संस्तुतियां तीन पहलुओं पर आधारित होनी चाहिए :

१. यथाशक्य भाषा की एकरूपता
२. आर्थिक व्यवहार्यता (Solvency), तथा
३. राष्ट्रीय सुरक्षा—विशेषकर सीमावर्ती क्षेत्रों में।

विनोबाजी का मत है कि जनता को यह साफ-साफ बता देना चाहिए कि एक बार आयोग की संस्तुतियां सरकार द्वारा स्वीकृत किये जाने पर सब प्रकार के आंदोलन समाप्त हो जाने चाहिए अन्यथा आयोग नियुक्त करने का पूरा उद्देश्य ही समाप्त हो जाएगा।

मैंने विनोबाजी से पूछा कि आयोग के कार्य से किस रूप में अपने को सम्बद्ध करना स्वीकार करेंगे ? उनका विचार था कि उनका आयोग से किसी औपचारिक रूप से सम्बद्ध होना विशेष उपयोगी नहीं होगा। किन्तु वे आपको इस कार्य में दो प्रकार से मदद करने को तैयार हैं :

क. यदि किसी विशेष मामले में उनकी सलाह मांगी जाय तो वे आयोग से अनौपचारिक चर्चा कर सकते हैं, तथा

ख. वे पूरा प्रयत्न करेंगे कि देश में आयोग की संस्तुतियों को बिना अधिक आंदोलन किये स्वीकार करने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो। वे भाषाधार राज्यों के बनाने के उद्देश्य से किये गए अनशनों की भर्त्सना कर ही चुके हैं। मुझे लगता है कि इस मामले में विनोबा जी से हुई मेरी चर्चा काफी उपयोगी रही और यदि हम उनसे संपर्क बनायें रखेंगे तो उनकी मूल्यवान सलाह प्राप्त होती रहेगी।

बिहार कांग्रेस के नेताओं से मैं रांची में मिला था। निकट भविष्य में प्रतिनिधियों के

फिर से चुनाव करने के विषय में बद्री बाबू बहुत आशावान प्रतीत नहीं हुए। उनके विचार में नई मतदाता सूचियों के तैयार करने में ही लगभग तीन महीने लग जायेंगे। मैंने उनसे चुनावों को जल्द-से-जल्द पूरा करने के महत्व पर जोर दिया किन्तु मौजूदा हालात को देखते हुए मैं इस कार्य को तीन या चार महीने से कम में पूरा करना संदेहास्पद समझता हूं। बहरहाल, बिहार प्रदेश कांग्रेस कमेटी नये चुनावों को यथासमय शीघ्र सम्पन्न करने का भरसक प्रयत्न कर रही है।

आपका
श्रीमन्

पं० नेहरू का उत्तर

नई दिल्ली
३ अगस्त, १९५३

प्रिय श्रीमन,

तुम्हारे ३ अगस्त के खत और उसके साथ नत्थी विनोबाजी के साथ हुई चर्चा संबंधी नोट के लिये धन्यवाद। मैं इन्हें खूब दिलचस्पी से पढ़ गया हूं।

राज्य पुनर्गठन आयोग के बारे में विनोबाजी ने जो कहा है,वह इस मसले पर मेरे खयाल से काफी मेल रखता है। हम इसे ध्यान में रखेंगे।

जहां तक तुम्हारी बातचीत में आये दीगर मसलों का सवाल है, हमें उन पर योजना आयोग में और दूसरी तरह से विचार-विमर्श करना चाहिए। विनोबाजी ने कुछ पहलुओं पर जो विचार जारी किये हैं, उनसे मैं पूर्ण रूप से सहमत नहीं हूं। लेकिन बेशक उन्होंने जो भी बात कही है, उस पर ग़ौर से विचार करना चाहिए।

तुम्हारे नोट की प्रतियां मैं योजना आयोग तथा कुछ संबंधित मंत्रियों को भेज रहा हूं।

भवदीय
जवाहरलाल नेहरू

२

नई दिल्ली
२२ नवम्बर, १९५४

प्रिय पंडितजी,

मैंने सुना है कि कम्पनी कानून संशोधन बिल से संबंधित प्रवर समिति के कांग्रेस सदस्यों के निर्णयों को उलटने का प्रयास किया जा रहा है, विशेषकर मैनेजिंग एजेंसी प्रणाली के विषय में। ये निर्णय इस मामले से संबंधित तमाम मुद्दों पर पूरी तरह से सोच-विचार करने के पश्चात् ही लिये गये थे। हममें से कई सदस्य, जिनमें श्री खंडूभाई देसाई भी शामिल थे, श्री सी० डी०

देशमुख[1] से दो बार मिले। मामले के हर पहलू पर पूरी तरह से विचार किया। जिन निष्कर्षों पर हम पहुंचे, वे एक समझौते के रूप में थे तथा उन्हें किसी भी तरह से आत्यंतिक नहीं कहा जा सकता। अब यदि इन निर्णयों को भी संशोधित और हलका किया गया तो वे कांग्रेस पार्टी के बारे में एक बहुत प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करेंगे। दरअसल हममें से कुछ लोग तीव्र रूप से महसूस करते हैं कि मैनेजिंग एजेंसी प्रणाली पूरी तरह से समाप्त कर दी जानी चाहिए। हमने अपने राष्ट्र से सामंतवाद हटा दिया है। मेरे विचार में मैनेजिंग एजेंसी प्रणाली, औद्योगिक क्षेत्र में एक प्रकार का सामंतवाद ही है और कोई वजह नहीं है कि उसका भी अन्त न किया जाय। बहरहाल, प्रवर समिति के कांग्रेस सदस्य इस प्रणाली को सीमित रूप में बनाए रखने पर सहमत हो गये हैं और मेरी हार्दिक आशा है कि इन निर्णयों को बदला नहीं जायगा। यदि बहुत ही आवश्यक हो तो कुछ मुद्दों पर कांग्रेस संसदीय दल की कार्यकारिणी समिति में विचार विमर्श किया जा सकता है।[2]

आपका

श्रीमन्

१. तत्कालीन वित्तमंत्री
२. कांग्रेस संसदीय दल ने बाद में यह तय किया कि कंपनी कानून संशोधन बिल को उसके मूल रूप में ही पारित किया जाय।

३

नई दिल्ली

२० मई, १९५६

प्रिय पंडितजी,

आपके १९ मई के कृपापत्र के लिए मैं बहुत ही आभारी हूं। मुझे बड़ी खुशी है कि आपने मेरे आगामी आमचुनावों में खड़े न होने और अपना अधिक-से अधिक समय कांग्रेस के माध्यम से संगठनात्मक और रचनात्मक कार्य में लगाने के विचार को पसन्द किया है।

अपने पत्र में आपने प्रधानमंत्री के पद के विषय में उल्लेख किया है। मैं आशा करता हूं कि मेरे पत्र में ऐसी कोई बात नहीं थी, जिससे आपको तनिक भी आभास हुआ हो कि मैं या अन्य कांग्रेस कार्यकर्ता यह चाहते हैं कि आप प्रधानमंत्री पद से मुक्त हो जायं। यक़ीनन, ऐसी कोई बात नहीं है, जो मेरे दिमाग से और दूर हो, बल्कि मौजूदा हालात में यह एक अचिंतनीय वस्तु है। हम सिर्फ यही चाहते हैं कि देश के नवयुवकों के लिए यह सम्भव हो सके कि वे विभिन्न कांग्रेस प्रशिक्षण शिविरों के माध्यम से आपके और निकट सम्पर्क में आ सकें और आपके महान नेतृत्व में प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। असल में हम बहुत आभारी हैं कि आपने ऐसा करना स्वीकार कर लिया है और इस प्रकार का पहला प्रशिक्षण शिविर बुलन्दशहर में १६ और १७ जून को आयोजित हो रहा है।

श्री ढेबरभाई और मैं कुछ दिनों बाद सर्वोदय सम्मेलन में भाग लेने के लिए कांचीवरम्

जायेंगे। मुझे बहुत खुशी होगी यदि आप कुछ समय निकालकर विनोबाजी के नाम सम्मेलन की सफलता के लिये शुभकामनाओं का पत्र लिख सकें।

आपका
श्रीमन्

४

नई दिल्ली
२६ फरवरी, १९६२

प्रिय पंडितजी,

पिछले दिनों मैं फोर्ड तथा राकफेलर प्रतिष्ठानों द्वारा भारत-स्थित प्राइवेट संस्थानों को अनुदान देने की पद्धति का अध्ययन करता रहा हूं। मैंने पाया कि वर्तमान पद्धति के अन्तर्गत भारत सरकार की भूमिका नगण्य है। इन प्रतिष्ठानों के लिए यह जरूरी है कि प्राइवेट संस्थानों को अनुदान देने से पूर्व संबंधित मंत्रालय से मशविरा कर लें। किन्तु बहुधा मंत्रालयों के पास आवश्यक सूचना तक उपलब्ध नहीं होती। मैंने इस विषय में मुख्य आर्थिक सलाहकार को कुछ दिन पहले एक नोट भेजा है, जिसकी प्रतिलिपि इस पत्र के साथ है। यह आश्चर्यजनक है कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तक की भी उपेक्षा कर दी जाती है और हमारे शिक्षा-संस्थानों के प्रधान, जिनमें उपकुलपति भी शामिल हैं, उक्त (विदेशी) प्रतिष्ठानों के वरिष्ठ अधिकारियों को खुश रखने का प्रयत्न करते हैं, ताकि उनसे वित्तीय सहायता प्राप्त कर सकें।

विचारणीय बात यह है कि इन प्रतिष्ठानों में वित्तीय सहायता प्राप्त करने वाली प्राइवेट संस्थाओं के आर्थिक शोध-कार्य का झुकाव सामान्य रूप से प्राइवेट उद्योग-प्रणाली की ओर ही रहता है और बहुधा हमारी मूलभूत नीतियों के प्रतिकूल होता है। अतः मैं यह तीव्र रूप से महसूस करता हूं कि फोर्ड तथा अन्य प्रतिष्ठानों द्वारा भारत स्थित प्राइवेट संस्थाओं को अनुदान देने की वर्तमान प्रणाली को ध्यानपूर्वक संशोधित किया जाना चाहिए, ताकि कम-से-कम हमारा बौद्धिक तथा शैक्षणिक जीवन अक्षुण्ण बना रहे।[1]

पी० एल० ४८० की धनराशि के भारत में विनियोग के संबंध में भी आवश्यक सूचना एकत्र करने का प्रयत्न कर रहा हूं।

आपका
श्रीमन्

१. इस मामले में भारत सरकार ने आवश्यक कार्यवाही प्रारम्भ की।

५

नई दिल्ली
१९ अगस्त, १९६३

प्रिय पंडितजी,

मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा हाल ही में अंगीकृत कामराज योजना के बारे में अखबार में पढ़ता रहा हूं। तत्वतः योजना अच्छी है और यदि कुछ उच्चस्थ कांग्रेसी नेता पदमुक्त

होकर ठोस संगठनात्मक जिम्मेदारियां संभाल लें तो वह देश में एक अधिक स्वस्थ राजनैतिक वातावरण निर्माण करने में सहायक होगा। इस विषय में आगामी कुछ दिनों में आप क्या निर्णय घोषित करेंगे, उसका मुझे तनिक भी आभास नहीं है। फिर भी मैं अपने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के छह वर्ष और योजना आयोग के पांच साल के अनुभव के प्रकाश में आपके विचारार्थ कुछ मुद्दे पेश करने का साहस कर रहा हूं :

१. मौजूदा हालात में आपका प्रधानमंत्री पद से मुक्त होने का कोई भी सुझाव न केवल राष्ट्रीय हितों के लिए अपितु अंतर्राष्ट्रीय जगत में शान्ति और निरस्त्रीकरण के अभिक्रमों के लिए भी अत्यन्त हानिकारक होगा। मुझे जरा भी संदेह नहीं है कि इस नाजुक समय में आपके मार्गदर्शन के बिना अंतर्राष्ट्रीय जगत् में भारत की प्रतिष्ठा को बहुत नुकसान पहुंचेगा और हमारी लड़ाई की तैयारी के लिए विदेशी सहायता के प्रवाह पर तुरन्त असर पड़ेगा।

२. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को मजबूत बनाने के लिए श्रीकामराज या श्रीलाल-बहादुर शास्त्री से कांग्रेस का अध्यक्ष पद स्वीकार करने के लिए अनुरोध करना चाहिए। दो कार्यकुशल महामंत्री नियुक्त किये जाने चाहिए, अनुमानतः उन राजमंत्रियों में से, जिन्होंने त्यागपत्र देने की तैयारी बताई है तथा जिनमें अच्छी संगठनात्मक क्षमता और संगठनात्मक मामलों में निष्पक्षता की भावना है।

३. लोग आज जो चाहते हैं, वह है एक साफ, कार्यकुशल प्रशासन। अतः उन मुख्य-मंत्रियों को जरा भी छेड़ना नहीं चाहिए, जिन्होंने प्रशासन को चुस्त बनाने की दिशा में अच्छा कार्य किया है। यदि उनके स्थान पर उनसे कम कार्यकुशल सहयोगियों को नियुक्त किया गया तो इसका प्रभाव आम जनता पर अच्छा नहीं पड़ेगा।

४. समाचार-पत्रों से यह जाहिर होता है कि कामराज योजना के अनुकरण में सभी मुख्य-मंत्रियों ने तथा राज्य सरकारों के मंत्रियों ने बड़ी संख्या में त्यागपत्र देने की तैयारी बताई है। परिणामतः सभी राज्य मंत्रिमण्डल अस्तव्यस्तता की स्थिति में हैं और प्रशासन का कार्य लगभग ठप्पप्राय-सा हो गया है। अतः मैं आशा करता हूं कि इस मामले में अन्तिम निर्णय की घोषणा जल्द ही कर दी जायेगी। इस अवसर का उपयोग कई राज्यों में मंत्रिमंडलों के आकार को घटाने के लिये किया जा सकता है। इसका जन-मानस पर अच्छा असर पड़ेगा।

५. राज्य प्रशासन और केन्द्रीय संगठन को मजबूत बनाने की दृष्टि से उनके आंतरिक मामलों में जब बहुत जरूरी हो, तभी हस्तक्षेप किया जाय, विशेषकर भ्रष्टाचार के मामलों में। जब भी हस्तक्षेप किया जाय, फुरती से और निर्णायक रूप में किया जाना चाहिए। किन्तु आम तौर पर राज्य नेताओं को पूर्व-निर्धारित लोकतांत्रिक प्रणाली के अनुसार कार्य करने दिया जाना चाहिए। उदाहरणार्थ, उत्तरप्रदेश के मुख्यमंत्री को अपने सहयोगियों से शीघ्रातिशीघ्र मामले निपटाकर अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के प्रेक्षक की देखरेख में कांग्रेस विधायक दल से विश्वास-प्रस्ताव पारित कराने का मौका क्यों नहीं दिया जाता, यह समझना कठिन हो रहा है। यदि उन्हें अनुकूल मत प्राप्त हो जाता है तो उन्हें अगले आम चुनावों तक अबाधित रूप से कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए, अन्यथा उसी दिन गोपनीय मतदान द्वारा नये नेता का चुनाव किया जाना चाहिए। इन मामलों में अनिश्चितता और विलम्ब प्रशासन तथा कांग्रेस की प्रतिष्ठा के लिए अत्यधिक हानिकारक है।

६. राज्यों में कांग्रेस सरकारों की वढ़ती हुई अलोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह है कि भ्रष्ट उद्योगपतियों और व्यापारियों को संरक्षण तथा प्रश्रय मुख्यत: इस आधार पर दिया जाता है कि वह चुनावों के समय पार्टी को चन्दा देते हैं। व्यापारी वर्ग स्वभावत: इस कोशिश में रहते हैं कि कांग्रेस को दी गयी धनराशि से कई गुना अधिक धन वे अनुचित तरीकों से कमा लें।

अत: यह आवश्यक है कि चुनावों का खर्चा कम करने के लिए कदम उठाये जायें, चाहे यह परम्परा के विरुद्ध ही क्यों न हों। केन्द्रीय मंत्रिमंडल इसके लिए एक उपसमिनि गठित करे और चुनाव आयुक्त से सलाह करके अन्तिम निर्णय जल्दी-से-जल्दी ले। मेरी तीव्र धारणा है कि भारत में एक समाजवादी लोकतंत्र की स्थापना वहुत हद तक इस वात पर निर्भर करेगी कि हम आम चुनावों को निर्धन किन्तु योग्य उम्मीदवारों की पहुंच में ला सकते हैं या नहीं।

७. मंत्रीपद की वर्तमान चकाचौंध को काफी कम करना अत्यावश्यक है। एक कांग्रेसी नेता जैसे ही मंत्री वनता है, अपने साधारण आवास को छोड़कर एक बड़े बंगले में रहने लगता है। उसका परिवार एक काफी ऊंचे रहन-सहन के स्तर का आदी हो जाता है, जिसके फलस्वरूप वह मंत्री अपनी कुर्सी से चिपके रहने के लिए अनेक प्रकार के अवांछनीय कार्य करता है—जैसे कि कांग्रेस पार्टी में संकुचित घटकों का निर्माण करना इत्यादि।

मंत्रियों का रहन-सहन अत्यधिक सादा और आडम्बरहीन बनाने की दिशा में ठोस कदम उठाये जाने चाहिए। इस मामले में केन्द्र रास्ता दिखला सकता है। उदाहरणार्थ सभी मंत्री, योजना आयोग के सदस्य और वरिष्ठ अधिकारी—छोटे मकानों या फ्लैटों में चले जायें और बड़े बंगलों को कार्यालयों के रूप में परिणत कर दिया जाय। बड़े-बड़े बंगलों के अहातों में तृतीय और चतुर्थ वर्ग के कर्मचारियों के लिए—जो आजकल कार्यालयों से कई मील दूर रहते हैं और जिन्हें प्रतिदिन आने-जाने पर काफी समय और धन खर्च करना पड़ता है—बड़ी संख्या में फ्लैट्स बनाये जा सकते हैं।

मेरी हार्दिक धारणा है कि देश के वर्तमान संकट को सफलतापूर्वक झेलने के लिए प्रशासन और (कांग्रेस) संगठन दोनों के संबंध में कई बुनियादी कदम उठाने पड़ेंगे। केवल केन्द्र और राज्यों के कुछ मंत्रियों के कांग्रेस संगठन के भार को संभाल लेने मात्र से, वांछित प्रयोजन शायद पूरी तरह से सिद्ध न हो सके।

मैं चाहता था कि इन सुझावों को—उनका जो भी मूल्य हो—आपसे मिलकर व्यक्तिगत रूप से आपके समक्ष रखूं, किन्तु ऐसी स्थिति में जबकि संसद का अधिवेशन चालू है और विरोधी दलों द्वारा अविश्वास प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया है, मैं आपका मूल्यवान समय नहीं लेना चाहता। जहांतक मेरा प्रश्न है, मुझे यह दोहराने की जरूरत नहीं कि मेरी सेवाओं का आप जैसे चाहें इस्तेमाल कर सकते हैं और देश के वृहत्तर राष्ट्रीय हितों में किसी भी प्रकार के कार्य में उनका उपयोग कर सकते हैं।

सादर,

आपका

श्रीमन्

६

नई दिल्ली
१४ अप्रैल, १९६४

प्रिय पंडितजी,

कुछ दिन पहले मैं वर्धा में विनोबाजी से मिला था, तब उन्होंने मुझसे कहा कि मैं चीन, पाकिस्तान और कश्मीर से संबंधित समस्याओं के बारे में उनके विचार आप तक पहुंचा दूं। पिछले कुछ दिनों से मैं आपसे मिलने की कोशिश कर रहा हूं, किन्तु चूंकि आप अत्यधिक व्यस्त हैं, इसलिए यह पत्र लिख रहा हूं ताकि और विलम्ब न हो।

विनोबाजी को कोलम्बो प्रस्तावों के सम्बन्ध में जो सामग्री भेजी गई थी, उसका उन्होंने पूरा अध्ययन कर लिया है और उनका अब निश्चित मत है कि हमें सीमा के प्रश्न पर चीन से सीधा वार्तालाप करने को सहमत हो जाना चाहिए, बशर्ते कि चीन सरकार लद्दाख के विसैन्यीकृत क्षेत्र से अपनी सातों चौकियां हटाने को तैयार हो। उनका विचार है कि विसैन्यीकृत क्षेत्र से चीन और भारत दोनों ही की सिविल चौकियों का हटाया जाना कोलम्बो प्रस्तावों से भी अच्छा होगा, जिनके अन्तर्गत उस क्षेत्र में दोनों देशों की चौकियां रहेंगी।

विनोबाजी का विचार है कि यदि हम चीन से अपने विवाद का अपनी राष्ट्रीय प्रतिष्ठा और सम्मान के अनुकूल शीघ्र समाधान कर लेते हैं तो उससे हमें पाकिस्तान तथा कश्मीर से संबंधित समस्याओं को संतोषजनक रूप से हल करने में सहायता मिलेगी। चीन से अपने सीमा-विवाद को हल करने में विलम्ब हमारे हित में नहीं होगा, क्योंकि उस दशा में चीन लद्दाख के जिन क्षेत्रों पर काबिज है उन पर अपना कब्जा बनाये रखेगा, जिससे परिस्थिति के स्थायी बन जाने की संभावना उत्पन्न हो जायगी।

जहांतक पूर्व पाकिस्तान के अल्पसंख्यकों की समस्या का प्रश्न है, विनोबाजी ने दोनों देशों के गृहमंत्रियों की भेंट का स्वागत किया है। उन्होंने आशा व्यक्त की कि भारत पूर्व पाकिस्तान से अल्पसंख्यकों के स्थानांतरण को प्रोत्साहित करने की दिशा में कोई कदम नहीं उठायेगा, चूंकि इससे दोनों देशों के लिए विकट समस्याएं उत्पन्न हो जायंगी। कश्मीर के संबंध में विनोबाजी ने शेख अब्दुल्ला को सलाह दी थी कि वे वर्तमान स्थिति के सभी पहलुओं पर गौर किये बिना जल्दबाजी में कोई वक्तव्य न दें। दुर्भाग्यवश इस सलाह को नहीं माना गया। विनोबाजी की स्पष्ट धारणा है कि कश्मीर भारतीय संघ का अविभाज्य अंग बना रहना चाहिए और जनमत संग्रह या आत्मनिर्णय की बात केवल कठिनाइयां ही उत्पन्न करेगी—राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर। भारतीय संघ के अंतर्गत जम्मू और कश्मीर प्रदेश को यथोचित स्वायत्तता प्रदान करने के प्रश्न पर बेशक विचार किया जा सकता है। विनोबाजी सांप्रदायिकता के आधार पर कश्मीर के विभाजन के पूर्णतः विरुद्ध हैं।

यदि आप समझें कि इनमें से किसी मामले के संबंध में व्यक्तिगत सलाह-मशविरे के लिए विनोबाजी का दिल्ली आना जरूरी है तो विनोबाजी शायद पदयात्रा का आग्रह न रखें। यदि आप उन्हें इस विषय में लिखना ठीक समझें तो शायद वे ट्रेन से आना स्वीकार कर लें।

मैं २० अप्रैल को जापान के लिए रवाना हो रहा हूं, वहां की कृषि के विकास के कुछ

पहलुओं का अध्ययन करने के लिए। ३० की रात को नई दिल्ली वापस लौट आऊंगा। यदि जरूरत हो तो २० अप्रैल के पूर्व आपकी सुविधानुसार किसी भी समय मिलने आ जाऊंगा।[1]

आपका
श्रीमन्

१. पं० नेहरू ने इच्छा प्रकट की थी कि विभिन्न मामलों पर विचार-विमर्श करने के लिए आचार्य विनोबा दिल्ली आवें। किन्तु दुर्भाग्यवश वह नहीं हो पाया, क्योंकि इसी बीच पंडितजी का २७ मई को देहान्त हो गया।

श्री जयप्रकाशनारायण के नाम

९ जनवरी, १९७०

प्रिय भाई जयप्रकाशजी,

आपके सचिव श्री सच्चिदानंद का २ जनवरी का पत्र प्राप्त हुआ। यह जानकर खुशी हुई कि आप बिहार के विभिन्न राजनैतिक दलों के नेताओं से बातचीत कर रहे हैं, ताकि वहां एक सर्वदलीय सरकार बनाई जा सके। समाचारपत्रों से जानकारी मिली है कि कांग्रेस के ही दोनों दलों को अभी भी आशा है कि वे बिहार में स्थायी सरकार बना सकेंगे। जहां तक मैं समझ सकता हूं, इस प्रकार की सरकार बनाना शक्य न होगा। अन्त में दो ही रास्ते रह जायेंगे—या तो राज्य-पाल का शासन चालू रहे या सर्वदलीय सरकार बने। मैं आशा करता हूं कि धीरज के साथ आपका प्रयत्न जारी रहेगा, ताकि समय पर सफलता मिल सके।

इस सम्बन्ध में जो प्रगति हो उसकी जानकारी आप समय-समय पर देते रहने की कृपा करें।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

जनाब खान अब्दुल गफ्फार खां के नाम

राजभवन
अहमदाबाद
५-८-६९

बखिदमत शरीफ आलीजनाब खान बादशाह खान साहब,

बाद आदाब व सलाम के अर्ज है कि आप सितम्बर के आखिर में हिन्दुस्तान तशरीफ ला

रहे हैं, यह मालूम करके हमें वहुत ही खुशी हो रही है। हमारी दिली ख्वाहिश है कि दिल्ली में कुछ दिन गुजारने के वाद सीधे सेवाग्राम आश्रम, वर्धा तशरीफ लायें, ताकि आपके पुराने साथी वहां आपसे जरा फुरसत से मिल सकें।

कुछ दिन पहले यहां अहमदावाद में सेवाग्राम ट्रस्ट की बैठक हुई थी। आजकल उसका मैं ही सदर हूं। इन सभी भाई और वहनों ने यह तय किया है कि सेवाग्राम आश्रम की तरफ से आपको इसरार के साथ दावत दी जाय। लिहाजा इन सवकी तरफ से मैं यह ख़त आपकी ख़िदमत में लिख रहा हूं और आपसे दरख्वास्त करता हूं कि आप अक्तूवर के पहले हफ्ते में कुछ दिन के लिए जरूर वर्धा तशरीफ़ लाने की तकलीफ गवारा फरमायें। इतने सालों के वाद आपसे नियाज़ हासिल करके हम सबको वहुत खुशी होगी।

फिलहाल मैं गुजरात के गवर्नर की हैसियत से देश को अपनी खिदमत दे रहा हूं। आपसे यह भी इल्तजा है कि अपने हिन्दुस्तान के दौरे में जव आप गुजरात तशरीफ लायें, तो हमारे साथ राजभवन में ठहरने की मेहरवानी फरमायें। आजकल यहां माताजी जानकीदेवीजी बजाज भी आई हुई हैं। वह और मदालसा आपको दिली आदाव भेज रही हैं। उम्मीद करता हूं कि आपका खत जरूर मिलेगा। मैं इसका इन्तज़ार करता रहूंगा।

आपका नियाज़मन्द
श्रीमन्नारायण

अब्दुल गफ्फार खां का उत्तर

काबुल
११-८-६९

प्यारे श्रीमन्नारायणजी,

तस्लीमात !

आपका लिखा हुआ खत मुझे ११-८-६९ को मिला। यादआवरी का मशकूर हूं। आपको मालूम होगा कि मैं सिर्फ गांधीजी की सेंटिनरी के लिए हिन्दुस्तान जा रहा हूं।

कोई दूसरा प्रोग्राम नहीं। वहां जाकर लोगों से सलाह और मशविरे के वाद हालात का जायजा लूंगा और जनता की मुनासिब राय के मुताविक अमल करूंगा। लेकिन वर्धा और सेवाग्राम के लिए किसी दावत की जरूरत नहीं। वहां तो ज़रूर जाऊंगा और उन भाई-वहनों से मुलाकात करूंगा।

मेरी तरफ से जानकीदेवीजी, मदालसा और घर के छोटे-बड़ों को वहुत प्यार और मोहव्वत।

फ़क्त आपका
अब्दुल गफ्फार

२

राजभवन
अहमदाबाद
५ मई, १९७१

मुरव्वी बादशाह खान साहब,

आपकी मेहरबानी से हम सब यहां अच्छे हैं। उम्मीद है कि आपकी तबीयत भी बिलकुल ठीक होगी। यहां से तशरीफ ले जाने के बाद आपसे कोई ख़तोखितबी नहीं हो सकी। माफ कीजियेगा।

पूर्वी पाकिस्तान में जो कुछ हो रहा है, उससे हम सभी बहुत दुःखी हैं। लेकिन ठीक समझ में नहीं आ रहा है कि हम इन दुःखी लोगों की किस प्रकार मदद कर सकते हैं। अब तो करीब एक लाख लोग रोज पूर्व-पाकिस्तान से हिंदुस्तान अपनी जान बचाकर आ रहे हैं। भारत सरकार उनकी खिदमत करने की पूरी कोशिश कर रही है। लेकिन और देश तो इस मामले में चुप ही बैठे हैं।

मदालसा और मेरे आदाबअर्ज।

आपका नियाजमन्द
श्रीमन्नारायण

अब्दुल गफ्फार खां का उत्तर

काबुल-अफगानिस्तान
२८-६-७१

प्यारे श्रीमन्‌जी खुश और सलामत रहो,

आपका प्रेम और मोहब्बत से भरा हुआ खत मिला। बहुत खुशी हुई। बहुत-बहुत शुक्रिया। यादआवरी का मशकूर हूं। मुझे यहां अक्सर खत देर से मिल पाते हैं। मैं अक्सर दौरे पर होता हूं। और लिखने में भी अक्सर देरी हो जाती है। शुक्र है कि आप लोग खैरियत से हैं। हम लोगों पर तो हर रोज मार्शल ला है।

मेरा बयान तो आप लोगों ने अखबारात में पढ़ लिया होगा। बंगला देश की हालत काबिल रहम है। इतने मजालिम शायद दुनिया में किसी पर न की गई हों और अफसोस की बात यह है कि दुनिया की कौमें तमाशा देख रही हैं और किसी के दिल में रहम उनके लिए नहीं। यह दुनिया पापी और खुदगर्जी की दुनिया है।

मुझे तो जगजीवनराम से इत्तफाक है कि पाकिस्तान शरारती बच्चा है, जो हमेशा शरारत पर तुला रहता है। जबतक उसको थप्पड़ न पड़े तब तक वह मानता ही नहीं।

मदालसा और घर के छोटों-बड़ों को बहुत-बहुत दुआ, प्यार और सलाम। फकत।

आपका
अब्दुल गफ्फार

श्री लालबहादुर शास्त्री के नाम

९ मोतीलाल नेहरू मार्ग
नई दिल्ली
८ सितम्बर, १९६४

आदरणीय शास्त्रीजी,

परसों आपने जिस आत्मीयता से मेरे भविष्य के कार्य के बारे में चर्चा की और सुझाव दिये, उसके लिए मैं बहुत आभारी हूं। आपकी प्रेरणा से ही मैं राजनैतिक जीवन में कुछ जिम्मेवारियां उठा सका हूं, और आगे भी मुझे आपका मार्गदर्शन मिलता रहेगा ऐसी मेरी श्रद्धा है।

आज अखबार में देखा कि नेपाल राजदूत की हैसियत से श्री अजीतप्रसाद जैन का नाम सोचा जा रहा है। यह नाम मुझे कई दृष्टि से पसन्द आया। जहां तक मेरा प्रश्न है, मैंने आपसे बातचीत होने के बाद इस विषय में बहुत गंभीरता से सोचा। मुझे तीव्रता से यह महसूस हुआ कि चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा (ड्राफ्ट आउटलाइन) तैयार होने के पहले अब बीच में ही मेरा योजना कमीशन से हट जाना ठीक नहीं रहेगा। पिछले वर्ष से न्यूनतम आवश्यकताओं (मिनिमम नीड आफ लिविंग)की पूर्ति पर मैं बहुत जोर देता रहा हूं। अगले दस वर्षों में हमें यह संकल्प अपनी योजनाओं द्वारा पूरा करना ही है।

पू० विनोबाजी भी इस प्लेन की पूर्ति के लिए बहुत चिन्तित हैं और उन्होंने मुझे कई निश्चित सुझाव भी दिये हैं। यह बड़े संतोष की बात है कि आप भी इसी उद्देश्य पर पूरा बल दे रहे हैं। यह हमारे डेमोक्रेटिक सोशलिज्म के लिए बिलकुल 'क्रयुशियल' (जनतंत्री समाजवाद) है।

एक स्थान पर पांच वर्ष से अधिक किसी एक ही व्यक्ति का रहना मैं स्वयं पसंद नहीं करता हूं। पू० पंडितजी पिछले वर्ष इजाजत दे देते तो दूसरी बात थी ; किन्तु अब यदि आपकी सम्मति हो तो 'ड्राफ्ट आउटलाइन' तैयार होने तक मैं कमीशन से सम्बन्ध चालू रखना ठीक समझूंगा। यह काम अगले जून-जुलाई तक पूरा हो जायेगा, ऐसी आशा है। उसके बाद आपके मार्गदर्शन में कोई भी काम उठाने के लिए तैयार रहूंगा। आपकी जैसी आज्ञा होगी वैसा ही करूंगा।

यदि जरूरत हो तो मैं आपकी सुविधानुसार आपसे कभी भी मिलने आ जाऊंगा।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

श्री मोरारजी देसाई के नाम

भारतीय राजदूत
नेपाल
२४ मार्च, १९६७

आदरणीय काका,

सादर प्रणाम। रिजर्व बैंक के गवर्नर श्री भट्टाचार्य यहां तीन-चार दिन के लिए नेपाल राष्ट्र बैंक के गवर्नर के निमंत्रण पर आये थे। आज वापिस जा रहे हैं। उन्हीं के साथ यह पत्र भेज रहा हूं। उनका यहां आना बहुत उपयोगी रहा। इससे भारत-नेपाल के वित्तीय संबंध अधिक गहरे बन सकेंगे।

आपके उप-प्रधानमंत्री पद को स्वीकार करने के अवसर पर हमने एक तार दिया था। मिला होगा। देश की स्थिरता और प्रगति के खातिर आपने जो त्याग-भावना का रुख अपनाया, उससे यहां नेपाल में भी बहुत अच्छा प्रभाव हुआ है।

पिछले दो वर्षों में मदालसा और मैंने नेपाल-भारत की मित्रता तथा सद्भावना को सुदृढ़ करने का भरसक प्रयत्न किया है। अब दोनों देशों के बीच कोई कठिन समस्या नहीं रही है। मुख्य सभी काम पूरे हो सके हैं। आप बुजुर्गों के आशीर्वाद से ही यह सम्भव हो सका है।

अब तो हमें स्वदेश वापिस बुला लेना चाहिए न ? वहां तो बहुत से काम पूरे करने हैं। देश की नाजुक हालत के बारे में पढ़कर बहुत चिन्ता होती है। हमारा वहां आना कब ठीक रहेगा, यह आप बुजुर्ग ही सोच सकते हैं। हमारे रहते आपका एक बार यहां पधारना हो सके तो बहुत संतोष होगा।

आपका स्वास्थ्य अच्छा होगा। हमारे योग्य सेवा सूचित करियेगा। मदालसा के सादर प्रणाम।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

मोरारजी देसाई का उत्तर

उप प्रधानमंत्री, भारत
नई दिल्ली
३० मार्च, १९६७

प्रिय श्रीमन्‌जी,

आपका २४ मार्च का पत्र और साथ में भेजी हुई किताबें श्रीभट्टाचार्य ने मुझे दिये हैं। इसके पहले मदालसा बहन का पत्र भी मुझे मिला था, जिसका उत्तर मैंने लिख रखा था, जो इसके साथ भेज रहा हूं। आप जैसे स्नेहियों को स्वहस्त से पत्र लिखने की इच्छा मन में रहती है, लेकिन इसके लिए समय निकालना आजकल तो अत्यन्त दुष्कर है।

आपकी शुभभावनाओं के लिए मैं आभारी हूं। मैं जानता हूं कि आपकी शुभ भावनाएं हमेशा मेरे साथ हैं।

श्री भट्टाचार्य की नेपाल की मुलाकात उपयोगी रही, जानकर खुशी हुई। आपके सन्निष्ट प्रयास से हमारा और नेपाल का सम्वन्ध घनिष्ठ रहेगा, ऐसा मुझे विश्वास है।

आप दोनों कुशल होंगे। मैं कुशल हूं।

आपका
मोरारजी देसाई

मीरा वहन के नाम

३० मई, १९७२

आदरणीय मीरा वहन,

१९ मई के आपके कृपा-पत्र के लिए वहुत-वहुत धन्यवाद। जी हां, कमलनयन के आकस्मिक निधन से हम सवको गहरा धक्का लगा है। वह ३० अप्रैल को यहां आये थे और सावरमती आश्रम तथा गुजरात विद्यापीठ के अनेक मित्रों से मिलने-जुलने में वड़ी प्रसन्नता से दिन गुजारा। रात को देर गये एक घंटा "जमनालाल वजाज—गांधीजी के पांचवें पुत्र" की मेरी पांडुलिपि को पढ़ते रहे, यह पुस्तक भारत सरकार के प्रकाशन विभाग द्वारा 'आधुनिक भारत' पुस्तक-माला के लिए तैयार की जा रही है। कमलनयनजी ने पाण्डुलिपि के कोई २० पृष्ठ पढ़े और अपनी ही लिखावट में अपने सुझाव दर्ज किये। ऐसा जान पड़ता है कि १ मई को वड़े तड़के उन्हें वहुत जोर से दिल का दौरा पड़ा और वह समाप्त हो गये। उनके पास ही घंटी थी, पर उन्होंने उसे वजाया नहीं और न नौकरों को जगाया, जो उनके कमरे के वाहर, दरवाजे के ठीक वाहर, सो रहे थे। भगवान की मर्जी। आप के सहानुभूति के शव्दों से हम सवको वड़ी सांत्वना और धीरज मिला है।

देवेन्द्र कुमार द्वारा भेजी 'इकॉलॉजिस्ट' की प्रति मुझे मिल गई है। मैं उसे आद्योपांत पढ़ूंगा और भविष्य में अपने लेखन में उसका उपयोग करूंगा।

आशा है, आपका स्वास्थ्य अव ठीक है। कृपया अपने शरीर का ध्यान रक्खें और मानवता की सेवा के लिए कम-से-कम सौ वर्ष जीवित रहें।

सादर,

सप्रेम आपका
श्रीमन्नारायण

श्री मोटूरि सत्यनारायण के नाम

३१ दिसम्बर, १९७७

प्रिय भाई सत्यनारायणजी,

उस दिन आपसे वहुत समय वाद जरा फुरसत से मिलकर बहुत खुशी हुई। मुझे आशा है कि आप 'भारती संगम' को शिक्षा मंत्रालय द्वारा आवश्यक आर्थिक सहायता दिलाने में प्रयत्नशील होंगे। यह कार्य भी महत्व का है और हमें आगे वढ़ाना होगा।

'विश्व हिन्दी विद्यापीठ' को ठीक ढंग से शुरू करने के लिए भी आपकी सहायता बहुत आवश्यक है। यह विद्यापीठ और केन्द्रीय हिन्दी संस्थान एक दूसरे के पूरक बनें, यह हमें प्रयत्न करना है। इन दोनों के कार्य में द्वैगणन (डुप्लीकेशन) का कोई प्रश्न नहीं उठना चाहिए।

नागरी लिपि के संबंध में आपने जो आगरा विश्वविद्यालय हिन्दी विद्यापीठ के १९५६ में दिये गए भाषण की प्रतिलिपि दी थी, उसे मैं ध्यान से पढ़ गया हूं। मेरे ख्याल से उसमें व्यक्त किये गए विचार आज भी वहुत उपयोगी हैं, किन्तु उसे प्रकाशित करने के पहले उसमें दो प्रकार के सुधार कर लेने होंगे—एक तो आंकड़ों को अद्यतन वनाना है और दूसरा यह पूरी तरह स्पष्ट कर देना है कि नागरी लिपि को प्रादेशिक लिपियों के स्थान पर नहीं, बल्कि उनके अतिरिक्त एक सामान्य लिपि के रूप में प्रचारित करना है। आप जानते ही हैं कि पूज्य विनोबाजी हमें वारवार समझाते हैं कि नागरी लिपि 'ही' नहीं, किन्तु नागरी लिपि 'भी' का प्रचार करना है। नागरी लिपि परिषद के कार्यों में इस दृष्टि का निरन्तर ध्यान रखा जा रहा है।

नागरी लिपि के दूसरे सम्मेलन की रिपोर्ट भी साथ में आपकी जानकारी के लिए भेज रहा हूं। इसके विधान की एक प्रति भी।

आपका
श्रीमन्नारायण

श्री जगमोहन कुकरेती के नाम

९ जुलाई, १९७०

प्रिय कुकरेतीजी,

आपका तारीख ३० जून का पत्र मिला। अनेक धन्यवाद! उस दिन अनासक्ति-आश्रम में जाकर और आप सब से मिलकर वड़ी प्रसन्नता हुई।

जैसा मैंने वहां संकेत किया था, मैं गीता-संबंधी साहित्य एकत्र कर रहा हूं, ताकि उसे अनासक्ति आश्रम को भेंट कर सकूं।

मैंने आश्रम के सम्बन्ध में कई कार्यकर्ताओं से जिक्र किया है, ताकि उसे एक अच्छा साधना-केन्द्र बनाने में सहायक बन सकें।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

श्री श्रीप्रकाश के नाम

६ नवम्बर, १९६७

आदरणीय बाबूजी,

सादर प्रणाम। आपका प्रेम और आशीर्वादभरा पत्र प्राप्त हुआ। मदालसाजी तथा मेरी ओर से हार्दिक धन्यवाद स्वीकार कीजियेगा। हमने भारत और नेपाल के बीच अधिक गहरी सद्भावना बनाने का पिछले तीन वर्षों में भरसक प्रयत्न किया है। भविष्य में हम लोग यथाशक्ति गुजरात की भी सेवा करने का प्रयत्न करेंगे।

मैं आपसे बिलकुल सहमत हूं कि हम लोग पूज्य गांधीजी का नाम तो लेते हैं, लेकिन उनके आदर्शों के अनुकूल कार्य नहीं करते। आज देश की अवस्था इस दृष्टि से शोचनीय है। हम ईश्वर से यही प्रार्थना कर सकते हैं कि वह हम सभी को सद्बुद्धि दे, ताकि हम पूज्य बापू के मार्ग पर चलने में सफल हों।

गुजरात तो बापू का ही प्रांत है। वहां बहुत-सी रचनात्मक संस्थायें हैं। उनके द्वारा हम जनता की सेवा करने का विनम्र प्रयत्न करते रहेंगे।

आशा है, आपका स्वास्थ्य पहले से अच्छा होगा। हमारे योग्य सेवा लिखियेगा।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

पिता श्री धर्मनारायण के नाम

जहाज "रावलपिण्डी" से
७ मार्च १९३५

प्रिय पिताजी,

आशा है, मेरे पिछले पत्र मिले होंगे। उनमें मैंने स्वेज तक का हाल लिखा था। ३ तारीख को हम लोग स्वेज नहर में से गुजरे। नहर करीब १३० गज चौड़ी है और ४० गज गहरी है। दोनों तरफ रेगिस्तान है। कहीं-कहीं मिस्र की तरफ कुछ पेड़ हैं। नहर के किनारे-किनारे रेल और मोटर की पक्की सड़क भी है। नहर इतनी कम चौड़ी है कि एक बार एक ही जहाज जा सकता है। चूंकि एक स्टीमर नहर में आगे पड़ा था, हमारे जहाज को करीब दो घंटे रुकना पड़ा। १० बजे रात को पोर्ट सईद पहुंचे। शहर बन्दरगाह के बिलकुल पास था और रात की रोशनी में बड़ा सुन्दर लगता था। जहाज से नाव के पुल द्वारा उतर कर किनारे गये। वहां एक बहुत बड़ी दुकान थी। कई हिंदुस्तानियों की भी दुकानें दिखलाई दीं। वे लोग ज्यादातर सिंधी थे। शहर खूब अच्छा बना हुआ है। बिलकुल पश्चिमी ढंग का है। मिस्र की बहुत सी चीजें मिलती हैं। तरह-तरह के कुरान, बटन, कपड़े, मिस्र के बने हुए देखे। उनका काम मुलतानी काम से बहुत कुछ मिलता है।

पोर्ट सईद से सुवह ६ वजे स्टीमर फिर चला। रास्ते में समुद्र काफी जोर में था। स्टीमर के हिलने से बहुतों की तवियत खराव हो गई। मैं भी दिन भर केबिन में ही पड़ा रहा। कुछ खाना नहीं खाया जाता था। लेकिन दूसरे दिन फिर ठीक हो गया।

कल (६ मार्च को) हम ३ वजे माल्टा पहुंचे। अन्दर शहर में गये। वालेटा जो राजधानी है, सचमुच वहुत सुन्दर है। पहाड़ी पर ऊंची-नीची सड़कें, सुन्दर पार्क, इमारतें और वन्दरगाह, वहुत ही अच्छे लगते हैं। शाम को पानी भी वरसा। ७ वजे जव हमारा जहाज चला तो माल्टा की रोशनी वड़ी सुहावनी मालूम पड़ती थी। माल्टा में भी कई सिंधी लोगों की दुकानें मिलीं। शहर की आवादी करीव ६ लाख है। यहां के निवासी अंग्रेजी ढंग से रहते हैं, लेकिन रंग कुछ काला है। और सव वातें पश्चिमी ही हैं। शहर वड़ा ही सुन्दर है।

८ तारीख को मार्सेलीज घूमा। करीब १० घंटे वहां रहे। कुछ इमारतें बड़ी अच्छी थीं। दूसरे दिन पेरिस पहुंचे। कुंजरूजी ने मेडम मोरिन के लिए चिट्ठी दी थी। वह खुद स्टेशन पर आईं और वड़ा आदर-सत्कार किया। उनका सारा घर हिंदुस्तानी चीजों से भरा था। खाना भी हिंदुस्तानी वनाकर खिलाया। सचमुच वह बहुत ही अच्छी महिला हैं। हिंदुस्तान से इनको वहुत प्रेम है। पेरिस की वहुत-सी चीजें देखीं। टामस कुक एण्ड संस के द्वारा भ्रमण किया। उनके गाइड ने सव वातें समझाईं।

कल शाम को लंदन पहुंचा। इंग्लिश नहर काफी तेजी पर थी। वहुत से लोगों की तवियत बिगड़ी। लेकिन मैं ठीक रहा। स्टेशन पर एक दोस्त आ गये थे। अभी मैं इंडियन स्टैंडर्ड होस्टल, २१ क्रॉमवेल शेड में ही ठहर गया हूं। आज सुवह श्रीमती रैन्सम से मिला था। उन्होंने वड़े प्रेम से स्वागत किया और दो-एक जगह ठहरने को वतलाईं। मैं उनको देखने गया था। लेकिन अभी कोई निश्चय नहीं कर सका हूं। आशा है, दो-चार दिन में सब इन्तजाम ठीक हो जावेगा। यहां आजकल वहुत सर्दी पड़ रही है। जब मैं पेरिस में था, तव वर्फ पड़ी थी। लेकिन मैं गर्म कपड़े खूब पहन कर निकलता हूं। कोई तकलीफ नहीं। लोगों का कहना है कि एक हफ्ते में मौसम ठीक हो जायेगा। वसन्त आने वाला है। आज हाइड पार्क घूमने गया था। काफी अच्छा है। वसन्त में और अच्छा लगेगा।

मैं आपको हर मंगलवार को हवाई डाक से पत्र लिखने की कोशिश करूंगा (क्योंकि इससे केवल ६ पेन्स प्रति सप्ताह का खर्च होगा।) किंतु यदि किसी वजह से मैं न लिख सकूं तो आप चिन्ता न करें। मुझे पूरा विश्वास है कि ईश्वर मेरा ख्याल रखेगा। और जो होनहार है, वह होकर ही रहेगा, चाहें हम लाख कोशिश करें। श्रीमती रैन्सम ने मुझसे कहा है कि मैं थियोसॉफिकल सोसायटी की गतिविधियों के सम्पर्क में रहूं। मैं आशा करता हूं कि यह मेरे लिए वहुत अच्छा होगा।

सप्रेम आपका
श्रीमन्

श्रीमती राधादेवी अग्रवाल के नाम

१

कैदी की चिट्ठी

कैदी का नंबर | बुलढाणा जेल

तारीख : १२-३-१६४३ | नाम : श्रीमन्नारायण

पूज्य अम्मा,

सादर सप्रेम प्रणाम।

तुम्हारा ३ तारीख का कार्ड मिला। मेरा ७ तारीख का पत्र सुरेन्द्र के नाम मिला होगा। सुरेन्द्र अब तक शायद इलाहाबाद गया होगा और उसे वहां रहने की अच्छी जगह मिल गई होगी। उसके लिये दो किताबें वर्धा से भेजी गई थीं। वे मिल गई होंगी। मदालसा कुछ दिन और पूना ही रह गई थी। शायद अब वर्धा पहुंच गई होगी। निश्चित वर्धा पहुंचने के समाचार अभी मुझे नहीं मिले हैं। पूज्य बापूजी का अद्‌भुत चमत्कार ही रहा। वे हैं तो सब कुछ है, नहीं तो देश भर में बड़ी गहरी निराशा छा जाती! आगे भी अच्छा ही होगा, और कुछ मामला तय हो जायगा, ऐसी आशा है। खैर, जो हो, ईश्वर ही के हाथ में सबकुछ है। वह हिन्दुस्तान का भला ही करेगा।

होली के समय कुछ भेजने के लिए पूज्य भाबीजी ने पूछा है। सो कुछ न भेजें। बाहर से कुछ भी मिठाई वगैरा मंगाना जेल के कानून के खिलाफ है। इसलिए अब इजाजत नहीं है। गाय के घी का नियम जेल में तो चालू रखा है, क्योंकि यहां का प्रबन्ध ठीक है। कोई दिक्कत नहीं है। बाहर आने पर सोचूंगा कि नियम आगे रखना कि नहीं। सोचा तो यह है कि मुसाफिरी में नियम नहीं रखूंगा। वर्धा में ही घर पर तो रखूंगा। खैर, आगे देखा जायगा। पद्मा की नन्हीं-मुन्नी का नाम मृदुला रखा सो अच्छा रहा। बीच के भैया ने छुट्टी क्यों ली? कोई खास बात हुई क्या? उन्हें मेरा सादर प्रणाम लिखवा देना। पूज्य चाचाजी को भी। पद्मा इन्दौर कब तक जायगी?

यहां अब काफी गर्मी पड़ने लगी है। लेकिन चूंकि यह जगह करीब दो हजार फुट ऊंचाई पर है, इसलिए और जगह से तो ठंडा ही है। पूज्य पिताजी और भाईसाहब और भाबीजी को प्रणाम। पद्मा को तथा सब बच्चों को प्यार। चि० गौतम अब स्कूल में पढ़ने लगा न? कौन से दर्जे में है? चि० अशोक भी अब खूब प्रसन्न और स्वस्थ होगा।

तुम्हारा प्रिय
श्रीमन्

२

पूज्य मां,

तुम्हारा पत्र मिला। नुमायश और महिला विभाग के बारे में सुनकर बड़ी खुशी हुई। मेडिलों की घर में भरमार हो गई। सबही को कुछ-न-कुछ मिला है। अब तो तुम काफी बड़ी कार्यकर्त्री हो गई हो।

दिल्ली वाली भावी कहां हैं ? मैनपुरी में ही होंगी। मुझे आशा है, वह पास हो जावेंगी। रामेश्वर और भाईसाहब क्या हरीनगर से आ गये ?

मैं सकुशल हूं। किसी बात की चिन्ता न करो। ईश्वर सब अच्छा करेगा।

तुम्हारा प्रिय
श्रीमन्

सुरेन्द्र नारायण के नाम

कैदी की चिट्ठी

बुलढाणा जेल

कैदी का नंबर
नाम : श्रीमन्नारायण

तारीख ३०-१२-१९४२

प्रिय सुरेन्द्र,

तुम्हारा तारीख २२ का कार्ड मिला। पूज्य पिताजी का भी लिखा। खुशी हुई। मेरे भी कार्ड बराबर मिल जाते होंगे। आई० सी० एस० वाला वह नोटीफिकेशन मैंने भी पढ़ा था, जिसमें १९४३ के बाद कम्पटीशन बन्द किया है और 'वेकेंसीज' लड़ाई में मदद देने वाले लोगों के लिए रिजर्व की गई हैं। 'आडिट' का भी ऐसा ही होगा। इसलिए अब तुम कम्पटीशन की चिन्ता छोड़कर एम० ए० के लिए ही पढ़ो। जितनी शक्ति हो—शारीरिक—उससे अधिक जोर डालने की भी कोशिश न करना। क्लास की अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। फर्स्ट क्लास आना होगा तो आ ही जायगा, क्योंकि तुम्हारी योग्यता उतनी है ही। न आना होगा तो अधिक मेहनत करने पर भी नहीं आयगा। फिर चिन्ता क्यों करना ? परिश्रम करते जाना और नतीजे की चिन्ता नहीं करना, इसी में हित है—यह मैं अपने अनुभव से कहता हूं। आगे क्या होगा, क्या कैरियर मिलेगा, यह अपने वश की बात नहीं है। मैं आई० सी० एस० होने जा रहा था और आ गया वर्धा। इसमें मुझे पूरा संतोष मिला। मन के अनुसार बड़ों की संगत और शुभ सेवा-कार्य मिला। पूज्य भाईसाहब को सरकारी नौकरी मिलेगी, ऐसी किसी को स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी। रामेश्वर प्रोफेसरी छोड़कर गये, तब उदास थे। आज वे उससे बीस गुने अच्छे रहे हैं। हरेक की तकदीर अपने-अपने साथ है। मेरा विश्वास है कि हरेक का 'मेन कैरियर' तो ईश्वर निश्चित रखता ही है। हम उसके हाथों में औज़ार हैं। जो काम हमें दिया जाय, उसको अच्छी तरह करना हमारा धर्म है। हां, हम अपना पुरुषार्थ कायम रखें, हाथ-पर-हाथ रखकर न बैठें। तुम तो भाग्य-शाली हो। ईश्वर ने तो अभी तक तुम्हें बहुत कष्ट भेंट में दिये। तुमने उन्हें जिस तरह झेला, वह बहुत प्रशंसनीय है। मुझे तो तुम्हारा धैर्य देखकर बहुत संतोष और आश्चर्य हुआ है। ईश्वर जिन्हें कष्ट देता है, उन्हें अधिक प्रेम करता है, क्योंकि उनके पुराने पापों का शीघ्रता से नाश हो जाता है। तुम्हारे हाथों से आगे अच्छा कार्य अवश्य ही होगा। कम्पटीशन का मौक़ा न मिलने का बिलकुल दुःख नहीं मानना चाहिए। तुम खूब प्रसन्नचित्त से अभ्यास करते जाओ। बिलकुल चिन्ता मन में न रखो। सब अच्छा ही होगा। कालिज तो बन्द ही है और प्रोफेसरों को दिसंबर

तक का वेतन दे दिया है। अब उन्हें मुक्त कर देना है। दूसरा कोई इलाज नहीं है। मुझे कोई अफसोस भी नहीं है। अच्छे दिन आने पर फिर संस्था खड़ी हो जायगी। काम और भी बढ़ेगा ऐसा मेरा विश्वास है। वर्धा में मेरे द्वारा दो-एक और भी कालिज खड़े हो सकेंगे, ऐसी आशा करता हूं।

पद्मा और दोनों प्यारी मुन्नियों को मेरा स्नेह-स्मरण। छोटी नई सुन्दर-सी मुन्नी का मैं सुन्दर नाम रखूंगा। उसका जन्म-पत्री का क्या नाम निकला है, सो अम्मा से पूछकर लिखना। पूज्य अम्मा और पिताजी, पूज्य भाईसाहब तथा भाबीजी को सादर सप्रेम प्रणाम। पूज्य पिताजी से कहना कि रुपयों की मुझे और मदालसा को बिलकुल जरूरत नहीं है। सब प्रबन्ध है। वे किसी प्रकार की चिन्ता न करें। हमारे खाने-पीने का भी सब प्रबन्ध ठीक है। तुम्हारा वजन अब कितना है? अब कुछ भी तकलीफ तुम्हें न होगी। नार्मल महसूस करते होगे। मैं मजे में हूं। अस्टानामी, अनाटामी, डिकटिकटिक्स का अभ्यास अभी चालू है। मेरी प्रथम श्रेणी सिर्फ १३ नम्बर से रह गई। २ महीने के अभ्यास से इतना बहुत ही हुआ।

तुम्हारा भाई
श्रीमन्

श्रीमती शकुंतला देवी अग्रवाल के नाम

पूज्य भाबीजी,

तुम्हारा पत्र मिला। नुमायश के बारे में सुनकर खुशी हुई। श्रीमती नेहरू की वजह से अबकी खूब अच्छा रहा होगा। तुम्हारे इनाम मिलने पर बधाई!

और तो कुछ लिखने की बात नहीं। मैं तो खूब अच्छी तरह हूं। कोई तकलीफ नहीं।

तुम्हारा प्रिय
श्रीमन्

१

श्री जमनालाल बजाज के नाम

मैनपुरी
२३-५-१९३९

पूज्य सेठजी,

सादर प्रणाम। आशा है मेरा पिछला पत्र मिला होगा।

विचार करने पर मैं समझता हूं कि वर्धा कालेज में चले जाने से आपकी कुछ अधिक सेवा न कर सकूंगा। इसलिए वहां प्रोफेसर बनने की कोई विशेष आकांक्षा नहीं है। यदि आप

चाहें तो 'मारवाड़ी शिक्षा मंडल' का कार्य ही मुझे सौंप दें। मैं अपनी ओर से कोई विशेष चीज़ नहीं चाहता। जिस काम से आपकी और देश की अधिक सेवा कर सकूं, वही मैं करने को तैयार हूं। आपकी आज्ञा होनी चाहिए।

आशा है, आप उचित विश्राम ले रहे हैं।

आपका
श्रीमन्

२

वर्धा
८-१२-१९३९

पूज्य काकाजी,

कल नागपुर गया था। रजिस्ट्रार से बात हुई। यूनिवर्सिटी ने कॉमर्स कालेज की योजना मंजूर कर ली है। जुलाई से या दो-एक महीने बाद यानी अगस्त या सितम्बर से हम क्लास शुरू कर सकेंगे, ऐसा रजिस्ट्रार ने कहा। अब अभ्यास-क्रम बनेगा। फिर हमको औपचारिक रूप से कालेज की मान्यता के लिए अर्जी भेजनी होगी।

अभी यूनिवर्सिटी वालों ने मान लिया, इतना बहुत है। आगे की फ़िक्र करना है। शिक्षक ढूंढ़ने होंगे। शायद बम्बई जाना होगा। बड़े दिन की छुट्टियों में कानपुर भी जाऊंगा।

आशा है, आपका स्वास्थ्य ठीक होगा। सुना है आप आजकल साइकिल चलाने में प्रवीण हो गए हैं।

पं० हृदयनाथ कुंजरू बंगले पर ठहरे हैं। मैं उनसे सुबह मिला था। वे अभी पूना से ही आये हैं, लेकिन उन्हें मालूम नहीं था कि आप भी पूना में हैं। आपके स्वास्थ्य के बारे में पूछते थे। कहते थे कि डायबिटीज़ के लिए तो नियमित व्यायाम ही सबसे अच्छी दवा है।

एंड्रयूज साहब भी यहां ठहरे हुए हैं।

सार्वजनिक पुस्तकालय की आवश्यकता काफी महसूस होती है। उसके लिए भी अब कुछ कोशिश फिर की जाय तो ठीक होगा।

आपका
श्रीमन्

३

जीवन कुटीर
वर्धा
१३-१-१९४०

पूज्य काकाजी,

आज मैं पूज्य बापूजी से मिला। 'ज्ञान-मंदिर' के बारे में योजना बतलाई। उन्होंने कहा, "मेरी पूरी राय है कि इस चीज की बहुत जरूरत है। यहां इतनी संस्थाएं हैं। एक अच्छा सुन्दर पुस्तकालय तो होना चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा कि यह चीज 'शिक्षा-मंडल' की ओर से ही शुरू की जाये।

बस तो अब आपको बापूजी की भी राय और अनुमति मिल गई। अब तो मुझे शीघ्र ही एक लाख रुपये मिलने की आशा है।

आपकी भी सब बातें बापूजी को कह दीं। जयपुर न जाने के बारे में शायद उनकी राय दामोदरजी ने आपको लिख भी दी है।

मदालसा के बारे में भी मैंने बापूजी से जिक्र किया था। उन्होंने अपनी कोई खास राय नहीं दी। अधिक समय भी नहीं था, लेकिन वह भी इस बात को महसूस करते हैं कि शायद तीन महीने के बाद अब फिर तीन महीने वहां रहने से मदालसा ऊब जायेगी। यह तो मदालसा और आप ही निश्चित कर लें। मेरे ख्याल में तो २ महीने बाद फिर गर्मियों में सावित्री और मदालसा का दूध का इलाज चले तो ठीक होगा।

मैं कुशल से हूं।

आपका
श्रीमन्

४

वर्धा
६-६-१९४१

पूज्य काकाजी,

आपके पत्र दामोदरजी के मार्फत पढ़ने को मिलते रहते हैं। मैंने आपको, आपके आराम में बाधा न पहुंचे, इस विचार से कुछ नहीं लिखा। आशा है, अब आपका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक होगा।

श्री पदमपतजी का पत्र देखा। उनकी चौथी किश्त बहुत देर में मिली थी। खैर, अगर वे आखिरी किश्त मार्च में ही दें तो कोई हर्ज नहीं है। अभी रुपये तो हमारे पास हैं। और वे १५,००० दे ही देंगे, ऐसा विश्वास रखता हूं। शंका का कारण तो है नहीं।

मैं २० या २१ तारीख को दिल्ली होता हुआ श्रीनगर (काश्मीर) जा रहा हूं। वहां 'आल इंडिया एजूकेशनल कांफ्रेंस' है। वहां मैं नागपुर यूनिवर्सिटी का प्रतिनिधि होकर जा रहा हूं। ३-४ अक्तूबर तक वापस आऊंगा। वापस आते समय एक दिन पिलानी भी जाने का विचार है। लाहौर में हेली कामर्स कालेज भी देखूंगा।

मेरा विचार है कि 'आल इंडिया एजूकेशनल कांफ्रेंस' का अगला अधिवेशन कालेज की ओर से वर्धा में बुलाऊं—दीपावली की छुट्टियों में। प्रबन्ध तो आसानी से हो ही जायेगा। कालेज की और वर्धा की संस्थाओं की भी अच्छी प्रसिद्धि हो जायेगी। आशा है, आपको यह विचार पसंद आयेगा।

आप २१ तारीख को आ रहे हैं। तब मैं हो सका तो २२ तारीख को जाऊंगा, ताकि आपसे मिलना हो जाये।

हम सब प्रसन्न हैं।

आपका
श्रीमन्

५

अगस्त ४, १९४६

प्रिय भाई राम,

हम लोग परसों ज्यूरिख आये। यहां डॉ० वर्नियर बर्नर की मशहूर नेचर-क्योर क्लिनिक है। आजकल सर स्टैफोर्ड क्रिप्स भी यहीं इलाज करा रहे हैं। कल मदालसा को भी जनरल कंसलटेशन के लिए यहां दिखा दिया। आज वह मालिश के लिए भी गयी है। मैं भी दिखा दूंगा डिक्टिग वगैरह के बारे में। परसों हम जर्मनी चले जावेंगे। पहले फ्रेंकफर्ट और फिर बर्लिन। वहां से प्राग, वेनिस होते हुए २५ तारीख तक रोम पहुंच जायेंगे। अपना प्रोग्राम और पते तुम्हें पहले भेज चुका हूं।

चि० भरत तुम्हारे यहां है या पूज्य कमलाबाई के पास ? उसकी पढ़ाई की मुझे और मदालसा को बहुत फिक्र हो रही है। क्या बम्बई में वह कुछ पढ़ता है ? सवाल यह है कि उसे इस साल मार्च में फोर्थ क्लास की परीक्षा दिलवाना है। वर्धा में वह सी० पी० प्राइमरी कोर्स पूरा कर रहा था। तीसरी क्लास का कोर्स करीब पूरा हो चुका होगा। वर्धा में जगदले मास्टर पढ़ाने आते थे। हम लोगों को हिन्दुस्तान आते अभी करीब दो महीने लग जायेंगे। मैं चाहता हूं कि चि० भरत की पढ़ाई बम्बई में चालू रहे। अगर वह पूज्य माताजी के साथ कुछ दिनों में वर्धा जाने वाला हो तब तो जगदले मास्टर उसे फिर पढ़ाना चालू कर ही दें और पूरी मेहनत से चौथी क्लास का कोर्स खत्म कराने की कोशिश करें। अगर चि० भरत बम्बई ही रहने वाला हो तो उसके लिए अच्छी हिन्दी जानने वाला कोई टीचर अलग से रखने की पूरी कोशिश करना। यह टीचर हिन्दी लिखाने की खूब प्रैक्टिस करा दे, अच्छे हैंडराइटिंग का ख्याल रखकर और अरिथमैटिक का प्राईमरी कोर्स पूरा कराना शुरू कर दे। चि० भरत के पास वर्धा की हिन्दी व गणित की किताबें होंगी। न हों तो वर्धा से दिलीप को लिखकर तुरन्त मंगा लेना ठीक होगा, ताकि वे ही किताबें आगे चालू रखी जा सकें। इस काम की ओर विशेष ध्यान देना और पूज्य माताजी को पत्न पढ़ा देना। अगर चि० भरत की पढ़ाई ठीक चालू न रही तो उसका एक वर्ष बरबाद हो जायेगा। इसलिए मुझे बहुत चिन्ता है। इसके पहले ही मुझे इस बारे में लिखना चाहिए था, लेकिन ऐसा न कर सका, इसका मुझे दुःख है। चि० भरत व चि० रजत का स्वास्थ्य ठीक होगा।

चि० शेखर तो अब बहुत नटखट हो गया होगा। सब बच्चों के साथ खूब खेलता होगा। भगवती भवन में बच्चों का बड़ा शोरगुल रहता है न ? बहन विमला को हमारे सप्रेम वन्दे। तुम दोनों का स्वास्थ्य ठीक होगा।

पूज्य माताजी प्रसन्न होंगी। उनको कहना कि मदालसा मजे में है। उन्हें हमारे सादर प्रणाम। यहां मौसम बहुत अच्छा है। लोग भी बड़े भले और व्यवस्थित हैं।

इस महीने के आखिर तक का पताः—

सी/ओ—द एम्बेसी आफ इंडिया,

रोम।

तुम्हारा

श्रीमन्

जानकीदेवी बजाज के नाम पत्र

१

अगस्त ४, १९४९

पूज्य माताजी,

सादर प्रणाम। हमारे समाचार आपको मिलते रहे होंगे। हिन्दुस्तान से चले करीब ३।। महीने हो गये। हमारा प्रोग्राम तो बहुत व्यस्त रहा है। लेकिन आनन्द भी खूब मिला। बहुत से अनुभव मिले हैं। मदालसा की तबियत ठीक रही है। यहां भी नेचर क्लिनिक में दिखा दिया है। बहुत मशहूर क्लिनिक है। डाक्टर ने कहा कि शरीर में कोई विशेष खराबी नहीं है। कमजोरी है जो ठीक हो जायेगी। उनकी दवा लेना कल से शुरू कर देंगे। किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मदालसा प्रसन्न है और सफर में खूब हिम्मत रखती है।

हम कल जर्मनी जा रहे हैं। फिर कई देशों में जाकर १५-२० सितम्बर तक हिन्दुस्तान पहुंच जायेंगे।

चि० भरत व आपका नटखट बेटा मजे में होंगे। आपकी तबियत कैसी है? आपका भी वजन बढ़ा है न? अगर बच्चों का वजन बढ़ा और आपका घटा तो आपकी पूरी हार मानी जायेगी।

आपका छोटा
(श्रीमन्)

२

इस्ताम्बूल-टर्की
१७, सितम्बर

पूज्य माताजी,

सादर प्रणाम। अब हमारा लम्बा सफर करीब-करीब खत्म हो रहा है। यहां से रात को चलकर १९ तारीख की शाम को करांची और २२ तारीख की शाम को दिल्ली। २-३ दिन रुककर पूज्य माताजी, पिताजी से मिलने कानपुर जायेंगे। फिर ३० तारीख के करीब वर्धा पहुंच जायेंगे। हमने तो इन साढ़े पांच महीनों में खूब मौज उड़ाई, सैर-सपाटा किया, लेकिन आपके पीछे तो नटखट रजत भैया और चि० भरत राजा के देखभाल की पूर्ण तपस्या ही रही न? बच्चों ने आपको खूब हैरान किया न? ठीक ही है। आखिर आप 'नानी' जो हैं! हमने तो छुटपन से यही किताबों में पढ़ा था कि नानियों का काम बच्चों को कहानियां सुनाना होता है। आपने कितनी कहानियां सुनाई हैं, यह आकर पूछूंगा।

आपकी बेटी भी अब काफी होशियार हो गई है। वज़न तो अधिक नहीं बढ़ा है, लेकिन तबियत ठीक है। मन प्रसन्न है। कुछ तो आप और हम उसको ठीक तरह से समझ नहीं पाते थे

और कुछ वह खुद भी स्वभाव से बदली है। इसलिए अब आप उसकी चिन्ता न करें। वह अब समझदार, चुस्त और प्रसन्नचित्त बन गई है। उससे मुझे पूरी मदद रही। मुझे भी इतनी आशा नहीं थी। इसलिए आपको खुशी और संतोष होगा न? मुझे क्या इनाम देंगी?

अगर पूज्य पिताजी और माताजी साथ वर्धा आ सकें, तो अच्छा ही है, नहीं तो इस बार कुछ दिन आपके पास बंगले पर ही रहने का तय किया है। बच्चों ने तो आपको इतने दिनों तंग किया ही है। अब हम भी कुछ दिन आपको तंग जरूर करेंगे।

मैं अब ठीक हूं। ३-४ दिन सर्दी-जुकाम जोर का हो गया था। आपकी तबियत भी अच्छी होगी। अगर बच्चों का वज़न बढ़ा हो और आपका न बढ़ा हो तब तो आप फेल ही मानी जायेंगी।

शेष मिलने पर।

आपका बेटा
श्रीमन्

श्री कमलनयन बजाज के नाम

१

६ नवम्बर, १९६७

प्रिय कमलनयन,

तुम्हारा विस्तृत पत्र मुझे समय पर मिल गया था। उसी बीच में तुम विदेश चले गये होगे। इसलिए पत्र का उत्तर नहीं दिया। तुम कुछ दिन बाद विदेश यात्रा से बम्बई पहुंच जाओगे। मुझे ठीक पता नहीं कि कब तक वापस आने का प्रोग्राम है?

पूज्य ढेबरभाई एक सप्ताह से हमारे पास ही हैं। वे खादी ग्रामोद्योग प्रदर्शनी के सिल-सिले में आये थे। आज वापस बम्बई जा रहे हैं। उनकी प्रेरणा और मदालसा के प्रयत्न से यहां खादी और ग्रामोद्योग-प्रदर्शनी का उद्घाटन कुछ समय पहले पूज्य मोरारजीभाई ने किया। इसका यहां बहुत स्वागत हुआ है और कई दृष्टि से यह प्रदर्शनी बहुत उपयोगी साबित होगी।

पूज्य ढेबरभाई से वर्धा में खादी और ग्रामोद्योग की संस्था 'शिक्षा मंडल' द्वारा चलती रहने के बारे में काफी बातचीत हुई। उन्हीं के सुझाव के अनुसार मैंने उन्हें एक पत्र लिखा है, जिसकी प्रतिलिपि साथ में नत्थी है। तुम बम्बई में उनसे इस संबंध में अवश्य बातचीत कर लेना, ताकि कोई व्यापक मार्ग निकल सके।

भारत सरकार की ओर से मेरी गुजरात के राज्यपाल की हैसियत से नियुक्ति के बारे में घोषणा हो चुकी है। जब पूज्य मोरारजीभाई यहां राजकीय यात्रा पर आये थे तो उन्होंने मुझे श्री चव्हाणसाहब का संदेश दिया था। उन्होंने कहा कि श्रीमती इंदिराजी और चव्हाणसाहब ने गुजरात राज्य के मुख्यमंत्री से भी अनुमति प्राप्त कर ली है। जब मैंने पूज्य मोरारजीभाई से

उनकी राय पूछी तो उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया—"जब आप लोगों का नाम सामने आया तो मैंने कहा कि इससे अच्छा नाम और क्या हो सकता है ?" इस उत्तर के बाद तो मेरे लिए इस नये काम को स्वीकार करने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं था। चूंकि नेपाल के महाराजाधिराज, विदेशमंत्री और विदेश सचिव सब इन दिनों अमरीका की यात्रा पर गये हुए हैं, इसलिए उनके दस दिसम्बर तक आने तक हम यहीं हैं। दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में दिल्ली जायेंगे और वहां से दिसम्बर के अंत तक अहमदाबाद जाने का कार्यक्रम है।

तुम्हारी विदेश-यात्रा अच्छी रही होगी। यात्रा से वापस आने पर तुम्हारे दिल्ली और बम्बई के, क्या कार्यक्रम रहेंगे, इसकी सूचना समय पर दे देना।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

२

राजभवन
अहमदाबाद
१८ अप्रैल, १९६८

प्रिय भाई कमलनयन,

कल भाई राम से फोन पर बातें हुई। मैं कच्छ का भ्रमण कर कल ही वापिस लौटा हूं। यह जानकर खुशी हुई कि तुम्हारे स्वास्थ्य की प्रगति बड़ी संतोषजनक है। तुम अब कमरे में थोड़ा घूमते भी हो। साथ-साथ तुम्हारा चिंतन भी चलता रहता है। यह बहुत अच्छा है। तुम्हारे लिखे 'सूत्रों' की एक सचित्र पुस्तक बड़ी उपयोगी और रोचक रहेगी। भाई श्रीगोपालजी से उसके प्रकाशन में काफी सहायता मिल सकती है।

मदालसा उरलीकांचन आश्रम में ठीक है। उसे आराम की बहुत जरूरत थी, शारीरिक और मानसिक दोनों ही। इन दिनों उसने बहुत-सी कवितायें भी लिखी हैं, जिनमें बड़े सुन्दर और मौलिक विचार तथा भाव हैं। ये कवितायें 'राजकमल' द्वारा पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो जायेंगी।

उस दिन तुम्हारे सामने मैंने मदालसा की समय की गैरपाबन्दी की शिकायत की थी। वह तो दूर होनी ही चाहिए। लेकिन मुझे यह भी कहना चाहिए कि मदालसा यहां बहुत अच्छा कार्य कर रही है और उसका मुझे बड़ा सहारा और सहकार्य है। उसने बड़े व्यापक और मधुर सम्बन्ध जनता से स्थापित किये हैं।

तुम शीघ्र ही पूर्ण स्वस्थ होकर अपने उपयोगी कार्यों में लग जाओ, यही ईश्वर से प्रार्थना है। 'रामायण', 'महाभारत' को सुनने का क्रम जारी होगा ही।

शेष कुशल। सौ० सावित्री बहन को सप्रेम वन्दे।

तुम्हारा
श्रीमन्

पत्नी श्रीमती मदालसानारायण के नाम

१

२२ अक्टूबर, १९४९
रात के ११.१५ बजे

प्रिय मदालसा,

मैंने कई बार वायदा किया, विशेषकर रोम में। लेकिन वायदे को पूरा न कर सका। टर्की में भी सोचता ही रहा। भारत आकर भी आज तक पूरा न कर सका। इसका मुझे बहुत दुःख है। इसलिए आज रात को ही यह काम पूरा करने बैठा हूं।

अभी तक मैंने वायदा पूरा क्यों नहीं किया ? कुछ तो मेरी सुस्ती है ही, लेकिन गहराई से सोचने पर मैं पाता हूं कि इस देरी का असली कारण है कि मैं स्पष्ट जानता ही नहीं हूं कि क्या लिखूं ?

कुछ तो मेरी वृत्ति भी ऐसी रही है कि जो काम सहज सामने आ जाये उसे मेहनत से करते जाना। आई० सी० एस० के लिए गया। सोचता था कि आ भी गया तो १० वर्ष बाद त्यागपत्न देकर देश की कुछ सेवा करूंगा। फिर वर्धा आना भी बिलकुल ही अचानक हुआ। कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि यहां बस जाना होगा। यहां पहले हिन्दी प्रचार में लग गया, फिर बुनियादी तालीम। कालिज खड़ा किया और वह काम बढ़ गया। यह संसार-भ्रमण भी अचानक ही हुआ।

यही ख्याल आता है कि मनुष्य सोचता है और ईश्वर टाल देता है, इसलिए मेरी कुछ वृत्ति ऐसी बन गई है कि आगे का अधिक न सोचना। जैसा अवसर मिलता जाए, सेवा करते जाना।

फिर भी कुछ उद्देश्य तो सामने हैं ही। शिक्षण-क्षेत्र में मेरी शुरू से ही दिलचस्पी रही है। हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो जाने के बाद तो शिक्षा में सुधार होना बहुत आवश्यक है। अपनी शिक्षण-संस्थाओं—कालिज और महिलाश्रम—के मार्फत नीचे के सुधार करने की विशेष इच्छा है :

१. मातृभाषा माध्यम
२. सांस्कृतिक और नैतिक शिक्षण
३. शारीरिक श्रम और स्वावलम्बन
४. शिस्त (अनुशासन)
५. गहन अध्ययन

इसके अलावा साहित्य क्षेत्र में मेरी विशेष रुचि रही है। मेरी अकांक्षा है कि पूज्य बापू के आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विचारों को वैज्ञानिक ढंग से दुनिया के सामने, विशेषकर हिन्दुस्तान के सामने, रख सकूं। विदेशों में गांधी विचारधारा के फैलाव के लिए बापू का साहित्य संपादित करना भी बहुत जरूरी है। इसके अलावा स्वतंत्र साहित्य सृजन करना भी ध्यान में रहता है। लेख, कविता, और हो सके तो कहानी तथा नाटक भी लिखूं। लेकिन इन सबका दृष्टिकोण एक ही रहे—मनुष्यमात्र और देश की उन्नति। 'गांधी और टैगोर का सम्मिलित आदर्श' कहने का मेरा यही मतलब रहा है।

चूंकि मुझमें शुरू से ही वक्तृत्व कला का माद्दा रहा है, इसलिए धारासभा में जाकर शिक्षा तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में जो बन सके, सेवा करने का विचार रहा है। मुझे विश्वास है कि इस काम में मैं काफी सफलता हासिल कर सकूंगा। केन्द्रीय धारासभा में अधिक व्यापक क्षेत्र मिल सकेगा।

मैं अध्ययन करके देश के सामने व्यावहारिक योजनाएं रख सकता हूं। विचार-क्रान्ति करने की कोशिश कर सकता हूं। मैं यह भी समझता हूं कि विचारों का खुद अमल किये बिना उनका प्रचार करना कठिन है। इसके लिए कालेज में कोशिश भी करता रहा हूं। लेकिन मैं कबूल करता हूं कि इसके लिए मुझमें पर्याप्त शक्ति नहीं है। इस दिशा में प्रयत्न जारी रखना आवश्यक है।

अपने कौटुम्बिक जीवन में भी श्रम की मात्रा बढ़ाना जरूरी है। बगीचे और खेती में भी अधिक काम करना, नियमित कातना, भोजन में मदद देना, कपड़े खुद धो लेना, नियमित घूमना, कभी पाखाना भी साफ करना—इधर ज्यादा ध्यान देना है। बच्चों की पढ़ाई और संस्कारों की तरफ भी खुद अधिक ख्याल करना है।

मेरी इच्छा अब इधर-उधर घूमने की नहीं है। यही चाह है कि अपनी कॉलोनी तथा घर में ज्यादा समय दूं, और अध्ययन तथा लेखन में बाकी समय लगाऊं। हां, बीच-बीच में जब मौका मिले तो देहातों में घूमने की जरूर इच्छा है, ताकि देश की गंभीर समस्या का प्रत्यक्ष दर्शन होता रहे। कुछ अच्छी शिक्षण-संस्थाओं—विशेषकर पिलानी, वनस्थली, गुजरात में वेड्छी इत्यादि का निरीक्षण करना है।

जैसा मैंने कहा था और राम को लिखा भी था, इस प्रवास में मैंने 'तुम्हें' पाया है। इसलिए तुम्हारे सक्रिय सहकार की अब पूरी आवश्यकता है। तुम्हें मेरे सम्बन्ध के कई कामों में लग जाना है। अपना अध्ययन भी बढ़ाना है।

तुम्हारा ही
श्रीमन्नारायण

२

कौसानी
७ जून, १९७५

प्रिय मदालसा,

दिल्ली से और यहां से दिये मेरे तार मिले होंगे। यहां का मौसम आजकल बहुत ही रमणीय तथा प्रेरक है। हिमालय का विशाल और गौरवपूर्ण दर्शन अद्‌भुत ही कहना होगा। सूर्योदय भी प्रतिदिन अपना वैभव दिखलाता है। 'अनासक्ति' आश्रम में हम सब मिलकर पूज्य बापू की गीता का अनुवाद सुबह और शाम की प्रार्थना के बाद सुनते हैं। श्री करणभाई ज़ोर से अच्छे स्वर में पढ़ते हैं। उससे एक नई प्रेरणा मिल रही है। बापू का चिन्तन सचमुच बहुत गहरा और मौलिक है।

कार्यकर्ताओं का सम्मेलन भी काफी उपयोगी साबित हो रहा है। श्री विचित्र नारायण, करणभाई, त्रिखाजी, गणेशीलालजी, भारद्वाजजी (जो पूज्य माताजी के समय साबरमती आश्रम में थे), सरलाबेन, मणिमालाबेन, देवेन्द्रभाई, सोमभाई आदि उत्तरप्रदेश, पंजाब, हरियाणा,

हिमाचल, जम्मू-कश्मीर आदि के करीब ५० चुने हुए कार्यकर्ता यहां आये हुए हैं। विचारों की भिन्नता रहते हुए भी सब लोग बड़े प्रेम और आत्मीयता के वातावरण में रह रहे हैं और सह-चिन्तन तथा सह-भोजन बड़ा उपयोगी साबित हो रहा है।

कल सम्मेलन समाप्त हो जायगा। परसों चलकर हम १० तारीख को दिल्ली वापस पहुंच जायेंगे। १२ तारीख को चलकर १३ को ग्रांड ट्रंक से वर्धा।

पूज्य माताजी की तबीयत अच्छी होगी और धीरे-धीरे शक्ति आ रही होगी। तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक होगा। तुम्हें यहां सब लोग याद करते हैं।

तुम्हारा ही
श्रीमन्

३

गांधी स्मारक निधि कालोनी
राजघाट, नई दिल्ली
२७ अगस्त, १९७७

प्रिय मदालसा,

आज तुम अपने जीवन के ६० वर्ष पूरे कर रही हो। इसलिए हम सभी को बहुत खुशी का अनुभव हो रहा है। वैसे आजकल साठ वर्ष की आयु कुछ बड़ी नहीं मानी जाती है। अब तो ७५ वर्ष होने पर अमृत महोत्सव मनाये जाने का अधिक रिवाज होता जा रहा है। फिर भी साठ वर्ष पूरे होना अपने देश में विशेष अवसर माना जाता रहा है और षष्ठिपूर्ति-उत्सव आयोजित किये जाते हैं। हां, भारत के ऋषियों ने सौ वर्ष तक जीने का आदर्श हमारे सामने रखा है—'जीवेम शरदः शतम्।'

हमारे सहजीवन के भी ४० वर्ष पूरे हो चुके हैं। उस अवसर पर मैंने अपने कुलगुरु पूज्य विनोबा को लिखा था, "मदालसा और मेरा स्वभाव सहज ही काफी भिन्न रहा है। फिर भी हमने पिछले ४० वर्षों से आपसी सहयोग और सद्भाव बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया है। भविष्य में भी यह सद्भाव, प्रेम और सहयोग बना रहे, यह आशीर्वाद दीजिये।" पूज्य बाबा ने अपने हाथ से 'बाबा की शुभकामना' लिख दिया था, ११ जुलाई को परमधाम आश्रम पवनार में। मुझे पूरी आशा है कि उनका आशीर्वाद हमें भविष्य में सदा प्रेरणा देता रहेगा।

हमारे चालीस वर्ष के सहजीवन में तुमने मेरे सार्वजनिक कार्यों में, और व्यक्तिगत जीवन में भी, पूरा सहयोग दिया है, यह मैं कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता रहा हूं। किन्तु मुझे यह भी स्वीकार करना चाहिए कि आपसी स्वभाव-भिन्नता के कारण हम दोनों को ही मानसिक परेशानी भी काफी रही है। हमें यही सतत प्रयत्न करते रहना है कि आगे आने वाले वर्षों में हमारा सह-जीवन अधिक सुखमय और सद्भावनापूर्ण बने।

तुम्हारे साठ वर्ष पूरे होने के शुभदिवस पर मैं यही शुभकामना दे सकता हूं कि तुम भी अपने दृष्टिकोण में थोड़ा-सा परिवर्तन लाने का प्रयास करो। हरेक घटना के दो पहलू होते हैं—एक 'आप्टीमिस्टिक' (आशावादी) और दूसरा 'पैसीमिस्टिक' (निराशावादी)। मैंने अपनी पुस्तक 'अमर-आशा' में काफी वर्ष पहले ये पंक्तियां लिखी थीं :

" 'आधी गगरी रिक्त है'
क्यों कहकर कुम्हलाता ?
'आधी गगरी भरी है'
यों कह मैं मुस्काता।"

यह लिखना या कहना आसान है, लेकिन जीवन में उतारना बड़ा मुश्किल है। फिर भी हमें सदा प्रयत्न तो जारी रखना ही चाहिए। पूज्य पिताजी भी हमें यही समझाते रहते थे। पूज्य चाचा श्रीवद्रीनारायणजी ने भी अपनी अंतिम घड़ियों में हमें यही कहा था, "वेटा, मन में किसी वात की शिकायत की भावना नहीं रखनी चाहिए। जो कुछ होता है, वह भगवान की मर्जी समझ-कर सहन करते जाना है। इसी में हमारा कल्याण है।"

दुनिया में लोगों के कष्ट का कोई अन्त नहीं है, किन्तु वड़े-से-वड़े संकट समय के प्रवाह में निकल जाते हैं। हमें तो भगवान की यही अनुकम्पा माननी चाहिए कि जो हुआ, उसमें अधिक बुरा नहीं हुआ। इसी विचार में हम सभी को मानसिक शान्ति प्राप्त हो सकती है। और कोई चारा नहीं है, मनुष्य के लिए। हां हमें पुरुषार्थ या 'महिलार्थ' तो यथाशक्ति करते ही रहना है। लेकिन अन्त में वही होता है जो परमेश्वर चाहता है—यह श्रद्धा हममें दृढ़ होती रहे, यही आज भगवान से सविनय प्रार्थना है।

आज ही तुम्हें पूज्य आनन्दमयी मां का और मुख्य श्री मोरारजी काका के भी शुभाशीर्वाद मिल सकेंगे; यह बड़े आनन्द और संतोष की वात है।

हम 'रक्षा-वंधन' के पुण्य-पर्व की पूर्ण-संध्या में आत्म-चिंतन द्वारा एक-दूसरे के अधिक नजदीक आ सकें, यही हार्दिक प्रार्थना है।

तुम्हारा ही
श्री मन्

श्री रामकृष्ण बजाज के नाम

१

३ जनवरी, १९७७

प्रिय भाई राम,

जैसा मैंने तुम्हें पहले सूचित किया था, भाई कमलनयन की स्मृति में इस वर्ष ८ और ९ जनवरी को अन्तर-विश्वविद्यालयीन सेमिनार हो रहा है। उसमें लगभग ४० विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि भाग लेंगे। चर्चा का विषय रखा है—"गांधीजी की समाजवादी विचारधारा" (गांधीयन कॉन्सेप्ट ऑफ सोशलिज़म)। आशा है, इस वर्ष भी यह कार्यक्रम सफलतापूर्वक सम्पन्न होगा।...

श्री नाथजी महाराज भी लगभग दो महीने से हरिकिशनदास अस्पताल में हैं। गिरने से उनके पैर की हड्डी टूट गई है। तुम शायद उनसे अस्पताल में जाकर मिल लिए होगे।

आशा है, विमला बहन की आंख पहले से ठीक होगी। होमियोपैथिक दवाई का असर

अच्छा नहीं हुआ। शायद हाई पावर की डोज दे दी होगी। उससे अक्सर तकलीफ हो जाती है।

२८ दिसम्बर को श्रृंगेरी के जगद्गुरु शंकराचार्यजी महाराज गांधी चौक में पधारे थे। उस दिन वहां वहुत अच्छा भजन-कीर्तन हुआ। दूसरे दिन भी गांधी चौक पूरा भर गया था। इस प्रकार की भीड़ हाल ही में वर्धा में नहीं हुई। शंकराचार्यजी महाराज भी पहली बार वर्धा पधारे थे। कार्यक्रम वहुत अच्छा रहा।

मैं तारीख १० को दिल्ली जा रहा हूं और वहां लगभग ८-१० दिन रहूंगा।

तुम्हारा
श्रीमन्नारायण

२

२४ नवम्बर, १९७७

प्रिय भाई रामकृष्ण,

तुम्हें स्मरण होगा कि कुछ दिन पहले दिल्ली में मैंने तारीख १८, १९, २० दिसम्बर को दिल्ली में होने वाले राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन के संबंध में जिक्र किया था। इस सम्मेलन का उद्-घाटन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई १८ दिसम्बर को करेंगे। उसका समापन भाषण २० दिसम्बर को केन्द्रीय शिक्षा मंत्री डा० प्रतापचन्द्र ने करना स्वीकार किया है। इस सम्मेलन में लगभग सभी राज्यों के शिक्षा मंत्री और विभिन्न विश्वविद्यालयों के चुने हुए २५ कुलपति भी भाग लेंगे। इसके आलावा देश भर के नई तालीम के क्षेत्र के करीव १५० रचनात्मक कार्यकर्ता भी शामिल होंगे। इस प्रकार यह सम्मेलन भारत में शिक्षा-सुधार के इतिहास में वहुत महत्त्वपूर्ण साबित होगा।

सम्मेलन के खर्च के लिए लगभग पैंतीस हजार रुपये आवश्यक होंगे। यह संतोष का विषय है कि शिक्षा मंत्रालय ने वीस हजार रुपये देना स्वीकार किया है। पांच हजार रुपये अखिल भारत नई तालीम समिति खर्च करेगी। शेष दस हजार रुपये का अभी प्रवन्ध करना है। पांच हजार रुपये गांधी स्मारक निधि की ओर से दिये जा सकेंगे। मैं आशा करता हूं कि पांच हजार रुपये जमनालाल बजाज प्रतिष्ठान की ओर से प्राप्त हो सकेंगे।

नई तालीम समिति को दिये गए दोनों को आयकर की छूट हो, यह प्रबंध किया जा रहा है; किन्तु इसमें तो समय लग सकता है। इसलिए मेरा सुझाव है कि पांच हजार रुपये का एक चैक "श्रीमन्नारायण, अध्यक्ष गांधी स्मारक निधि, नई दिल्ली", के पते पर दिसम्बर के पहले सप्ताह में भेज दिया जाये तो सुविधा रहेगी।

शिक्षा सम्मेलन के विचारार्थ जो निबंध मैंने तैयार किया है, उसकी प्रति साथ में भेज रहा हूं। तुम भी यदि १८ दिसंबर को उद्घाटन सभारंभ के समय उपस्थित रह सको तो हमें खुशी होगी। सम्मेलन के कार्यक्रम की एक प्रति भी साथ में नत्थी है।

विनम्र
श्रीमन्नारायण

पुत्र भरतनारायण के नाम

१

केम्प—गांधी स्मारक निधि
राजघाट, नई दिल्ली
३० नवम्बर, १९७५

प्रिय चि० भरत

तुम आज दुबाई (U.A.E.) जा रहे हो। अब स्वतंत्र रूप से व्यापार और भवन-निर्माण करने। इस कार्य के लिए तुम्हें हमारा हार्दिक आशीर्वाद और शुभकामनाएं !

मेरा पक्का विश्वास है कि इस युग में भी 'सत्यमेव जयते' ही सही नीति है। अंग्रेजी में 'honesty is the best polisy' (ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है) बिलकुल उपयोगी आदर्श है। यह हमारी दृढ़ श्रद्धा है कि जीवन के हर क्षेत्र में सचाई व ईमानदारी द्वारा ही स्थाई सफलता प्राप्त हो सकती है।

पूज्य पिताजी कहते थे कि आमदनी में से हमेशा कुछ अंश बचाकर जमा करते रहना चाहिए। अपना रहन-सहन सादा व पवित्र रखने से आर्थिक व आध्यात्मिक उन्नति होती रहती है।

आखिर में वही होता है जो ईश्वर चाहता है। किन्तु निरन्तर पुरुषार्थ करना हमारा स्वधर्म है।

दादू के आशीर्वाद

२

नई दिल्ली
३ अक्तूबर '७७

प्रिय चि० भरत,

हमारे तार के उत्तर में तुम्हारा केबिल आज सुबह पाकर बहुत खुशी हुई। पूज्य दादाजी, अम्मा और मैंने तुम्हारी दीर्घायु तथा विकास के लिए सामूहिक प्रार्थना भी की। चि० रजत को भी तुम्हारा तार पढ़कर फोन पर बता दिया।

तुम्हें पता ही है कि तुम्हारे जन्म के समय बजाजवाड़ी में पूज्य बापूजी स्वयं सेवाग्राम से पधारे थे और अपने हाथ से तुम्हें घुट्टी पिलाई थी। तुम्हारे जन्म के पहले भी अम्मा पूज्य बापू की निरन्तर देख-रेख में सेवाग्राम ही रही थीं। उन्हीं के आशीर्वाद से तुम्हारा जन्म आनन्दपूर्ण वातावरण में हुआ। बाद में तो पूज्य बापू के तुम प्यारे व मीठे 'रसगुल्ले' रहे। उन्होंने तुम्हें विनोदपूर्ण ढंग से 'पीछेवाल' बनाया और खुद 'अग्रवाल' बने याने अपना अनुयायी बनाया।

अम्मा और मुझे भी पूज्य बापूजी का गहरा तथा स्नेहमय आशीर्वाद और मार्गदर्शन मिला है। हम उनका जितना उपकार मानें, उतना कम ही होगा।

हम सभी को पूज्य बापू के मार्गदर्शन और विचारों के अनुसार चलते रहना है। हम जो भी कार्य करें, कहीं भी करें, उसमें बापूजी के सिद्धान्तों की खुशबू और नींव होनी चाहिए न ?

हमें पूरा भरोसा है कि तुम और सौ० मधु, चि० हिमानिका और चि० अनन्य बापू के आशीर्वाद सहज प्राप्त करते रहोगे।

शेष कुशल

दादू के आशीर्वाद

पुत्रवधू सौ० मधुलिका के नाम

भारतीय राजदूतावास
काठमांडू (नेपाल)
११ जुलाई १९६७

सौ० बहू,

आज इस शुभ दिन[1] पर तुम्हें हमारे हार्दिक शुभाशीर्वाद! तुम अखंड सौभाग्यवती रहो, यही भगवान से प्रार्थना है! तुम्हारे द्वारा हमारे कुल का सब प्रकार मंगल हो और उसकी उज्ज्वल परम्परा जारी रहे और उसमें वृद्धि भी हो!

यह सब परमेश्वर की प्रार्थना और अनुग्रह से ही सम्भव हो सकता है! इसके लिए सत्संग बड़े महत्व का है! महापुरुषों के विचारों का गहरा स्मरण और अध्ययन बहुत हितकर सिद्ध होता है। तुम इस डायरी में एक सद्-विचार रोज लिखती रहो तो हमें बहुत खुशी होगी!

तुम्हारा
श्रीमन्नारायण

१. श्रीमन्‌जी और मदालसा के विवाह की वर्षगांठ

पुत्र रजत के नाम

नई दिल्ली
३-५-६१

प्रिय चि० रजत,

तुम्हारा पत्र मिला। जानकर बहुत खुशी हुई कि तुम्हारी तबीयत वहां लग रही है और समय का पूरा उपयोग हो रहा है। पढ़ने के साथ-साथ खेलना भी करते रहना। एक दिन भैया के साथ मुकुन्द कारखाना भी देख आना।

'संदेश' के शेष अंक भी अलग बुक-पोस्ट से भिजवा दिये थे। मिले होंगे।

तुम्हारे लिए किताबों का एक बंडल कमल मामाजी के साथ भिजवा रहा हूं। वे कल

हवाई जहाज से बम्बई आ रहे हैं। करीब सभी किताबें मिल गईं हैं। ३-४ नहीं मिलीं। उनकी कोई खास ही जरूरत हो तो लिखना।

'वोकल' गाना भी जरूर सीखना। उससे तुम्हें बहुत फायदा होगा।

अम्मा का ख्याल रखना।

दादू के आशीर्वाद

पौत्री हिमानिका के नाम

नई दिल्ली
२ सितम्बर

प्रिय चि० हिमानी

आशीर्वाद। खूब खुश रहो। यह जानकर खुशी हुई कि तुम संस्कृत व हिन्दी के श्लोक व कहानियां पढ़ती व याद करती हो। अपनी लिखावट व उच्चारण की ओर खूब ध्यान देना।

तुम्हारी तबीयत अच्छी होगी और वज़न बढ़ा होगा।

चि० अनन्य भी प्रसन्न होगा। उसे हमारा प्यार।

चि० विश्वरूप[1] अब खुश है। बीच में दांत निकलने से उसकी तबीयत ज़रा कमजोर हो गई थी।

दादाजी के
आशीर्वाद

१. रजतकुमार का पुत्र

विविध

१

मुकाम-मोझरी
दिनांक १७-१-४६

श्रीमन्नारायणजी को सप्रेम जय गुरु। सुनकर हर्ष हुआ कि आप सर्वोदय समाज का प्रचार करने परदेश जा रहे हैं। आप जैसे सात्विक और श्रद्धावान को उन्होंने काम सौंपा, यह बड़ा ही योग्य काम किया है। मैं आपके प्रवास का यश चिंतता हूं और कार्य कीं पूर्णता हो, यह ईश्वर से प्रार्थता हूं।

श्रीमती बाई मदालसा को मेरा जयगुरु।

तुकडोजी महाराज

२

श्री श्रीमां आनंमयी आश्रम
भदेनी, वाराणसी
२० सितम्बर १९७२

आदरणीया मदालसा बहनजी,

श्री श्री मां अहमदाबाद से जयपुर, वृन्दावन, दिल्ली और हरिद्वार होकर यहां कल शाम को सकुशल पहुंच गई हैं।

मां ने कहा, "श्रीमन्नारायण, पिताजी और मदालसा मां को चिट्ठी दो। पिताजी—मां ने इस शरीर को अपने निकट हरिकथा के स्वरूप के बीच में इतने समय तक रखा था। आनन्द—आनन्द—आनन्द।"

मां ने और भी कहा, "जनजनार्दन की सेवा का प्रकाश, कितने-कितने भाव और रूप के बीच में। दान के माध्यम से भी भगवान को आत्म-समर्पण की दिशा ग्रहण की चेष्टा भी कितनी सुन्दर।"

मां ने जो कहा, वह आपको लिखा गया है। अहमदाबाद में मां का बहुत थोड़े समय के लिए ही रहना संभव हुआ। फिर भी इतने थोड़े समय के लिए भी आप लोगों ने मां और मां के परिवार सभी को जिस प्रेम से रखा और इतना सुन्दर प्रबन्ध किया, उसके लिए हम सभी बहुत ही आभारी हैं। अहमदाबाद स्टेशन से गाड़ी चलने से पहले बहुत ही व्यस्त रहने के कारण मैं आप व श्रीमन्नारायणजी से विदा न ले सका, इसके लिए मैं बहुत ही लज्जित हूं, आशा है, आप अवश्य ही क्षमा करेंगे।

मां नवरात्रि के पूर्व ही नैमिषारण्य पहुंच जायेंगी। मां का स्वास्थ्य हरिद्वार से पुनः ठीक नहीं चल रहा है।

आप और आदरणीय श्रीमन्नारायणजी को मां का आशीर्वाद और हम सबकी ओर से यथायोग्य। इति

वानू ब्रह्मचारी

३

रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट
ऑफ कल्चर,
गोल पार्क-कलकत्ता
२५-४-६३

प्रिय मदालसाजी,

आपका पत्र पाकर बहुत आनन्द हुआ। ठीक दो दिन पहले आपसे मिलने की मुझे याद आई थी। उसी दिन आर्यनायकम्‌जी आये थे। करीब दो घंटे बातचीत हुई। यह था हमारा

आपस में पहले मिलन। उन्होंने विनोबाजी के कलकत्ता आने के बारे में कहा था, विनोबाजी का एक प्रोग्राम हमारा इन्स्टिट्यूट में करने की इच्छा प्रकट की थी। इसका मैंने अनुमोदन किया।

आप कलकत्ता आने की जरूर कोशिश कीजिए। इससे मेरा आनन्द बहुत बढ़ेगा।

आपको, श्रीमनजी को, भरत को और रजत को मेरी सप्रेम शुभेच्छा।

आपका
रंगनाथानंद

४

द्वारा गुरु मंदिर, उटकमंड
१३-६-४८

चि० बहनमदालसाजी

सप्रेम नमस्कार।

आपका पत्र तारीख ९-५-४८ को बम्बई होकर मुझे यहां मिला है। धन्यवाद।

ऐसा मालूम होता है कि मेरा पहला पत्र, जो मैंने श्रीमन्जी को भेजा था, वह उन्हें नहीं मिला। उसमें मैंने लिखा था कि मेरे रास्ते में कई मुशकलात हैं, जिनके कारण मैं वर्धा सेवा-यज्ञ के लिए नहीं आ सकूंगा। अब तो मदालसाजी, जब प्रभु की ही कृपा होगी तब ही आप सबके साथ बापू-सेवा यज्ञ में शामिल हो सकूंगा। तब तक आशा के उमंग में ही रहूंगा।

पूज्य माताजी को प्रणाम, श्रीमन्जी को नमस्कार, और बच्चों को मेरी दादी की दुआ।

आपका बड़ा भाई
गुरुदयाल

५

नागपुर सैंट्रल जेल

कैदी का नंबर ४७ — नामः—रैहाना तैयबजी

तारीख — मंजूर

सेंसर्ड — साहब सुपरिन्टैन्डेन्ट

मेरी बहुत प्यारी भतीजी,

आज मेरे परमपूज्य भाई[1] के ज्वलंत जीवन का वह शुभ दिन है कि जब वे अपने स्थूल

१. भाईश्री जमनालालजी बजाज, पूज्य रैहाना बहन से राखी बंधवाते थे। रैहानाबहन कृष्ण-भक्त थीं। उनके केवल कंठ से ध्वनित बांसुरी की तान सुनकर श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो उठते थे। उनकी 'गोपिका हृदय' नाम की भक्तिमय भजनों की किताब भी प्रकाशित हुई थी। उनके पिता अब्बास तैयबजी के प्रति बापूजी और काकाजी की गहरी आत्मीयता थी।

बंधनों को काटकर अपने आध्यात्मिक साम्राज्य में दाखिल हुए। दिव्य भूमिका में आज के रोज उनका जन्म हुआ। आज प्रार्थना, मनन, प्रभु-स्मरण और गूढ़ और उन्नत चिंतन का दिन है। आज तुम, और सारा खानदान ही मेरे पास हो, मेरे अंदर हो। तुम्हारे दिल मेरे दिल के साथ प्रार्थना निमग्न होते हुए मैं महसूस करती हूं। यह पत्र उस दैवी ऐक्य का व्यक्तिकरण मात्र समझना। सभी को मेरी ओर से यथायोग्य कह देना। तुम और तुम्हारे सब कुशल से होंगे—यह तपस्या का जमाना है। तपस्या की कड़ाई हमारी ही अपनी ही शक्ति का नापतोल ही होती है। भगवान ने हमें इस लायक समझा, यही उसका महद् अनुग्रह है, जो आता है उसे संपूर्ण श्रद्धा, प्रेम और आनंद से स्वीकार करने की शक्ति वही प्रदान करता रहेगा, यह अटल विश्वास बना रहे, आमीन—बहुत प्यार,

फूफी

६

अमरीकी दूतावास
नई दिल्ली
९ अगस्त, १९७८

श्रीमती मदालसा नारायण
जीवन कुटीर, वर्धा (महाराष्ट्र)

प्रिय श्रीमती नारायण,

नई दिल्ली लौटने के बाद मैं बहुत-सी प्रवृत्तियों में घिरा रहा और इसलिए जल्दी लिखने की इच्छा होते हुए भी इतनी देर से सूचित कर रहा हूं कि सेवाग्राम की हाल की यात्रा में आप से मिलकर मुझे कितनी प्रसन्नता हुई और मैं तथा मेरे सहयोगी आपके आतिथ्य से, जो आपने हमें अपने घर में प्रदान किया, कितने प्रभावित हुए।

सेवाग्राम की हमारी सारी यात्रा बड़ी ही रोचक तथा लाभदायक रही और सामुदायिक स्वास्थ्य की दृष्टि से वहां जो हो रहा है, उसकी मुझ पर गहरी छाप पड़ी। सेवाग्राम आश्रम के प्रवास से तो हम लोग अत्यन्त अभिभूत हुए। लेकिन आपके प्रेमल घर में जो थोड़ा-सा समय बिताया और हमारा आपने दिल से जो स्वागत-सत्कार किया, उसकी मधुर स्मृतियां बहुत समय तक बनी रहेंगी।

आदर और अनेकानेक धन्यवाद सहित,

सप्रेम
रॉबर्ट गोहीन

७

श्री कृष्णा आई होस्पीटल
तेनाली
२८-३-५१

श्री श्रीमन्‌जी,

प्रेम भरा आपका पत्र यथासमय आया था। लेकिन इस विचार से कि मदालसाबहन का जवाब मिलने पर आपको लिखूं, इतनी देरी की माफ करें।

प्रवास में से उनका १८-३-५१ का पत्र परसों ही मिला। "आपके पत्र ने मुझे बहुत आराम और संतोष दिया है। देता रहेगा।" यह विचार उनके पत्र में प्रकट किया गया था। प्रवास की कुछ बातें भी लिखी गई हैं।

पूज्य विनोबाजी की संगति में रहकर पैदल प्रवास करने से उनको बहुत उत्साह तथा आनंद मिल रहा है, इसमें कोई शक नहीं। इस सुअवसर से लाभ होगा ही।

मेरे काम के बारे में आपने कुछ लिखने को कहा था। पूज्य बापू और विनोबा के आशीर्वाद से मेरा काम अच्छा चल रहा है। निरहंकार और निर्लिप्त रह कर सेवा करने की वृत्ति भगवान की कृपा से और बड़ों के आशीर्वाद से मुझे मिल गई है। इस वास्ते काम में आनंद ही आनंद है।

क्या आप हैदराबाद आने वाले हैं? मदालसा बहन लौटते वक्त भी पूज्य विनोबाजी के साथ रहेंगी? एक अर्ज है। वह यह कि अगर लौटते वक्त वे गाड़ी पर लौटना तय हुआ तो हमारे साथ तेनाली उनको भेजने की इजाजत दें। मेरी पत्नी भी मेरे साथ सम्मेलन में हाजिर होगी। हम यहां से ५-४-५१ को रवाना होंगे। जवाब जल्दी देने की कृपा करें।

सूर्य नारायण के प्रणाम

८

बम्बई
९-९-६६

प्रिय जीजाजी,

आपकी प्यारी चिट्ठी मिली। आप इतनी व्यस्तता में से समय निकाल के सब लोगों का कैसे ख्याल रख सकते हैं, यह रहस्य अब तक समझ में नहीं आया। जितना ज्यादा आपके साथ रहना हो जाता है, उतना ही ज्यादा आपकी सहनशीलता, सहृदयता व सरलता का आभास होता है।

आपकी
विमला बजाज

९

.उज्जैन
२२-७-५०

प्रिय बहूरानी मदालसा देवी,

हार्दिक आशीर्वाद। खूब प्रसन्न रहो। हम लोग वर्धा से चलकर एक दिन तारापुर ठहरे थे और फिर यहां आ गए। यहां चार दिन ठहरकर राजपूताने के दौरे को चले गए। जयपुर में फेडरेशन का वार्षिक जल्सा था। बहुत अच्छा हुआ। हम लोग सब जयपुर गए थे। जयपुर से अजमेर, पुष्कर, काकरोली, नाथद्वारा, एकलिंगजी, उदयपुर होते हुए यहां २९ तारीख को वापस आ गए। हमारा कालिज १८ तारीख को खुल गया।

वर्धा में तुम्हारे पास रहकर मेरी तबीयत बहुत प्रसन्न हुई। तुमने काफी खातिर की। सब दिखाया। खाने-पीने का प्रबंध बहुत अच्छा किया। हम सब खूब आराम से रहे। मकान भी खूब पसन्द आया। नुमायश बड़ी अच्छी लगी। तुम खूब चतुर हो। संसार-भ्रमण का पूरा लाभ औरों को भी दिया। तुम्हारा स्वभाव भी मुझे पसंद आया। खूब मीठा है। मेरी शुभकामना और आशीर्वाद यह है कि तुम खूब प्रसन्न रहो। तबीयत चाहती है कि तुम्हारे पास आकर कुछ अधिक दिन रहूं और जब मौका होगा तो ऐसा जरूर करूंगा।

चि० श्रीमन् और चि० भरत को प्यार और आशीर्वाद।

बद्रीनारायण

(श्रीमन्जी के छोटे चाचाजी)

१०

इटावा
६-१०-१९६९

प्रिय बहू चि० मदालसा रानी,

तुम्हारी भेजी पुस्तक 'राष्ट्र उन्नत हो हमारा' मिली थी। इसको मैंने काफी पढ़ा। बहुत सुन्दर लगी। कविता में विचार की उत्तमता प्रसाद-गुण मानते हैं। यह पुस्तक में काफी है। विषय भी इसका बड़ा उपयुक्त है। खुश रहो। इसी प्रकार से नई पुस्तकें लिखकर देश की सेवा करो, यही हमारी आशीष है। चि० श्रीमन् ने भी एक उत्तम पुस्तक हम दोनों (मैं तथा चि० लक्ष्मी नारायण) के लिए 'टुवर्ड्स बैटर एजूकेशन' भेजी है। इसे मैंने अभी पढ़ी नहीं है। पढ़ूंगा अवश्य। उनसे कह देना।

मैं तथा तुम्हारी चाची गीता ११ तारीख को कानपुर जा रहे हैं। वहां से वाराणसी जायेंगे। वहां थियोसाफिकल सोसायटी की एक कांफरेंस है। उसमें शामिल होकर प्रयाग दो-चार दिन रुककर इटावा आ जायेंगे।

सूर्यनारायण

(श्रीमन्जी क बड़े चाचाजी)

११

१७-१२-७८
दोपहर १२ बजे

दादाजी,

ए बी सी डी इ एफ जी एच आई जे के एल एम एन ओ
पी क्यू आर एस टी यू वी डबल्यु एक्स वाई जेड

मुझे ए० बी० सी० डी० आ गई है। मैं आपको याद करता हूं। मुझे बुखार आ गया है। मैं बहुत खेलता हूं। मुझे आपकी बहुत याद आती है। आप मुझे पसन्द आ गये हैं।

आप क्या कर रहे हैं ? आपको क्या चाहिए ? आप कैसे हैं ? आप ठीक से रह रहे हैं ? आपको हमारी याद आती है ?

यह चिट्ठी डाकिया आपको कैसे देगा ? अभी हमको एक छोटा-सा थरमस चाहिए था।

मां, तुम बोलो दादाजी कब आयेंगे ?

भगवान के पास क्या-क्या रहता है ? दादाजी चिट्ठी सुनकर अभी-के-अभी चीजें दे देंगे। मैंने खूब प्यार भेजा है।

अ आ इ ई उ ऊ ढम
ए ऐ ओ औ की झमझम,
अं अंगूर हमें है भाता,
अः गीत हिलमिल गाते।

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ और लिखो...

अब याद नहीं आता है। डाकिया चला जायेगा तब याद आयेगा।

छोटा विश्वरूप
छोटा विश्वरूप
छोटा विश्वरूप

(पौत्र—उम्र ४½ वर्ष)

परिशिष्ट

जीवन-क्रम

१९१२ ·	१३ जुलाई	इटावा (उत्तर प्रदेश) में जन्म। पिता बाबू धर्मनारायण, एडवोकेट, माता श्रीमती राधादेवी।
१९२८		मिशन हाईस्कूल, मैनपुरी (उत्तर प्रदेश) से हाईस्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण (पिता बाबू धर्मनारायणजी श्रीमन्‌जी के बाल्य-काल से ही मैनपुरी में वकालत करने लगे थे।)
१९२९		आगरा कालेज में महात्मा गांधी के प्रथम दर्शन। महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर से भेंट और उन्हें अंग्रेजी कविताएं भेंट कीं।
१९३३		बी० ए० में उत्तीर्ण। अंग्रेजी काव्य-संग्रह 'दी फाउन्टेन ऑफ लाइफ' का प्रकाशन। डा० राधाकृष्णन् की प्रस्तावना।
१९३४		एम० ए० (अंग्रेजी), इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। वहां वे म्योर होस्टल में रहे।
१९३५		आई० सी० एस० परीक्षा में बैठने के लिए लंदन-यात्रा। कई अंग्रेज कवियों और साहित्यकारों से मुलाकात। परीक्षा में एक स्थान से रह गये। (उस वर्ष पूर्ण घोषित स्थानों से कम जगहें भरी गईं।) स्वदेश वापसी।
१९३६		लखनऊ कांग्रेस में श्री जमनालाल बजाज से भेंट। उनके आग्रह पर वहां से अखिल भारत हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में भाग लेने हेतु नागपुर गए। नागपुर से वर्धा। गांधीजी से परिचय। संपर्क बढ़ा। 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के मंत्री बने। वर्धा-स्थित शिक्षा मंडल के महामंत्री बने।
१९३७	११ जुलाई	श्री जमनालाल बजाज की सुपुत्री मदालसा से विवाह। गांधीजी की उपस्थिति में।
१९३७	अक्तूबर	'शिक्षा मंडल' की रजत जयन्ती के अवसर पर एक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन किया, जिसमें गांधीजी ने गहरी रुचि ली। इस सम्मेलन में बुनियादी तालीम की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। गांधीजी के मुखपत्र 'हरिजन' के लिए लिखे जाने वाले लेखों का हिंदी अनुवाद-कार्य।

१६३८	'शिक्षा मंडल' द्वारा संचालित नवभारत विद्यालय के प्राचार्य वने ।
१६४०	'शिक्षा मंडल' के अंतर्गत वर्धा में एक वाणिज्य महाविद्यालय स्थापित करवाया, जिसका नाम 'गोविंदराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय' रखा गया । यह पूरे विदर्भ और मध्यप्रदेश का प्रथम वाणिज्य महाविद्यालय था। उसके संस्थापक आचार्य वने ।
१६४२	कलकत्ता विश्वविद्यालय की एम० ए० (अर्थशास्त्र) परीक्षा में उत्तीर्ण । असहयोग आंदोलन में १८ मास की जेल-यात्रा। बुलढाना और जवलपुर जेल। नागपुर विश्वविद्यालय के वाणिज्य विभाग के डीन निर्वाचित (१६४२ से १६४८ तक)।
१६४४	जवलपुर जेल से रिहाई। गांधीजी की आर्थिक विचारधारा पर आधारित 'दी गांधियन प्लान' प्रकाशित ।
१६४५	'शिक्षा मंडल' की ओर से नागपुर में वाणिज्य महाविद्यालय का आरंभ ।
१६४६	वाणिज्य महाविद्यालय में मातृभाषा माध्यम द्वारा पढ़ाई का श्रीगणेश। इसका उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया।
१६४८	जवलपुर में वाणिज्य महाविद्यालय स्थापित ।
१६४६	सर्वोदय-समाज के विदेश मंत्री के रूप में छह मास के लिए गांधी-विचार-प्रचार हेतु विश्व-भ्रमण ।
१६५२	वर्धा-चुनाव-क्षेत्र से प्रथम लोकसभा के सदस्य निर्वाचित । अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महामंत्री वने (१६५२ से १६५८ तक) अ० भा० कांग्रेस कमेटी द्वारा प्रकाशित 'आर्थिक समीक्षा' के मुख्य सम्पादक । नशावंदी जांच समिति के अध्यक्ष (१६५४-५५)।
१६५६	जयपुर में आयोजित अखिल भारतीय शिक्षा-सम्मेलन की अध्यक्षता ।
१६५७	वुनियादी तालीम स्थायी समिति के अध्यक्ष चुने गये (१६५७-१६६०)।
१६५८	योजना आयोग के सदस्य नियुक्त। (जुलाई १६५८ से दिसंबर १६६४)।
१६६४	कृषि, सहकारिता तथा सामुदायिक विकास से संबंधित कार्य देखा। साथ ही आचार्य विनोबा भावे से घनिष्ठ संपर्क बनाए रखा। काहिरा (मिस्र) में आयोजित अफ्रीकी एशियाई ग्रामीण पुर्नर्निर्माण सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व। अप्रैल १६६४ में एक सप्ताह के लिए जापान-यात्रा, वहां की कृषि-प्रणाली

		तथा औद्योगिक विकेन्द्रीकरण का अध्ययन।
१९६४	२५ नवम्बर	नेपाल में भारत के राजदूत-पद का कार्यभार ग्रहण किया।
१९६६		नेपाल-नरेश और महारानी के साथ भारत-भ्रमण।
१९६७	२५ दिसंबर	गुजरात के राज्यपाल-पद की शपथ ग्रहण। (इस पद पर मार्च १९७३ तक रहे)
१९६८		सेवाग्राम आश्रम प्रतिष्ठान के अध्यक्ष बने।
१९६९	२८ जनवरी	उदयपुर विश्वविद्यालय में दीक्षांत भाषण।
१९७२	१३ जुलाई	षष्ठिपूर्ति के अवसर पर 'आचार्य श्रीमन्नारायण हीरक जयंती समारोह समिति' द्वारा अभिनंदन-ग्रंथ भेंट।
	१४-१६ अक्तूबर	'शिक्षा मंडल', वर्धा द्वारा सेवाग्राम में आयोजित 'राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन' का सभापतित्व। इसमें प्रधानमंत्री, केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के शिक्षामंत्री, कई उपकुलपतिगण और प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों ने भाग लिया। सम्मेलन के अंत में एक सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित हुआ, जिसमें राष्ट्रीय शिक्षा-नीति की रूपरेखा प्रतिपादित की गई। सम्मेलन के प्रस्तावों को कार्यान्वित कराने हेतु एक 'फॉलो-अप कमेटी' का गठन किया गया, जिसके वह अध्यक्ष बने। अनेक राज्यों में शिक्षा-सम्मेलन करवाये तथा सेवाग्राम सम्मेलन के प्रस्तावों को सरकारी नीति का अंग बनवाया।
१९७३		गुजरात के राज्यपाल-पद से मुक्त। वर्धा-आगमन। वर्धा को मुख्यावास रखकर कई रचनात्मक संस्थाओं का मार्गदर्शन किया।
		कर्नाटक विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० उपाधि से सम्मानित।
		'केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि' के अध्यक्ष-पद पर आसीन।
१९७४		काशी विद्यापीठ तथा कानपुर विश्वविद्यालय द्वारा डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित।
१९७४	२ मार्च	'शिक्षा मंडल', वर्धा के 'हीरक जयंती समारोह' की अध्यक्षता। मुख्य अतिथि राष्ट्रपति श्री वी० वी० गिरी। आचार्य विनोबा भावे की प्रेरणा से गीता-संदेश के प्रचार हेतु स्थापित 'गीता-प्रतिष्ठान' के प्रथम अध्यक्ष तथा ट्रस्टी चुने गये।
	२५-२६ दिसंबर	'गीता प्रतिष्ठान' द्वारा आयोजित प्रथम अखिल भारत 'गीता प्रचार सम्मेलन' की अध्यक्षता की।
१९७५	१५ अगस्त	देश की समस्त भाषाओं की जोड़-लिपि के रूप में देवनागरी लिपि का प्रचार करने के लिए स्थापित नई-संस्था 'नागरी लिपि परिषद' का उपराष्ट्रपति श्री बा० दा० जत्ती द्वारा उद्घाटन। परिषद् के प्रथम अध्यक्ष श्री श्रीमन्नारायण।

	८ से १० दिसम्बर	केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि द्वारा मदुराई में आयोजित दक्षिण क्षेत्रीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन की अध्यक्षता।
	२४ से २६ दिसम्बर	'केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि' द्वारा सेवाग्राम में आयोजित अखिल भारतीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन की अध्यक्षता।
१९७६	४ से ५ जनवरी	'शिक्षा मंडल', वर्धा द्वारा आयोजित कमलनयन बजाज स्मारक अंतर-विश्वविद्यालय परिसंवाद 'शिक्षा में गांधियन मूल्य' की अध्यक्षता। परिसंवाद में भारत के ६५ विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया। चर्चा के अन्त में १६ सूत्री सर्व-सम्मत निवेदन घोषित हुआ।
	१६ से १८ जनवरी	परमधाम आश्रम पवनार में पूज्य विनोबाजी की छत्रछाया में आयोजित अखिल भारतीय आचार्य-सम्मेलन का संचालन। इसमें देश के २६ प्रमुख शिक्षाशास्त्री, न्यायविद तथा अन्य व्यक्तियों ने भाग लिया तथा एक १० सूत्री सर्व-सम्मत निवेदन घोषित किया। इसके अंतर्गत देश से आपात-स्थिति को उठाने, राजनैतिक बंदियों की रिहाई, नागरिक अधिकारों की पुनर्स्थापना, समाचार-पत्रों पर से सेंसरशिप हटाने आदि की मांग की गई।
	मार्च	केन्द्रीय आचार्यकुल समिति के अध्यक्ष निर्वाचित।
	१२ से १४ मार्च	यवतमाल (महाराष्ट्र) में आयोजित अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन की अध्यक्षता।
	अप्रैल से ११ सितंबर	आचार्य विनोबा द्वारा भारत में गो-हत्या-निषेध कानून लागू कराने के उद्देश्य से घोषित उपवास को टलवाने की दिशा में प्रयत्न किया। एक 'कार्यान्वयन समिति' बनाई गई, जिसके अध्यक्ष निर्वाचित किये गए।
	अक्तूबर	'केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि' द्वारा हरिजन-समस्या पर आधारित राष्ट्रीय गोष्ठी की अध्यक्षता। गोष्ठी का उद्घाटन केन्द्रीय कृषि मंत्री श्री जगजीवनरामजी ने किया।
१९७६		विश्व हिन्दी परिषद के संयोजन में मदद। 'विश्व हिंदी विद्यापीठ' की योजना स्वीकृत करवाई वर्धा में।
	११ नवंबर	'नागरी लिपि परिषद' की तीसरी वार्षिक बैठक की अध्यक्षता।
	१२ नवंबर	स्वाध्याय आश्रम, पट्टी-कल्याणा (हरयाणा) में आयोजित उत्तर क्षेत्रीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन की अध्यक्षता।
	१३ नवंबर	केन्द्रीय 'गांधी स्मारक निधि' के पुनः ३ वर्ष के लिए अध्यक्ष चुने गये।
१९७७	१६ से १७ अप्रैल	द्वितीय नागरी लिपि-सम्मेलन की अध्यक्षता। सम्मेलन का उद्घाटन कार्यवाहक राष्ट्रपति श्री जत्ती द्वारा तथा पहले दिन

		की बैठक की अध्यक्षता प्रधानमंत्री ने की।
१९७७	१४ मई	श्रीमन्‌जी की अध्यक्षता में आयोजित अखिल भारतीय नई तालीम समिति की विशेष बैठक में केन्द्रीय सरकार से १०+२+३ की नई शिक्षा-प्रणाली के अंतर्गत विभिन्न स्तरों पर गांधीवादी बुनियादी शिक्षा-सिद्धांतों को लागू करने की सिफारिश की गई।
		'केन्द्रीय गांधी वाङ्गमय सलाहकार समिति' के सदस्य।
	१७ से १९ जुलाई	केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि द्वारा आयोजित अखिल भारतीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन की अध्यक्षता। उसमें राष्ट्र के विभिन्न प्रांतों से आये हुए लगभग ४०० कार्यकर्ताओं ने भाग लिया। सम्मेलन का उद्‌घाटन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया। सम्मेलन के अंत में १० सूत्री सर्व-सम्मत निवेदन घोषित किया गया।
	१७ से १९ अगस्त	जुलाई में आयोजित 'अखिल भारतीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन' में उभरी समस्याओं पर गहन विचार करने हेतु केन्द्रीय गांधी स्मारक निधि द्वारा आयोजित 'रचनात्मक कार्य' पर राष्ट्रीय परिगोष्ठी की अध्यक्षता। इसमें देश की रचनात्मक संस्थाओं के ४५ प्रमुख प्रतिनिधियों ने भाग लिया।
	१८ से २० सितंबर	'अखिल भारतीय नई तालीम समिति' तथा राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण परिषद के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित 'टीचर एजूकेशन' पर राष्ट्रीय परिगोष्ठी का उद्घाटन किया।
	१४ से १६ अक्तूबर	साबरमती आश्रम, अहमदाबाद में आयोजित अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा-सम्मेलन की अध्यक्षता की। सम्मेलन का उद्‌घाटन प्रधानमंत्री श्री मोरारजी देसाई ने किया।
	२८ से ३० अक्तूबर	पूना में पश्चिम क्षेत्रीय रचनात्मक कार्यकर्ता-सम्मेलन का सभापतित्व।
	१-२ नवंबर	वृंदावन में आयोजित अखिल भारतीय गीता प्रचार-सम्मेलन में भाग लिया।
	१२ से १४ नवंबर	केन्द्रीय आचार्यकुल समिति द्वारा ग्वालियर में आयोजित आचार्यकुल-सम्मेलन की अध्यक्षता की।
	१८ से २० दिसंबर	'अखिल भारत नई तालीम समिति' के तत्वावधान में नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन का सभापतित्व।
१९७८	जनवरी	गोलोकधाम प्रस्थान—२ और ३ जनवरी की रात को दिल्ली से वर्धा जाते हुए, ट्रेन में, आगरा और ग्वालियर के बीच।

हिन्दी

काव्य

वर्ष	नाम	प्रकाशक
१९३७	रोटी का राग	सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली
१९४०	मानव	हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्रा० लि०, बंबई
१९४८	अमर आशा	किताबिस्तान, इलाहाबाद
१९६२	रजनी में प्रभात का अंकुर	आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली
१९६७	जीवन निर्झर (अपने अंग्रेजी काव्य-संग्रह 'दि-फाउन्टेन आफ लाइफ' का हिन्दी रूपान्तर)	नवयुग साहित्य सदन, इन्दौर

निबंध

वर्ष	नाम	प्रकाशक
१९३९	सेगाव का संत	गंगा पुस्तक माला, लखनऊ
१९४५	शिक्षा का माध्यम	शिवलाल अग्रवाल एंड कंपनी, आगरा
	गांधीवादी आर्थिक योजना	वोरा एण्ड कम्पनी, बंबई
	जुगनू	किताबिस्तान, इलाहाबाद
१९४९	स्वतंत्र भारत के लिए गांधीवादी शासन-विधान	नवयुग साहित्य सदन, इंदौर
१९५७	विनोबा के साथ सात दिन	सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
१९६२	इतनी परेशानी क्यों ?	सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
१९६३	भारतीय संयोजन में नई दिशाएं	शिवलाल अग्रवाल एण्ड कंपनी, आगरा
१९६८	सत्यमेव जयते	सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
१९६९	भारतीय संयोजन में समाजवाद	सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली

	गांधीवादी संयोजन के सिद्धांत	सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली
	गांधी विचार का अर्थशास्त्र	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
	गांधीमार्ग की ओर	गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
	सर्व-धर्म-समभाव	राजभवन, अहमदाबाद
१९७०	महात्मागांधी की जय	गांधी शान्ति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली
१९७१	बिन मांगे मोती मिलें	राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट, दिल्ली
	गांधीवादी अर्थशास्त्री संगतता (गुजराती)	यूनिवर्सिटी ग्रंथ-निर्माण बोर्ड, केपिटल प्रोजेक्ट भवन, अहमदाबाद
१९७२	नई पीढ़ी : नए संस्कार	राजभवन, अहमदाबाद
	ऋषि विनोबा	सर्व सेवा संघ, राजघाट, वाराणसी
१९७६	आप भले जग भला	सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सर्कस नई दिल्ली
	सबसे अच्छी प्रेम सगाई	चंद्रिका प्रिंटर्स, अहमदाबाद
	आधुनिक भारत के निर्माता : जमनालाल	सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

अंग्रेजी

१९३३	'दि फाउन्टेन आफ लाइफ' (काव्य-संग्रह)	एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई
१९३७	इंगलैण्ड थ्रू इंडियन आईज	किताबिस्तान, इलाहाबाद
१९४०	प्रेक्टिकल इंगलिश	दि एजुकेशनल बुक डिपो, जबलपुर
१९४२	मीडियम ऑफ इन्स्ट्रक्शन	किताबिस्तान, इलाहाबाद
१९४४	दि गांधियन प्लान	पद्मा पब्लिकेशन्स, लक्ष्मी बिल्डिंग, श्रीमेहता रोड, बम्बई
१९४५	कन्स्ट्रक्टिव प्रोग्राम फॉर स्टूडेन्ट्स	पद्मा पब्लिकेशन्स, बम्बई
१९४६	गांधियन कान्स्टीट्यूशन फॉर इंडिया	किताबिस्तान, इलाहाबाद
१९४८	गांधियन प्लान रीएफ़र्म्ड	पद्मा पब्लिकेशन्स, बम्बई
१९५०	दि टू वर्ल्ड्स	हिन्द किताब २६१-२६३, हावरा रोड, बम्बई
१९५५	टुवर्ड्स ए सोशलिस्ट इकॉनामी	इंडियन नेशनल कांग्रेस, नई दिल्ली
१९५६	वन वीक विथ विनोबा	ए० आइ० सी० सी०, नई दिल्ली
	सोशलिस्ट पैटर्न ऑफ सोसाइटी	ए० आइ० सी० सी०, नई दिल्ली
	इन्डिया एण्ड चाइना	ए० आइ० सी० सी०, नई दिल्ली
१९५८	इन्डियाज़ करेंट प्राब्लम्स	ए० आइ० सी० सी०, नई दिल्ली

वर्ष	पुस्तक	प्रकाशक
१९६०	प्रिन्सीपल्स ऑफ गांधियन प्लानिंग	किताब महल, इलाहाबाद
	ए प्ली फॉर आडिओलॉजिकल क्लेरिटी	ए० आइ० सी० सी०, नई दिल्ली
१९६२	ट्रेन्ड्स इन इंडियन प्लानिंग	एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई
	ऑन एजुकेशन	आत्माराम एण्ड सन्स, कशमीरी गेट, दिल्ली
१९६३	दि ट्रेजेडी ऑफ ए वॉल	एस० चाँद एण्ड कंपनी, रामनगर, नई दिल्ली
१९६४	दि एमर्जिंग वर्ल्ड (कन्वीनर)	एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई
	सोशलिज्म इन इंडियन प्लानिंग	एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई
१९६८	लेटर्स फ्रॉम गांधी, नेहरू एण्ड विनोबा	एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई
१९६९	गांधी : दि मैन एण्ड हिज थॉट	पब्लिकेशन डिवीजन ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
	टुवर्ड्स बेटर एजुकेशन	नवजीवन पब्लिशिंग हाऊस, अहमदाबाद
१९७०	इंड़िया एण्ड नेपाल	पॉपूलर प्रकाशन, बम्बई
	विनोवा : हिज लाइफ एण्ड वर्क	पॉपूलर प्रकाशन, बम्बई
	रेलेवेन्स ऑफ गांधियन इकोनॉमिक्स	नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद
१९७१	ममोइर्स : विन्डो ऑन गांधी एण्ड नेहरू	पॉपूलर प्रकाशन, बम्बई
	महात्मा गांधी—दि एटोमिक मैन	सोमइआ पब्लिकेशन्स, १७२ नवगांव क्रॉस रोड, बम्बई
१९७३	एजुकेशन ऑफ दि फ्यूचर	एस० चाँद एण्ड कंपनी, रामनगर, दिल्ली
	दोज टेन मन्थ्स : प्रेसिडेन्ट्स-रूल इन गुजरात	विकास पब्लिशिंग हाऊस, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली
१९७४	जमनालाल बजाज	पब्लिकेशन डिवीजन, गवर्नमेन्ट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली
१९७६	इंडिया नीड्स गांधी	एस० चाँद एण्ड कम्पनी, रामनगर, दिल्ली
१९७८	टुवर्ड्स दि गांधियन प्लान (मृत्यु के बाद प्रकाशित)	एस० चाँद एण्ड कम्पनी, रामनगर, दिल्ली

भावांजलियां

श्रीमन्‌जी उन लोगों में से हैं जिन्होंने पदों और प्रतिष्ठा और यश से भरे हुए जीवन की सम्भावनाओं को ठुकराकर, देश-सेवा का विकल्प चुना और जिन्होंने एक समृद्धिपूर्ण और प्रतिभा-वान जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए उत्सर्ग कर दिया है। विद्वत्ता, गंभीरता और नम्रता का उनमें अद्‌भुत समन्वय हैं। ऐसा नर-रत्न विरल होता है।

बापू

वावा की उम्र ८२ है, उनकी ६५ साल की उम्र थी। 'क्यू' तोड़ करके वे आगे चले गये।

काम तो उन्होंने अनेक किये हैं हिन्दुस्तान-भर में। गांधी-निधि के वे अध्यक्ष थे और सारे भारत में उनका सम्बन्ध था। वावा का उनका परिचय लगभग चालीस साल का है। अपनी जवानी में भी कभी उन्होंने अशान्ति से बात नहीं की। हमेशा शान्ति कायम रखते थे। यह वहुत वड़ी वात है जवानों के लिए। युवावस्था में शान्ति रखना, तटस्थ रहना, यह उनका गुण था। चालीस साल के उनके निकट संवंध में मैंने देखा कि वे हमेशा समत्वबुद्धि कायम रखते थे। कोई लेफ्टिस्ट (वामपंथी) बनता है, कोई राइटिस्ट (दक्षिणपंथी) बनता है। वे हमेशा मध्यम-मार्ग में चलते थे। यह उनकी एक विशेष वात थी।

नई तालीम से उनका वहुत संवंध था। अनेक संस्थाओं को वे हमेशा मदद भी करते थे। मेरे लिए तो वे सहारा थे। मुख्य वात यह है कि वे मदद करते थे, उसका उनको अहंकार नहीं था।

गीता के वारहवें अध्याय में भक्त के लक्षणों का वर्णन है। उनमें से अधिकांश श्रीमन्‌जी को लागू होते हैं। यहां पूर्ण तो कोई नहीं है। न मैं पूर्ण हूं, न श्रीमन्‌जी पूर्ण थे; पर उनमें भक्त के वहुत-से गुण विद्यमान थे।

ऐसे व्यक्ति को आज हमने खोया है। जाना तो सबको है, इसलिए दुःख क्या करना। लेकिन जो इतनी साधना करके, समत्वबुद्धि से परलोकगमन करते हैं, उनको निःसंशय सद्‌गति मिलेगी।

विनोबा

श्रीमन्‌जी चाहते थे कि मैं काम करता हुआ जाऊं। वैसे ही वे गये, काम करते-करते।

"गीता जयन्ती, मां के पास होगी, मां के पास आयेंगे, तब हार्दिक बातें मां को सुनायेंगे," ऐसा उन्होंने मिलने पर कहा था।

स्थूल शरीर जाता है। आत्मा का आना-जाना नहीं है। तुम्हारा आत्मा विश्वातीत तथा

विश्वव्यापक एक ही आत्मा है। आने-जाने का तो सवाल ही नहीं हो सकता। तो दुःख नहीं करो। पंचभूत का शरीर है। जो रूप जिस मुहूर्त में होना है, वह हुआ। मां, आप मां हैं। धीरज धरो। मां, धर्म जो है, उसके अनुकूल सब कार्य करना। बच्चों के मुंह की तरफ देखकर। अब तुम ही माता-पिता, एक आधार हो, इसलिए तुम अपना शरीर स्वस्थ रखो।

दुःख नहीं करना है। वह ईश्वर के सेवक थे। चरणों में सेवा के लिए ईश्वर ने बुला लिया।

आनन्दमयी माता

श्री श्रीमन्नारायण एक प्रबुद्ध चिंतक, विनम्र स्वभावी नीति-निष्ठ और शील-सम्पन्न व्यक्ति थे। गांधीजी के सहवास से उनके व्यक्तित्व का निर्माण हुआ था। वे राजनीति में रहते हुए भी राजनैतिक छिछलेपन से अलिप्त रहे। ज़ब उनके चले-जाने से सारा राष्ट्र दुःखी है, तब बहन मदालसा का संतप्त होना स्वाभाविक ही है, किन्तु मैं उनकी वैचारिक गंभीरता एवं मानसिक दृढ़ता से भलीभांति परिचित हूं। वे स्वर्गीय श्री श्रीमन्नारायणजी के आदर्श विचारों और नैतिक तथा चारित्रिक उत्थान-संबंधी कार्यक्रमों में जिस प्रकार उनके जीवन-काल में सहयोगी रहीं, उसी प्रकार उनके दिवंगत होने पर भी उन विचारों और कार्यक्रमों को आगे बढ़ाती रहेंगी।

आचार्य तुलसी

भगवान ने उनके बारे में जो सोचा होगा वह कल्याणमय ही होगा, ऐसा मानता हूं। भगवान की कृपा निराली है। अंतिम क्षण में भी उन्हें कोई वेदना नहीं हुई, यह भी भगवान की कृपा समझनी चाहिए।

उन्होंने जीवन-भर निष्ठापूर्वक सत्कार्य किये। गत अक्तूबर मास में यहां आये थे तब बातचीत हुई थी। वह दृश्य अब भी मेरी आंखों के सामने है।

रविशंकर महाराज

इस दुःख में संवेदना स्वीकार करें।

शिवाजी भाव

श्रीमन्नारायणजी ने अपने समस्त जीवन को सारे राष्ट्र के लिए ही नहीं, बल्कि भारत के जरिये समूचे गांधी-विचार के लिए सोच-समझकर अर्पित कर दिया था। अपने प्रभु-परायण माता-पिता के प्रबल सुसंस्कार की विरासत उन्हें मिली। फिर गांधीजी के पांचवें पुत्र श्री जमनालालजी बजाज, श्वसुर के रूप में मिले। राष्ट्र-सेवा और गांधी-विचार में भक्ति रखने वाली मदालसाबहन सहकर्मिणी के रूप से मिलीं, जिससे 'सोनहिं मिलत सुहागा' वाली कहावत चरितार्थ हो गयी।

सन्त बाल

ईश्वर के बिना एक पत्ता भी नहीं हिलता। सब उसकी मर्जी से ही होता है। वैसा ही

श्रीमन्नारायणजी का हुआ। इस प्रकार वह हमें छोड़कर गये। वर्धा का भूषण गया, काकाजी गये, कमलनयनजी गये।

सावजी महाराज, वर्धा

श्रीमन्‌जी के देहावसान से एक सच्चा देशभक्त और लगनशील रचनात्मक कार्यकर्त्ता छिन गया है।

आचार्य कृपालानी

श्रीमन्‌जी की आकस्मिक मृत्यु का समाचार सुनकर सन्न रह गया। उनके निधन से राष्ट्र की, विशेषकर रचनात्मक जगत की भारी क्षति हुई है।

जयप्रकाशनारायण

मैं श्रीमन्‌जी का कितना वर्णन करूं। यदि श्रीमन्‌जी रहते और मदालसा न रहतीं तो मैं श्रीमन् में मदालसा को भी देखता। अब ईश्वर से यही प्रार्थना है, कि मैं श्रीमन् के अभाव में श्रीमन् को मदालसा में देख पाऊं।

दादा धर्माधिकारी

Shri Shriman Narayanji was an outstanding educationist, social reformer and an ardent Gandhian. He was "an extraordinary amalgam of scholarship and humility." I would like you to know that our thoughts are with you in your bereavement. My wife joins me in conveying deepest sympathies and heartfelt condolences to you and the members of your family in this hour of grief.

N. SANJIVA REDDY
President of India

श्री श्रीमन्नारायण उत्साही देशभक्त थे। उन्होंने महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता-संग्राम में भाग लिया था। वे एक निष्ठावान गांधीवादी थे। मैं उनकी दिवंगत आत्मा की सद्‌गति के लिए प्रार्थना करता हूं और शोक-संतप्त परिवार के प्रति हार्दिक संवेदना प्रकट करता हूं।

बा. दा. जत्ती
उपराष्ट्रपति, भारत सरकार

श्री श्रीमन्नारायण के अचानक निधन से मुझे गहरा दुःख हुआ है। उनका महात्मा गांधी द्वारा ग्रामीण उत्थान के लिए चलाये गये रचनात्मक कार्यक्रम के साथ निकट का सम्बन्ध था। उनके पश्चात् उन्होंने अनेक प्रकार से पूर्ण निष्ठा के साथ देश की सेवा की और अपने त्याग और सज्जनता द्वारा ख्याति प्राप्त की। मैंने एक मूल्यवान साथी और देश ने सुयोग्य सेवक खो दिया है।

मोरारजी देसाई
प्रधानमंत्री, भारतसरकार

His contribution to the freedom struggle and subsequently in the field of political administration and economic planning in free India will constitute an important chapter in the history of the country. His steadfastness in the pursuit of the ideals of truth, non-violence and democracy were a shining example to all his countrymen. Particularly at this juncture when some of the distortions which have crept into our economic and social programmes are sought to be corrected, his opinion would have been invaluable.

JAGJIVAN RAM
Union Defence Minister, Government of India

श्री श्रीमन्नारायण के निधन से सार्वजनिक जीवन की गहरी क्षति हुई है। वे गांधीवादी विचारक और बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे।

अटलबिहारी वाजपेयी
केन्द्रीय विदेशमंत्री, भारत सरकार

Please accept my heartfelt condolences.

P. C. CHUNDER
Union Education Minister

पं० जवाहरलाल नेहरूजी के नेतृत्व में उन्होंने कांग्रेस के महासचिव पद पर और बाद में नेपाल के हमारे राजदूत और गुजरात के राज्यपाल के रूप में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। वे योजना आयोग के सदस्य भी रहे। वहां रहकर उन्होंने हमारी योजनाओं को समाजवादी स्वरूप देने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न किया। उनका निधन एक अपूरणीय क्षति है।

हेमवती नन्दन बहुगुणा
केन्द्रीय पैट्रोलियम तथा रसायन मंत्री

In him we have lost a great social worker, educationist and economist.

MOHAN DHARIA
Union Minister of Commerce, Civil Supplies & Co-operation

Shri Shriman Narayan was one of the architects of Indian economy.

D. S. GULSHAN
Union Minister of State for Education & Social Welfare

He was a true Gandhian to the hilt, a great freedom fighter, a very able thinker and administrator. His demise is a great loss to the nation.

G. D. TAPASE
Governor, Uttar Pradesh

I had known him from my school days and had always held him in high esteem. His life of dedication and service to the country and the pursuance of the Gandhian ideals is a glorious example for many of our countrymen to follow.

GOVIND NARAIN
Governor, Karnataka

The country has lost a noted Gandhian thinker, an educationist and a versatile personality. He lent lustre and dignity to whichever office he held in his long and distinguished career, particularly in the fields of education, politics, diplomacy and administration.

K. K. VISWANATHAN
Governor, Gujarat

Our relations dated back to 1930. His death is a national loss, but for me it is very much a personal loss as well.

L. P. SINGH
Governor, Assam

The death of Shri Shriman Narayanji has created a void which cannot be easily filled. He worked with perseverance and zeal for implementing Gandhian ideals. His immense faith in constructive work has been a source of inspiration to all those who worked with him. I count Shriman Narayanji as one of the ablest interpreters of Gandhian teachings on different subjects. It is a matter of satisfaction that the Sasta Sahitya Mandal proposes to bring out a publication, highlighting the services and sacrifices of Shriman Narayanji. It is a worthy endeavour and I welcome it. I had the pleasure to have worked with him in Gujarat for 5 years on numerous ocassions.

PRABHUDAS B. PATWARI
Governor, Tamil Nadu

It is a personal loss to me and my wife. May God give you strength and courage to bear this irreparable loss with fortitude.

SADIQ ALI
Governor, Maharashtra

श्रीमन्‌जी को मैंने अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री और खादी आयोग के सदस्य के नाते पहचाना है। करीब ४० साल पहले इस देश में गांधी-विचार के अनुरूप योजना बनाने वाले सर्वप्रथम वे ही थे। गांधी-विचार का इनके जीवन पर बड़ा गहरा असर था। नई तालीम का उन्होंने हमेशा समर्थन किया। रचनात्मक कार्य की परिपूर्ति ही स्वराज है, इस गांधी-विचार का वह प्रतिपादन करते थे। हर हालत में उन्होंने गांधी-विचार की दृष्टि से देश का विकास करने का प्रयत्न किया। गुजरात के राज्यपाल थे, तब उनका प्रयास था कि गांधी-विचार सर्व-स्वीकृत बनें और मदालसाजी और उन्होंने मिलकर इस प्रदेश के दीर्घकालीन आयोजन और सर्वांगीण प्रगति का चित्र खींचा था।

बाबूभाई ज० पटेल
मुख्यमंत्री, गुजरात

श्री श्रीमन्नारायण का निधन एक अपूरणीय क्षति है। उनके जाने से भारत ने एक महान गांधीवादी, अर्थशास्त्री, शिक्षाशास्त्री और आदरणीय सर्वोदय नेता खो दिया है।

कर्पूरी ठाकुर
मुख्यमंत्री, बिहार,

श्री श्रीमन्नारायण एक सच्चे गांधीवादी, विचारक, अर्थशास्त्री तथा साध्य और साधन की एकता में विश्वास करने वाले राजनीतिज्ञ थे। उनका जाना असामयिक और बड़ा ही दुःख-दायी है।

वीरेन्द्रकुमार सकलेचा
मुख्यमंत्री, मध्यप्रदेश

Shriman Narayan was one of the stalwarts of freedom struggle and under the influence of Mahatma Gandhi identified himself with the cause of the teaming millions of India. Education was his main field of interest and he was one of the chief architects of education as formulated by the Father of the Nation. His last major public engagement was holding of the National Education Conference in which important formulations regarding the reconstruction of educational system were taken. In his death India has lost an eminent scholar and myself a valued friend and colleague.

SHEIKH MOHD. ABDULLAH
Chief Minister, J. K. State

श्री श्रीमन्नारायण वास्तव में सच्चे गांधीवादी थे। उनके देहावसान से इस देश की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति असंभव है।

जगदम्बीप्रसाद यादव
राज्य मंत्री, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण विभाग

दुःख की इस घड़ी में मेरी हार्दिक समवेदना स्वीकार करें और परिवार के सभी लोगों तक मेरी यह भावना पहुंचाने की कृपा करें।

सतीश अग्रवाल
राज्य वित्तमंत्री

Sixty-six years is not an age to die. I did not know if he had any ailment. Please know that your grief is shared by a very large number of his friends and admirers. He has done excellent selfless work in his life time. We rarely come across good people of his type.

S. K. Patil

श्रीमन्जी का हमारे सार्वजनिक जीवन और विशेषकर गांधी-विचारधारा में असाधारण योगदान रहा। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के महासचिव के रूप में, नेपाल में भारतीय राजदूत के रूप में, गुजरात के राज्यपाल के रूप में तथा एक बुद्धिजीवी और मित्र के रूप में उनका सुलझा और संतुलित कार्य चिरस्मरणीय रहेगा।

कर्णसिंह

As you know, my association with him goes back for more than three decades and I have always valued his friendship and entertained both respect and affection for him. It is really a tragedy that he should have been called away by God at this critical juncture in our national history, when he was trying to do something positive and constructive about the re-structuring of our educational system.

Both my wife and I send you our deepest condolences in your bereavement and pray God that he might give you the strength to put up with this loss.

V. K. R. V. Rao, *Bangalore*

श्रीमन्नारायण देहरूप से अब हमारे बीच में नहीं हैं, मगर उनका स्पंदन-चैतन्य बना है। उसके स्मरण मात्र से काम सफल होंगे, यह सच है। मुझे उन-जैसा मित्र मिला, यह मेरा भाग्य है। अस्तु कालाय तस्मै नमः।

अप्पासाहेब पंत

Shriman Narayan has been our most reliable guide and staunch supporter for many, many years. Especially during the dark days of the emergency he stood by us and showed us the way and gave us the strength to walk straight.

K. Swaminathan

His Majesty the King has commanded me to convey you that he is deeply grieved to learn the sad demise of your husband, former Ambassador Shrimannarayanji. His Majesty has further commanded me to convey condolences to you and other members of the bereaved family.

VEDANAND JHA
Ambassador Royal Nepalese Embassy, New Delhi

Heartfelt condolences to you and your family on the sad demise of your husband.

QUEEN MOTHER RATNA
Kathmandu

I am extremely grieved to learn of the sad news of the passing away of your husband. Please accept my heartfelt condolences. I pray for the eternal peace for the departed soul.

KIRTI NIDHI BISTA
Prime Minister, Nepal

Deepest condolences.

MENON
Indian Ambassador at Nepal

He acquired great reputation not only in the field of politics, but also in the field of economics and literature. He was a great Gandhian scholar who lived up to the ideals of Mahatma Gandhi and demonstrated to the world how pure and simple life can be led in the midst of a complex society.

P. N. BHAGWATI
Judge, Supreme Court of India

It was all over so sudden and, therefore, the shock is highly distressing. Pray God give you consolation. My heartfelt sympathies and condolences to you and your family.

GHANSHYAMDAS BIRLA

I was associated with Shrimanji over the years, as a Trustee of the Gandhi Smarak Nindhi. I know his loss will be greatly felt. On behalf of my colleagues in Tatas and myself, I extend to you and the other members of the family our deepest sympathy in your bereavement.

J. R. D. TATA

Kindly accept my deep sympathies in your bereavement and convey the same to the members of your family.

KASTURBHAI LALBHAI

I am well aware of your (Ram Krishna Bajaj) close ties with him, not only as a member of the family but sharing his Gandhian views and his thought as a versatile personality. I am sure, his memory will long be cherished as a great freedom fighter and an eminent nationalist.

NAVAL H. TATA

In his death India has lost a distinguished statesman, scholar and an educationist.

S. P. GODREJ

देश की शिक्षानीति, अर्थनीति और राजनीति में उनका मूल्यवान अवदान है। उनके अभाव की पूर्ति निकट भविष्य में संभव नहीं दीखती।

सीताराम सेक्सरिया

Shocked to hear sudden untimely passing away of my dear colleague and well-wisher Shrimanji, whom I closely knew for years.

RAMKUMAR BHUWALKA

Shocked beyond imagination at sudden passing away of Shriman Narayan. He was a great person in every sense. His services to the country will ever be remembered.

RAMNATH PODDAR

उनके चले जाने से देश को बहुत क्षति हुई है। तुम्हारे व्यक्तिगत दुःख का तो कोई अंदाज ही नहीं लगाया जा सकता। मैं जानता हूं कि तुम समझदार और हिम्मतवाली महिला हो। भगवान से मेरी प्रार्थना है कि तुम्हें इस क्षति को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करे।

प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका

श्रीमन्जी के आकस्मिक निधन का समाचार सुनकर मार्मिक वेदना हुई। वह देश के महान पुरुष थे। उनके निधन से राष्ट्र की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति होना कठिन है।

मंगतूराम जैपुरिया

गांधीजी ने श्रीमन्‌जी को शिक्षा का काम सौंपा था; वे उसे आखिरी दम तक करते रहे। हम अपने स्कूल में श्रीमन्‌जी की तस्वीर इसलिए लगा रहे हैं कि शिक्षकों और विद्यार्थियों के सामने कभी किसी काम में मायूस न होने वाला आदर्श रहे। टूटे हुए दिलों को जोड़ने वाला सबके सामने रहे।

एम० ए० बेग

श्रीमन्नारायणजी एक कुशल शासक और राजनैतिक के साथ-साथ साहित्यिक और अत्यंत मिलनसार व्यक्ति थे। उनकी गो-पालन और गोरक्षा में विशेष रुचि थी। उनसे समय-समय पर हमारी भेंट हुआ करती थी। उनके मधुर वार्त्तालाप सर्वदा अविस्मरणीय रहेंगे।

हनुमानप्रसाद धानुका

When Madalsa became a mother and came to stay with Gandhiji at my Sodepur Ashram with her two boys, Gandhiji would play with them, "come up Agrawal, come up you पीछे वाल !" Mother Jankidevi, God is putting you to sever tests—you will not break down, I know.

SATIS CHANDRA DAS GUPTA

ईश्वर ने तुम्हारे परिवार पर यह तो एकदम असह्य आपत्ति का पहाड़ ही गिरा दिया। किन्तु वे देश के सर्वोदय कुटुंब के लिए भी उतने ही अपने थे। तुम समझदार, ज्ञानी और अनुभवी हो, इसलिए अधिक क्या लिखूं।

जुगतराम दवे

He was a very dear friend for me and I had a great regard for him. Besides he was such a great help to Acharya Vinoba Bhave and a dedicated worker for our country.

RUKMINI DEVI ARUNDALE

Shocked to hear Shrimanji's sudden demise. We share the grief.

ANNA SAHEB SAHASRABUDDHE
Sewagram, Wardha

आचार्य श्रीमन्नारायण के जीवनादर्श थे गुरुदेव और गांधीजी। गांधीजी का जीवन मंत्र था सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम्। गुरुदेव का जीवन-मंत्र था सुंदरम्, शिवम्, सत्यम्। दोनों का मिलाप हुआ शिवम् के तीर्थ पर।

गुरुदयाल मल्लिक

जमनालालजी और कमलनयन के जाने के बाद बजाज परिवार को यह तीसरा धक्का

लगा है। तीनों मृत्यु आकस्मिक हुई हैं। पहले दोनों समय तुम मां को धीरज बंधाती होगी। अब तुमको धीरज बंधाने के लिए बूढ़ी मां के सिवा कौन है! तुम स्वयं धीरज रखोगी। विनोबा की शिष्या और वेदान्त का अध्ययन करने वाली तुम, जो आफत आ पड़ी है, उसे धीरज से सहन करोगी, ऐसी आशा है।

अमृतलाल नानावटी

Shriman Narayan sacrificed everything and rendered yeomen services to the nation. He was a great son of India indeed.

V. V. GIRI

अंतिम क्षण में उनके पास न होने की बात तुझे कचोट रही होगी। मगर क्या हो सकता है। तू तो रोज गीता-पाठ, प्रार्थना करती है। फिर विनोबा में श्रद्धा है। पूरे जीवन में जितना किया, क्या जाने भगवान ने उसकी परीक्षा लेना ही विचारा हो।

जानकीबहन का ध्यान मन में आता है। पहले भगवान ने बेटा ले लिया और अब बेटे जैसे जमाई को बुला लिया।

मणिबहन पटेल

श्री श्रीमन्नारायण से मेरी वर्धा के कारण तीस बरसों से पारिवारिकता थी। वे स्वतंत्रता के पहले के जमाने में गांधी विचारानुसार अर्थशास्त्र के शायद प्रथम व्याख्याता कहे जायेंगे। उन्होंने इसी विचार के आधार पर 'योजना' का स्वरूप खड़ा किया। व्यक्ति को केंद्र मानकर ही बेकारी की समस्या का हल हो सकता है, यह उन्होंने स्पष्ट किया। शिक्षा के बारे में भी उन्होंने गहराई से सोचा और उसके अमल की प्रक्रिया सामने रखी। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा का प्रयोग कितना सफल हो सकता है, यह उन्होंने करके दिखाया।

मेरा और कुसुम का यह भाग्य है कि हम दोनों को उनका प्रेम और मार्गदर्शन मिलता रहा और हम उससे लाभान्वित हुए।

मधुकर राव चौधरी
राजस्व मंत्री, महाराष्ट्र

श्रीमन्नारायण एक विख्यात स्वतंत्रता संग्राम सेनानी थे। भारतीय कांग्रेस समिति में महासचिव के रूप में उनका काम अत्यंत स्मरणीय था। उन्होंने अपने जीवन में लाखों लोगों को गांधीजी के आदर्शों के अनुसार चलने की प्रेरणा दी।

महंत लक्ष्मीनारायणदास

I had met Shri Shrimannarayanji more than once before he become the Governor of Gujarat, during his Governorship and thereafter. I was impressed by his quiet dignified manners and sincerity.

SHANTILAL H. SHAH

गरीबों के लिए उनके हृदय में आत्मीयता और सद्भाव था और खादी तथा ग्रामोद्योग के विषय में उनके मन में अविचल निष्ठा थी। लोककल्याण के लिए उनके मन में तीव्र तड़प थी। वे प्रथम श्रेणी के अर्थशास्त्रज्ञ थे और विकेंद्रित अर्थव्यवस्था के बारे में उनके जो विचार थे, वे स्मरणीय तथा अनुकरणीय हैं। उनके निधन से महाराष्ट्र के तथा देश के सार्वजनिक जीवन को अत्यंत बड़ी क्षति पहुंची है।

वि०स० पागे

आप दोनों अपने-अपने ढंग से परिवार और राष्ट्र के उत्थान का काम कर रहे थे। परस्पर एक-दूसरे का उत्साहवर्धन करते थे। प्रभु से प्रार्थना है कि वह आपको अधूरे काम पूरा करने की शक्ति दें।

बबलभाई मेहता

तेरा दुःख मैं समझ सकता हूं। पूज्य बाबा के सान्निध्य में और मां के पास धैर्य बंधेगा ही। मां ज्ञानी हैं। फिर भी संसार में बैठे हैं, दुख तो होता ही है। राजस्थान के सब कार्यकर्ता शोकग्रस्त हैं।

गोकुलभाई भट्ट

बहुत आघात लगा। विपत्ति में धीरज रखकर सबका धीरज बढ़ाना।

सिद्धराज ढड्ढा

आज भी गांधीजी के अधूरे काम को पूरा करने, देश को उनकी कल्पना के अनुसार राजनैतिक के बाद आर्थिक और सामाजिक सच्चे स्वराज्य की ओर ले जाने के लिए त्याग, बलिदान और क्रांतिकारी कार्यक्रम की आवश्यकता है। श्री श्रीमन्नारायण स्वयं उसमें लगे थे और रचनात्मक कार्यकर्त्ता-शक्ति को उस ओर मोड़ने के लिए प्रयत्नशील थे। उस काम को आगे बढ़ाना ही उनका सही पुण्य-स्मरण होगा।

पूर्णचंद जैन

हम सबने बड़ी तीव्रता से अनुभव किया कि भाई श्रीमन्जी के यों अचानक चले जाने से न केवल आपकी और आपके विशाल परिवार की ही, बल्कि समूचे देश की और मानवता की अपरिमित क्षति हुई है। बापू, बाबा और काका ने हमें मौत को मित्र समझने और उसके साक्षात्कार से विचलित न होने की सीख सदा दी है। इस विचार की ऊंचाई, गहराई और सचाई को मानते हुए भी हम अपनी मानवता और मानव होने के नाते सुख-दुःख के सहज आवेगों को कैसे दबा सकते हैं।

काशिनाथ त्रिवेदी

मेरा शरीर यहीं है, पर मन तुम्हारे पास है। तुम समझदार हो और धीरज वाली हो। गीता कंठस्थ है (और हृदयस्थ भी)। मेरी गति तो 'घायल की गति घायल जाने' वाली है ही।

भागीरथी उपाध्याय

वृद्ध माताजी अपने दामाद को 'धर्मराज' कहती थीं। असल में वे ऐसे ही थे।

महादेवीताई

यह ऐसी घड़ी है, जिसमें कौन किसको संवेदना दे, यह दुःख सबको शोकाकुल बनाये हुए है। हम सभी शोक-संतप्त हैं फिर भी यह असहनीय वज्रपात मदालसाबहन के लिए कितना दुःखद है, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।

विचित्रनारायण शर्मा

उनकी देश को बड़ी जरूरत थी, परन्तु अब तो तुम्हें उनके शेष रहे कार्य में रत होकर ही संतोष मानना होगा।

रामनारायण चौधरी

जिन्होंने बापू और बाबा की बात ले जाने का काम किया सब ओर,
सर्वोदय और सरकार के बीच बांधा सेतु,
संस्थाओं और रचना में लगे साथियों से स्नेह तंतु संजोये जीवन भर,
राष्ट्रभाषा, अर्थशास्त्री, तालीम और कुदरती इलाज,
सभी गांधी कार्यों के बिरवों को सींचा अपनी ज्ञान-शक्ति-भक्ति से,
व्यवस्थित मृदुता और शालीनता के गुणों को प्रकाशित कर,
वे सदा को सुगंधित कर गये उपवन यह !

देवेन्द्रकुमार गुप्ता

कितनी खूबियों के मालिक थे वे ! जो एक बार उनसे मिल लेता, उनके व्यक्तित्व और खुलूस से प्रभावित हुए बगैर नहीं रह सकता। उनकी अच्छाइयां और खबियां हमेशा जिन्दा रहेंगी और हमें हमेशा उनकी याद दिलाती रहेंगी।

खालिदा मतीन

बुद्धिवादी क्षेत्र में उनकी वक्तृत्व-शक्ति का प्रभाव विद्युत समान पड़ा। शिक्षा वर में सारग्राही तत्व दे गये, जो चिंतन-मनन के लिए पाथेय है।

उन्होंने हमें प्रौढ़ शिक्षा और बालवाड़ी के लिए संकेत दिया था। कुछ थोड़े परिमाण में सेवाग्राम में किया है। वह तो नहीं देख सके, मगर जो किया, वह यहां के लोगों को बहुत भाया है।

गुरुनिष्ठा उनकी अपूर्व थी। उनके आदर्शों पर अटल रहकर स्वयं स्वतंत्रता की शिक्षा पाई, उनके अनुरूप साथियों को स्वतंत्रता के पथ पर अग्रसर होने में मदद दी। उनका सख्यभाव

सराहनीय था। जो बीज बोया, वह सदा फूले-फले और देश समृद्ध बने, ऐसी प्रभु से कामना की याचना करता हूं।

अनंतरामभाई

श्रीमन्‌जी की बापू और विनोबा की भक्ति अवर्णनीय थी। उस कारण उनमें उनके गुणों का दर्शन होता था। आश्रम के सद्‌भाग्य से श्रीमन्‌जी दस साल हमारे अध्यक्ष रहे। उस दरमिआन उनकी नम्रता, विवेकशीलता, उदारता, कुशलता आदि का दर्शन हुआ। हमें उनके कुशल मार्ग-दर्शन से बहुत निश्चितता रही।

माता-पिता, जमनालालजी, श्री कृष्णदास जाजूजी, पूज्य किशोरलालभाई, आदि संतों का सत्संग उनको बहुत मिला, उससे वे उनके समान बनते गये। सामाजिक उपयोगी उत्पादक श्रम द्वारा बच्चों के सर्वांगीण विकास की शिक्षा उनको अत्यन्त प्रिय थी। इसी काम में भागीरथ प्रयत्न करते-करते उन्होंने अपना बलिदान दिया।

नेपाल में भारत के राजदूत थे तब नेपाल के महाराजा को भारत दर्शन करवाया, सेवाग्राम आश्रम में लाये। नेपाल भारत के प्रेम-सम्बन्ध बनाने में सहायक बने।

अनेक कार्यकर्ताओं का संग्रह किया, उनके विकास में प्रेरणारूप बने। उनपर प्रेम किया।

गुजरात के राज्यपाल थे तब रोज पिसाई करते थे, नियमित सूतकताई करते थे। अंबर चरखा से बेकारों को रोजी-रोटी दी। सबसे मधुर संबंध रखकर अपनी कुशलता का लाभ राज्य को दिया।

चमनलाल

दीनबंधु एन्ड्रयूज पर एक पुस्तक मार्जरी साइक्स ने निकाली थी। उसमें उनकी समस्त रचनाओं का सार था। वैसी एक पुस्तक श्रीमन्‌जी पर भी हो। बीस-पच्चीस पृष्ठों में जीवन-चरित्र, शेष लगभग तीन सौ पृष्ठों में उनके ग्रंथों का निचोड़।

बनारसीदास चतुर्वेदी

उन्होंने बीच रास्ते में ही अपना डेरा उठा लिया। सब ओर अपनी सुगंध फैलाई। विभिन्न प्रकार के तनावों के बीच में खड़े रहे—बापू की बात को पकड़कर। प्रार्थना में से बल पाने के सिवा हमारे हाथ में क्या है ? माताजी की स्थिति देखिए। रोगिणी की तरह वे जी रही थीं। वहां कमलनयन भाई चल बसे, और अब यह आघात।

उमाशंकर जोशी

व्यवस्थित बुद्धि के सब गुण रखते हुए भी श्रीमन्‌जी की आस्था कहीं रुककर नहीं रह जाती थी; उससे ऊंची ऊंचाइयों और गहरी गहराइयों के प्रति भी उनकी प्रतिभा अभिमुख रहती थी। निर्देशक, प्रबंधक, योजक, संयोजक के साथ वे सर्जक भी थे और यह संयोग विरल होता है।

जैनेन्द्रकुमार

श्रीमन्‌जी के व्यक्तित्व में प्रशासक, विद्वान् और साधु पुरुष के गुणों का अपूर्व समन्वय था। वे एक प्रकार से राजर्षियों की कोटियों में आते हैं। उनके निधन से राष्ट्र, शिक्षा और साहित्य-जगत की महान क्षति हुई है।

डॉ० नगेन्द्र

बन्धुवर श्रीमन्नारायण जी को मैं करीब आधी सदी से अच्छी तरह जानता था। चालीस साल पहले वे लाहौर में मेरे मेहमान रहे थे। उनके समान निःस्वार्थ और ईमानदार कार्यकर्ता विश्वभर में अत्यंत दुर्लभ है।

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

क्षेत्र तो एक ही आरंभ हुआ था।
'रोटी का राग' पहली कविता पुस्तक थी।
फिर शिक्षा राजनीति, शासन, समाजसेवा,
कई क्षेत्रों में उन्होंने काम किया;
मुझे याद रखते रहे,
अपने प्रकाशन समय-समय पर भेजते रहे,
बजाज ट्रस्ट स्थापना के अवसर पर
दिल्ली में अंतिम दर्शन।
फिर बुलावा आ गया...
'हानि लाभ जीवन मरण
जस अपजस विधि हाथ।'
परमात्मा उनकी आत्मा को अपनी शरण में ले और
आपको और परिवार के सब सदस्यों को
यह अनिवार्य वियोग सहने की शक्ति दे—
पुत्र ऐसे कार्य करें कि पिता की आत्मा को शांति मिले।

जीवन का जो भी क्षेत्र उन्होंने अपनाया, उसमें वे अपना कवि-हृदय दे गये।

कवि की विशालता, उदारता, मृदुता, मधुरता उनसे कभी न छूट सकी, उससे वे सर्व-सुहृद बने रहे।

उनकी स्मृतियां बहुतों के लिए प्रेरक सिद्ध होंगी।

हरिवंशराय 'बच्चन'

अचानक वज्रपात-जैसा समाचार पाकर स्तब्ध रह गया। आप गांधीजी और विनोबा के सान्निध्य में बड़ी हुई हैं। मृत्यु को मित्र मानकर अपने को संभालेंगी।

विष्णु प्रभाकर

श्रीमन्‌जी रचनात्मक-क्षेत्र तथा राजनैतिक-क्षेत्र के बीच की एक शक्तिशाली कड़ी थे। वे बड़े-से-बड़े राजनेता के जितने निकट थे, उतने ही आम रचनात्मक कार्यकर्त्ता के निकट भी थे। श्रीमन्‌जी गुजरात के राज्यपाल-पद से मुक्त होने के बाद 'गांधी स्मारक निधि' में आये और निधि के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने संस्था में नये प्राण फूंक दिये। एक अल्प-सी अवधि में 'गांधी स्मारक निधि' की विभिन्न प्रवृत्तियां सक्रिय हो उठीं। उनका कर्म में गहरा विश्वास था और कर्त्तापन की भावना नहीं थी।

यशपाल जैन

धरती माता सैंकड़ों वर्षों में कभी ऐसे सपूत को जन्म देती है। वह हमेशा प्रकृतिस्थ रहते थे। उनकी मुखमुद्रा में, भाव-भंगिमा में, बोलचाल में, चाल-चलन में कभी किसी प्रकार की विकृति देखने में नहीं आती थी। गीता में स्थितप्रज्ञ के जो लक्षण मैंने पढ़े, उनको मैंने उनके व्यक्तित्व में प्रत्यक्ष देखा है। यह विधि का विधान है कि उनको इतने ही वर्ष इस धरातल पर रहना था।

पांडुरंग राव

सो हमारा प्यारा भाई ईश्वर की गोद में जाकर वसा। ईश्वर के आगे सिर झुकाना पड़ता है। उनकी मीठी याद तो सदा रहेगी ही।

आनंद टी० हिंगोरानी

उनके जैसा अन्य महान देश-सेवक देखने में नहीं आता।

बेधड़क बनारसी

आयु में वह मुझसे छोटे, परन्तु दर्जे में वहुत बड़े थे। मैं उनसे प्रेरणा लेता था। भारत से एक सच्चा गांधीवादी चल वसा, जिसकी कमी पूरी नहीं की जा सकेगी। बेचारा मनुष्य क्या कर सकता है। हरि भावे सो होय।

गोपीनाथ अमन

उनके जाने से वर्धा सूना हो गया। मेरे लिए तो श्रीमन्‌जी प्रकाश-स्तम्भ थे।

उमाशंकर शुक्ल

ज्ञान के साथ राम जोड़ें तभी कल्याण हो सकता है। ज्ञान के साथ राम को जोड़नेवाला तत्त्व श्रम ही है। श्रीमन्‌जी जनता के लिए इसी प्रकार की शिक्षा देना चाहते थे।

दौलतसिंह कोठारी

समस्त भारत उनका कुटुम्ब था। तुम्हारे दुःख में लाखों लोग साथ हैं।

लालजी मेहरोत्रा

मृत्यु तो जन्म से ही साथ हो लेती है और अन्त में आगे आ जाती है। संसार किसी का नहीं रहा। श्रीमन्जी जैसे पुण्यात्माओं का तो ईश्वरतत्त्व में समावेश होता है, जो अन्तिम सत्य है।

वेणीशंकर झा

आमतौर पर लोग पुत्र को गोद में लेते हैं। मेरे पिताजी ने कुछ अलग ही ढंग से गांधीजी को अपना पिता बनाया। वे गांधीजी के पांचवें पुत्र बने, इसे सब जानते हैं। श्रीमन्जी ने भी वही परंपरा निबाही। उन्होंने अपनी भावना शब्दों में तो कभी प्रकट नहीं की, पर चुपचाप ही अपने कामों से वे जामाता की जगह जमनालालजी के पुत्र बन गये।

पूज्य पिताजी के अधूरे छूटे हुए कामों को श्रीमन्जी ने केवल उठा ही नहीं लिया, उन्हें बखूबी और पूरी लगन के साथ आगे बढ़ाया। वर्धा में जितनी छोटी-बड़ी संस्थाएं थीं, वे सबका मार्ग-दर्शन करने लगे। यहां तक कि पूज्य बाबा उन्हें एक सहारे की तरह देखने लगे। पूज्य माताजी तो कहती ही हैं कि श्रीमन्जी ने उनके लिए जो कुछ किया, वैसा लड़कों ने भी न किया होगा। कमलनयनजी और मेरे लिए भी वे भाई ही अधिक थे। खासकर मुझे तो हर कठिनाई में उनका मार्ग-दर्शन मिला।

शिक्षा-मण्डल, गीता-प्रतिष्ठान, जमनालाल-फाउंडेशन, विश्वनीडम् या वर्धा की पिताजी से संबंधित सभी विधायक संस्थाओं की पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर उन्होंने बजाज-परिवार को निश्चिन्त कर दिया था।

पूज्य पिताजी ५३ वर्ष की उम्र में चले गये थे। फिर भाई कमलनयन भी कम उम्र में ही चले गये। अब यह तीसरा आघात परिवार पर हुआ है। इससे जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति करना असंभव ही दीखता है। मैं चारों तरफ नजर दौड़ाता हूं मगर कोई व्यक्ति ऐसा दिखाई नहीं देता, जो उनकी जगह ले सके—ऐसा व्यक्ति जिसपर रचनात्मक सर्वोदय कार्यकर्ताओं का भी विश्वास हो और जिसका सरकार में फिर चाहे वे मंत्रिगण हों, चाहे अधिकारीगण, सब पर एक-सा असर हो।

रामकृष्ण बजाज

आसमान टूट पड़ा हो, ऐसा लगता है।

मगनलालभाई गांधी के अवसान के बाद पूज्य बापूजी ने लेख लिखा। उसमें लिखा था कि मगनलाल की विधवा रहती है—उससे भी मैं मगनलाल के जाने से ज्यादा विधुर बना हूं। उसी तरह श्री श्रीमन्जी के चले जाने से आश्रम और अन्य संस्थाएं विधुर बन गयी हैं।

मगनलालभाई गांधी, जमनालालजी, महादेवभाई, किशोरलालभाई, जाजूजी के अवसान से देश को जो हानि हुई, वैसी ही यह हानि है।

सेवाग्राम आश्रम परिवार

छोटे-बड़े सबसे संपर्क रखकर स्नेहपूर्ण श्रीमन्जी गांधीजी के कार्य में लगे रहे। 'श्री स्नेहेन्

सहजीवनम्' यह उनका आदर्श था। स्नेह, सत्य और शांति, उनके ये विशिष्ट गुण हमें हमेशा प्रेरणा देते रहेंगे।

साबरमती आश्रम, अहमदाबाद

Please accept our deepest smypathy. May God give you strength and peace in your sorrow.

The Theosophical Society, Madras

We mortals can do nothing but bow down to His will with humility. I can quite understand the piercing sorrow you should be feeling. At such a time words of consolation have no meaning. Yet, please allow me to inform you that your loss and your sorrow are shared by the entire Bhavan's family.

S. RAM KRISHNA

Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay

आचार्य श्रीमन्जी ने पूज्य महात्मा गांधी के मार्ग-दर्शन में अपने जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए समर्पित कर दिया था। स्वतंत्रता के उपरांत उन्होंने योजना आयोग के सम्माननीय सदस्य, गुजरात के राज्यपाल, नेपाल के भारतीय राजदूत आदि पदों पर रहकर राष्ट्र की अपरिमित सेवाएं की थीं। वे गांधीवाद के अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के मर्मज्ञ विद्वान और उसके प्रबल पोषक थे। गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रम में संलग्न देश की प्रायः हरएक संस्था उनके मार्ग-दर्शन से लाभान्वित हो रही थी। एक उत्कृष्ट शिक्षाशास्त्री के रूप में उन्होंने उच्चकोटि के प्रचुर साहित्य का भी सृजन किया। अपनी विद्वता तथा स्वभाव की सरलता तथा निरभिमानता के कारण उन्होंने भारत में अपार आदर और स्नेह अर्जित किया। ऐसे अप्रतिम व्यक्तित्व के अभाव में हम एक अपूरणीय क्षति का अनुभव करते हैं।

गोविन्दराम सेकसरिया

श्रीमन्जी के निधन का समाचार पढ़कर नवजीवन के सभी कार्यकर्ताओं को बहुत दुःख हुआ। जिस समय देश को उनकी जरूरत थी, उसी समय ईश्वर ने उन्हें बुला लिया।

जितेन्द्र देसाई

नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद

श्री श्रीमन्नारायणजी का महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये ग्रामोत्थान-सम्बन्धी रचनात्मक कार्य के साथ निकट का सम्बन्ध रहा है। श्रीमन्नारायण ने अनेक उच्च पदों पर रहकर देश की सेवा की तथा अपनी सज्जनता द्वारा भारतवासियों के हृदय में अपना स्थान बनाया। उनके निधन से देश ने महान गांधीवादी अर्थशास्त्री, महान शिक्षाविद् तथा प्रकाण्ड विद्वान खो दिया है।

दिल्ली नगर निगम

साहित्यकारों, पत्रकारों और हिन्दी-प्रेमियों की यह विशेष सभा भारत के प्रमुख हिन्दी-चिन्तक, लेखक, शिक्षाविद्, गांधीवादी विचारधारा के प्रमुख व्याख्याता एवं अर्थशास्त्री श्री श्रीमन्नारायण के असामयिक निधन पर भावपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित करती है। सभी भारतीय भाषाओं की लिपि देवनागरी हो, इसके लिए उन्होंने निरन्तर कार्य किया। उनके निधन से हिन्दी जगत का एक बड़ा नेता, साहित्यकार, पत्रकार और प्रचारक हमसे बिछुड़ गया।

दिल्ली हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नयी दिल्ली

श्रीमन्जी हम सबके लिए प्रेरणा के स्रोत थे और समस्त देश में फैले हुए हजारों रचनात्मक कार्यकर्ता उनसे प्रेरणा प्राप्त करते थे।

रूपनारायण
अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद्, नयी दिल्ली

आदरणीय श्रीमन्जी के आकस्मिक निधन से समस्त राष्ट्रभाषा-परिवार को अत्यंत दुःख हुआ है। समिति का आधार चला गया।

राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, वर्धा

श्री आर्य कन्या गुरुकुल पोरबंदर की समस्त विद्यार्थिन बहनें, गुरुजन तथा कार्यकर्तागण अपने देश के एक कुशल शिक्षा शास्त्री, साहित्यकार, चिंतक, गांधीजी के विचार-दर्शन के सुविज्ञ व्याख्याता और प्रवीण प्रशासक श्रीयुत श्रीमन्नारायणजी के अकाल अवसान पर अतिशय खेद प्रकट करते हैं।

शंकरदेव
श्रीआर्य कन्या गुरुकुल, पोरबंदर

उनके न रहने से वर्धा तो अनाथ हो गया। पूज्य काकाजी के समय यह भावना तीव्रता से महसूस हुई थी। उसके बाद पूज्य बापू और श्रीमन्जी के न रहने पर लगा कि छत्र उठ गया। महिलाश्रम-परिवार विह्वल है।

शांता रानीवाला महिलाश्रम, वर्धा

हृदय की संवेदना व्यक्त करने को शब्द अपूर्ण ही होते हैं। बाबा के श्रीचरणों में रहकर आपने ब्रह्मविद्या की शिक्षा प्राप्त की, आपके सामने तो कुछ कहने का सवाल ही नहीं। वे जीवन में सदा शांत रहे, और अब मृत्यु से चिर शांति में लीन हो गये हैं, तथापि आपका बहुत स्मरण हो रहा है।

सुशीला ब्रह्मविद्या मंदिर, पवनार

Dr. Shriman Narayan was a Member of the First Lok Sabhy during the years 1952-57 representing Wardha constituency of the erstwhile Madhya

Pradesh State. Starting his career as an educationist he founded the Seksaria College of Commerce, Wardha and served as its Principal. Soon he came in contact with Mahatma Gandhi and became his aredent follower and joined the "Quit India" movement. In 1949, he undertook a world tour to propogate the Gandhian ideology. He was the author of several books on Gandhian economics and planning. Throughout his life he remained closely associated with the programmes of constructive work which Gandhiji had started with a view to achieve the regeneration of rural life.

He served the country in various capacities with distinction. He was associated with a large number of educational and other institutions and served as Dean of the Faculty of Commerce in Nagpur University from 1951 onwards. In 1958 he became a Member of the Planning Commission and served in that capacity till 1964 when he was appointed as Ambassador to Nepal. In 1967 he was appointed as Governor of Gujarat and he held that high position till 1973.

He also organised several All India Educational Conferences and rendered yeoman service as President of the Gandhi Smarak Nidhi, an organization with which he remained till his end.

In spite of his distinguished record of service as an educationist, Gandhian thinker, a Parliamentarian, diplomat, administrator, economist and a profolic writer both in Hindi and Enlgish, his life was marked by simplicity and complete absence of estentation. He lent lusture and dignity to whichever office he held in his long and distinguished career.

SPEAKER
Lok Sabha, New Delhi

पूज्य जमनालालजी ने अनोखे रूप से महात्मा गांधी को जिस तरह से अपना दत्तक पिता बनाया था,इसी तरह से श्री श्रीमन्‌जी अपने कार्यों से पू०जमनालालजी के जवांई होते हुए,पुत्रवत् वन गये थे। पूज्य जमनालालजी द्वारा वर्धा में संस्थापित अनेक रचनात्मक संस्थाओं में वह प्रारंभ से ही शामिल हुए और वाद में उनकी स्मृति और उद्देश्यों को अग्रसर करने हेतु शिक्षा मंडल, गीता प्रतिष्ठान, विश्वनीड़म् तथा जमनालाल वजाज फाउण्डेशन आदि जो भी संस्थाएं बनीं, उनमें पूरी जिम्मेदारी संभालकर मार्गदर्शन करते रहे।

युवावस्था से ही वह पूज्य महात्माजी व पूज्य जमनालालजी के सान्निध्य में आये और उन्होंने देश के स्वातंत्र्य आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया। गांधीजी और विनोबाजी ने जो रचनात्मक कार्यक्रम देश के सामने पेश किये, उनके प्रचार और प्रसार में उन्होंने अपना सारा जीवन व्यतीत किया। समाज सेवा, देश-सेवा और राजनीति में उन्होंने अपना विशिष्ट योगदान दिया। वह एक आदर्श शिक्षाविद्, गांधी-विचार के प्रवुद्ध चिंतक, अर्थशास्त्री, साथ ही भारतीय दर्शन और संस्कृति के प्रख्यात उद्‌बोधक थे। उनका स्वभाव अति नम्र और मिलनसार था।

बजाजभवन, वम्बई
१६, जनवरी १६७८

बजाज प्रतिष्ठान

स्वर्गीय श्रीमन्नारायणजी हमारे राष्ट्र के गौरव थे, उनकी देन जो इस देश को है, वह कभी भी नहीं भुलाई जा सकती। भारतीय लोककला-मंडल के प्रति उनका विशेष लगाव था। उनकी प्रेरणा से हमारी संस्था को भी काफी लाभ हुआ है।

देवीदयाल सामर

गांधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों से संबंधित हम सर्वसेवासंघ, गांधी स्मारक निधि, गांधी शांति प्रतिष्ठान, गांधी राष्ट्रीय संग्रहालय, गांधी समिति, गांधीदर्शन समिति, हरिजन सेवक संघ, अखिल भारतीय नशाबंदी परिषद,नई तालीम संघ, कुष्ठ सेवा संघ, अखिल भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा परिषद, नागरी लिपि परिषद, सर्वेंट्स आफ पीपुल्स सोसाइटी, हिमालय सेवा संघ, राजघाट समाधि कमेटी, गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, भारतीय आदिम जाति संघ तथा भारतीय संगम के अतिरिक्त अन्य सभी छोटी-बड़ी रचनात्मक प्रवृत्तियों में लगी हुई संस्थाएं और व्यक्ति डा० श्रीमन्नारायण के आकस्मिक निधन के समाचार से शोक-निमग्न और स्तब्ध रह गये हैं।

डा० श्रीमन्नारायण गांधी विचार और कार्यक्षेत्र के प्रमुख ज्योति-स्तम्भ थे। उनकी प्रखर बुद्धि और सौम्य स्वभाव के कारण हम सब अपनी सभी छोटी-बड़ी समस्याएं उनके सान्निध्य में आश्वस्त भाव से बैठकर सुलझा पाते थे। वे अपने नैष्ठिक जीवन और विचार के अनुसार आचरण की शक्ति से अपने आस-पास और दूर-दूर तक विश्वास का वातावरण निर्मित कर देते थे। इसीलिए उन्होंने अपने प्रारम्भिक कार्यक्षेत्र वर्धा से लगाकर अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं तक अपनी सेवा का विस्तार किया और विभिन्न उच्चतम पदों को विभूषित करके राजनीति तथा रचनात्मक सभी कार्यों में गांधी विचार के सूत्र को जिस कौशल के साथ अनुस्यूत किया, उसकी दूसरी मिसाल नहीं मिलती।

श्रीमन्नारायणजी ने जीवन भर जागृत रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन किया।

दिल्ली-स्थित समस्त रचनात्मक संस्थाएं

A Gandhian to the core and a constructive worker par-excellence, Mr. Shriman Narayan possessed in ample measure certain qualities which are fast becoming uncommon-humility, firmness of convictions and dedication to work. All those who either heard him at public functions or lead the privilege of knowing him personally were impressed by his dignified detachment, his natural reluctance to play to the gallery by making high-sounding pronouncements or to engage in pointless controversies. Through his intensive studies of rural economy and a grasp of the nation's problems he became an authentic exponent of Gandhian economics. Mahatma Gandhi spoke of him as "an extraordinary amalgam of scholarship, sobriety and humility."

Like the Mahatma Gandhi, he was an idealist but had a distinct touch of realism which was the result of a logical and scientific mind. With his power of reasoning and clarity of expression he was able to offer a convincing defence of Mahatma Gandhi's belief that true economics never

militates against the highest ethical standards. Mr. Shriman Narayan was active throughout his life. A few days ago he presided over the National Educational Conference in Delhi and advocated reform of the university examination system. The refreshing approach he adopted carried conviction.

EDITORIAL
The Tribune January 5, 1978

श्रीमन्‌जी कुछ वर्षों से पवनार तथा दिल्ली के बीच एक वार्ता-कड़ी थे, व्यक्तिगत रूप से उनका संबंध देश के सारे उच्च नेताओं से था, लेकिन इन संबंधों का उन्होंने कभी भी व्यक्तिगत लाभ नहीं उठाया। उनका जीवन एक मिशन था तथा उस मिशन को वे चुपचाप ही पूरा करने में जुटे थे। वे अच्छे अर्थशास्त्री थे और गांधीवादी अर्थशास्त्र के विद्वान थे, लेकिन उन्होंने अपनी राय किसी पर कभी नहीं लादी।

उनमें एक कवि हृदय भी था। वह मूलरूप से एक चिंतक भी थे और देश की स्वतंत्रता तथा उसकी पुनर्रचना के प्रति सजग और व्यग्र रहते थे। वे आदर्श-मंडित जीवन के प्रतीक थे और कर्मठता का ज्वलंत उदाहरण थे।

सम्पादकीय, नवभारत, इन्दौर
५ जनवरी १९७८

विविध

उनकी याद में

सतीशचन्द्र दासगुप्त

□□

सन् १९७८ के नये वर्ष की ३ जनवरी को हमारे प्रिय श्रीमन्नारायण की भौतिक काया चली गई। उन्होंने कम उम्र और कम जीवन पाया, लेकिन इतने में ही देश की जो सेवा कर गये, वह अभूतपूर्व है।

श्रीमन्जी का उदय वर्धा के वाणिज्य महाविद्यालय के प्रोफेसर के रूप में हुआ। उस समय यह अपना नाम श्रीमन्नारायण अग्रवाल लिखते थे, किन्तु वाद में उन्होंने अग्रवाल लिखना छोड़ दिया। श्रद्धेय जमनालालजी वजाज ने अपनी बेटी मदालसा का विवाह उनके साथ कर दिया। मदालसा का वचपन और किशोरावस्था में विनोबाजी के मार्गदर्शन में लड़कों की तरह पालन-पोषण हुआ था और पुरुषों की पोशाक में रहने वाली लड़की का हाथ श्रीमन्नारायण के हाथ में पकड़ा दिया गया। मुझे अचरज होता था कि आखिर जमनालालजी ने इस कालेज-प्रोफेसर में क्या देखा कि अपनी वहादुर और मुक्त लड़की का विवाह उससे कर दिया! वाणिज्य कालेज़ का प्रोफेसर एक पढ़ा-लिखा सामान्य व्यक्ति होता है; लेकिन वाद की घटनाओं ने सिद्ध कर दिया कि जमनालाल वजाज का चुनाव अत्यन्त वुद्धिमत्तापूर्ण था।

एक वार गांधीजी सोदपुर आये। हमारी बेटी मदालसा भी अपने दोनों लड़कों के साथ कुछ दिन गांधीजी के साथ विताने आई। एक दिन ऐसा कुछ हुआ कि गांधीजी ने एक हाथ से बड़े लड़के को पकड़ा और दूसरे से छोटे को और यह कहकर उछलने लगे—"चलो आगेवाल! चलो पीछेवाल।" यह खेल सोदपुर आश्रम से सटे जंगल के रास्ते पर हुआ। कुछ ही मिनटों में गांधी-जी की टोली के सामने एक गोखरू सांप फन उठाए सामने से हमारी ओर आया। गांधीजी को देखकर उस गोखरू सांप ने अपना फन नीचा कर लिया और झाड़ियों में चला गया। वह ऐसा गायब हुआ कि हमारे हजार खोजने पर भी वह नहीं मिला। सब जानते हैं कि गोखरू सर्प फन उठाये जंगल में घूमनेवालों का पीछा करता है और अपने दंश से उनके प्राण लेकर ही छोड़ता है।

श्रीमन्जी को कालेज से हटाकर राजनैतिक तथा रचनात्मक क्षेत्रों में काम पर लगा दिया गया। उन्हें जो भी पद मिला, जो भी काम उन्हें सौंपा गया, उसी में उन्होंने यश अर्जित किया। बाद में वह भारत के राजदूत बनाकर नेपाल भेजे गये। हमारी बेटी मदालसा भी उनके साथ गई। उन्होंने वहां अपूर्व सेवा की। जिस समय वह नेपाल में राजदूत थे, डा० प्रफुल्लचंद्रघोष वहां गये और उनसे मिले। उनके हाथश्रीमन्नारायणने मेरे लिए हाथ-कते औरहाथ के बुने कंबल की भेंट भेजी। इतने वर्षों से मैं रात को उसी कंबल का इस्तेमाल करता हूं। वह आज भी उतना ही काम देता है, जितना नया कंबल और वह कम्बल मुझे मेरे प्रति उनके प्रेम से लपेट देता है।

जब वह गुजरात के राज्यपाल बने तो उन्होंने निजी सुरक्षा के सारे बंधन हटा दिये और सामान्य व्यक्ति की भांति रहे। जन-सामान्य का प्रेम ही उनकी सुरक्षा थी। गांधीजी ऊंचे पदों पर आसीन व्यक्तियों से जो अपेक्षा रखते थे, उसकी वह जीती-जागती मिसाल थी। इतना ही नहीं, गांधीजी तो यह भी चाहते थे कि एक मामूली बेपढ़ा-लिखा किसान किसी प्रांत का राज्यपाल बने और जवाहरलाल जैसे व्यक्ति उसके निजी सचिव बनकर उन मामलों को निपटायें जिनमें सार्वजनिक मामलों को निबटाने के लिए बौद्धिक कौशल की आवश्यकता थी।

श्रीमन्नारायण बजाज परिवार में दामाद के रूप में आए, लेकिन कुछ ही दिनों में वह उस परिवार के पुत्र बन गए। इसका श्रेय हमारी बेटी मदलसा को दिया जाता है। मैं इसके लिए उसका अभिनंदन करता हूं और उसके लड़कों को आशीर्वाद देता हूं। मेरा ध्यान जानकीदेवी माताजी की ओर जाता है। वह तूफान में भी विचलित नहीं हो सकतीं। अपनी इस उम्र में भी जो कुछ समाज-सेवा उनसे हो सकती है, करती रहती हैं।

मेरा ध्यान बजाज-परिवार की ओर भी जाता है जिसने श्रीमन्नारायण को अपना अंग बनाया। यह परिवार आज भी इस बात का दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहा है कि धन को निर्धनों की धरोहर के रूप में किस प्रकार रखा जा सकता है। उस परिवार का यह आचरण विख्यात धनी परिवारों के लिए भी एक दृष्टान्त और मार्गदर्शन स्वरूप हो सकता है।

भगवान ने श्रीमन्जी को इतनी अल्पायु दी और वे अचानक चले गए। मनुष्य आता है और चला जाता है, लेकिन श्रीमन्नारायण जैसे लोग दूसरों के हृदयों में सदा के लिए अपना स्थान बना लेते हैं। □

एक सौम्य मध्यमार्गी व्यक्तित्व

सिद्धराज ढड्ढा

□□

श्रीमन्जी का जीवन एक सतत् बहती हुई धारा की तरह था, जो आसपास के परिसर को जीवन देती ही चलती है। श्रीमन्जी के जीवन की इस सफलता के पीछे निरन्तर परिश्रम, व्यवस्थित उद्यम ही मुख्य कारण दीख पड़ते हैं।

श्रीमन्जी के व्यक्तित्व को किसी एक शब्द से इंगित करना हो तो कहा जा सकता है कि वह 'मध्यम मार्ग' का जीता-जागता नमूना था। उनके जीवन में 'अतियां' नहीं दिखाई देतीं—न उनके कामों में, न उनकी कृतियों में, न उनके व्यवहार में, न उनके स्वभाव में, न उनके रहन-सहन में! सर्वत्र समतल भूमि पर सहज बहती हुई एक धारा, जिसमें उथल-पुथल उछल-कूद, ऊंच-नीच या उफान नहीं दीख पड़ता। जिसे क्रांतिकारी कहा जा सके, ऐसा उनके जीवन में कुछ भी नहीं था—हर चीज में सन्तुलन, अनुद्वेग। आत्यन्तिक भूमिकाएं उन्होंने स्वयं

कभी नहीं लीं, लेकिन इस प्रकार की भूमिकाओं में समन्वय का काम जरूर किया। १९७४-७५ में जब संघर्ष के कार्यक्रम को लेकर जयप्रकाश और विनोबाजी में मतभेद हुआ तो श्रीमन्‌जी संघर्ष में नहीं कूदे, लेकिन संघर्ष में सर्वोदय के जो लोग गये, उनके साथ हमेशा सहानुभूति का रुख रखा बल्कि उनका बचाव ही किया। आपात स्थिति में आचार्यकुल सम्मेलन की सर्व-सम्मत सिफारिशें लेकर तत्कालीन प्रधानमंत्री से मिलने दिल्ली गये। वे नहीं मिलीं, तो लौट आये।

प्रतिभावान व्यक्ति की प्रतिभा किसी एकाध क्षेत्र में प्रकट होती है, लेकिन अन्य क्षेत्रों में उसका जीवन सामान्य, या कभी-कभी सामान्य से भी मंद रहता है। श्रीमन्‌जी ने अनेक क्षेत्रों में काम किया, उनके किसी भी काम में बहुत चमक नहीं दिखाई दी, लेकिन जो काम भी उन्होंने हाथ में लिया, उसको सामान्य से अधिक ही आगे बढ़ाया। कितने विविध क्षेत्रों में उन्होंने काम किया! कालेज में अध्यापन; लेखन तो जीवन भर करते ही रहे; रचनात्मक और सार्वजनिक संस्थाओं का संचालन, आदि-आदि। श्रीमन्‌जी के सामने जब, जैसा, जो काम आया, उन्होंने उसे उठा लिया, उसी में अपने परिश्रम को उंड़ेल दिया और उस काम को आगे बढ़ा दिया। वास्तव में वे ऐसे व्यक्ति थे, जिसका अपना कोई विशेष क्षेत्र नहीं होता, जिसका एक ही ध्येय होता है— काम करना। जो काम सहज प्राप्त हुआ, उसे उठा लिया!

ऐसा मध्यम मार्गी, सन्तुलित, अनुद्वेगकारी जीवन था श्रीमन्‌जी का। ऐसे व्यक्ति अपने पीछे कुछ स्मृतियां छोड़ जाते हैं, उद्वेगकारी तरंगें नहीं। बहुत तीव्र संभूतियां या छाप ऐसे व्यक्ति नहीं छोड़ जाते, लेकिन जो कुछ छोड़ जाते हैं, वह स्निग्ध ही होता है। श्रीमन्‌जी के जीवन में एक निरन्तरता का भास होता है।

श्रीमन्‌जी ने तत्कालीन समाज के जीवन को समृद्ध और हम लोगों के लिए अधिक उपभोग्य बनाया था, इसी में उसकी सार्थकता थी। □

छोटी-छोटी बातों में उनकी महानता

मा० व्यं० ठाकरे

□ □

श्रीमन्‌जी के जीवन में अनेक विशेषताएं थी, लेकिन सबसे बड़ी विशेषता उनकी यह थी कि वह छोटी से छोटी चीजों और व्यक्तियों के बारे में भी पूर्ण सजग रहते थे और उनका ध्यान रखते थे। इस संबंध में बहुत-से प्रसंग हैं, पर एक घटना मुझे बार-बार याद आती है।

एक बार श्रीमन्‌जी को गोविन्दराम सेकसरिया वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर के कार्यकारी मंडल में जाना था। सौभाग्य से मुझे भी उनके साथ जाने का अवसर मिल गया। मैंने सुन रखा था कि श्रीमन्‌जी अपने से छोटे व्यक्तियों से बहुत कम बातें करते हैं और खुले दिल

से तो बोलते ही नहीं। अत: मेरे मन में कुछ संकोच-सा था। हम लोग वर्धा से रवाना हुए; लेकिन रवाना होते ही उन्होंने बड़े स्नेह और आत्मीयता से बताना आरम्भ कर दिया कि शिक्षण-संस्थाएं, शिक्षक और विद्यार्थी किस प्रकार आदर्श बन सकते हैं। और भी अनेक समस्याओं पर वह चर्चा करते रहे। वर्धा से जबलपुर तक का रास्ता किस प्रकार कट गया, हमें पता ही नहीं चला।

जबलपुर में मंडल का काम निबट जाने पर श्रीमन्‌जी श्री धर्माधिकारी एडवोकेट के आग्रह पर उनके घर चले गये। हम लोग, यानि मैं और मेरे मित्र श्री बाबाराव हनवतकर रेस्ट हाऊस में ठहरे। हमारे आश्चर्यमिश्रित हर्ष का ठिकाना न रहा जब हमने देखा कि श्रीमन्‌जी ने स्थानीय वाणिज्य महाविद्यालय के प्राचार्य को सूचना दी कि वे हमारे खाने-पीने आदि का पूरा ध्यान रक्खें और देखलें कि समुचित व्यवस्था हुई है या नहीं।

बात यहीं समाप्त नहीं हो गई। अगले दिन सुबह ७ बजे ड्राइवर गाड़ी लेकर रेस्ट हाऊस आया। उसने श्रीमन्‌जी का संदेश दिया कि वर्धा जाने में अभी तीन-चार घंटे का समय है। हम लोग तब तक शहर के प्रमुख तथा प्रसिद्ध स्थान देख लें और ११ बजे तक रेस्ट हाउस लौट आवें। ठीक ११.३० बजे वर्धा के लिए रवाना होना है। उससे पहले थोड़ा-सा अल्पाहार भी करना है। अल्पाहार में वह स्वयं हमारे साथ उपस्थित रहेंगे।

यों देखने में घटना अत्यन्त सामान्य मालूम होती है, लेकिन मानव-जीवन में सभी बातों का बड़ा मूल्य है। उस दिन श्रीमन्‌जी की वात्सल्यपूर्ण सहृदयता की जो छाप मेरे मन पर अंकित हुई, वह सदा बनी रहेगी। □

वे रामराज्य से प्रेरित थे

बी० आर० जायसवाल

□□

२ जनवरी १९७८। दोपहर में माताजी (श्रीमती जानकीदेवी बजाज) सोते-सोते अचानक उठकर बिस्तर पर बैठ गईं। फिर मेरी ओर अपलक देखने लगीं। उनके शरीर पर मामूली-सी कंपकंपी आ रही थी। मैंने पूछा, "माताजी, क्या हुआ ? आप अचानक उठ क्यों बैठीं ?" माताजी ने मेरी बात का जवाब न देकर कई प्रश्न मुझसे एक साथ पूछ डाले—"श्रीमन्‌जी कहां हैं ? वे कब आवेंगे ? मदालसा उनके साथ है क्या ? उनकी तबीयत तो ठीक है न ! भरत-रजत कहां हैं ? राम की क्या खबर है ?"

मैंने कहा, "माताजी कल ही दिल्ली से श्रीमन्‌जी का तार आया है कि वे आज (२ जनवरी को) जी० टी० एक्सप्रेस से चलकर ३ तारीख को वर्धा पहुंचेंगे। मदालसाबाई अभी नहीं आवेंगी।"

माताजी बोलीं, "मदालसा साथ नहीं आयेगी तो श्रीमन्‌जी जब आयें, गाड़ी से उतरते ही सीधे गांधी चौक ले आना। यहां सब सुविधा है। वहां (उनके घर पर) कौन तो पानी देगा, कौन क्या करेगा?"

मैंने कहा, "माताजी, आप इसकी चिन्ता न करें। घर पर सब सुविधा हैं। पर यह तो बताइये कि आपका शरीर कांप क्यों रहा है? आपको कोई सपना दिखाई दिया क्या?"

माताजी ने बताया कि उन्होंने सपने में देखा है कि "पूज्य बापूजी का बड़ा फोटो जमीन पर रखा है। उसके पीछे श्रीमन्‌जी हैं और पूज्य विनोबाजी खूब जोर-जोर से हंस रहे हैं। हंसते-हंसते एकदम चुप हो जाते हैं। बाबा के चेहरे पर गम्भीरता आ जाती है।"

मैंने कहा, "माताजी आप तो रोज सुबह पवनार बाबा के पास जाती हैं। विष्णुसहस्रनाम का पाठ होने के बाद वापस आती हैं। आज परमधाम नहीं गईं, इसलिए आपको यह सपना दिखाई दिया होगा।"

३ जनवरी को सबेरे आकाशवाणी पर संस्कृत में समाचार सुनाई पड़ा कि श्रीमन्‌जी का स्वर्गवास हो गया। विश्वास ही नहीं हुआ। मैं भागा-भागा गांधी चौक गया। वहां कई लोग जमा थे। उनके पास ग्वालियर से तार आ गया था। पर मुझे आज भी लगता है कि श्रीमन्‌जी अभी भी हमारे बीच विद्यमान हैं। उनकी बहुत-सी बातें याद आती हैं।

श्रीमन्‌जी समय के बड़े पाबन्द थे। कभी निराश नहीं दिखाई पड़े। हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहते थे। सुबह उठकर व्यायाम करते, खुली हवा में घूमते, फिर चर्खा कातते और समय पर आफिस का काम करते, समय पर भोजन करते। जिस काम के लिए जो समय निश्चित था, ठीक उसी समय उस काम को करते। वह हमेशा देश की भलाई के बारे में सोचा करते थे। और उसी उद्देश्य से सारे काम करते थे। उनकी कल्पना राम-राज्य से प्रेरित रहती थी। कोई भी विषय हो, चाहे वह नई तालीम से संबंधित हो या १०+२+३ से संबंधित हो अथवा प्राकृतिक चिकित्सा, नशाबंदी, लोकतंत्र आदि से संबंधित हो, सभी विषयों पर वे गंभीरता से सोचते थे, विचार-विमर्श करते थे, सभा-सम्मेलन बुलवाते थे, कहने का तात्पर्य यह है कि वह अपनी धुन में लगे रहते थे। कोई भी व्यक्ति कठिनाई में पड़ता या छोटे-से-छोटा काम भी अगर रुक जाता तो श्रीमन्‌जी मदद करते थे।

श्रीमन्‌जी में अहंकार कभी दिखाई नहीं पड़ा। अगर हमें खाना खाने जाने में देर हो जाती तो वे खुद अपने साथ बिठाकर भोजन करवाते थे। उन्हें इसमें संकोच नहीं होता था।

मैंने कभी उन्हें गुस्से में नहीं देखा, चाहे कितनी ही बड़ी गलती क्यों न हो गई हो। एक बार उन्होंने मुझसे कहा, "यह पत्र नागपुर ले जाकर श्री आर० के० पाटिल साहब को दे आओ। वे पत्र का जवाब देंगे, वह लेते आना। पत्र जरूरी है। तुम्हारे साथ सीता राठी भी जायेंगी।" मैंने कहा, "ठीक है।" मुझे याद है कि वह समय आपातकाल का था और आचार्य-सम्मेलन होने वाला था। उसी से संबंधित पत्र था। उस समय श्रीमन्‌जी और देश के कई आचार्य तथा विद्वान् व्यक्ति पवनार में ही ठहरे हुए थे। हम कार से नागपुर गये और वह पत्र श्री आर० के० पाटिल को दे दिया। तुरंत उन्होंने जवाब में एक पत्र दिया। हम उसे लेकर वर्धा वापस आये। वर्धा आते समय रात हो गई। हमें नागपुर से बस से आना पड़ा। कार खराब हो गई। सीता राठीजी को पवनार ही उतरना था। उन्होंने मुझसे वह पत्र ले लिया और कहा, "मैं श्रीमन्‌जी को दे दूंगी।

रात-की-रात उन्हें पत्र मिल जायगा।" परंतु संयोग ऐसा हुआ कि श्रीमन्जी शाम को वर्धा आ गये। वह पत्र उनको नहीं मिला। सीता-बहन ने सोचा कि श्रीमन्जी सवेरे पवनार आयेंगे तो यह पत्र उनको दे दूंगी। परंतु श्रीमन्जी को थोड़ी देर हो गई, और सीता राठीजी को वर्धा आना था। उन्होंने वह पत्र श्री गौतम बजाज को दे दिया। गौतम ने वह पत्र कमरे में रखा और ताला लगाकर अकोला चले गये। मैं जब दिन के ११ बजे जीवन-कुटीर पहुंचा तो मुझे पता चला कि श्रीमन्जी उसी पत्र की राह देखते बैठे हैं। मैं तो सुन्न रह गया। किसी तरह मुझे पता चला कि पत्र गौतम के कमरे में बंद है। मैं बिना श्रीमन्जी से मिले साइकिल से वर्धा से पवनार भागा। किसी तरह आश्रमवासियों को हकीकत बताकर गौतम के कमरे का ताला खोलकर पत्र ढूंढ़ा और जल्दी से लाकर श्रीमन्जी को दे दिया। पसीने से मुझे भीगा देखकर श्रीमन्जी समझ गये। उन्होंने मुझे और सीता-बहनजी को बुलाकर कहा कि दोनों एक तरफ जाकर आपस में तय कर लो कि किससे गलती हुई है और निश्चय करो कि आइन्दा ऐसी गलती नहीं होगी, चाहे वह काम अपना हो या किसी दूसरे का।

इस प्रकार श्रीमन्जी में न्याय करने की अद्‌भुत क्षमता थी। वैसी क्षमता किसी दूसरे में शायद ही हो।

नवम्बर १९७७ में मैं उनके साथ दिल्ली गांधी स्मारक निधि में रहा। वे काफी स्वस्थ थे। कई बैठकों में शामिल हुए, सुबह से शाम तक काम में व्यस्त रहे। बड़े-बड़े नेता और मंत्रियों से मिलते रहे। नवंबर के अंत में मैं वर्धा वापस आ गया। दिसंबर में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन संपन्न हुआ और ३ जनवरी के दिन वह हमसे सदा के लिए बिछुड़ गये। □

नहीं ऐसो जनम बारंबार

विनोदिनी गांधी

□□

श्रीमन्जी गांधी-दर्शन के प्रतीक थे। आश्रमवासियों को वह और उनकी पत्नी मदालसा बहन दोनों 'वसुधैव कुटुंबकम्' की तरह मानते थे, यह सभी आश्रमवासी जानते थे। परंतु मेरा परिचय उनसे कम ही था, इसलिए कलकत्ता के पास आवड़ी में हुए कांग्रेस-अधिवेशन में जब पति-पत्नी दोनों आये तो मन में लगा, "वे तो बड़े आदमी हैं, उनसे मिलना कैसे होगा?" परंतु मिलने पर यह मेरा भ्रम ही सिद्ध हुआ।

उसके बाद तो फिर मिलना होता रहा। जब वह गुजरात के राज्यपाल होकर अहमदाबाद आये, तब स्व० मनुबेन भी काम के सिलसिले में जब-तब उनसे मिलती रहती थीं और आश्रमवासी बहनों के वह बहुत ही निकटवर्ती बन गये थे। दिल्ली में मनुबेन बीमार पड़ीं तो वहां भी उनका अविरत ध्यान रखा। उनका स्वभाव ही ऐसा था कि जो भी संपर्क में आता,

उसके दुःख-दर्द का पूरा ध्यान रखते थे। परम व्यक्तिगत रूप में सबसे मिलते-जुलते, सबके दुःख-सुख पूछते, सांत्वना देते और यथासंभव सक्रिय सहायता करते थे।

मैंने उन्हें आश्रम में देखा, राजभवन में देखा, वर्धा में विनोबाजी के पास देखा और उनके निवास-स्थान 'जीवन-कुटीर' में कौटुंबिक रूप में भी देखा। पति-पत्नी दोनों की ही आत्मीयता से मैं इतनी प्रभावित हुई कि शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती।

१९७८ की ३ जनवरी को सवेरे आकाशवाणी से अचानक उनके निधन का समाचार सुनकर धक् रह गई। अपार दुःख हुआ और अनेक मधुर स्मृतियां स्मृति-पटल पर उभर आईं। और तो मैं क्या कर सकती थी, तत्काल उनकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थनारत हो गई और बारंबर इस भजन को दोहराने लगी—"नहीं ऐसो जनम बारंबार।" □

स्मरणांजलियां

कनु गांधी

□ □

श्रीमन्नारायणजी के निधन पर मुझे कुछ लिखना पड़ेगा, इसकी तो कभी कल्पना भी नहीं की थी। परन्तु आदमी का सोचा पूरा ही हो, यह कौन कह सकता है? जन्म-मरण का निर्णय तो परमेश्वर ने अपने ही हाथ में रखा है। वह कब किसकी जीवन-डोर खींच लेगा, इसकी कोई कल्पना ही नहीं कर सकता।

श्रीमन्जी का निधन बिल्कुल आकस्मिक और असामयिक हुआ। उनकी पत्नी मदालसा बहन, उनके दोनों पुत्रों और माता जानकीदेवी बजाज को इससे जो आघात लगा, उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। परन्तु परमेश्वर के आगे चली किसकी है? हम तो यही कह सकते हैं कि श्रीमन्जी के निधन से जो क्षति हुई, वह मात्र उनके परिवार की नहीं, बल्कि समस्त देश की है। इस आघात में हज़ारों देशवासी उनके साथ हैं। इससे अधिक आश्वासन भला और क्या हो सकता है?

श्रीमन्जी बड़े सज्जन और स्नेही पुरुष थे। हमारे ऊपर तो बड़ा स्नेह रखते थे। हमारे कस्तूरबाधाम के विकास में, गुजरात के राज्यपाल बने तब और उसके बाद भी, बराबर पूरी दिलचस्पी लेते रहे, जिसके लिए हम उनके ऋणी हैं।

श्रीमन्जी का स्मरण करते ही १९३५-३६ का वह समय आंखों के सामने आ जाता है जब 'बापू के पांचवें पुत्र' स्वर्गीय जमनालाल बजाज की प्रेरणा से उच्च शिक्षा प्राप्त कर एक विनम्र और आकर्षक युवक स्वर्गीय बापूजी के पास सेवाग्राम आया। बापू ने उससे प्रश्न किये और उसने उनके यथोचित उत्तर दिये। फिर बापू ने जो कुछ कहा, उसे आदरपूर्वक ध्यान के साथ सुना। युवक मितभाषी और मिष्टभाषी था। बापू का कहा एकाग्रता से सुनता रहा। कौन

जाने, दोनों एक-दूसरे की परख ही न कर रहे हों ! अपनी बात पूरी करने के बाद बापू ने कहा, "कुछ पूछना है ?" "जी नहीं" युवक ने संक्षेप में जवाव देते हुए कहा, "अब कुछ काम दीजिए।" पहली मुलाक़ात में ही इस तरह काम मांगते देख बापूजी विस्मित हुए और खुश भी। हंसते-हंसते उन्होंने कहा, "काम करना चाहते हो ? ओ हो, मेरे पास तो काम का ढेर पड़ा है। तुम तो थक जाओगे।"

"नहीं जी, मैं ऐसे थकने वाला नहीं हूं। काम देकर देखियेगा।" युवक ने विनम्रता से दोनों हाथ जोड़कर कहा।

"तुमने देखा होगा कि यहां खेत में खड्डे खोदकर उसपर पाखाने खड़े किये गए हैं, उससे प्रथम श्रेणी का खाद तैयार होता है। तुम यह सारी पद्धति समझ लो। पाखाने के लिए जो खड्डे खोदे जाते हैं, उन्हें खोदने लग जाओ। संभव है, तुमको कभी कुदाली, फावड़ा पकड़ने को न भी मिला हो, सो आसानी से जितना श्रम हो सके, उतना ही करना। मैं तो चाहता हूं कि तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे व्यक्ति सफाई-विज्ञान का विकास करें। और यह तभी संभव होगा जब व्यक्ति खुद ऐसे कार्य में लग जायेगा—डूब जायेगा। कुदाली-फावड़ा हाथ में पकड़कर कार्य करते-करते अनेक बातें अपने आप सूझने लगेंगी, उस विज्ञान का विकास करने की भी सूझेगी। सिर्फ मजदूरी करनेवाले को यह सब सूझने की संभावना कम है। सूझेगी तुम्हारे जैसे पढ़े-लिखे पंडितों को, क्योंकि पढ़ने-लिखने वालों को श्रम करने में कष्ट पड़ेगा। कष्ट-मुक्ति कैसे हो, किस प्रकार के औज़ार वनाने से कष्ट कम होगा, यह सब सोचते रहेंगे। और कहा जाता है न कि 'मुश्किलें ही आविष्कार की जननी हैं'—यह बिलकुल सही है। देखो, तुमसे कितना होता है।"

यह कहकर वापू ने श्रीमन्जी को कृषि-व्यवस्थापक के पास ले जाने को मुझसे कहा। मैं ले गया। पाखाने के खड्डे भर गए थे, इसलिए नये खड्डे खोदकर उनमें पाखाना डालना था। श्रीमन्जी तो बस बांहें चढ़ाकर तुरंत काम में लग गये। पहला ही दिन था, परन्तु घिन-घृणा की वात ही नहीं। खूब मेहनत की और काम भी ठीक ही किया। उसके बाद बापू से आज्ञा लेकर वर्धा गये। दूसरे दिन भी सवेरे वक्त पर आये और सफाई के काम में लग गये। एकाध महीने यही क्रम रहा। बीच-बीच में वापू-व्यवस्थापक से पूछ भी लेते थे, "काम कैसा किया ? घिन तो आती होगी ?" यह पूछते और जवाब मिलता, "नहीं जी, काम तो शक्तिभर करते ही रहते हैं।" बापू यह सुनकर प्रसन्न होते थे और वाद में तो अपनी डाक (पत्र-व्यवहार) का काम भी लेने लगे। इन सब कामों में उनकी सावधानी देखकर बापू ने उन्हें अच्छी तरह परख लिया। बापू बहुत प्रसन्न हुए और जमनालालजी से कहा भी, "इस युवक पर मेरी आंख लगी है। तुम्हारी पसंद सचमुच उचित और अच्छी है।" कहने की जरूरत नहीं कि वह युवक और कोई नहीं, श्रीमन्जी ही थे।

प्रारंभ से ही उन्हें धीर-गंभीर चिंतक और समझबूझकर काम करनेवाला समझा गया। वापू के विचारों को समझकर उन पर अमल कैसे किया जाये, जिससे जनता को पूरा लाभ मिले, इसका सतत विचार करते रहते और यथाशक्ति उसपर अमल करने का प्रयत्न करते थे। अध्ययनशील होने के कारण उनके कथन में वजन रहता था और इससे उसका महत्व बढ़ जाता था।

गुजरात के जब वह राज्यपाल थे, उस बीच वहां राष्ट्रपति-शासन लागू किया गया था। उस समय उन्होंने जिस अच्छी तरह शासन प्रबंध किया, उसकी सभी ने सराहना की।

यों तो उनके बारे में अनेक बातें लिखी जा सकती हैं, परंतु केवल दो ही बातों का यहां मैं उल्लेख करूंगा। एक तो जब वह नेपाल में भारत के राजदूत होकर गये तो अपने निवास-स्थान पर उन्होंने प्रातःकालीन प्रार्थना का कार्यक्रम शुरू किया और कताई यज्ञ (चर्खा चलाना) भी नियमित रूप से किया। दूसरे, गुजरात के राज्यपाल बने तब वहां भी प्रातःकालीन प्रार्थना और नियमित चर्खा चलाने में चूक नहीं की। यह भी उल्लेखनीय है कि इन दोनों ही जगह भोज-समारोहों में केवल शाकाहारी भोजन की व्यवस्था का ही प्रचलन उन्होंने रखा।

राज्यपाल के दायित्व से मुक्त होने पर वर्धा जाकर आचार्य विनोबा के सहायक हुए। विनोबा के विचारों का किस तरह अधिकाधिक प्रसार हो, इसकी योजना बनाकर इस काम को गति दी। साथ ही अन्य प्रकार भी विनोबा के कामों में हाथ बंटाते हुए उनके भार को हलका करते रहते थे।

श्रीमन्जी की सौम्य मुखमुद्रा और मृदु मुस्कान लोगों को उनकी ओर आकर्षित करती थी। कोई भी अपनी कठिनाई लेकर उनके पास जा सकता था, वह हर एक की बात शांति के साथ सुनते, उसे समझाते-बुझाते और अपने भरसक उसकी कठिनाई दूर करने का प्रयास करते थे। किसी बात पर कोई सलाह लेने जाता तो प्रेमपूर्वक सलाह देते थे।

गांधी-जन्म-शताब्दी के वर्ष १९६९ में २ अक्तूबर को सरहदी गांधी ख़ान अब्दुलगफ्फार-ख़ां भारत आये थे। लगभग दिसंबर में गुजरात विद्यापीठ के दीक्षांत-समारोह में वहां गये और दो दिन विद्यापीठ में रहने के बाद श्रीमन्जी के आग्रह पर उनके पास राजभवन में रहने गये। इस समय राजभवन में उनसे मिलने आने वाले सभी तरह के व्यक्तियों के लिए द्वार मुक्त कर दिये गये, जिससे सरहदी गांधी बहुत खुश हुए थे। इसके अलावा इसी बीच गुजरात में सांप्रदायिक झगड़ों की आग भड़की थी। खान साहब ने ऐसी सब जगह जाने और पीड़ितों से मिलने का आग्रह किया, परंतु पुलिस वाले ऐसी जोखिम उठाने से डरते थे। उस समय राज्यपाल की हैसियत से श्रीमन्जी ने दृढ़ता से कहा, "सरहदी गांधी हमारे आमंत्रण पर भारत आये हैं और यहां हमारे सम्मान्य अतिथि हैं। खतरा उठाकर भी जब वह दंगाग्रस्त जगहों में जाना चाहते हैं तो राज्यपाल के नाते उनकी इच्छा पूरी करना मैं अपना फ़र्ज समझता हूं। पुलिस व्यवस्था करे या नहीं, मैं तो उनकी इच्छानुसार उन्हें नियत समय पर उन स्थानों पर ले ही जाऊंगा।" तब पुलिस को व्यवस्था करनी ही पड़ी, जिसपर ख़ुश होकर सेवाग्राम में उन्होंने मुझसे कहा था, "श्रीमन्जी ने सारी व्यवस्था बहुत अच्छी तरह करके मेरी इच्छा पूरी कर दी थी। इसलिए मैं बड़ा अहसानमंद हूं।"

उनके इन्हीं गुणों से प्रभावित होकर उनके निधन का समाचार पाने के बाद उन्हें श्रद्धांजली देते हुए विनोबा ने कहा था—"हमारा ४० वर्ष का संबंध टूट गया। इन चालीस वर्षों में मैंने उन्हें क्रोध करते कभी नहीं देखा।"

ऐसे व्यक्ति के अवसान से सारे देश की बड़ी क्षति हुई है, इसमें संदेह नहीं। फिर जनता सरकार की स्थापना के बाद बापू की रचनात्मक प्रवृत्तियों को गति देने के लिए तो उनकी और भी आवश्यकता थी। लेकिन प्रभु की लीला अपरंपार है। अब तो हम केवल यह प्रार्थना भर कर सकते हैं कि वह उनकी आत्मा को शांति और उनके परिवार को उनके अभाव का आघात सहने की शक्ति प्रदान करे। □

अंतिम यात्रा

प्रेमकुमार खन्ना

६ दिसंबर, १९७७ को श्रीमन्नारायणजी वर्धा से नई दिल्ली में १८-१९-२० दिसंबर को अखिल भारत नई तालीम समिति द्वारा आयोजित राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन की अध्यक्षता करने के लिए ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस से अपनी पत्नी श्रीमती मदालसा नारायण और सेवक के साथ दोपहर बारह वजे दिल्ली के लिए रवाना हुए।

नई दिल्ली में राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन सफलतापूर्वक संपन्न हुआ और सम्मेलन द्वारा जो सर्वसम्मत निवेदन प्रस्तुत किया गया, उसे केंद्रीय सरकार ने पूर्णरूप से मान लिया। श्रीमन्जी काफी प्रसन्न तथा संतुष्ट थे और शीघ्र ही शिक्षा में इन नये परिवर्तनों को सरकार द्वारा लागू करवाने के लिए प्रयत्नशील हो गये।

श्रीमन्जी ने वर्धा में ७ जनवरी १९७८ को संपन्न होने वाली श्री कमलनयन बजाज स्मृति वक्तृत्व स्पर्धा की अध्यक्षता करने के लिए २ जनवरी, १९७८ को सांय ७.३० बजे ग्रांड ट्रंक एक्सप्रेस से अपने निजी सहायक तथा सेवक के साथ नई दिल्ली से वर्धा के लिए प्रस्थान किया।

२ जनवरी को वह सामान्य रूप से स्वस्थ थे। प्रातःकाल उन्होंने समाचार पत्र पढ़े और डाक देखी। बाद में अपने निजी सहायक को डिक्टेशन दिया। बाद में श्री राधाकृष्ण वजाज के साथ नाश्ता वगैरा किया। बरामदे में टहलते रहे। मानीजी (मदालसाजी) ने रात-भर जागकर अपनी 'युगांजलि' का अनुक्रम ठीक जमा लिया था। वह पूरी फाइल देख गये और प्रसन्नता व्यक्त की। तत्पश्चात् कुछ आराम करने के लिए गए, भोजन किया। हिसाव निपटाया। दोपहर में अपनी प्रकाशित होने वाली पुस्तक 'टुवर्ड्स द गांधियन प्लान' के प्रूफ पढ़े तथा प्रैस में छापने के लिए निर्देश दिये। श्री यशपाल जैन को 'युगांजलि' छापने के बारे में फोन किया।

शाम को गांधी स्मारक निधि के कर्मचारियों को आवश्यक निर्देश आदि दिये और लगभग साढ़े छःह बजे स्टेशन को रवाना हुए। स्टेशन पर श्री खरेजी मिले।

नई दिल्ली स्टेशन पहुंचने के उपरांत रात्रि को लगभग ८.०० बजे भोजन और दूध लिया। अनंतर गुसलखाने में कपड़े बदलने गए और कोई ८.३० बजे विश्राम करने के लिए बिस्तर में लेट गये। कुछ समय यानि दसेक मिनट के वाद उन्होंने सेवक से कहा, "अब तुम भी अपने डिब्बे में जाकर आराम करो और सुबह छः-साढ़े छः बजे भोपाल के पास आ जाना।" उसके वाद सेवक अपने डिब्बे में आ गया और अपने निजी सहायक को बताया कि बाबूजी ने भोजन आदि कर लिया है और उसे सुबह भोपाल स्टेशन पर बुलाया है।

सेवक के चले जाने के करीब लगभग आधे घंटे के वाद अचानक उनकी तबीयत बिगड़ गयी। उन्हें सांस लेने में कठिनाई अनुभव होने लगी। सांस लेने वाले यंत्र (इनहेलर) से सांस लेने का प्रयत्न करने लगे। उनके डिब्बे में यात्रा कर रहे सहयात्री श्री जैकब, जिनसे स्टेशन पर परिचय हुआ था, तथा एक अन्य व्यक्ति ने तुरंत कंडक्टर को बुलाया और पूरी स्थिति से अवगत

कराया। कंडक्टर ने मथुरा स्टेशन आने पर आगरा स्टेशन तार द्वारा रेलवे डाक्टर के लिए संदेश भेजा और द्वितीय श्रेणी के कंडक्टर ने मथुरा स्टेशन से ट्रेन चलने के करीव पंद्रह मिनट वाद सेवक से सम्पर्क किया और उसे तुरंत श्रीमन्जी के पास पहुंचने के लिए कहा। सेवक ने फौरन निजी सहायक को सूचना दी और वे दोनों श्रीमन्जी के डिब्बे में आ गये।

सेवक ने उन्हें थोड़ा गरम पानी पिलाया, फिर पानी में मुरैठी मिलाकर एक कपड़े से छानकर पिलाया। उन्होंने एक घूंट पिया। सेवक ने गरम पानी की भाप दी। फिर श्रीमन् जी थोड़ा-सा लेटे, फिर वैठ गये और सांस लेने का प्रयत्न करने लगे। वे वीच-वीच में इनहेलर का प्रयोग करते रहे। सेवक ने थोड़ी-सी खिड़की भी खोली और वाद में वंद कर दी।

रात के दस वजे के लगभग ट्रेन राजा की मंडी स्टेशन पहुंची। वहां पर श्रीमन्जी ने डाक्टर के वारे में पूछा। निजी सहायक ने वताया कि आगरा कैंट पर डाक्टर आपको देखने के लिए आयेगा। उसके पश्चात वे फिर इनहेलर से सांस लेने का प्रयत्न करने लगे।

लगभग १० वजकर २० मिनट पर ट्रेन आगरा कैंट स्टेशन पर पहुंची। तुरंत ही रेल का डाक्टर आ गया। श्रीमन्जी ने स्वयं डाक्टर से इंजेक्शन लगाने के लिए कहा। डाक्टर ने उत्तर दिया कि वह इंजेक्शन लेकर आया है और वही लगायेगा। निजी सहायक ने डाक्टर को श्रीमन्जी द्वारा प्रयोग में लाया गया इनहेलर दिखाया और कहा कि इनको सांस(अस्थमा) है और सांस की तकलीफ अचानक शुरू हो गई है। इससे पहले भी तकलीफ हो चुकी है। डाक्टर ने कहा, "मैं जानता हूं। होस्टाकार्टिल का इंजेक्शन लगा रहा हूं। इससे आराम हो जायगा।" डाक्टर ने छह गोलियां भी खाने के लिए दीं और कहा कि एक गोली अभी खिला दें और शेष छह-छह घण्टे के पश्चात दे दीजियेगा। निजी सहायक ने फिर डाक्टर से पूछा कि यदि तवीयत ज्यादा खराब हो तो उन्हें यहीं पर उतार लें। रेलवे डाक्टर ने कहा कि ऐसी कोई ज्यादा खतरे की वात नहीं है। वैसे मैं ग्वालियर भी रेलवे डाक्टर के लिए तार दे रहा हूं। वहां पर डाक्टर देखने के लिए आयेगा ही।

कुछ ही देर में यानी १० वजकर ३५ मिनट पर ट्रेन आगरा कैंट से चल पड़ी। रेलवे कंडक्टर ने निजी सहायक तथा सेवक को अपने विस्तर उसी डिव्वे में ले आने की इजाजत दे दी। श्रीमन्जी उस समय कुछ स्वस्थ महसूस कर रहे थे और लेटे हुए आराम कर रहे थे। करीव १५ मिनट वाद निजी सहायक तथा सेवक विस्तर लेने के लिए अपने डिव्वे में गये। सेवक अपना विस्तर लेकर डाइनिंग कार पार करके श्रीमन्जी के डिव्वे की तरफ चला गया, परन्तु निजी सहायक जव अपना विस्तर लेकर लौटा तो डाईनिंग कार का गेट वंद हो गया। उसने काफी दरवाजा खटखटाया, परन्तु व्यर्थ। उसने कंडक्टर से कहा कि डाइनिंग कार का गेट वंद हो गया है और वे लोग खोल नहीं रहे हैं। अगर आप चलकर खुलवा दें तो मेहरवानी होगी। उसने कंडक्टर को गंभीर स्थिति की जानकारी दी, वैसे कंडक्टर को पहले से भी इस स्थिति की जानकारी थी। उसने कहा कि इस मामले में वह कोई सहायता नहीं कर पायेगा, क्योंकि डाइनिंग कार का स्टाफ अव किसी हालत में भी गेट नहीं खोलेगा। मजबूरी में निजी सहायक को अपने डिव्वे में ही बैठना पड़ा।

ग्वालियर स्टेशन आते ही वह श्रीमन्जी के डिव्वे की तरफ तेजी से गया। वहां पहुंचने पर श्री जेकव ने वताया कि श्रीमन्जी की तवियत काफी खराव हो गई है और उन्हें दौरा भी आ गया है। परन्तु रेलवे डाक्टर आ गया और वावूजी को विस्तर समेत लपेटकर, निजी सहायक,

सेवक, श्री जेकब तथा दूसरे यात्रियों ने मिलकर डिव्वे से उठाकर नीचे प्लेटफार्म पर रखे स्ट्रेचर पर लिटाया और सारा सामान कुलियों की सहायता से प्लेटफार्म पर नीचे उतारा। रेलवे डाक्टर एवं कुलियों की सहायता से तत्काल उन्हें फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम में ले जाया गया। वहां पर रेलवे डाक्टर को निजी सहायक ने बताया कि आगरा स्टेशन पर रेलवे डाक्टर ने होस्टाकार्टिल का इंजेक्शन दिया है। डाक्टर ने एक इंजेक्शन लगाया। श्रीमन्जी उस समय अचेतावस्था में थे। डाक्टर उन्हें कृत्रिम सांस देने लगा। जे० ए० हास्पिटल को एम्बुलैंस के लिए फोन कर दिया गया था। लगभग वीस मिनट में एम्बुलैंस आ गयी। उस समय १२.३० का समय होगा। एम्बुलैंस के आने के पहले निजी सहायक स्टेशन पर आर० एम० एस० विभाग में दिल्ली को इस गंभीर स्थिति की सूचना देने के लिए फोन करने गया। लगभग २० मिनट वाद उसका फोन पर गांधी स्मारक निधि के मंत्री से सम्पर्क हो पाया। उसने उन्हें वताया कि श्रीमन्जी की तबीयत अचानक खराव हो गयी हैं और उन्हें ग्वालियर स्टेशन पर उतार लिया है और एम्वुलैंस में जे० ए० अस्पताल ले जा रहे हैं। निजी सहायक टैलीफोन करके जब वाहर आया तो एम्वुलैंस श्रीमन्जी को लेकर रेलवे डाक्टर तथा सहायक के साथ जा चुकी थी।

इतने में ग्वालियर स्टेशन पर विजली चली गयी। निजी सहायक स्टेशन मास्टर के कमरे में गया और उसे यह वताकर कि फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम में सब समान रखा है और संभलवा कर अस्पताल चला गया। स्कूटर से जब वह अस्पताल पहुंचा तो लगभग पौन बजा था। इमरजेंसी वार्ड के वाहर ही रेलवे डाक्टर खड़ा था। उसने वताया कि श्रीमन्जी की रास्ते में ही मृत्यु हो गयी। निजी सहायक अवाक् रह गया। वह एकदम घवड़ा गया और तुरन्त वार्ड के अन्दर गया। वहां का दृश्य देखकर स्तव्ध रह गया। सेवक फूट-फूटकर रो रहा था। सेवक ने बताया कि डाक्टर ने एम्बुलैंस में भी एक इंजेक्शन लगाया था। परन्तु कुछ क्षणों के वाद ही श्रीमन्जी ने दम तोड़ दिया।

निजी सहायक ने ड्यूटी पर डाक्टर से अनुरोध किया कि मृतक के शरीर को जैसा रखा है, वैसे ही रहने दिया जाय। डाक्टर ने कहा कि आप थोड़ा लेट पहुंचे हैं। हमने मृतक के शरीर को अपने रजिस्टर में दर्ज कर लिया है और अव उसे आवश्यक कार्यवाही तो करनी ही पड़ेगी। वैसे पोस्टमार्टम तो आप लोगों की इजाजत के बिना नहीं करेंगे।

निजी सहायक तुरन्त एम्वुलैंस में सिंधी कालोनी गया जहां उसके परिचित आचार्य कुल के सम्पादक श्रीगुरुशरण रहते थे। मृतक के शरीर के पास सेवक को वैठा गया। रात के लगभग ढाई वजे श्रीगुरुशरण के निवास-स्थान पर पहुंचा। दरवाजा खटखटाया। थोड़ी देर वाद उनकी पत्नी ने दरवाजा खोला। पता चला कि श्रीगुरुशरणजी तो घर पर नहीं हैं, वे मुरैना गये हुए हैं। सुवह लड़के को भेजकर वुलवा सकती हूं। निजी सहायक ने कहा कि किसी दूसरे व्यक्ति का आप पता बता सकें तो सहूलियत हो जायेगी। उन्होंने चम्वल घाटी के मंत्री श्री हेमदेव शर्मा का पता बताया और कहा कि वे स्थानीय नेता भी हैं और सब काम आसानी से करवा देंगे।

निजी सहायक एम्बुलैंस में बैठकर श्री हेमदेव शर्मा के घर गया। दरवाजा खटखटाने पर शर्माजी स्वयं वाहर आये। उनके घर पर टेलीफोन था। निजी सहायक की सूचना पर शर्माजी ने वम्वई तथा दिल्ली ट्रंक बुक किये। दिल्ली से सम्पर्क स्थापित न हो सका, परन्तु बम्बई में श्रीरामकृष्णजी बजाज से बात हो गयी और उनको इस हृदय-विदारक घटना की जानकारी दे दी गई। उनसे यह भी पूछा कि मृतक शरीर को अब कहां ले जाना है। श्रीरामकृष्णजी ने बताया कि वह

दिल्ली सम्पर्क कर रहे हैं तथा वाद में इस संवंध में वतायेंगे।

शर्माजी तथा निजी सहायक एम्बुलैंस में अस्पताल पहुंचे और श्रीमन्नारायणजी के मृतक शरीर को अपने कब्जे में ले लिया। डाक्टर ने वताया कि आपके जाने के वाद दिल्ली से फोन आया था और हमने उनको मृत्यु का समाचार दे दिया है। श्री हेमदेव शर्मा ने विड़ला मिल के श्री शंकरलालजी से टेलीफोन पर वात की और इस घटना की जानकारी दी। दिल्ली से श्री राधाकृष्ण वजाज ने निजी सहायक को वताया कि श्रीमन्जी के मृतक शरीर को दिल्ली लाना है। इस संवंध में उनकी विड़ला मिल के शंकरलालजी से वात हो गयी है। वह स्टेशन वैगन की व्यवस्था कर रहे हैं। श्रीमन्जी के छोटे भाई श्री सुरेन्द्र नारायण ने ग्वालियर के असिस्टेंट कमिश्नर से सम्पर्क किया और सारी व्यवस्था ठीक से करवा देने का अनुरोध किया।

उस समय सुवह के पांच वज रहे थे। करीव छह वजे श्री शंकरलालजी, असिस्टेंट कमिश्नर तथा श्रीमन्जी के पुत्र भरत नारायण के मित्र श्री अरुण वाजोरिया अस्पताल पहुंच गये और सुवह साढ़े छह वजे मृतक शरीर को स्टेशन वैगन में रखकर शर्माजी तथा निजी सहायक दिल्ली के लिए रवाना हो गये। निजी सहायक ने सेवक से कहा कि वह सारा सामान लेकर ट्रेन द्वारा दिल्ली पहुंचे।

श्रीमन्जी के पार्थिव शरीर को स्टेशन वैगन से लेकर दोपहर को करीब एक वजे श्री हेमदेव शर्मा तथा निजी सहायक दिल्ली में गांधी स्मारक निधि, राजघाट के प्रांगण में पहुंचे। वहां पर विशाल जनसमूह रोता-विलखता उमड़ पड़ा। मृत शरीर को निधि के कार्यालय में ले जाया गया। आफिस में परिवार के सगे-संवंधी तथा विशिष्ट व्यक्ति शोक-विह्वल वैठे थे। आफिस में नीचे वर्फ की सिल्लियां लगाकर शरीर को एक लकड़ी के तख्त पर रख दिया गया।

रेडियो द्वारा यह दुःखद समाचार सारे देश में प्रसारित हो चुका था। देश भर के नेताओं तथा रचनात्मक कार्यकर्ताओं एवं शिक्षा-शास्त्रियों के शोक-संदेश प्राप्त होने लगे।

श्रीमन्जी के दोनों सुपुत्र उस समय दिल्ली में नहीं थे। वड़ा पुत्र भरत कुमार दुवई में था तथा छोटा रजतकुमार पंचमढ़ी में। दोनों को जानकारी मिल गयी थी। रजतकुमार पंचमढ़ी से वायुयान द्वारा शाम को सात वजे के करीव पहुंच गया और भरतकुमार रात के ग्यारह वजे के करीव पहुंचा।

४ जनवरी को प्रातः ९.०० वजे दाह-संस्कार करने के लिए फूलों से सजे हुए एक ट्रक पर तिरंगे झंडे में लपेटकर और फूलों से ढंककर श्रीमन्जी के शरीर को रखा गया। पास में उनकी पत्नी श्रीमती मदालसा नारायण, दोनों पुत्र, उनकी पत्नियां और वच्चे निगमवोध घाट के लिए एक विशाल जुलूस के साथ रवाना हुए। ट्रक के पीछे लगभग २०० कारें थीं।

निगमबोध घाट पर पहुंचने के पश्चात शरीर को ट्रक से नीचे उतारा गया और परिवार के सगे-सबंधियों ने उनके शरीर को हाथों का सहारा दिया और अन्दर ले गये।

दाह संस्कार विशिष्ट समाधि-स्थल पर किया गया। दोनों तरफ पार्क में शामियाने थे और कुर्सियां बिछी थीं। अंतिम दर्शन करने के लिए काफी भीड़ थी। गंधर्व महाविद्यालय की कन्याओं द्वारा गीता का पाठ तथा 'रघुपति राघव राजा राम' का भजन-कीर्तन हुआ। फिर वैदिक मंत्रों के द्वारा उनका अंतिम संस्कार संपन्न हुआ। दोनों पुत्रों ने अग्नि प्रज्वलित की और श्रीमन्जी का भौतिक शरीर हम लोगों की आंखों से सदा के लिए ओझल हो गया। □

• • •

ऐसे थे श्रीमन्‌जी

श्रीमन्‌जी रचनात्मक क्षेत्र के व्यक्ति थे और उनकी दृष्टि समन्वय की रही। उन्होंने जहां भी काम किया वहां व्यक्ति, समाज और राष्ट्र का हित उनके लिए सबसे अधिक महत्त्व का रहा।

शिक्षा, संयोजन, संस्कृति, राजनीति, अर्थ-नीति आदि सभी क्षेत्रों में वह गांधीजी के विचारों का समावेश कराने का प्रयत्न करते रहे। उन्होंने गांधीजी के संदेश को जन-सामान्य तक पहुंचाने की कोशिश की।

मैं आशा करता हूं कि यह ग्रन्थ इस बात की याद दिलायेगा कि मनुष्य को अच्छा मनुष्य बनने और ऐसे काम करने का प्रयत्न करना चाहिए, जो व्यक्ति के जीवन को सफल और कृतार्थ करते हैं।

—मोरारजी देसाई

श्रीमन्जी उन लोगों में से हैं जिन्होंने पदों और प्रतिष्ठा और यश से भरे हुए जीवन की सम्भावनाओं को ठुकराकर देश-सेवा का विकल्प चुना और जिन्होंने एक समृद्धिपूर्ण और प्रतिभावान जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए उत्सर्ग कर दिया है। विद्वत्ता, गंभीरता और नम्रता का उनमें अद्भुत समन्वय है। ऐसा नर-रत्न विरल होता है।

—मो० क० गांधी